इन्द्रधनुष
दीनानाथ झुनझुनवाला

इन्द्रधनुष

इन्द्रधनुष

दीनानाथ झुनझुनवाला

पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग
◆ वाराणसी ◆

इन्द्रधनुष

दीनानाथ झुनझुनवाला

प्रकाशक

पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग

पिल्ग्रिम्स बुक हाउस

बी० 27/98-ए-8, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-221010

टेलीफोन-(91-542) 2314060

फैक्स-(91-542) 2312456

email-pilgrims@satyam.net.in

website-www.pilgrimsbooks.com

प्रथम संस्करण—सन् 2009 ई०

आवरण—आशा मिश्रा

लेआउट—सुरेश जायसवाल

ISBN—978-81-7769-812-1

मुद्रक—पिल्ग्रिम प्रेस प्रा० लि०, लालपुर, वाराणसी।

विषय सूची

पृ०सं०

पृ०सं०

कुछ अपनी बातें...

मैंने अब तक चौदह किताबें लिख दी हैं। उन पुस्तकों के लेखन का क्रम है अमृत कलश (जिसमें संतों एवं शास्त्रों के वचनों का संग्रह है), दूसरी पुस्तक है हास्य कलश। इस पुस्तक में उच्च कोटि के हास्य संकलित हैं जिसको पूरा परिवार पढ़ कर चेहरे पर मुस्कराहट एवं हंसी स्वाभाविक रूप से ला सकता है। तीसरी पुस्तक है प्रेरक जिसमें भगवान शिव, भगवान राम, भगवान कृष्ण, भगवान गणपति आदि के दिव्य चरित्रों के साथ ऐतिहासिक महान पुरुषों के चरित्र चित्रण भी हैं जैसे नारद, पितामह भीष्म, भगवान बुद्ध, आदि शंकराचार्य, ईसामसीह, तुलसीदास, गुरु नानक देव, कबीर, रविदास, महाराज अग्रसेन, श्री राणीसती दादी जी, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महात्मा गांधी, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, महान वैज्ञानिक एलबर्ट आइंस्टीन, महान उद्योगपति घनश्यामदास बिड़ला आदि। इसके अलावा कुछ स्वतंत्र लेख भी हैं जैसे 'हे कलियुग! तू द्वापर से भी महान है, 'महा कुंभ' (विश्व का विशालतम आध्यात्मिक सम्मेलन), 'मकर संक्रान्ति' आदि। चौथी पुस्तक है 'आपका स्वास्थ्य आपके हाथ' जिसमें स्वस्थ रहने के अधिकतर अनुभव संग्रहीत हैं। पांचवीं पुस्तक है प्रेरक प्रसंग जिसमें महापुरुषों के प्रेरक प्रसंगों का संकलन है। छठीं पुस्तक है सफल उद्यमी कैसे बनें। यह पुस्तक भी जीवन में अपने व्यवसाय में कैसे सफल बने उनके सूत्र अपने अनुभव पर आधारित है। सातवीं पुस्तक है वृद्धावस्था की समस्या एवं समाधान। यह पुस्तक इसलिये लिखनी पड़ी कि हमारे देश की औसत आयु बढ़ने के कारण बचपन नहीं बढ़ा, जवानी नहीं बढ़ी लेकिन वृद्धावस्था बढ़ गई। वृद्धावस्था बढ़ने के कारण दो पीढ़ियों का साथ रहना मुश्किल हो गया। साथ ही वृद्धावस्था में स्वास्थ्य कैसे अनुकूल रहे उनके सूत्रों का समावेश है। आठवीं पुस्तक है प्रेरणा स्रोत जिसमें अन्य महानतम व्यक्तियों के जीवन चरित्रों का वर्णन है। नवीं पुस्तक है जीवन के सूत्र। यह पूज्य श्री रमेश भाई ओझा जी के कथाओं के सूत्रों का संग्रह है। इसी प्रकार दसवीं पुस्तक है वचनामृत जिसमें भी पूज्य श्री मोरारी बापू के कथा सूत्रों के अनमोल

वचन संग्रहीत हैं। ग्यारहवीं पुस्तक जीवन यात्रा के नाम से है जो मेरी आत्मकथा है जिसका प्रकाशन मेरे पचहत्तर वर्ष के प्रारम्भ में किया गया। बारहवीं पुस्तक हास्य का हिमालय है जिसमें विशेष रूप से हास्य का जीवन में महत्व एवं उसका शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव का भी वर्णन है। तेरहवीं पुस्तक रोटरी : एक परिचय है। इस पुस्तक का विश्व में पहली बार हिन्दी में अनुवाद कराकर मैंने प्रकाशित कराया। चौदहवीं पुस्तक 'नये युग का सूत्रपात' भी मेरी प्रेरणा से प्रकाशित हुई जिसमें १०० खण्डों के 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय' को एक खण्ड में संक्षिप्त कर दिया गया। यह अद्भुत कार्य किया है विद्वान लेखक श्री शरदकुमार साधक जी ने।

यह मेरी पन्द्रहवीं पुस्तक है। इस पुस्तक के लेख भी इतने विविध हैं जिस लेख के विचार को पढ़ना हो, पढ़ सकते हैं। हमारी लेखनी अभी भी चालू है। हो सकता है अन्य लेखों के लिये दूसरी पुस्तक प्रकाशित करनी पड़े। इस पुस्तक का नाम भी विद्वानों से विचार विमर्श के बाद 'इन्द्रधनुष' रखा गया। जैसे इन्द्रधनुष में विभिन्न रंग होते हैं उसी प्रकार इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर विचार व्यक्त किये गये हैं। मैंने धर्म एवं अध्यात्म जैसे गंभीर विषय पर भी चर्चा की है। कर्मक्षेत्र से सम्बन्धित लेख भी पढ़ने को मिलेंगे ताकि ज्ञान का कर्म में रूपान्तरण हो सके। अगर ज्ञान ने कर्म को प्रभावित नहीं किया तो ज्ञान केवल बोझ है। हमने शास्त्रों के विचारों से भी अवगत कराने का प्रयास किया है ताकि हमारा शास्त्र बोध बढ़े। हमारे देश की संस्कृति अन्य देशों के मुकाबले प्राचीनतम है। इसके लेखों में अपने देश की संस्कृति को भी जानने का अवसर मिलेगा। विशेष जातीय संस्कृति के लेख भी पढ़ने को मिलेंगे। हम अपने समाज एवं देश के बारे में जानना चाहेंगे तो यह पुस्तक आपकी सहायता कर सकती है। यात्रा संस्मरण के साथ अन्य विविध विषयों के लेख भी पढ़ने को मिलेंगे। हमने प्रयास किया है विभिन्न विषयों पर लेखों के माध्यम से अपने विचार प्रकट करने का। कितना सफल हुआ यह तो हमारे पाठकों की प्रतिक्रिया से हमें ज्ञात होगा। सुधी पाठकों से विनम्र आग्रह है कि अपनी प्रतिक्रिया से मुझे अवगत कराने का अवश्य कष्ट करें। आगे भी लोगों के आग्रह पर बचपन पर पुस्तक लिखी जा रही है। कारण सलाह देने वालों ने कहा कि आपने वृद्धावस्था पर पुस्तक लिखी, अतः जीवन की बाकी दोनों अवस्थाओं पर भी लिखने का कष्ट करें- बचपन एवं जवानी। लोगों के आग्रह पर लिखने में मुझे हार्दिक सन्तोष होता है कारण उनको मेरी लेखन सामग्री पसन्द आई होगी। ईश्वर मुझे इस लायक बनाकर रखे कि मेरी लेखनी आजीवन चलती रहे।

–दीनानाथ झुनझुनवाला
वाराणसी

ईश्वर की सत्ता

मुझे याद है कि ईश्वर के बारे में धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज से जब पूछा गया तो उन्होंने कहा था कि जंगल को जब भी बगीचा बनाना होगा तो बिना माली के हो नहीं सकता। उसी प्रकार इस सुन्दर सृष्टि को बनाने वाला जरूर कोई होगा। जो होगा उसे हम चाहे ईश्वर कहें, या अल्लाह कहें या गॉड कहें या खुदा कहें। जो होगा वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी एवं अदृश्य होगा। इसी प्रकार दुनिया के महानतम वैज्ञानिक एलवर्ट आइन्स्टीन से ईश्वरीय सत्ता के बारे में जब पूछा गया तो उन्होंने भी यही कहा कि ब्रह्माण्ड में एक सिस्टम है जैसे पृथ्वी का निश्चित धुरी पर घूमना, निश्चित परिक्रमा करना, सूर्य से एक निश्चित दूरी बनाकर रखना, सूर्य, चन्द्रमा का नियत समय पर उगना एवं अस्त होना आदि। ब्रह्माण्ड में यह सिस्टम हो नहीं सकता, जब तक कि इसको कोई बनाने वाला नहीं होगा। जो बनाने वाला है वही ईश्वर है, वही गॉड है।

विश्व के महामानव महात्मा गांधी ने 'हां ईश्वर है' के सम्बन्ध में अपने विचार यों व्यक्त किये– "एक ऐसी अव्यक्त, अपरिभाषित, रहस्य की शक्ति अवश्य है जो विश्व के कण कण में व्याप्त है। मुझे उसकी प्रतीति होती है, हालांकि मैं उसे देख नहीं पाता। यही वह अदृश्य शक्ति है जिसके प्रभाव का अनुभव तो होता है, पर वह किसी प्रमाण की पकड़ में नहीं आती क्योंकि मैं अपनी इन्द्रियों के जरिये जिन चीजों का अनुभव कर पाता हूं वह उन सबसे सर्वथा भिन्न है, वह अतीन्द्रिय है। लेकिन एक सीमा तक ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना संभव है। सभी निश्चित तौर पर समझते हैं कि कोई शक्ति है अवश्य जो संसार का संचालन कर रही है। ब्रह्माण्ड में एक अटल नियम विश्व की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणी का नियमन कर रहा है। वह नियम अंधा नहीं है क्योंकि कोई भी अंधा या विवेकशून्य नियम जीवधारी प्राणियों के आचरण का नियमन नहीं कर सकता और अब तो सर जगदीश चन्द्र बसु की आश्चर्यजनक खोजों के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है कि वृक्षादि पदार्थ भी जीवमय हैं। इस प्रकार विश्व के समस्त जीवन का नियमन करने वाला ही ईश्वर है। नियम

एवं नियामक एक ही है। चूंकि मैं उस नियम या नियामक ईश्वर के बारे में इतना कम जानता हूं, इसलिये मुझे उसके अस्तित्व को मानने से इन्कार तो नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार किसी भौतिक शक्ति को मानने से मेरे इन्कार करने या उसके बारे में अज्ञान बने रहने से मैं उसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो जाता, उसी प्रकार ईश्वर या उसके नियम को स्वीकार न करने से भी मैं उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह पाऊंगा। दूसरी ओर नत सिर होकर मूक भाव से ईश्वरीय शक्ति को स्वीकार कर लेने से जीवन यात्रा उसी प्रकार सुगम सरल हो जाती है जिस प्रकार कोई व्यक्ति यदि उस सांसारिक सत्ता को जिसके, अधीन वह रहता है, स्वीकार कर ले तो उसकी जिन्दगी आसान हो जाती है।'' अन्त में गांधी जी ने कह दिया ''मैं शुद्ध पवित्र बनने का जितना ही अधिक प्रयत्न करता हूं, अपने आपको ईश्वर के उतना ही निकट महसूस करता हूं। आज तो मुझे नाम मात्र की ही श्रद्धा है, फिर भी मैं अपने आपको उसके कुछ निकट महसूस करता हूं, पर जब मेरी श्रद्धा हिमालय जैसी अटल और चोटियों के हिम जैसी धवल और उज्ज्वल बन जायगी तब मैं अधिक निकटता महसूस करने लगूंगा।''

गांधी जी की इसी बात को हमारे शास्त्रकारों ने भी पुष्ट किया है। हमारे शास्त्र कहते हैं ''उस अवयवरहित को तो विशुद्ध अन्तः करण वाला विशुद्ध अन्तःकरण द्वारा ध्यान करता हुआ ज्ञान की निर्मलता से देख पाता है। इसलिये जो लोग ईश्वर को मन की आंखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मन को पवित्र कर और बुद्धि को विमल कर ईश्वर की खोज करें।'' हमारे शास्त्र आगे कहते हैं ''इस प्राणात्मक जगत की रचना इस बात की घोषणा करती है कि इस जगत का रचने वाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत अत्यन्त आश्चर्य से भरा हुआ है। जरायु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गाय, आदि, अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, पसीने से उत्पन्न होने वाले कीड़े, पृथ्वी को फोड़कर उगने वाले वृक्ष, इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यजनक है। नर और नारी का समागम होता है। उस समागम में नर का एक अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु चैतन्य अंश गर्भ में प्रवेश कर नारी के एक अत्यन्त सूक्ष्म सचेत अंश से मिल जाता है। वेद कहते हैं 'एक ही परमात्मा है, कोई उससे अलग दूसरा नहीं।' एक ही को लोग अनेक नामों से वर्णन करते हैं। इसी से जीवन सम्भव होता है।

वैज्ञानिकों के सम्मेलन में ईश्वर के अस्तित्व पर विचार विमर्श हुआ था। उसमें अनेक धर्मगुरु भी शामिल हुए थे। वहां एक ब्रह्माण्डविद् ने घोषणा की थी कि अब हमारे पास इतनी सूचनायें हैं जिनके द्वारा ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। प्रसिद्ध खगोलविद एलन सेंडेज का कहना है 'मेरे अपने विज्ञान ने मुझे

इस नतीजे पर पहुंचने के लिये प्रेरित किया कि ब्रह्माण्ड इतना जटिल है कि केवल विज्ञान इसका स्पष्टीकरण नहीं दे सकता। केवल किसी महाशक्ति के द्वारा ही मैं अस्तित्व के रहस्य को समझ सकता हूं।'

अब विज्ञान और धर्म एक दूसरे के निकट आते दिखाई दे रहे हैं। उनमें एक नया सम्बन्ध स्थापित हो रहा है। रसल का कहना है कि विज्ञान विश्वास तथा अध्यात्म की काट नहीं करता। वैज्ञानिक खोजें उनका समर्थन करती हैं। अधिसंख्य उपासकों को दैवी शक्ति का अनुभव इस दृश्यमान संसार के पीछे एक अदृश्य उपस्थिति के रूप में होता है। वैज्ञानिक विद्वानों का मानना है कि एक प्रकार से विज्ञान और धर्म का मेल होना आवश्यक नहीं है। विज्ञान का काम सदा शंकाओं से भरा रहा है जब कि धर्म का केन्द्र आस्था या विश्वास है। एक समय विज्ञान और धर्म मूल रूप से अलग अलग समझे जाते थे। किन्तु उन्होंने ब्रह्माण्ड के उद्‌भव में ईश्वर का हाथ बताया और कहा "ग्रहों की गतिविधियां केवल किसी प्राकृतिक कारणों से नहीं हो सकतीं, इन पर किसी बुद्धिमान एजेन्ट का प्रभाव हो सकता है। ग्रहों में आकर्षण क्यों होता है इसके लिए आइंस्टाइन ने उत्तर ढूंढ़ा। उन्हें दिक् और काल को आपस में जोड़ना पड़ा। इस महानतम वैज्ञानिक ने ही एक बार कहा था 'धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है तथा विज्ञान के बिना धर्म अंधा है।"

भारतीय दर्शन में उदयनाचार्य ईश्वर को निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनादि, अविकारी, अनन्त, सर्वगत, विभु, सच्चिदानन्द, दयालु तथा जगत का कर्ता, पालक एवं संहर्ता मानते हैं। वह नित्य ज्ञान, नित्य इच्छा तथा नित्य प्रयत्न का आश्रय है। अद्वैतियों की तरह नैयायिक ईश्वर को ज्ञान स्वरूप नहीं मानता अपितु ज्ञान को ईश्वर का गुण मानता है। अद्वैतियों की तरह नैयायिक ईश्वर में अणिमादि आठों ऐश्वर्य विद्यमान रहते हैं। वह धर्म, ज्ञान, संपत्ति से युक्त है। नैयायिक उसे वेद का निर्माता तथा जीवों के शुभाशुभ कर्मों का अधिष्ठाता भी मानता है। योग दर्शन भी ईश्वर को ऐसा पुरुष-विशेष मानता है जो क्लेश कर्म, कर्मानुसार फलोपभोग एवं भोगवृत्ति रूप से उत्पन्न वासनापुंज से सर्वदा अस्पृष्ट है। वह सभी दोषों से रहित निर्विकार तत्व है। प्रकृति इसे अपने बाहुओं में कभी बांध न सकी। इसकी चेतनता कभी धूमिल नहीं हुई। ईश्वर सर्वदा निस्पृह है। ईश्वर के समान ऐश्वर्य से युक्त और ज्ञान से सम्पन्न तत्व अन्य कोई नहीं है। वह केवल सांसारिक जीवों से ही नहीं, मुक्त पुरुषों से भी भिन्न है। मुक्त पुरुष होने के पहले बन्धन में रहता है परन्तु ईश्वर कभी बन्धन में रहता ही नहीं। वह सर्वदा मुक्त तथा ज्ञान, क्रिया और शक्तिरूप तीनों संपदाओं से युक्त होने के कारण तीनों कालों में सदा ईश्वर ही रहता है। भाष्यकार व्यास उसे ज्ञान तथा ऐश्वर्य की

पराकाष्ठा कहते हैं। ईश्वर के सान्निध्य मात्र से ही प्रकृति संसार के व्यापार में उसी प्रकार लग जाती है जिस प्रकार चुम्बक अपने सान्निध्य मात्र से ही लोहे में प्रभाव उत्पन्न कर देता है। डा० राधाकृष्णन भी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं जो सृष्टि कल्प से प्रकृति के क्रमबद्ध विकास की व्यवस्था करता है। सांख्य सूत्र के भाष्यकार विज्ञान भिक्षु के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष का संयोग स्वयं नहीं, अपितु प्रेरक कर्ता ईश्वर के कारण है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक उदयवीर शास्त्री का कथन है कि जगत का मूल उपादान प्रकृति है, परन्तु वह अचेतन होने से स्वयं प्रवृत्त होने में असमर्थ रहती है। अतः अपनी प्रवृत्ति के लिये उसे एक चेतन की प्रेरणा आवश्यक है। प्रकृति का प्रेरक वही चेतन ईश्वर है। ईश्वर की अवधारणा से चार्वाक को छोड़कर भारतीय दर्शन का कोई सम्प्रदाय अछूता नहीं रहा है। मानवीय जीवन में ईश्वर की अवधारणा का विशेष महत्व है। वही हमारी आस्था एवं विश्वास का केन्द्र बिन्दु है। इस प्रकार धर्म-विज्ञान एवं आस्था की दूरियां समाप्त हो रही हैं और सभी एक स्वर से ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने लगे हैं।

♦

परमात्मा

एक बार विश्व के महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन से किसी ने पूछा कि आप भगवान के अस्तित्व में विश्वास करते हैं या नहीं तो आइंस्टीन ने कहा कि जंगल को बगीचा बनाना होगा तो बिना माली के नहीं बनेगा। यह जो विश्व में एक क्रमबद्धता है वह बिना किसी के बनाये नहीं बनेगी जैसे चांद, सूरज का निश्चित समय पर उगना तथा अस्त होना या पृथ्वी का अपनी धुरी पर निश्चित गति से घूमना। सूर्य से पृथ्वी की दूरी निर्धारित है। अगर नजदीक हो जायगी तो भस्म हो जायगी तथा दूर हो जायगी तो ठंड के मारे जम जायगी याने ब्रह्माण्ड में जो एक क्रमबद्धता है उसको बनाने वाला जरूर कोई है। अतः अब यह मानने का कोई कारण नहीं कि परमात्मा नहीं है। परमात्मा के निर्गुण निराकार रूप एवं सगुण साकार रूप के बारे में धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज बताया करते थे कि पानी की तीन अवस्थाएं हैं: बर्फ के रूप में ठोस, पानी के रूप में तरल तथा भाप के रूप में गैस या हवा। पानी की इन तीनों अवस्थाओं में तत्व केवल पानी ही रहता है। अलग-अलग रूप केवल अवस्था भेद है। इसी प्रकार हमारे सर्वशक्तिमान परमात्मा जो ब्रह्माण्ड का संचालन करते हैं उनके लिए निर्गुण निराकार एवं सगुण साकार होने में कौन सी कठिनाई है। इस प्रकार परमात्मा परमात्मा ही रहेगा, चाहे सगुण साकार हो या निर्गुण निराकार।

हर प्राणी में परमात्मा विराजमान है। किसी ने पूछा कि गुंडे ब़दमाश में तथा साधु सन्यासी में एक ही परमात्मा विराजमान है या अलग अलग। स्वाभाविक है जवाब होगा कि एक ही परमात्मा गुंडे बदमाश एवं साधु सन्यासी में है। कारण परमात्मा एक ही है। उसके स्वरूप अनेक हो सकते हैं लेकिन परमात्मा तत्व एक ही है। हमारे यहां यह भी प्रचलित कहावत है कि बिना परमात्मा की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता। तो क्या यह अर्थ हुआ कि गुंडा बदमाश भी परमात्मा की मर्जी से गलत कार्य करते हैं। अगर परमात्मा की मर्जी से गुंडा बदमाश हैं तो कर्ता भी एवं भोक्ता भी परमात्मा को होना चाहिए। लेकिन कष्ट या सुख भोगेगा तो गुंडा स्वयं न कि परमात्मा। अतः अगर परमात्मा कर्ता होगा तो भोक्ता भी परमात्मा

होगा। कर्म विज्ञान के अनुसार जो करेगा वही भरेगा (याने भोगेगा) चाहे सुख हो या दुःख। अब चूंकि परमात्मा भोक्ता नहीं है तो निश्चित रूप से कर्ता भी नहीं है। तो उस प्रचलित कहावत कि बिना परमात्मा की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता, का अर्थ समझने लायक है।

परमात्मा हमारे शरीर में केवल प्राण तत्व देता है बाकी के कर्ता भोक्ता हम स्वयं है। इसको स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त है। बिजली के मोटर में करेन्ट देने से ही मोटर चलेगी लेकिन उस मोटर का उपयोग आप हीटर चलाने में लेंगे या कूलर चलाने में, यह आपके ऊपर निर्भर करता है। उस करेन्ट का मोटर की उपयोगिता से कोई लेना-देना नहीं। ठीक इसी प्रकार परमात्मा ने हमें प्राण तत्व दे दिया। अब इस शरीर से हम गुंडे बदमाश बनते हैं या साधु संन्यासी, यह हमारे ऊपर निर्भर करता है। मैंने डाकुओं को सन्यासी बनते देखा है। अतः वह प्रचलित कहावत सौ फीसदी ठीक है कि बिना प्रभु की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता याने बिना प्राण तत्व के यह शरीर भी नहीं हिलेगा। लेकिन प्राण तत्व के बाद इस शरीर का हम क्या और कैसे उपयोग करें इसके कर्ता भोक्ता हम स्वयं हैं।

फिर प्रश्न उठता है कि क्या परमात्मा किसी के ऊपर ज्यादा या कम मेहरबान होता है? परमात्मा में कोई भेद बुद्धि है ही नहीं। सरिता बह रही है जितना बड़ा हमारा पात्र होगा उतना ही जल हम प्राप्त करेंगे। क्या भगवान सूर्य अपना प्रकाश देने में भेद भाव करते हैं या मां गंगा गुंडा बदमाश या साधु सन्यासी के साथ भेदभाव करती है? परमात्मा की सारी व्यवस्था सबको समान रूप से सुलभ है, यह तो हमारी पात्रता पर निर्भर है कि हम उस सुलभ सुविधा का कितना लाभ उठाते हैं।

इसी दुनिया में बुद्ध, गांधी, अरविन्द, विवेकानन्द आदि पैदा होते हैं तथा गुंडे बदमाश, धोखेबाज भी। जो कुछ है हमारे अन्दर है। हम अपने अन्दर का रूपांतरण कर लें तो हमें भी महान बनने में देर नहीं लगेगी।

हम जिज्ञासु भाव से तर्क करें तो समझने में मदद मिलती है लेकिन कुतर्क उलझन पैदा करेगा। तर्क जब होगा तो बुद्धि से होगा। विश्वास जब होगा तो हृदय से होगा। मानो हमेशा हृदय की, बुद्धि की न मानना। कारण अधिक बुद्धिमान मिलेगा तो हमारे विचार बदल देगा जिसका कोई अन्त नहीं है। हार्दिक ही सत्य से साक्षात्कार कराता है।

अब प्रश्न उठता है कि हम परमात्मा का दर्शन क्यों नहीं कर पाते? जब दोनों का अस्तित्व है तो दर्शन में बाधा क्या है? बाधा है परदा या आवरण। हमारे और परमात्मा के बीच आवरण है हमारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर आदि। अगर ये आवरण हट जाएं तो हम निर्मल हो जायेंगे और यह कहावत

चरितार्थ हो जायगी कि निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। लालटेन में प्रकाश है लेकिन शीशे में करखा लगा है तो प्रकाश भीतर से बाहर आयेगा कैसे? करखा हटा और प्रकाश बाहर आया। याने हम निर्मल हुए और परमात्मा का मिलन हुआ।

स्वामी विवेकानन्द जी ने परमहंस रामकृष्ण देव जी से पूछा कि आपने मां काली को देखा है? तो परमहंस ने कहा कि मैं जैसे तुझे देख रहा हूं उसी प्रकार मां काली को देखता हूं। आपका विश्वास एवं आपका निर्मल मन आपके भगवान को प्रगट कर देगा। भगवान का जन्म नहीं होता, भगवान अप्रकट से प्रगट होते हैं जैसे जहां कहीं भी अरणी मंथन करो, अग्नि प्रकट हो जायगी। ठीक उसी प्रकार आपका विश्वास एवं निर्मल मन उस सर्वशक्तिमान परमात्मा को प्रगट कर देगा। वह तो सर्वव्यापी है अतः जब चाहेंगे, जिस रूप में चाहेंगे उनको आकार लेते देर नहीं लगेगी। सभी स्वरूपों में एक ही परमात्मा है। जैसे बिजली से चलने वाले सारे उपकरणों में एक ही करेन्ट है। भगवान के जितने रूप हैं सबमें एक ही परमात्मा है तथा परमात्मा के जीव जगत में जितने स्वरूप हैं (प्राणिमात्र) हैं उनमें भी एक परमात्मा है। परमात्मा ने अलग अलग समय में लोकहित की दृष्टि से अलग अलग महान आत्माएं भेजी है जैसे क्राइस्ट, पैगम्बर, गुरुनानक देव, बुद्ध, महाबीर आदि आदि। ये सभी उस परमात्म तत्व की अभिव्यक्तियां हैं। कारण सभी के पंथ तथा प्रकार अलग अलग होते हुए भी अन्तिम लक्ष्य सभी का समान है। सभी पंथ एक ही गंगा के अलग अलग घाट हैं, किसी भी घाट में नहाओ, गंगा तो समान रूप से सभी को सभी घाटों में निर्मल करेगी ही।

एक कक्षा में अध्यापक ने बच्चों से पूछा कि परमात्मा कहां हैं? एक शिष्य ने कहा मन्दिर में, दूसरे ने कहा मस्जिद में, तीसरे ने कहा गिरजाघर में, चौथे ने कहा गुरुद्वारे में। तो पांचवे छात्र ने इस गूढ़ प्रश्न का उत्तर प्रश्न पूछ कर दे दिया कि 'गुरुदेव! यह बताया जाय कि परमात्मा कहां नहीं हैं? वह तो सर्वत्र हैं।'

कोई परमात्मा को मानता है तथा कोई नहीं मानता तो क्या मानने तथा नहीं मानने के कारण प्रभु कृपा में कोई अन्तर आता है? कोई अन्तर नहीं आता। प्रभु कृपा सबको समान रूप से सुलभ है। भगवान सूर्य क्या प्रकाश देने में भेदभाव करते हैं या मां गंगा किसी को पावन करने में भेदभाव करती है? परमात्मा हमेशा सम अवस्था में रहते हैं। कभी विषम होते ही नहीं। अग्नि को मन से छुओ या बिना मन के, ताप का असर तो होगा ही। लेकिन एक भेद है। हम अगर यह मान लें कि हमारी सारी क्रिया का कारण प्रभु है याने कर्तापन के भाव का लोप हो जाय तो भोक्तापन का भाव भी नहीं रहेगा। कारण जब कर्तापन रहेगा तभी भोक्तापन रहेगा।

किसी ने पूछा कि बता, भगवान देखता किधर है? तो प्रश्नकर्ता से पूछा गया कि बता, मोमबत्ती की लौ किधर देखती है? जैसे मोमबत्ती की लौ सर्वत्र देखती है ठीक उसी प्रकार प्रभु सर्वत्र देखते हैं।

किसी ने पूछा कि बता, भगवान कहां हैं तो सन्त ने कहा कि दो किलो दूध लाओ तो सन्त ने पूछा कि बता, इस दूध में मक्खन कहां है। जैसे सारे दूध में मक्खन व्याप्त है उसी प्रकार सारे ब्रह्माण्ड में परमात्मा व्याप्त हैं।

हम कितने ही तर्क दे दें लेकिन तर्क से विश्वास पैदा नहीं होगा। तर्क से विश्लेषण करके अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे लेकिन 'विश्वासो फल दायक:' अतः एक बार तर्क से जितना जानना हो जान लो लेकिन मानने के लिए श्रद्धा विश्वास का आश्रय लो। विश्वास से मकड़जाल हटेंगे, भ्रम मिटेंगे एवं शुद्ध-शान्त स्वरूप का दर्शन होगा। भगवान बुद्धि से नहीं शुद्धि से मिलेंगे।

♦

शरीर एवं आत्मा

शरीर एवं आत्मा की पहेली इतनी पुरानी है कि एक कवि ने ठीक ही कहा कि शरीर एवं आत्मा रहे जिन्दगी भर साथ लेकिन एक दूसरे को देख न पाये। बात एकदम सही है कि जब तक जिन्दगी है तब तक आत्मा एवं शरीर का अटूट सम्बन्ध है। जहां दोनों का सम्बन्ध टूटा तो शरीर तो यहीं पड़ा रह जाता है लेकिन आत्मा कहां चली जाती है, यह रहस्य आज भी रहस्य बना है। यों कहने को तो कहते हैं कि आत्मा परमात्मा में विलीन हो गई अथवा आत्मा अमर है, शरीर मरणधर्मा है।

एक सज्जन ने मेरे से पूछा कि शरीर से आत्मा निकल जाय तो शरीर की क्या गति है? मैंने कहा मणिकर्णिका घाट। मैंने उन्हीं सज्जन से प्रश्न किया कि आत्मा को शरीर न मिले तो आत्मा की क्या गति होगी? याने आत्मा भी अकेली भटकती रहेगी। आत्मा को शरीर चाहिये। शरीर उस आत्मा का माध्यम है। पाप पुण्य शरीर से होगा। तो आत्मा का क्या स्वरूप है इसकी चर्चा हम यहां करना चाहेंगे।

आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को समझने के लिये एक अन्य उदाहरण से इसको आसानी से समझा जा सकता है। बिजली के तारों में करेंट है। लेकिन तार को देखकर कोई बता नहीं सकता कि उक्त तार में करेंट है या नहीं। करेंट के रहने से तार का न तो आकार घटता बढ़ता है और न उसके वजन में कोई फर्क पड़ता है। तार का रंग रूप भी नहीं बदलता। अतः तार को दूर से देखकर हम नहीं बता सकते कि उसमें करेंट है या नहीं। यह तो स्पर्श से या उससे किसी उपकरण को चलाकर ही हम बता सकते है कि तारों में करेंट है। तार में करेंट आने के बाद उस तार को बिजली की मोटर से जोड़ने पर मोटर चलती है। अब उस मोटर को हम चाहे हीटर से जोड़ें या कूलर से। याने करेंट का काम है ऊर्जा देना। उस ऊर्जा का उपयोग आप चाहे जैसे करें यह आपके ऊपर निर्भर करता है। ठीक यही फार्मूला आत्मा एवं शरीर पर भी लगता है। लोग कहते हैं बिना प्रभु की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता। यह बात सौ फीसदी ठीक है कारण बिना प्राण के शरीर बेकार पड़ा

है। जब प्राण आ गये तो शरीर ने काम करना प्रारम्भ किया। अब शरीर जब प्राणवान हो गया तो कार्य करने में स्वतंत्र है जैसे बिजली की मोटर को चाहे जिस काम में लेवें। इस प्रकार यह बात समझ में आ गई कि बिना प्राण के शरीर एकदम बेकार है और प्राण आते ही यह काम करने लायक हो गया। जैसे करेंट या मोटर किस काम में ली जायगी कोई निश्चित नहीं। उसी प्रकार से शरीर से क्या कार्य होगा उसका प्रयोजन आत्मा या प्राण से नहीं है।

शरीर से जब प्राण निकल गया तो हिन्दू उसे जला देता है और उस जलाने के पीछे भावना रहती है कि पांच तत्वों से निर्मित यह शरीर अपने मूल पंच तत्वों में विलीन हो गया। मुसलमान उस मुर्दा शरीर को जमीन में गाड़ देता है। मुसलमानों की मान्यता है कि जब कयामत के दिन आयेंगे तो यह शरीर पुनः जीवित हो उठेगा। पारसियों द्वारा शरीर को ऊपर छत पर रख दिया जाता है ताकि पक्षियों के खाने के काम आ जाय। इसके पीछे भी भावना यह है कि मृत शरीर भी किसी के काम आ जाय तो हम अपने को धन्य मानेंगे। संन्यासी के शरीर को गंगा में प्रवाहित किया जाता है कारण संन्यासी के शरीर का संन्यास लेते वक्त श्राद्ध और पिण्डदान हो जाता है।

एक गम्भीर समस्या है कि आत्मा अमर है। मृत्यु के वक्त वह शरीर को छोड़ कर चली जाती है तो जाती कहां है? हमारे धर्मशास्त्र बताते हैं कि कर्म के पाप-पुण्य का फल जन्म जन्मान्तर में भोगना पड़ता है याने आवश्यक नहीं कि इसी जन्म में हम भोग लें। हमारे धर्मशास्त्र यह भी बताते हैं कि पाप एवं पुण्य का भोग दुःख एवं सुख से होता है याने जब हम सुख दुःख भोगते हैं तो हमारे पुण्य एवं पाप का क्षय होता है। तो जब आत्मा एवं शरीर का सम्बन्ध विच्छेद हो गया एवं आत्मा अमर है और शरीर यहां छूट गया तो उस शरीर के पाप-पुण्य अगले जन्म में भोगने के लिये कहां रहते हैं एवं किस रूप में रहते हैं। विद्वान एवं शास्त्र बताते हैं कि जो आत्मा निकलती है वह उस शरीर के पाप पुण्य साथ लेकर जाती है। जैसे आत्मा का कोई आकार नहीं होता, उसी प्रकार उस आत्मा, उस पाप पुण्य का भी कोई आकार नहीं होता। जैसे करेन्ट का कोई आकार नहीं होता, उसी प्रकार उस आत्मा रूपी प्राण का भी कोई आकार नहीं होता। आत्मा उस समय अशरीरी अवस्था में रहती है। उस आत्मा ने जैसे ही शरीर धारण किया तो उस आत्मा के पुराने पाप पुण्य उसी के साथ जाते हैं। इस कार्य-कारण सम्बन्ध को स्थापित एवं स्पष्ट करने के लिये हमें वास्तविकता देखनी होगी कि नवजात शिशु कोई राजा के घर पैदा होता है, कोई गरीब के घर पैदा होता है। कोई सर्वांग सुन्दर पैदा होता है, कोई अपंग पैदा होता है। याने राजा के घर सर्वांग सुन्दर पैदा होना यह दर्शाता है कि उसके संचित पुण्य अधिक हैं। इसी प्रकार गरीब के

घर अपंग पैदा होना यह दर्शाता है कि उसके संचित पाप अधिक हैं। फिर इस जन्म में उसके पाप पुण्य जैसे होंगे उसी के अनुरूप वह राजा के घर पैदा होकर भी गरीब हो सकता है एवं रंक के घर पैदा होकर भी सम्पन्न हो सकता है। कर्म की व्यवस्था इतनी जटिल है कि हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं लेकिन फल पाने में परतंत्र हैं। हमें यह मालूम नहीं कि कौन से कर्म का फल कब, कितना एवं किस रूप में मिलेगा। अतः भगवान ने गीता में कह दिया कि 'गहना कर्मणो गतिः' याने कर्म की गति बड़ी गहन है। यह गहन इसलिये है इस विश्व में आज तक ऐसा कोई पैदा ही नहीं हुआ जो यह बता दे कि किस पाप का दुःख हम आज भोग रहे हैं एवं किस पुण्य का सुख हम आज भोग रहे हैं। हमारे शास्त्र यह बताते हैं कि जैसे वायु जिधर से गुजरती है उधर की सुगन्ध या दुर्गन्ध अपने साथ लेकर जाती हैं। ठीक इसी प्रकार यह आत्मा भी अपने शरीर के पाप पुण्य साथ लेकर जाती है।

अब प्रश्न उठता है कि तब मुक्ति क्या है? कहते हैं कि मुक्त आत्मा का पुनर्जन्म नहीं होता, बात बिल्कुल सही है। हमारे कर्म जब तक पाप-पुण्य का अर्जन करते रहेंगे, हमें उस पाप पुण्य को भोगने के लिये पुनर्जन्म लेना ही पड़ेगा। लेकिन वह अवस्था तब आयेगी जब हमारे कर्म पाप पुण्य का अर्जन करना बन्द कर देंगे। जिस क्षण हमारे में कर्तापन के भाव का लोप हो जायेगा उसी क्षण हमारे पाप पुण्य का अर्जन भी बन्द हो जायगा। कारण उस समय कर्म के कर्ता हम नहीं हैं। जब कर्ता नहीं तो भोक्ता होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे हम श्वास लेते हैं, हमारी पलकें उपर नीचे होती हैं तो यह क्रिया स्वाभाविक रूप से हो रही है। इस क्रिया में हमारा कर्तापन का भाव नहीं है। अतः उस क्रिया के हम भोक्ता भी नहीं हैं। इसी प्रकार जब सारे शरीर एवं मन से क्रियाएं स्वाभाविक रूप से होने लगें तो हमारे कर्तापन के भाव का लोप हो जायगा। जब हमने क्रिया नहीं की तो हमारे कर्म हमें बांधेंगे नहीं और इस प्रकार हम पाप पुण्य के भागी नहीं होंगे। जिस क्षण यह अवस्था आयेगी उसी क्षण हम मुक्त हो जायेंगे। मरने के बाद मुक्त होने की कल्पना या काशी या अन्य तीर्थ स्थानों में मरने से मुक्त होने वाली कहावतें संदेहास्पद ही हैं।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कई अध्यायों में आत्मा की अमरता की बात कहते हैं। वे यह भी कहते हैं कि अर्जुन मेरे और तुम्हारे बहुत जन्म हो चुके हैं, किन्तु परंतप! (शत्रुओं को तपाने वाले) मैं उन सबको जानता हूं, पर तुम नहीं जानते हो। अध्याय २ के २०वें श्लोक में भगवान ने कहा 'यह जीवात्मा न कभी जन्म लेता है और न यह कभी मरता ही है। यह अजन्मा है। शाश्वत है, नित्य है, पुरातन है। शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मरता है।

इस लेख का सार-संक्षेप देखें तो यह प्रतीत होगा कि शरीर मरणधर्मा है। आत्मा अमर है। आत्मा जब पुनः शरीर धारण करती है तो पुराने शरीर के पाप पुण्य उसके नये शरीर धारण में साथ रहते हैं। मुक्ति तभी मिलेगी जब कर्तापन के भाव का लोप हो जायगा। कर्म करते हुये भी हम अकर्ता बने रहेंगे। ये कर्म हमें कर्म बन्धन से मुक्त रखेंगे याने हमारी मुक्ति हो जायगी। जब आत्मा के अकर्तापन का ज्ञान हो जायगा तो पुराने संचित पाप पुण्य भी भस्म हो जायेंगे। शरीर एवं आत्मा के योग एवं वियोग से विशेष परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। यह तो एक शाश्वत प्रक्रिया है जो चलती आई है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

♦

नारायण से नर एवं नर से नारायण

नारायण से नर की यात्रा जब भगवान करते हैं तो उसके तीन हेतु होते हैं, (१) परित्राणाय साधूनां (साधुओं की सुरक्षा), (२) विनाशाय च दुष्कृतां (असुरों का विनाश) और (३) धर्म संस्थापनार्थाय (धर्म की स्थापना)। ये तीन हेतु भगवान कृष्ण ने श्रीभगवद्गीता के अध्याय ४ के ८वें श्लोक में बताये हैं। लेकिन ये तीनों हेतु भगवान करते कैसे हैं? सतयुग में नृसिंहावतार हुआ, त्रेता में रामावतार हुआ तथा द्वापर में कृष्णावतार हुआ। कलियुग में अभी तक भगवान अवतरित नहीं हुये। इसका कारण है कि आज का कलियुग उस समय के सतयुग, त्रेता एवं द्वापर से श्रेष्ठ है। अभी कलियुग में साधुओं को उतना कष्ट नहीं है, अभी उतने असुर पैदा नहीं हुये तथा अभी धर्म पर उतना संकट पैदा नहीं हुआ कि वर्तमान कलियुग में भगवान के अवतरण का हेतु बने। इसीलिये हमारी दृष्टि से कलियुग अन्य युगों से अभी भी श्रेष्ठ है। हमारे विद्वान प्रवचनकर्ता प्रायः कलियुग को दोषी ठहराते हैं और कलयुग में रहना भी उनकी विवशता है। अतः जिस काल में हमें रहना है उसको खराब बताकर हम अपना ही अहित करते हैं। अपने ही जीवन को हम स्वयं अशान्त एवं असंतुष्ट बनाते हैं जो हमारे शास्त्र वचन का अभीष्ट नहीं है।

नारायण से नर की यात्रा में एक दृष्टान्त जल का देते हैं। जैसे जल की तीन अवस्थाएं होती है, बर्फ याने ठोस, पानी याने तरल तथा वाष्प याने वायु रूप में। इन तीनों ही अवस्थाओं में जल जल ही रहता है। केवल उसकी अवस्था में भिन्नता आती है। इस प्रकार हमारे नारायण को जब नर रूप लेना होता है तो केवल अवस्था भेद होता है। याने नर रूप में भी नारायण ही रहते हैं। जब नारायण ने नर रूप धारण किया तो हम भगवान राम एवं भगवान कृष्ण के उदाहरण से और अधिक स्पष्ट समझने का प्रयास करते हैं। नर रूप में भगवान बहुत सी लीलाएं करते हैं जो किसी नर के द्वारा करना संभव नहीं है, जैसे भगवान राम ने सभी जानवरों को लेकर युद्ध किया। उनकी सेना में बन्दर-भालू-रीछ-गीध आदि आदि थे। कोई संगठित सेना नहीं थी। कैसे जानवरों की असंगठित

सेना को लेकर भगवान राम ने रावण की दानवीय संगठित सेना से युद्ध किया होगा! लंका जाने के लिए पहले पवनपुत्र हनुमान का उड़कर आकाश मार्ग से भारत से लंका जाना कैसे संभव हुआ होगा? क्या मानव इस प्रकार की उड़ान भर सकता है? इसी प्रकार हनुमान जी महाराज तथा सुरसा ने कैसे अपने आकार को बढ़ाया होगा! 'जस जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासू दून कपि रूप दिखावा' याने सुरसा ने जितना अपना आकार बढ़ाया उसका दूना रूप हनुमान ने किया। इस प्रकार हनुमान जी ने शत योजन का आकार कर लिया। जो किसी भी प्रकार संभव नहीं है। इतना बड़ा आकार करने के बाद 'मसक समान रूप कपि धरी' याने मच्छर के समान आकार कर लिया। याने इतने विराट रूप से इतना सूक्ष्म रूप धारण करना ईश्वरीय लीला से ही संभव है। कहते हैं नल नील ने पत्थरों को पानी में छोड़ा और वे पानी में तैरने लगे। आज तक तो किसी व्यक्ति के द्वारा यह संभव नहीं हो सका कि किसी के छूने से पत्थर भारी से इतना हल्का हो जाय कि पानी में तैरने लगे। भगवान राम साक्षात् ब्रह्म थे। मां जानकी साक्षात् जगत जननी थी। फिर क्यों मारीच के कपट रूप को पहचान नहीं सकी? कपट रूप सोने के मृग को चाहने की इच्छा मां सीता में प्रगट हुई और साक्षात् ब्रह्म चले उसे पाने के लिये। इसी प्रकार रावण जब साधु के कपट वेष में मां सीता से भिक्षा मांगने आता है तो मां सीता उसके कपट वेष से क्यों धोखा खा गईं और अपना अपहरण करवा लिया? यह सब भगवान की नर रूप में लीलाओं का प्रकरण है। कहते हैं भगवान राम जिस पुष्पक विमान से लंका से अयोध्या लौटे हैं उसकी यह विशेषता थी कि वह चाहे जितने यात्रियों को बैठा सकता था। याने अपनें आप बड़ा छोटा हो जाता था। अपने प्राचीन धर्म शास्त्रों में पुष्पक विमान का प्रकरण तो आता है लेकिन इस तरह के विमान निर्माण की प्रक्रिया या उसकी विधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता ताकि उस विधि से आज भी उसका निर्माण संभव हो सके। फिर हम यही कहते हैं कि यह सब भगवान की लीलाएं हैं। भगवान की लीला हमने उनको कहा जो नर रूप में संभव नहीं हैं। लेकिन नर रूप में नारायण के लिए सब कुछ संभव है। इसी प्रकार के भगवान राम के समय के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं जो नर रूप में नारायण की लीला स्वरूप लगते हैं।

अब आप भगवान कृष्ण के समय में देखें तो पैदा होते ही जेल के दरवाजे का अपने आप खुल जाना, यमुना का तीव्र वेग भगवान के बाल रूप चरण के स्पर्श से मन्द हो जाना तथा जल घट जाना, शैशवावस्था में पूतना का वध करना। जब कालिय नाग को बांधा एवं उस अति विषैले सर्प के फनों पर नाचे तो भगवान कृष्ण की बाल्यावस्था ही थी। ये सब की सब क्रियाएं नर रूप में संभव ही नहीं हैं। अतः भगवान की लीला ही कही जाती है। राधा एवं गोपियों से प्रेम करना

उन्होंने बारह वर्ष की अवस्था से छोड़ दिया याने बारह वर्ष की अवस्था के पहले ही अमर प्रेम की गाथाओं का निर्माण कर दिया। द्रौपदी का चीर हरण हो रहा है हस्तिनापुर में और भगवान कृष्ण दौड़कर आ रहे हैं द्वारिका से। कोई भी इतनी जल्दी इतनी दूरी तय नहीं कर सकता। यह भगवान की लीला से ही संभव है। इसी प्रकार के कई-कई अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनको कहने का तात्पर्य है कि जो क्रिया नर रूप में संभव नहीं हैं उसको भगवान की लीला समझकर नर रूप में नारायण के लिये संभव है। याने नारायण तो नारायण ही हैं। सर्व समर्थ हैं उनके लिये 'कौन सो काज कठिन जग माहीं' वाली कहावत चरितार्थ होती है।

हमने अब तक यह बताने की चेष्टा की है कि नारायण जब भी नर रूप में आते हैं तो अति विलक्षणताएं लिये आते हैं। जो नर रूप में उनके द्वारा किया गया दिखाया गया है वह किसी भी अन्य नर के द्वारा किया जाना संभव नहीं है। अब जब नारायण हमारे बीच नर रूप में आते हैं तीन हेतुओं से तो वे साधुओं की सुरक्षा, दुष्टों का नाश एवं धर्म की स्थापना कैसे करते हैं? जब समझाने बुझाने के सारे प्रयास निष्फल हो जाते हैं तो अन्तिम महायुद्ध ही उसकी परिणति है। प्रत्येक महायुद्ध में महा विनाश होता है। चाहे भगवान राम का महाबली रावण से युद्ध हो जिसमें सम्पूर्ण लंका का नाश हो गया, चाहे भगवान कृष्ण का महाभारत युद्ध हो जिसमें दोनों ओर की अठारह अक्षौहिणी (४० लाख) सेना में से कुल १० ही बचे ,महाविनाश हुआ। विद्वान बताते हैं कि महाभारत के युद्ध के सामने हमारे दो विश्वयुद्ध १९१८ या १९३६ के दोनों ही अति छोटे थे। महाभारत में जितना महाविनाश हुआ उतना तो दोनों विश्व युद्धों को मिलाकर भी नहीं हुआ। भगवान द्वारा युद्ध के अवश्यम्भावी होने का कारण बताते हुये हमारे शास्त्र एवं विद्वान बताते हैं कि पृथ्वी का भार हल्का करने के लिये तथा तीनों हेतुओं की प्राप्ति के लिये युद्ध ही अवश्यंभावी था।

आज की दुनिया में जितने आणविक आयुध एकत्रित हैं उनकी क्षमता के बारे में बताते हैं कि इनसे पूरी दुनिया कई कई बार विनष्ट की जा सकती है। विश्व के देशों में इतनी विषमताएं होते हुए भी इन अति विनाशकारी आयुधों के प्रयोग में सन्तुलन बनाये रखना कलियुग में ही संभव है। अतः कलियुग में हमारी समझदारी अन्य युगों से बढ़ी है यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। कलियुग के पिछले दो सौ वर्षों में विज्ञान ने हर क्षेत्र में जितनी सुविधाएं सुलभ कराई हैं वे अन्य युगों में पहले संभव थीं, ऐसा वर्णन पढ़ने को कहीं नहीं मिलता। नित्य नई खोज, आविष्कार, उत्पादन तथा वितरण ने विश्व के हर हिस्से में उत्पादित वस्तु को सर्वसुलभ करा दिया। इस प्रकार उपरोक्त के आधार पर प्रथम हमने यह प्रतिपादित

करने की चेष्टा की है कि नारायण से नर की यात्रा लीलाओं याने चमत्कारों से भरी हुई हैं जो नर रूप में किसी दूसरे नर के लिये करना संभव नहीं है। दूसरा हमने यह बताया कि कलियुग अन्य युगों से श्रेष्ठ है। कलियुग में भगवान का अब तक अवतरित न होना, विज्ञान की हर क्षेत्र में इतनी उपलब्धियां तथा भयंकर प्रलयंकारी आणविक आयुधों के होते हुये भी विश्व के सभी देशों में संतुलन बनाये रखना कलियुग को श्रेष्ठ बताने के लिये पर्याप्त है।

अब मैं नर से नारायण की यात्रा कैसे होती है इसका विवेचन करने का प्रयास कर रहा हूं। भगवान बुद्ध, महात्मा गांधी, जीसस क्राइस्ट तथा गुरु नानक देव इन चार का उदाहरण देकर मैं नर से नारायण की यात्रा पर प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा हूं। इन चार के अलावा भी कई महान आत्माओं ने नर से नारायण की यात्रा की है लेकिन सबका विवेचन करना संभव नहीं है। अतः चार उदाहरण से इसे स्पष्ट करने की चेष्टा कर रहा हूं। नर से नारायण की यात्रा जब होगी तो दो क्रियाओं को करना आवश्यक है। जैसे दुर्गन्ध हटाना एवं सुगन्ध ले आना। याने दुर्गुणों को हटाना तथा सद्गुणों को ले आना। ये दोनों क्रियाएं होती कब हैं जब नर सभी विकारों से अपने को मुक्त करे जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर। इन विकारों से मुक्त होते ही नर में समता, अहिंसा, सत्याचरण, करुणा, आदि का समावेश हो जाता है। ऐसा होते ही नर से नारायण की यात्रा पूरी हो जाती है। नर से नारायण होना अत्यन्त कठिन होते हुए भी संभव है। इस क्रिया में एक विशेषता और भी है। जो एक नर के लिये संभव है वह अन्य नरों के लिए भी संभव है। जिस क्रिया से बुद्ध बने, उस क्रिया को अपनाकर अन्य भी बुद्ध बन सकते हैं। जिस क्रिया याने संघर्ष को अपनाकर गांधी बने उसी क्रिया से अन्य भी गांधी बन सकते हैं। नर से नारायण की यात्रा में कहीं चमत्कार नहीं है और यह यात्रा वस्तुतः अत्यन्त कठिन है। नर से नारायण बननेवाला व्यक्ति तीनों हेतुओं की स्थापना हृदय परिवर्तन से क्रराता है उसे युद्ध लड़ाने की आवश्यकता नहीं होती। नर से नारायण बना व्यक्ति पूर्ण रूप से अनुकरणीय है कारण उसकी समाज, देश या विश्व में तदर्थ स्थापना उसके गुणों के कारण होती है, चमत्कार के कारण नहीं। आज पूरा विश्व बुद्ध, गांधी, क्राइस्ट आदि को जानता तथा मानता है। नारायण से नर होने के कारण वे अन्य नरों के लिए पूर्ण रूप से अनुकरणीय नहीं हो सकते, पूजनीय अवश्य हो जाते हैं। हमारे हिन्दू धर्म में नारायण से नर रूप को अधिक प्रधानता दी गई लेकिन अन्य धर्मों ने केवल उसको ही अपना आराध्य माना जिन्होंने नर से नारायण की यात्रा की। जैसे बुद्ध, महाबीर (जैन), क्राइस्ट, मोहम्मद पैगम्बर, गुरु नानक देव आदि, आदि। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि नर से नारायण बनना अत्यन्त कठिन होते हुए भी

संभव है, अन्य नरों के लिये अनुकरणीय है। कहीं चमत्कार नहीं है, वे जन हित में क्रान्ति एवं शान्ति संदेश से हृदय परिवर्तन करते हैं। युद्ध लड़ने-लड़ाने की आवश्यकता नहीं होती। समाज एवं देश में अपने आचरण एवं संदेश से नैतिक मूल्यों की स्थापना करते हैं। सबके प्रति समभाव रखते हुए सबके कल्याण की कामना करते हैं।

इस प्रकार हमने नारायण से नर की तथा नर से नारायण की यात्रा के विवेचन का प्रयास किया है। विज्ञ पाठक जन स्वयं इस पर विचार करने की कृपा करें।

◆

मुक्ति क्या है?

काशी में मरने के बाद मुक्ति मिलती है। भैरो यातना देकर उसे पाप मुक्त करते हैं और भगवान शंकर कान में मंत्र देकर मुक्त करते हैं। ये बातें चाहे पुण्यात्मा या पापात्मा दोनों पर समान रूप से लागू होती हैं। याने शास्त्र के अनुसार काशी में मरने वाले सौ प्रतिशत जीवों की मुक्ति हो जाती है। शास्त्रानुसार काशी जैसा महत्व भारत में अन्य स्थानों को भी है।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिकाः।।

ये सात पुरियां मोक्ष देने वाली कही गई हैं: अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार (माया), काशी, काञ्ची, उज्जयिनी और द्वारकापुरी।

हमारे उपनिषद कहते हैं "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो:", याने मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है। जब मन अशान्त, अमर्यादित रहता है तब वह बंधन का कारण हो जाता है लेकिन वही मन जब शांत एवं मर्यादित हो जाता है तो मुक्ति का हेतु हो जाता है। हमारे सारे साधन मन की एकाग्रता के लिये ही है। मन स्वतः शांत होने वाला नहीं है। मन का अपना स्वभाव तो पानी की तरह नीचे अर्थात् विषयों की ओर जाने का है। जैसे पानी को ऊपर ले जाने के लिये प्रयास करना पड़ता है वैसे ही मन को विषयों से हटाकर परमात्मा में लगाने के लिये निरन्तर साधना करने की आवश्यकता है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं–

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते'

याने अभ्यास एवं वैराग्य के बिना मन भी शांत एवं मर्यादित होने वाला नहीं। अभ्यास अर्थात् अभ्यास में निरन्तरता हो। जैसे हम प्रातः भ्रमण करते हैं शरीर को स्वस्थ रखने के लिये लेकिन प्रातः भ्रमण भी तभी लाभदायक हागा जब आपका भ्रमण नियमित होगा। अगर दो दिन भ्रमण किया और ४ दिन नहीं किया तो उससे लाभ तो होगा नहीं, नुकसान भी हो सकता है। उसी प्रकार मन को शांत करने के लिये जो भी साधना की जाय उसकी पहली शर्त है कि उसमें

निरन्तरता होनी चाहिए। तभी वह लाभदायक होगा। दूसरा वैराग्य। वैराग्य का अर्थ घरबार छोड़कर जंगल या पहाड़ की राह पकड़ना नहीं है। आपको अपना राग याने आसक्ति समाप्त करनी है तभी आपका वैराग्य सध पायेगा। जब तक हम भोग वृत्ति से इच्छानुसार वस्तु का सेवन करते रहेंगे तब तक वैराग्य के सधने का प्रश्न ही नहीं। हां, हम केवल अपनी आवश्यकतानुसार आसक्ति रहित होकर वस्तु का सेवन करें तो वैराग्य सध जायगा। जैसे हमें जीने के लिये अगर मिठाई, पूड़ी, कचौड़ी की आवश्यकता नहीं है तो हम उसका सेवन नहीं करेंगे। उसी प्रकार हमे पान, पान मसाला, खैनी या शराब की आवश्यकता नहीं है तो हम इन वस्तुओं के सेवन से परहेज करेंगे। हमारा शरीर अगर दो रोटी से ही जीवित रह सकता है तो केवल दो रोटी का ही सेवन करेंगे। यह वृत्ति जिस दिन आ जायगी उसी दिन से विराग की ओर बढ़ने लगेंगे। यह वैराग्य घर में रहकर भी सध सकता है। कइयों को मैंने साधते देखा है। अतः अगर एक के लिये भी परिवार में रहते हुये ऐसी साधना करना संभव है तो सभी के लिये हो सकती है।

अब हमारा कर्म हमें पाप पुण्य देता है। जैसा हम कर्म करेंगे वैसा ही हमें फल मिलेगा। जब हम नरक का कष्ट भोगते हैं तो वह कष्ट हमारे पाप का फल है याने पाप हमारे कट रहे हैं याने पापों से हमारी मुक्ति हो रही है। इसी प्रकार जब हम सुख भोग रहे हैं तो हमारे पुण्य का क्षय हो रहा है। याने जब तक हम कर्म के द्वारा पाप पुण्य करते रहेंगे तब तक हम सुख दुःख भोगते रहेंगे और बार बार हमारा जन्म मरण होता रहेगा। जन्म मरण से मुक्ति का एक ही उपाय है कि जब हमारे कर्म पाप पुण्य के कारक न बनें। ऐसा होना तभी संभव है जब हमारे में कर्तापन के भाव का सर्वथा लोप हो जाय। ऐसे व्यक्ति द्वारा क्रिया हो रही है लेकिन वह अपने को कर्ता नहीं मानता। जब कर्ता नहीं मानेगा तो उसके कर्म उसे पाप पुण्य नहीं प्रदान करेंगे और न उसके कर्म बंधन के हेतु बनेंगे। पाप पुण्य जब तक होते रहेंगे तब तक उसकी मुक्ति असंभव है। जब कर्तापन के भाव का लोप हो गया तो कर्म बंधन के हेतु नहीं बन पाये और हमें पाप पुण्य से छुटकारा मिल गया याने हमारी मुक्ति हो गई। क्योंकि पाप पुण्य करेंगे तो भोगने के लिए पुनर्जन्म लेना पड़ेगा।

जब व्यक्ति में कर्तापन के भाव का लोप हो जायेगा तो उससे गलत काम तो होंगे ही नहीं लेकिन पुण्य कार्य भी उसे नहीं बाँधेंगे। कारण पुण्य कार्य का फल पाने की भी कामना समाप्त हो गई। ऐसा व्यक्ति कर्म फल पाने से दूर रहेगा और सर्वथा मुक्ति का अधिकारी हो जायगा। क्योंकि उसके पाप पुण्य ही उसके पुनर्जन्म के हेतु बनेंगे।

बौद्ध विचारधारा में निर्वाण जीवन साधना की पूर्णाहुति है। निर्वाण को

अंतिम शुद्धि के रूप में वर्णित किया गया है। निर्वाण अहंकारमुक्त मानव की परम सुखमय अवस्था है। निर्वाण में तप द्वारा अहं क्षीण हो जाता है। जहां अहं है वहां निर्वाण नहीं है। मानव की ऊर्ध्वतम चेतना अर्थात् आध्यात्मिक अनुभूति की चरम अवस्था है निर्वाण। पाली त्रिपिटक में निर्वाण को 'अमृतपद' कहा गया है। इस अवस्था में मृत्यु मर जाती है। बुद्ध ने कहा भिक्षुओं ध्यान दो, मुझे अमृत मिला है।

भगवान बुद्ध ने निर्वाण को अंतिम शुद्धि कहा है। यह मरने पर नहीं होती। यह तो जीवित अवस्था में ही संभव है। भगवान बुद्ध को जब ज्ञान की प्राप्ति हुई तो उनकी अवस्था मात्र ३६ वर्ष की थी। उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् ४४ वर्षों तक लगातार जनता के बीच रहकर शुद्ध जीवन व्यतीत किया और सुख दुःख से मुक्त होने का तरीका बताया। भगवान बुद्ध का अष्टांग मार्ग ही शुद्ध होने का उपाय है।

भगवान बुद्ध पुनः कहते हैं मैंने अनुभव कर जो बताया है उसी का विचार करो और जो नहीं बताया है, पवित्र जीवन के लिये उसके जानने की कोई आवश्यकता नहीं है और न वह किसी तरह भी आध्यात्मिक साधना में सहायक है। उन्होंने दुःख की प्रकृति और उससे मुक्ति का उपाय बताया है और यही ज्ञान निर्वाण को प्राप्त कराता है। बुद्ध हठवादिता के विरोधी थे। शास्त्रीय आत्मपरक विषयों पर चर्चा करना वे व्यर्थ मानते थे। उनके धर्म के सिद्धान्तों का निचोड़ यही है कि हर व्यक्ति को निर्वाण की प्राप्ति स्वयं करनी है। उनकी स्वयं की अनुभूति ही उनके उपदेशों का आधार है।

बुद्ध कहते है – आपने शत्रुता एवं घृणा को स्थान दे रखा है, मैं घृणा से मुक्त हूं। आपलोग उग्र क्रोध से पीड़ित हैं, मैं इस व्याधि से मुक्त हूं। आप इन्द्रियजनित सुखों के पीछे भटक रहे हैं, मैं ऐसी भटकन से दूर हूं। यदि आपलोग सुख से रहना चाहते हैं तो उनके साथ जो हमसे घृणा करते हैं, बिना घृणा के रहना चाहिये। चिन्ता से पीड़ित व्यक्तियों के बीच हमें चिन्तामुक्त रहना चाहिये।

भगवान बुद्ध के निर्वाण और हमारी मुक्ति में कोई भेद नहीं है। जब हम कर्तापन के भाव से मुक्त होते हैं तो ही कर्म का फल हमारे बंधन का हेतु नहीं बनता। यही अवस्था तो अंतिम शुद्धि की अवस्था है। यह जीवित अवस्थामें ही संभव है। मरने के समय हमारा पाप पुण्य बाकी नहीं बचेगा तो पुनर्जन्म का हेतु ही समाप्त हो जायेगा। अतः मुक्ति एवं निर्वाण उस एक ही अवस्था का नाम है जब अहंकार के अभाव में हमारे द्वारा किये गये कर्म अकर्म हो जाएं जिससे कर्मफल हमें बांध न सकें।

♦

बंधन और मोक्ष

हमारे शास्त्रों ने कहा है– 'मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' यानि मन ही बन्धन एवं मोक्ष का कारण है। जैसे एक ही ताली से ताला बन्द भी होता है एवं खुल भी जाता है। बन्द करना एवं खोलना दोनों क्रियाएं परस्पर विरुद्ध होने पर भी दोनों काम एक ही चाभी करती है। मन में जो विचार आते हैं वे ही वचन में आते हैं एवं उसी के अनुरूप क्रिया भी होती है। मन के विचारों का यात्राक्रम है मनसा, वाचा, कर्मणा। हमारे मन में सद्विचार आयेंगे तो वे हमारे मोक्ष के हेतु बनेंगे एवं दुर्विचार आयेंगे तो बन्धन के हेतु बनेंगे। याने मन दोनों प्रकार के विचारों का उद्गम है चाहे उसमें सद्विचार आवे या दुर्विचार। प्रकृति में भी ऐसा नहीं होता कि अच्छाई का उद्गम अलग एवं बुराई का उद्गम अलग। जैसे गुलाब का पेड़ है। गुलाब के फूल दुनिया के सुन्दरतम फूलों में माने जाते हैं। कितने प्रकार के रंग बिरंगे फूल होते हैं। छोटी बड़ी साइज के फूल होते हैं। उनकी सुगन्ध की तीव्रता भी भिन्न–भिन्न होती है। लेकिन गुलाब का पेड़ बिना कांटों का नहीं होता। कांटे भी ऐसे कि गुलाब के पेड़ के साथ आते हैं एवं पेड़ जब तक जीवित रहते हैं तब तक कांटों का अस्तित्व बना रहता है। लेकिन फूल तो नित्य आते हैं, नित्य झड़ जाते हैं। फूलों के उगने का मौसम है लेकिन मौसम में उगने में निरन्तरता है। फूल ही भगवान पर चढ़ाये जाते हैं, किसी नारी के जूड़े में शोभा पाते हैं, महापुरुषों को फूलों की माला पहनाई जाती है तथा जिस कार्यक्रम को सुन्दरता प्रदान करना हो वहां फूलों की सजावट की जाती है। गुलाब के फूल एवं कांटों की जड़ एक है। जहां फूल अपनी सुन्दरता एवं सुगन्ध से सभी को प्रसन्न करते हैं एवं वातावरण को सुगन्धित करते हैं, वहीं कांटे उलझाने का काम करते हैं। गुलाब के बाग में अगर गुलाब के पेड़ के पास जाना होगा तो कांटों से बच के ही जाना होगा। यह प्रसंग इसलिये मैंने लिखा कि जैसे मनुष्य का मन दोनों प्रकार के विचारों का उद्गम है प्रकृति में गुलाब का पौधा भी फूल एवं कांटों का उद्गम स्थल है।

कमल के फूल को सबसे पवित्र माना गया। हमारी आराध्या मां लक्ष्मी को हम कमलासना कहते हैं जो कमल के आसन पर विराजमान हैं। लेकिन कमल

जब खिलेगा तो कीचड़ में ही खिलेगा। कीचड़ को हम गन्दा कहते हैं। याने गंदगी एवं पवित्रता जब रहेगी तो साथ रहेगी। जैसे मन के अच्छे एवं बुरे का विचार उसी एक ही मन में रहते हैं।

हमारा सुख-दुःख भी हमेशा साथ रहता है। एक ही व्यक्ति कभी आपको दुःखी कर देता है तथा कभी सुखी कर देता है। बच्चे को हम कितना प्यार करते हैं। लेकिन उसी बच्चे को चांटा भी मार देते हैं। याने प्यार करने वाला बच्चा अलग एवं चांटा खाने वाला दूसरा नहीं होता। सुख दुःख भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आप इनको अलग अलग नहीं कर सकते। इसका एक कारण और है। एक ही घटना किसी को सुखी करती है एवं किसी को दुःखी। जैसे हमारा सामान चोरी हो जाय तो हम दुःखी होंगे लेकिन जिसने चुराया वह प्रसन्न होगा। कारण उसका प्रयास सफल हो गया। उसी प्रकार जब लड़ाई होती है तो घटना एक लेकिन हारने वाला दुखी होता है एवं जीतने वाला प्रसन्न। तलवार भी दो काम करती है। हमारी सुरक्षा भी करती है तथा हमारा वध भी कर सकती है। वध करने वाली तलवार एवं सुरक्षा करने वाली तलवार अलग नहीं होती।

हमारे जितने देवी देवता हैं वरदान देना जानते हैं तो शाप भी देना जानते हैं। शिशुपाल की निन्यानवे गालि पर भगवान कृष्ण ने धैर्य रखा और उत्तेजित नहीं हुये लेकिन सौवीं गाली में शिशुपाल के सिर को धड़ से अपने सुदर्शन चक्र द्वारा अलग कर दिया। भगवान कृष्ण ने कहा कि मेरे धैर्य को लोग मेरी कमजोरी न समझ लें। इसलिए मैंने शिशुपाल का वध किया। यहां पर आप देखें कि धैर्य एवं वध की शक्ति एक ही व्यक्ति में है चाहे वे देवता हों या सन्त महात्मा हों।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि धर्मराज एवं यमराज एक ही व्यक्ति हैं। जब आपको स्वर्ग भेजते हैं तो वे धर्मराज हो जाते हैं एवं जब आपको नरक भेजते हैं तो यमराज हो जाते हैं। स्वर्ग या नरक है या नहीं यह विवाद का विषय हो सकता है किन्तु अगर स्वर्ग नरक है तो धर्मराज एवं यमराज एक ही व्यक्ति है।

न्यायालय में आपको छोड़ने वाला एवं दंडित करने वाला न्यायाधीश एक ही होता है। इस प्रकार प्रकृति में इस तरह के उदाहरण अनगिनत मिलेंगे कि अच्छे एवं बुरे विचार एक ही व्यक्ति में होंगे एवं प्रकृति में भी अच्छाई बुराई का स्रोत एक ही होगा।

अब हमें यह देखना है कि अच्छे विचार ही हमेशा क्यों नहीं मन में आते? हम नहीं चाहते हुये भी बुरे विचारों से ग्रसित क्यों हो जाते हैं? हम क्यों काम क्रोध के वशीभूत होकर गलतियां कर बैठते हैं। यहां पर हमारा संस्कार ही काम करता है। हमारे जैसे संस्कार होंगे, उसी के अनुरूप हमारा मन चिन्तन करेगा, वाणी उच्चारण करेगी एवं वही विचार क्रिया रूप में परिणत होंगे।

विद्वान कहते हैं कि हमारे हर विचार, कथन एवं क्रिया हमारे मस्तिष्क पर एक प्रभाव छोड़ते हैं। इसी प्रभाव से हमारा संस्कार बनता है और इन संस्कारों का प्रतिफल 'चरित्र' कहलाता है। यह चरित्र ही निश्चित करता है कि आने वाले समय में हम अच्छा काम करेंगे या बुरा। ये ही अच्छे बुरे संस्कार हमारे बन्धन एवं मोक्ष के हेतु बनेंगे।

एक ही व्यक्ति किसी का शत्रु है एवं किसी का मित्र। कभी कभी वही व्यक्ति जिसका आज मित्र है उसी का शत्रु हो जाता है। महात्मा गांधी विश्व के महानतम लोगों में थे जिनके चित्र को विश्व के महानतम वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन ने अपने कमरे में लगा रखा था लेकिन गांधी की गोडसे ने गोली मार कर हत्या कर दी। गोडसे को पकड़ लिया गया और उस पर मुकदमा चला और उसी गोडसे ने गोली मारने को न्यायालय में न्यायोचित ठहराया। भले ही गोडसे को फांसी हो गई लेकिन गोडसे को अपने इस भयानक जघन्य कृत्य पर पश्चात्ताप नहीं हुआ। जो व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व में पूजित एवं सम्मानित था, वह भी गोडसे की निगाह में गलत था। मेरे लिखने का सारांश यही है कि परस्पर विरोधी विचार जब रहेंगे तो साथ रहेंगे, अलग अलग रह ही नहीं सकते। दूसरा सारांश इस लेख का है कि परस्पर विरोधी शक्तियां भी समान रूप से बलशाली होंगी याने जिसमें जितनी मात्रा में विनाशक शक्ति होगी उसीमात्रा में उसमें उद्धारक शक्ति भी होगी। विज्ञान का भी यही नियम है। महान वैज्ञानिक सर आइजक न्यूटन के तीसरे 'लॉ आफ मोशन' का सूत्र है कि परस्पर विरोधी शक्तियों का एक साथ रहना भी हमें यह संदेश देता है कि कोई स्थिति ऐसी नहीं होती कि सारी स्थितियां हमेशा हमारे मनोनुकूल हों। उन प्रतिकूल एवं अनुकूल स्थितियों के बीच रहना सीख लें वर्ना हम हमेशा अशान्त रहेंगे और हमारी गीता कहती है 'अशांतस्य कुतः सुखम्'। एक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है कि जब हम अपनी अच्छाई एवं बुराई के साथ सांमजस्य करके रहते हैं तो फिर दूसरे की बुराई अच्छाई के साथ रहने से हमें क्यों परहेज है। गांधी जी भी कहा करते थे कि 'हिन्दू अविभक्त परिवार' में परिवार के सभी लोगों को एक दूसरे की कमजोरियों को निर्वाह करके रहना है तथा एक दूसरे की अच्छाइयों को लेकर आगे बढ़ना है। इस सूत्र को धारण करने के बाद यह निश्चित है कि परिवारों का विखंडन रुकेगा। आपस में समझदारी एवं सामंजस्य बढ़ेगा एवं समृद्धि में वृद्धि होगी।

केवल एक स्थिति ऐसी है जहां उसका विलोम नहीं होता। जब हम सचमुच आनन्द या प्रेम के क्षेत्र में पहुंच जाते हैं तो सारे विरोध समाप्त हो जाते हैं। प्रेम और भक्ति में अपने आराध्य के प्रति समर्पण है। उस स्थिति में पहुंचने पर 'मीरा' कहती है 'मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।' इस स्थिति में विरले ही पहुंच पाते हैं।

स्वर्ग, नरक, मृत्युलोक एवं मोक्ष

हमारे विद्वान बताते हैं कि इस पृथ्वी पर जो जन्म लेता है उसे अच्छे बुरे कर्म करने ही पड़ते हैं। जो अच्छे कर्म करेगा उसे स्वर्ग मिलेगा और बुरा कर्म करेगा उसे नरक मिलेगा। हम मृत व्यक्ति को स्वर्गीय इसलिये कहते हैं कि उसने जीवन में अच्छा काम किया इसलिये वह स्वर्ग-गमन का अधिकारी हो गया। हमारे घर में अच्छी 'बहू' आती है तो हम कहते हैं कि यह जब से घर में आई है इसने घर को स्वर्ग बना दिया। लेकिन स्वर्ग ओर नरक तो केवल भोग भूमि है। स्वर्ग में सुख के साधन हैं और नरक में दुःख के साधन हैं। कहीं कहीं चित्रों के माध्यम से भी यह दर्शाने की चेष्टा की गई है कि यह स्वर्ग सुख है तथा यह नरक दुःख है। स्वर्ग और नरक को व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो लालच और भय ही इसका मन्तव्य है। स्वर्ग का लालच हमें अच्छे कर्म में प्रवृत्त रखेगा और नरक का भय हमें बुरे कर्मों से विरत रखेगा। लेकिन स्वर्ग नरक है कहां? क्या इसकी कोई भौगोलिक स्थिति है? आज तक इसके प्रमाण नहीं मिले कि अमुक जगह स्वर्ग है एवं अमुक जगह नरक है। तो हमारे शास्त्रकारों ने इसकी कल्पना क्यों की? कारण हमारे कर्म उसी प्रकार संचालित हों कि हम अच्छे कर्म में प्रवृत्त रहें एवं बुरे कर्म से अपने को बचा कर रखें। हमारा सम्पूर्ण जीवन ही लालच एवं भय के बीच संचालित होता था। ये दो व्यवस्थायें अधूरी थीं। अतः भगवान बुद्ध ने हमें 'करुणा' की सीख दी याने दूसरे के दुःख से हम दुःखी होकर उसके दुःख दूर करने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे के दुःख से द्रवीभूत हो जाना ही करुणा है। जैन धर्म के तीर्थंकर भगवान महावीर ने हमें 'अहिंसा' दी याने मन, वचन या क्रिया से दूसरे को कष्ट न देना और इस प्रकार हमारा जीवन अब लालच-भय-करुणा एवं अहिंसा के चौपाये पर खड़ा है।

पृथ्वी-स्वर्ग-नरक में एक मौलिक अन्तर है। हम पृथ्वी पर कर्म करते हैं याने यह कर्म भूमि है लेकिन उन कर्मों का फल हम स्वर्ग नरक में भोगते हैं याने वह भोग भूमि है। याने कर्मफल को भोग भोगने के उपरान्त हम पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर आते हैं और कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

हमारे शास्त्रों ने जीवन का अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' प्राप्ति को माना। काशी के बारे में कहा गया कि यहां मरने वाले को मोक्ष प्राप्ति होती है। यह भी कहा गया कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' याने अज्ञानी की मुक्ति नहीं होती। मोक्ष उसे कहा गया कि बार-बार जन्म मरण के चक्कर से मुक्त हो जाना । जन्म मरण को अति कष्टकारक मान कर इससे छुटकारा पाने को ही मोक्ष कहा गया। प्रश्न उठता है कि हम मोक्ष की कामना क्यों करें? क्या जन्म लेकर कार्य करना एवं अच्छे कर्मों में प्रवृत्त होना अपराध है? क्या जन्म कष्टकारक है? क्या पेट में पड़े बच्चे को कष्ट की अनुभूति होती है? जन्म लेने के उपरान्त अन्य सभी को नई संतान के आगमन से प्रसन्नता जरूर होती है। अगर सभी को मोक्ष मिल जाएगा तो इस पृथ्वी पर जन्म मरण ही समाप्त हो जायेगा। प्रकृति का स्वभाव है सृजन एवं संहार। इस प्रकृति के स्वभाव को बदलना कैसे संभव है?

जीवन मुक्त पुरुष ही मुक्त हो सकता है। अपने जीवित अवस्था में जो आसक्ति रहित नहीं हुआ वह मरने के बाद कैसे मुक्त होगा? भगवान बुद्ध कहते हैं कि "उपनिषद ज्ञान द्वारा मुक्ति बताते है और कहते है कि जिसने समस्त इच्छाओं का त्याग कर दिया वही मुक्त है। जिसका जीवन वासना से रुंध गया है, भय ईर्ष्या से मलिन है, क्रोध एवं नीचता से कलुषित है वह न तो आत्मदर्शन कर सकता है और न आत्मानन्द पा सकता है। निर्वाण वह आनन्दमय अन्त है जिसकी प्राप्ति में सबको सचेष्ट होना चाहिए। यह उपनिषदों के मोक्ष के समान है। उपनिषदों एवं भगवद्गीता में निर्वाण शब्द मिलता है जिसका अर्थ है समस्त वासना का क्षय, ब्रह्म के साथ एकात्म्य। इसका अर्थ पूर्ण क्षय या नाश नहीं होता। इसका अर्थ है वासना की अग्नि का शान्त होना और अपनी सम्पूर्णता की प्राप्ति का आनन्द मिलना। इसमें कार्य करण भाव की श्रृंखला भंग हो जाती है और फिर पुनर्जन्म नहीं होता। इस परम स्थिति के लिये बुद्ध ब्रह्म प्राप्ति ब्रह्मभूत संज्ञाओं का उपयोग करते हैं। इस सिद्धि को इसी जन्म में मृत्यु के पहले ही प्राप्त करना संभव है। किसी प्रकार वे निर्वाण की अनुपम भव्यता तक पहुंचे जहां न जरा है, न रोग है, न मृत्यु है, न पीड़ा है, न कलंक। इसे बुद्ध व्यक्त करते हैं। बुद्ध के दो शिष्य घोषित करते हैं 'भगवन्, जिसने बुद्धत्व प्राप्त कर लिया, उसके जीवन के समस्त बंधन टूट गये, जिसने सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्ति द्वारा निर्वाण पा लिया, उसके मन में यह विचार उठता ही नहीं कि मुझसे कोई उत्तम है अथवा निकृष्ट है। वे अपने प्राप्त ज्ञान को प्रगट तो कर देते हैं किन्तु अहं की चर्चा नहीं करते। निर्वाण भौतिक नहीं है। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति के प्रति जन्म मरण उदासीन रहता है। निर्वाण अपने साथ परमोच्च आनन्द लाता है।'

भगवान बुद्ध के द्वारा दी गई निर्वाण या मोक्ष की उपरोक्त व्याख्या समझ में

आती है। जिसका जीवन पवित्र एवं शुद्ध बुद्ध हो गया उसकी आत्मा परमात्मा से एकाकार हो गई और उसके लिये जन्म मरण का कोई अर्थ नहीं रह गया। भगवान बुद्ध की व्याख्या का एक वैज्ञानिक कारण भी समझ में आता है। पुनर्जन्म इसलिये भी लेता है कि पूर्व जन्म के भोग भोगने बाकी हैं। कोई राजा के घर जन्म लेता है, काई गरीब के घर जन्म लेता है। कोई सुन्दर सम्पूर्ण अंगों के साथ जन्म लेता है, कोई विकलांग पैदा होता है। इसका कारण उसके पूर्व जन्म में किये गये अच्छे या बुरे कर्म ही हैं लेकिन जीवित अवस्था में निर्वाण प्राप्त व्यक्ति सभी प्रकार के बंधनों से जब मुक्त हो गया तो उसके पुनः जन्म की संभावना ही समाप्त हो गई। पुनर्जनम का कारक हमारी वासनायें हैं जो मृत्यु पर्यन्त हम नहीं छोड़ पाते।

उपरोक्त व्याख्या से एक बात और समझ में आती है कि केवल काशी में मरने से मुक्ति मिल जाती है संभव नहीं है। भगवान शिव काशी में मरने वाले गुण्डे बदमाश को भी मुक्त कर दें तथा संत महात्मा को भी मुक्त कर दें और दोनों को समान गति दे दें - यह संभव प्रतीत नहीं होता। अतः स्वर्ग या नरक केवल भोग भूमि है। पृथ्वी ही वह भूमि है जहां राम, कृष्ण, महावीर, क्राइस्ट, मोहम्मद, गांधी पैदा होते हैं। आज तक कोई महान व्यक्ति स्वर्ग में पैदा नहीं हुआ। अतः यही वह भूमि है जहां हम कर्म करते हैं एवं कर्मफल भोगते हैं। क्या हमने पृथ्वी पर ही सुख एवं दुःख भोगते हुये व्यक्ति को नहीं देखा? सुख ही स्वर्ग है तथा दुःख ही नरक है। जो इस जीवन में भोगने से बाकी रह गया, वह पुनर्जन्म में प्रतिफलित होता है क्योंकि मृत्यु के समय की हमारी वासनायें हमें पुनर्जन्म लेने के लिये कारक बनती हैं। गीता में भी भगवान कृष्ण कहते हैं कि कर्म की गति बहुत 'गहन' है। किसी कर्म का फल तत्काल मिल जाता है, किसी कर्म का फल वर्षों बाद मिलता है तथा किसी किसी कर्म का फल पुनर्जन्म में मिलता है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे बहुत से वृक्ष एक साल में फल दे देते हैं जैसे केला, पपीता एवं बहुत से वृक्ष १०-१५ साल बाद फल देते हैं जैसे नारियल का वृक्ष। अतः कर्मफल के सिद्धान्त से भी कर्ता में कर्म करने का भाव ही समाप्त हो जाता है तो उसके फल भोगने का कोई कारण नहीं बनता। जो कर्ता नहीं है वह भोक्ता भी नहीं है। अतः स्वर्ग नरक काल्पनिक है। मोक्ष एवं निर्वाण पाने का वही अधिकारी है जिसकी समस्त वासनायें जीवित अवस्था में ही छूट गई हों। हमें मोक्ष प्राप्त करने के लिये सत्य का आचरण करते हुये पवित्र जीवन जीना होगा। मुक्त जीवन का राजमार्ग 'सदाचरण' ही है।

♦

सस्ता एवं महंगा मोक्ष

इस लेख के शीर्षक से आप चौंकिये नहीं। कारण सचमुच मोक्ष सस्ता एवं महंगा होता है। आप मन्दिर में जाते हैं एवं पुजारी जी जब आपको चरणामृत देते हैं तो उस समय जिस मंत्र का वाचन करते हैं वह है-

अकालमृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम्।
विष्णु पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

भगवान विष्णु का चरणोदक पी लेने मात्र से ही अकालमृत्यु, सारी व्याधियां नष्ट हो जाती हैं और फिर जन्म नहीं होता याने मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

इस मंत्र के अनुसार केवल चरणामृत लेने से आपका पुनर्जन्म नहीं होगा याने आपको मुक्ति मिल गई।

इसी प्रकार काशी में मरने से मुक्ति मिलती है इसके कई मंत्र हैं। इस मुक्ति को प्राप्त करने के लिए स्थान की प्रधानता है जैसे काश्यां मरणान्मुक्तिः याने काशी में मरने मात्र से मुक्ति हो जाती है। काश्यां मृतस्तु सायुज्यम् – याने काशी में मरने से सायुज्य मुक्ति मिल जाती है। 'मरणं यत्र मंगलम्' याने काशी में मर जाना मंगलमय याने काशी मुक्तिदाता है। काशी के सम्बन्ध में पुनः कहा गया-

"यथा स्थान विशोषेषु विविधा मुक्तिरीरिता
न तादृशी मुक्तिरन्यत्र काश्यां मुक्ति विलक्षणा।"

अन्य स्थानों में मरने वाले की विविध प्रकार की मुक्ति कही गई है परन्तु काशी में मरने वाले को विलक्षण कैवल्य मुक्ति मिलती है। मुक्ति प्रदान के लिये केवल काशी को ही महत्व नही दिया गया बल्कि सप्तपुरियां भी मुक्ति प्रदान करती हैं-

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्ष दायिका।।

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका, द्वारकापुरी भी मुक्ति प्रदान करती है। उपरोक्त में मुक्ति प्रदान के लिये स्थान विशेष को महत्व दिया गया। रथारूढ़ भगवान जगन्नाथ का दर्शन रथयात्रा के दिन करने से मुक्ति प्राप्त हो

जाती है– 'रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।' त्रिवेणी (प्रयाग) में मकर संक्रान्ति में स्नान करने से प्राणी मुक्ति पा लेता है, 'त्रिवेण्यां मकरेस्नात्वा नरः मोक्षमवाप्नुयात्'। मनुष्य (सन्यासी) दण्ड ग्रहण करने मात्र से ही नारायण बन जाता है– 'दण्डग्रहण मात्रेण नरः नारायणो भवेत्'। जो सैकड़ों योजन दूर से भी गंगा नाम का उच्चारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक को प्राप्त हो जाता है। कनखल तीर्थ में स्नान कर लेने से पुनर्जन्म नहीं होता, मुक्ति मिल जाती है। 'स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते'।

इसी प्रकार श्रीमद्‌भागवत को सप्ताह में सुनने रूपी यज्ञ से प्राणी को कृष्ण लोक प्राप्त हो जाता है याने मुक्ति हो जाती है, 'सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्ण लोक फलप्रदः'

पाप ताप विनाशिनी शालग्राम की शिला के सन्निधान में मरने से निश्चित ही मुक्ति होती है। तुलसी दल युक्त (मुख में लेकर) जो प्राणी प्राण त्याग करता है यमराज उसकी ओर देखने में भी असमर्थ हैं। तुलसी के वृक्ष की भयताप हारिणी छाया जहां है वहां मरने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि कुशासन पर तिल बिखेर कर तुलसी दल मुख में डाल कर मर जाता है तो वह विष्णुधाम में चला जाता है।

मरे हुए की क्रिया यदि वृषोत्सर्ग विधान से कर दी जाय तो वह परम गति (मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है। गया श्राद्ध कर देने से पितृगण भवसागर (जन्म मृत्यु) से छूट जाते हैं।

उपरोक्त कथनों से यह प्रमाणित होता है कि स्थान विशेष के कारण, चरणामृत पान के कारण, त्रिवेणी में स्नान के कारण, दण्ड ग्रहण करने के कारण, भगवान जगन्नाथ के दर्शन के कारण, गंगा नाम के उच्चारण के कारण, कनखल तीर्थ में स्नान के कारण, श्रीमद्‌भागवत सप्ताह सुनने के कारण, शालिग्राम की शिला के सान्निध्य में मरने के कारण, तुलसी दल मुख में लेने के कारण आदि-आदि कारण से मुक्ति हो जाती है। यह मुक्ति कितनी सस्ती होती है इसका अंदाज आप स्वयं लगा सकते हैं। ये सारी मुक्तियां मरने के बाद होती हैं। यहां मुक्ति का अर्थ पुनर्जन्म का न होना है। ये मुक्तियां असली याने महंगी मुक्ति से मेल नहीं खातीं। मनुष्य जीवित अवस्था में जब तक जीवन मुक्त नहीं है, मुक्ति पाना असम्भव है।

हमारे जीवन की सारी क्रियायें या तो अच्छा फल देंगी या बुरा। अच्छे फल के कारण हम स्वर्ग सुख भोगेंगे एवं बुरे कर्म के कारण हम नरक का दुख भोगेंगे। सुख दुःख भोगने के लिये पुनर्जन्म का होना निश्चित है, यह कर्म का विधान है। हमारी जीवनमुक्त अवस्था वह अवस्था है जब हमारे कर्म पाप पुण्य के कारक

नहीं होते याने हम सारे कर्म करते हुये भी उसके अकर्ता हैं। इसे यों उदाहरण से समझें। जैसे हम श्वांस लेते हैं, क्रिया होती है, हमारी पलकें ऊपर नीचे होती हैं याने क्रिया होती है लेकिन उस क्रिया के हम कर्ता नहीं हैं। याने कर्म होते हुए भी हम कर्ता नहीं हैं। याने जब सारी क्रियाएं स्वाभाविक रूप से होनी लगेंगी तो हम क्रिया करते हुए भी उसके अकर्ता रहेंगे याने पाप पुण्य के भागी नहीं होंगे। तो पाप पुण्य का जब संचय ही नहीं होगा तो उसे भोगने का याने पुनर्जन्म का हेतु समाप्त हो जायगा। इस अवस्था में आने पर पहले के संचित फल भी भस्म हो जाते हैं जैसे भुने हुए चने का बीजत्व समाप्त हो जाता है। जन्म मरण से मुक्ति का एक ही उपाय है कि जब हमारे कर्म पाप पुण्य के कारक न बनें। ऐसा होना तभी संभव है जब हमारे में कर्तापन के भाव का लोप हो जाय। ऐसे व्यक्ति द्वारा क्रिया तो होती है लेकिन वह अपने को कर्ता नहीं मानता। जब कर्ता नहीं मानेगा तो भोक्ता भी नहीं होगा। उसके पाप पुण्य कर्म जब तक होते रहेंगे जब तक उसकी मुक्ति असंभव है क्योंकि पाप पुण्य करेंगे तो उसे भोगने क लिए पुनर्जन्म लेना ही पड़ेगा।

भगवान बुद्ध ने निर्वाण को अंतिम शुद्धि कहा है, यह मरने पर नहीं होती। यह तो जीवित अवस्था में ही संभव है। भगवान बुद्ध का अष्टांग मार्ग ही शुद्ध होने का उपाय है। उनके धर्म सिद्धान्तों का निचोड़ यही है कि हर व्यक्ति को निर्वाण की प्राप्ति स्वयं करनी है। भगवान बुद्ध के निर्वाण एवं हमारी मुक्ति में कोई भेद नहीं है। अतः मुक्ति एवं निर्वाण उस एक ही अवस्था का नाम है जब अहंकार के अभाव में हमारे द्वारा किये गये कर्म अकर्म हो जाएं जिससे कर्मफल हमें बांध न सकें।

गीता में स्थितप्रज्ञ ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के जो लक्षण निरूपित किये गये हैं, निर्वाण पद के अधिकारी पूर्णावस्था प्राप्त भिक्षुओं के भी वही लक्षण बौद्ध दर्शन ग्रन्थों में कहे गये हैं। शांत, निर्भय, विरागी, निष्काम, निरारम्भ, रागद्वेष हीन, द्वन्द्वरहित आप्तकाम निर्वाण प्राप्त दशा ही मुक्त पुरुषों और पूर्णता प्राप्त भिक्षुओं के लिए मान्य है।

बुद्ध ने कितने आत्मविश्वास के साथ कहा कि 'इस संसार सागर से मेरे अकेले पार जाने का कोई अर्थ नहीं है जब तक संसार के अन्य समस्त प्राणी दुःखी हैं। मैं सर्वज्ञता को प्राप्त करके देवताओं सहित मनुष्यों को निर्वाण का साक्षात्कार कराकर ही इस संसार सागर से स्वयं मुक्त होऊंगा। भगवान बुद्ध पहले विराट पुरुष हैं जिन्होंने नर से नारायण होने की यात्रा की। ये नर रूप में पैदा होकर नारायण रूपी 'बुद्धावतार' हो गये। भगवान बुद्ध कहते हैं सारे बंधनों से मुक्त होना ही निर्वाण प्राप्त करना है जो इसी जीवन में संभव है।

निर्वाण याने मुक्ति के सम्बन्ध में बुद्ध के विचार समझने योग्य हैं कारण धर्म के पहले वैज्ञानिक बुद्ध हैं। उनके साथ श्रद्धा एवं आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। बुद्ध कहते हैं सोचो, विचारो, विश्लेषण करो, खोजो, पाओ वह भी अपने अनुभव से, तो भरोसा कर लेना। दुनिया के सारे धर्मों में श्रद्धा प्राथमिक है। बुद्ध ने कहा अनुभव प्राथमिक है। श्रद्धा आनुषंगिक है। अनुभव होगा तो श्रद्धा होगी। बुद्ध ने मात्र उपदेश नहीं दिया, उसी के अनुरूप जीवन भी स्वीकार किया। बुद्ध ने कहा निर्वाण का अर्थ है वासना की अग्नि का शांत होना और अपनी सम्पूर्णता की प्राप्ति का आनन्द मिलना। इसमें कार्य कारण भाव की श्रृंखला भंग हो जाती है और फिर पुनर्जन्म नहीं होता। इस स्थिति को इसी जन्म में मृत्यु के पहले ही प्राप्त करना संभव है। निर्वाण अपने साथ परमोच्च आनन्द लाता है।

♦

जन्म, जीवन और मृत्यु

हमारा वर्तमान जीवन हमारे पूरे जीवन-श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है। कारण शरीर मरणधर्मा है लेकिन आत्मा अमर है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने इसको बहुत ही स्पष्ट कहा है कि आत्मा अमर है, इसको न शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकती है। जो पैदा हुआ है उसका मरना निश्चित है। याने जन्म-मरण का चक्र इस सृष्टि में निरन्तर चल रहा है। एक शरीर से दूसरा शरीर धारण करना क्या है? जैसे हम पुराने कपड़ों को छोड़कर नये कपड़े धारण करते हैं ऐसे ही यह आत्मा भी पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण कर लेती है। इस बात की पुष्टि में भगवान गीता के अध्याय ४ के श्लोक ५ में पुनः कहते हैं 'मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूं पर अर्जुन, तू नहीं जानता। कभी कभी कोई विलक्षण बालक देखने को मिल जाते हैं जिनको पूर्व जन्म का वृत्तान्त याद है। वे अपने पूर्व के घर को, माता पिता को पहचान लेते हैं। इस प्रकार इसमें सन्देह नहीं कि शरीर मरणधर्मा है एवं आत्मा अमर है।

अब देखना है कि जन्म के बाद जीवन किसका सफल है एवं मृत्यु भी किसकी मंगलकारी है। हमारा जीवन अपने उद्देश्यों की पूर्ति करे एवं मरण भी मंगलकारी हो यही कामना सभी की रहती है।

मृत्यु निश्चित होते हुए भी कोई मरना नहीं चाहता। हमारा सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है। इस पुस्तक का सार क्या है? राजा परीक्षित की मृत्यु सर्पदंश से एक सप्ताह में होगी ऐसा उनको श्राप मिला था। वे मृत्यु से भयभीत हो गये। मृत्यु के भय से बचने के लिये महामुनि शुकदेवजी से उन्होंने एक सप्ताह तक श्रीमद्भागवत सुनी। श्रीमद्भागवत सुनने के बाद भी राजा परीक्षित की मृत्यु उसी सर्पदंश से एक सप्ताह में हुई। श्राप फलित हुआ लेकिन श्रीमद्भागवत सुनने के बाद मृत्यु का भय जाता रहा। जब मरना निश्चित है तो मरने का भय किस बात का? मौत जब चाहे तब आये, न हमें मौत की तैयारी करनी है और न उससे भयभीत होना हैं। हम अपना कर्तव्यकर्म करते रहें, न हम मौत की प्रतीक्षा

करेंगे और न हम उससे भयभीत होंगे। मौत की जब मौत हो जाय तो समझ लीजिये कि हम मृत्यु के भय से मुक्त हो गये।

जीवन किसका सफल है? जो व्यक्ति जिस क्षेत्र में भी कार्यरत रहे अपना कर्तव्य कर्म करता हुआ मृत्यु का वरण करे तो निश्चित है कि उसका जन्म सफल हो गया। गांधी ने अपना जीवन दान दे दिया देश को गुलामी से मुक्त कराने में। मुक्त कराने के लिए गांधी ने हथियार नहीं उठाया। गांधी चाहते तो सारे देश से हथियार उठवा देते लेकिन अहिंसा का प्रबल पुजारी अपनी अहिंसा के बल पर अंग्रेजों को जिनके बारे में कहा जाता है कि उनके राज्य में सूर्यास्त नहीं होता था, देश छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया और अपना देश सार्वभौम शक्ति सम्पन्न राष्ट्र हो गया। गांधी का जीवन सफल हो गया। भगवान बुद्ध ने संसार में दुःख देखा। उन्होंने महल, पत्नी एवं पुत्र का त्याग कर जंगल की राह पकड़ ली तथा लगातार सात वर्षों तक अपनी कठिन साधना एवं तपस्या द्वारा यह जान लिया कि मनुष्य का दुःखों से छुटकारा कैसे होगा। ज्ञान प्राप्ति के बाद साधारण जीवन जीते हुए ४४ वर्षों तक भगवान बुद्ध ने मनुष्यों को दुःख मुक्ति का उपाय बताया। हमारी तृष्णा (इच्छाएं) ही दुःखों का मूल है। हमारी तृष्णा समाप्त हो जायगी तो हमारा दुःख भी शून्य हो जायगा। साधारण जीवन जीकर दुःख मुक्ति की अनुभूत औषधि मनुष्य मात्र को भगवान बुद्ध ने दी। अतः उनका जीवन भी सफल हो गया।

इसी तरह हजारों लाखों उदाहरण सारे इतिहास में भरे पड़े हैं जब निश्चित उद्देश्य के लिये मनुष्य आया और अपने जीवन काल में उन उद्देश्यों को पूरा कर मृत्यु का वरण किया। ऐसे व्यक्तियों को मृत्यु ने कभी भयभीत या परेशान नहीं किया।

जिसकी मृत्यु भी महोत्सव एवं मंगलमय हो जाय ऐसे लोगों के बारे में समझना आवश्यक है। क्राइस्ट की मृत्यु ने क्राइस्ट को सदा के लिये जीवित कर दिया। क्राइस्ट को शूली पर चढ़ने में कितना कष्ट हुआ होगा। लेकिन इस महान् आत्मा के मन में प्रेम, आत्मीयता और करुणा की भावना भरी थी। अंतिम समय में उन्होंने परमात्मा से यही प्रार्थना की कि 'हे पिता! इन्हें क्षमा करें क्योंकि यह जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।' क्राइस्ट को शूली पर क्यों लटकाया गया? कारण उन्होंने कहा "पैसे वालों का स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता। सूई के छेद से ऊंट भले ही निकल जाय, धनवान व्यक्ति प्रभु के राज्य में नहीं पहुंच सकता। अपनी सारी दौलत गरीबों में बांटकर, अकिंचन बनकर मेरे साथ आओ"। ऐसी बातें सुनकर पैसे वाले लोग ईसा के विरोधी हो गये। पुरानी गलत परम्पराओं का भी ईसा ने विरोध किया। सत्य के लिये वे किसी की परवाह नहीं करते थे।

नतीजा हुआ कि दिन प्रति दिन उनका उनका विरोध बढ़ने लगा और विरोधियों ने मिलकर उन्हें शूली पर लटका दिया। इस प्रकार क्राइस्ट की मृत्यु भी मंगलकारी हो गई। आज क्राइस्ट धर्म का प्रचार प्रसार एवं मानने वालों की संख्या दुनिया में सर्वाधिक है।

हमारे देश की सती प्रथा को अत्यन्त ही आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सती का जन्म ही सही रूप में उसके सती होने के दिन ही होता है। हमारे इतिहास में प्रसिद्ध सती शिरोमणि राणी सती दादी जी के मानने वाले भक्तों की संख्या लाखों में है। देश के कोने कोने में इनके मंदिर मिलेंगे तथा मानने वाले केवल देश तक ही सीमित नहीं हैं, विदेशों में भी हैं। अपने पति के मारे जाने पर उनके शव को अपनी गोद में लिया ओर स्वयं के तेज से उनकी चिता प्रज्ज्वलित हो उठी। चिता की दिव्य ज्योति पूरे क्षेत्र को आलोकित कर रही थी। सती की मृत्यु भी मंगलमय हो गई कारण इनके भक्तों की संख्या लाखों की तादात में सर्वत्र फैली हुई है।

इसी प्रकार हमारे देश के क्रांतिकारी वीर भी देश हित के लिये हंसते हंसते फांसी के फन्दे पर झूल गये। चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद विस्मिल आदि आदि ऐसे क्रांतिकारी वीर थे जिन्होंने फांसी के फन्दे पर भी हंसते हंसते प्राण त्यागे। इन वीर देशभक्त क्रांतिकारियों की मौत भी मंगलकारी हो गई कारण वे आज भी हमारे बीच जीवित हैं। इनकी मौत ने देश में प्राण फूंक दिये और संदेश दे गये कि देशहित के लिये अपना जीवन एवं जवानी भी तुच्छ है। इनके बलिदान ने देशवासियों में ऊर्जा प्रदान कर दी ताकि गुलामी की जंजीर से मुक्त होने के लिये देशवासी खड़े हो सकें। ऐसे क्रांतिकारी वीरों को शत शत प्रणाम, कारण ऐसी मृत्यु मंगलमय है एवं ऐसे लोग मरने के बाद अमर हो जाते हैं।

इस लेख के माध्यम से हमने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि केवल जिन्दगी जीने में ही शुभ कार्य नहीं हो सकते बल्कि शुभ कार्य के कारण मौत का आलिंगन भी करना पड़े तो ऐसी मृत्यु भी सार्थक हो जाती है और मरने के बाद भी व्यक्ति अमर हो जाता है। ऐसे व्यक्ति ही समाज में ऐसे मूल्य स्थापित कर जाते हैं जिनका अनुसरण आने वाली पीढ़ी को करना चाहिये। बच्चों को ऐसे महापुरुषों की जीवनी और कृत्य को पढ़ाया जाना चाहिये ताकि जीवन संस्कारित हो सके और देशहित में प्राण गंवाना भी सुगम लगे।

♦

जीवन-चक्र

हमारा भाग्य हमारा कर्मफल है। हम जैसा कर्म करेंगे उसी के अनुरूप हमारी जीवन यात्रा होगी। प्रकृति में प्रत्येक क्षण जन्म, जीवन एवं मरण हो रहा है। सारे जीवनचक्र को उद्घाटित करने का प्रयास मैंने इस लेख में किया है।

प्रकृति में सर्जन एवं विसर्जन की प्रक्रिया प्रत्येक क्षण घटित हो रही है। हम दशहरे पर मां दुर्गा की मूर्ति का एवं गणेश चतुर्थी पर गणपति की मूर्ति का सर्जन करते हैं एवं कुछ दिनों बाद उत्सव के साथ उत्साह पूर्वक उसका विसर्जन करते हैं। सर्जन एवं विसर्जन के बीच का समय ही जीवन है। प्राणि मात्र के लिये भी यही प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

जन्म के साथ भेद है। कोई राजा के घर पैदा होता है। सुन्दर, गोरा, बुद्धिमान, त्यागी, वैरागी पैदा होता है तो कोई गरीब के घर कुरूप, मूर्ख, रोगी, भोगी पैदा होता है। यानी पैदा होने के साथ ही जीवन में भेद आ गया।

इसी प्रकार जन्म के बाद जो जीवन हमने पाया उसी जीवन में जितने मनुष्य हैं चाहे पुरुष हों या स्त्री, सबमें भिन्नता मिलेगी। कोई दो पुरुष एक प्रकृति का नहीं मिलेगा। भिन्नता भी ऐसी कि एक महात्मा बुद्ध जैसा महान त्यागी, वैरागी, टाटा बिड़ला सरीखा उद्योगपति, नेहरू, पटेल सरीखा राजनीतिज्ञ, चन्द्रशेखर आजाद एवं राम प्रसाद बिस्मिल सरीखा बलिदानी आदि आदि तो दूसरी ओर मानसिंह एवं मलखान सिंह सरीखा डाकू, रोगी, भोगी, क्रोधी, आदि आदि, उनके नाम लेने की आवश्यकता नहीं। कुछ ऐसे जीवन भी मिलेंगे जिनमें परिवर्तन आ गया यानी बुरे से अच्छे हो गये एवं अच्छे से बुरे हो गये।

जीवन की समाप्ति की अवस्था का नाम मृत्यु है। जन्म एवं मरण के बीच की अवस्था का नाम ही जीवन है। मृत्यु के उपरान्त शरीर को कोई जलाता है उसके पीछे उसकी मान्यता रहती है कि पंच तत्व का यह शरीर पंच तत्वों में विलीन हो जाय। कोई गाड़ता है तो उसकी मान्यता है कि कयामत के दिन आयेंगे तो यह पुनः जीवित हो उठेगा। कोई मुर्दे को पक्षियों के लिए सुलभ कराते हैं ताकि यह शरीर भी किसी के काम आ जाय। संन्यासी का शरीर गंगा में प्रवाहित कर

दिया जाता है। कारण उसका पिण्डदान संन्यास लेने के वक्त हो जाता है। मृत्यु के बाद जो अमर हो जाते हैं उनकी मृत्यु भी मंगलकारी मानी जाती है। मृत्यु के बाद शरीर के साथ कोई भेदभाव नहीं होता। जिस धर्म की जैसी मान्यता, उसी प्रकार उस शरीर को या तो जलाया जाता है या गाड़ा जाता है या गंगा की धारा में प्रवाहित किया जाता है। मृत्यु के बाद मृत शरीर की स्थिति समानधर्मा है अपने अपने धर्मों के अनुसार मात्र विसर्जन में भेद है।

मरने के बाद की स्थिति भी तीन प्रकार की होती है। एक मुक्त अवस्था यानी जिसका पुनर्जन्म नहीं होता, दूसरा अशरीरी अवस्था यानी वह अवस्था जब तक आत्मा ने दूसरा शरीर धारण नहीं किया हो और तीसरी अवस्था है जब यह आत्मा शरीर धारण कर लेती है। यह तो जीवन चक्र है जिसका वर्णन मैंने ऊपर किया। अब हर अवस्था का विश्लेषण करने का प्रयास करूंगा।

पहली बात तो यह समझने लायक है कि हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं लेकिन फल पाने में परतंत्र हैं। फिर भी फल का मिलना निश्चित है। केवल यह मालूम नहीं कि फल कब, कितना और किस रूप में मिलेगा। कर्म करने के बाद जब उसका फल भविष्य में मिलता है तो उसे भाग्य की संज्ञा दी गई है। यानी भाग्य के मूल में हमारा पूर्व में किया गया कर्म ही है। चूंकि कर्म फल पाने में हम स्वतंत्र नहीं अतः कर्म की गति को भगवान कृष्ण ने गीता में 'गहना कर्मणो गतिः' बताकर इस रहस्य को जानने के प्रयास पर पूर्ण विराम लगा दिया। इसे यों भी समझा जा सकता है कि हमें आज जो भाग्य के रूप में मिला वह हमारे कौन कौन से कर्म का फल है इसे आज तक न तो कोई जान सका और न कोई बता सका।

जब तक हमारे कर्म अच्छे बुरे होते रहेंगे तो हमारे पाप पुण्य का सृजन होता रहेगा और उस पाप पुण्य को भोगने के लिये हमें शरीर धारण करना ही पड़ेगा। हमारा सुख भोग हमारे पुण्य का क्षय करेगा तथा हमारा दुःख भोग हमारे पाप का क्षय करेगा। एक बात और ध्यान देने की है कि पाप पुण्य का खाता कभी बराबर नहीं होता। यानी पाप एवं पुण्य को अलग अलग ही दुःख सुख के रूप में भोगना पड़ेगा।

हमारे पाप पुण्य का सृजन होना जब बन्द हो जायेगा तो हमारे भावी जन्म का हेतु ही समाप्त हो जायेगा। पाप पुण्य का सृजन तब बन्द होगा जब हम कर्तापन के भाव से मुक्त होकर कर्म करने पर भी अकर्ता बने रहेंगे। जैसे हम निरन्तर श्वास ले रहे हैं, हमारी पलकें निरन्तर गिरती उठती हैं लेकिन उस क्रिया के कर्तापन का न तो हमें बोध है और न हम उस क्रिया को करने के लिये कोई प्रयास करते हैं। यानी क्रिया जब हमारा स्वभाव हो जायेगी तो कर्तापन के भाव का सर्वथा लोप हो जायेगा।

यह समझना तथा समझाना कठिन है कि मृत्यु के उपरान्त शरीर तो यहीं छूट जाता है तो हमारा पाप पुण्य पुनः भोगने के लिये हम रहते कहां हैं? हमारा प्राण जब निकल गया तो हमारी मृत्यु हो गई। जो प्राण निकल कर गया वह अब अशरीरी अवस्था में है। उसी प्राण के साथ हमारे पाप पुण्य भी चले गये। यह उसी प्रकार साथ जाता है जैसे हवा जब बहती है तो जिस स्थान से होकर बहती है उस स्थान की सुगंध या दुर्गन्ध साथ लेकर जाती है। हम उस सुगन्ध एवं दुर्गन्ध का अनुभव तो करते हैं लेकिन उसे देख नहीं पाते। उस सुगन्ध ने न तो हवा का रूप, रंग बदला, न उसका वजन बढ़ाया, न हवा का आकार प्रकार बदला। फिर भी उस हवा के सुगन्ध या दुर्गन्ध का हम अनुभव करते हैं। ठीक इसी प्रकार से बिजली के तारों को हम देखते हैं। उनमें करेन्ट आने के कारण न तो तार का वजन घटता बढ़ता है न उसके रूप, रंग, आकार, प्रकार में भिन्नता आती है, न हम उसे देख पाते हैं। उसका अनुभव या तो हम स्पर्श से कर पाते हैं या वह करेन्ट जब उपकरण को यानी हीटर, बल्ब, बिजली के मोटर को चलाता है तो तारों में करेन्ट का होना प्रमाणित होता है। जैसे मोटर में जब तक करेन्ट नहीं तब तक मोटर बेकार है लेकिन करेन्ट आने के उपरान्त उस मोटर से हम चाहे हीटर चलावें, चाहे कूलर यह हमारे पर निर्भर करता है। ठीक इसी प्रकार इस शरीर में प्राण आये तो यह जिन्दा हुआ, वरना बेकार। प्राण आने के उपरान्त इसका उपयोग करने में हम स्वतंत्र हैं कारण भगवान ने हमें सभी उपकरण दे दिये, जैसे काम करने के लिए पांच कर्मेन्द्रियां यानी हाथ, पैर, गुदा, लिंग, जीभ तथा अनुभव करने के लिए पांच ज्ञानेन्द्रियां हमें मिली यानी आंख, नाक, रसना, कान तथा स्पर्श करने के लिए त्वचा। इन सभी इन्द्रियों को संचालित करने के लिय मन एवं बुद्धि भी दे दिया। बुद्धि का काम है जानना तथा मन का काम है मानना। इन सबके ऊपर हमारा स्वभाव या प्रकृति है जो इन सभी इन्द्रियों से परे है। इतने उपकरण पाने के उपरान्त हम काम करने में स्वतंत्र हो गये। यानी हम अपने सभी उपकरणों का चाहे अच्छे काम में उपयोग करें चाहे बुरे काम में या कुछ न करें। कुछ न करना चाहेंगे तो भी कर्म तो होगा ही कारण भोजन, निद्रा, भय, मैथुन आदि स्वाभाविक क्रियायें होती ही रहेंगी। इस प्रकार हमने यह बताने का प्रयास किया कि हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं लेकिन फल पाने में परतंत्र हैं। फल भी एक तत्काल मिलता है जैसे भोजन किया तो पेट भर गया। दूसरा कुछ समय बाद फल मिला जैसे हम व्यायाम करते हैं तो शक्ति हमें कुछ समय बाद मिलेगी। लेकिन भगवान की पूजा, प्रार्थना की, गरीबों की सेवा की, दान धर्म किया। इसी प्रकार यदि हमसे गलत कर्म हुए तो हमें मालूम नहीं कि इन कर्मों का फल कब मिलेगा। हो सकता है इनका फल इसी जन्म में मिले या जन्म-जन्मान्तर में। यह निश्चित

है कि शेष फल भोगने के लिये हमें पुनर्जन्म लेना ही पड़ेगा। हमारे कर्म जब हमें कर्म बन्धन में बांधना बन्द कर देंगे तो पुनर्जन्म का हेतु ही समाप्त हो जायगा। यह अवस्था तब आती है जब कर्म सहज ही होते रहते हैं। उसमें हमारा कर्तापन का भाव नहीं है तब कर्म करने के उपरान्त भी हम अकर्ता हैं। जहां कर्तापन के भाव का लोप हुआ तो हम अकर्ता हो गये और इस प्रकार कर्म बन्धन से मुक्त हो गये। ऐसी अवस्था जीवित अवस्था में ही संभव है। ऐसी अवस्था जब आती है तो पुराने पाप-पुण्य के संचय भी स्वतः भस्म हो जाते हैं। कारण यह अवस्था तभी आती है जब ज्ञान की अग्नि से संचित सभी पाप पुण्य भस्म हो जाते हैं तथा नये कर्म हमारे बन्धन के कारक नहीं बनते। यही स्थिति मोक्ष है, निर्वाण है। भगवान बुद्ध ने निर्वाण को अंतिम शुद्धि कहा है। यह मरने पर नहीं होती।

"बौद्ध विचारधारा में निर्वाण जीवन साधना की पूर्णाहुति है। निर्वाण को अन्तिम शुद्धि के रूप में वर्णित किया है। निर्वाण अहंकारमुक्त मानव की परम सुखमय अवस्था है। निर्वाण में तप द्वारा अहं क्षीण हो जाता है। जहां अहं है, वहां निर्वाण नहीं एवं जहां निर्वाण है वहां अहं नहीं होता। मानव की ऊर्ध्वतम चेतना अर्थात् आध्यात्मिक अनुभूति की चरम अवस्था है निर्वाण।" पाली त्रिपिटक में निर्वाण को अमृत पद कहा है। इस अवस्था में मृत्यु मर जाती है। बुद्ध ने कहा भिक्षुओं, ध्यान दो। मुझे अमृत मिला है।

शुद्ध जीव का पुनर्जन्म नहीं होता। आत्मा परमात्मा में उसी प्रकार विलीन हो जाती है जैसे नदी समुद्र में विलीन होने के उपरान्त अपना नाम एवं अस्तित्व समाप्त कर देती है। एक अवस्था मरने के उपरान्त एवं पुनर्जन्म के पहले की है। उस अवस्था को 'पीर' प्रेत आदि के नाम से जानते हैं। तीसरी अवस्था पुनर्जन्म की है। इस अवस्था में वह अपने पूर्व जन्म के सीमित पाप पुण्य के फलस्वरूप सुख-दुःख लेकर आता है मरने के उपरान्त जो प्राण निकला वह अपने साथ इस जन्म के पाप पुण्य को सूक्ष्म रूप में ले गया। जैसे वायु अपने साथ सुगन्ध या दुर्गन्ध लेकर जाती है। यही पाप पुण्य हमारे जन्म में भेद के कारण होते हैं। अगर अच्छे काम किये तो राजा के घर पैदा होंगे, सर्वांग सुन्दर पैदा होंगे एवं बुरे कर्म किये तो गरीब के घर अपंग एवं कुरूप पैदा होंगे। यह भी संभव है कि राजा के घर अपंग एवं कुरूप पैदा हो तथा रंक के घर सुन्दर एवं सर्वांग पैदा हों। बस यहीं पर 'गहना कर्मणों गतिः' की उक्ति प्रमाणित होती है। कारण हम नहीं जानते कि इस जन्म में राजा के घर या रंक के घर पैदा होने में हमारा कौन सा पाप पुण्य हेतु बना।

इस प्रकार हमने यह बताने का प्रयत्न किया कि जन्म, जीवन, मृत्यु एवं मृत्यु के उपरान्त की स्थिति का एक चक्र है। भगवान ने गीता में कहा कि 'हे

अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत जन्म हो चुके हैं किन्तु मैं उन सबको जानता हूं पर तुम नहीं जानते। यह जीवात्मा न कभी जन्म लेता है और न कभी मरता ही है। यह अजन्मा, शाश्वत, नित्य, पुरातन है। शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मरता। यानी यह शरीर मरणधर्मा है। आत्मा अमर है।' सम्पूर्ण जीवन चक्र में जन्म है, जीवन है, मृत्यु है एवं मृत्यु के बाद एवं पुनर्जन्म के पहले का जीवन है। एक और अवस्था है जिसे मोक्ष या निर्वाण कहते हैं जिनका पुनर्जन्म नहीं होता। इस लेख में जीवन चक्र को सरलता से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

♦

जीवन जीने की कला

भगवान ने हमें जीने के लिये भेजा है, मरने के लिये नहीं। जीवन जिसके लिये बोझ हो गया वह जीने का आनन्द लेने से चूक गया। कई लोग प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि अब हमको उठा लो तो ऐसे व्यक्ति के जीवन जीने का रस सूख चुका होता है। कई लोग ऊपर से देखने में बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ेंगे लेकिन भीतर से इतने टूटे हुये कि आत्म हत्या कर लेते हैं। मैंने बड़े से बड़े विद्वान को देखा, सुन्दर स्त्रियों को देखा, पैसे से सम्पन्न लोगों को देखा कि लगता है इनके जीवन में आनन्द की वर्षा हो रही है। लेकिन सच्चाई कुछ और है। ऐसे लोग जो भीतर से टूटे हुये हैं, उनके लिये ही जीवन बोझ हो जाता है। ऐसे टूटे हुये आत्महत्या के लिये उन्मुख लोगों को क्या चाहिये – उन्हें तो 'जीवन जीने की कला' सीखनी चाहिये। सामान्य लोगों के लिये इस कला को विकसित किया है हमारे आचार्य गुरुदेव श्री श्री रवि शंकर जी ने। इस कला का अनुयायी कभी जीवन से उदास, हताश एवं निराश नहीं होगा। उसके जीवन में आनन्द का झरना फूट पड़ेगा। क्या आप जानना चाहेंगे कि यह कौन सी कला है?

गुरुदेव कहते हैं 'जब तक जीवन में पूर्ण ज्ञान नहीं मिलता तब तक प्रश्न खत्म नहीं होते।' प्रश्न उठना मन में स्वाभाविक है, यह बुद्धि का लक्षण है, प्रगति का लक्षण है। चेतना जब बहिर्मुख होती है तब प्रश्न उठता है ये क्या है? चेतना जब अन्तर्मुख होती है तब प्रश्न उठता है मैं कौन हूं? बहिर्मुखी चेतना जहां ऊंचाई है अन्तर्मुखी चेतना वहीं गहराई है। गहराई के बिना ऊंचाई टिक नहीं सकती। वाणी के विद्वान तो बहुत होते हैं, किताब के पंडित भी बहुत मिलेंगे किन्तु किताब पढ़ पढ़कर सुनाने से वाणी के कुछ बोल देने से तृप्ति नहीं मिलती। वो बात लगती नहीं। तलाश ऐसे व्यक्ति की है जो उसका अनुभव करा सके। ऐसा ही व्यक्ति हमारी बौद्धिक यात्रा को हार्दिक यात्रा बना सकता है।

दूसरों को अनुभव कराने के पहले श्री रवि शंकर जी ने स्वयं अनुभव किया। १९८२ में उन्होंने एकान्त साधना की। दस दिनों के पश्चात् उन्हें प्रेरणा प्राप्त हुई और सांस लेने की एक विशेष प्रणाली का जन्म हुआ जिसका नाम

उन्होंने सुदर्शन क्रिया रखा। सु का अर्थ अच्छा, दर्शन का अर्थ देखना और क्रिया का अर्थ एक अच्छा काम। अपने को अच्छी तरह देखने का काम।

इसी प्रक्रिया को केन्द्र में रख कर प्राचीन ज्ञान को आज के युगानुरूप जीवन की कला बेसिक कोर्स (The Art of Living, Basic Course) का जन्म हुआ। सन् १९८२ से आज तक संसार के १५० देशों में इस कोर्स ने लोगों को सोते से जगाया है तथा रोते से हंसाया है।

छः दिनों के इस कोर्स में २०–२२ घंटे का समय लगता है। प्राचीन ज्ञान के साथ व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से इसमें भाग लेने वालों को उनके अन्दर निहित शक्ति से परिचय कराया जाता है जिससे वे अपना जीवन विकसित कर सकें। प्राणायाम, सुदर्शन क्रिया एवं ध्यान के अभ्यास से तनाव रहित मन में शांति, बढ़ती हुई ऊर्जा, सजगता और जीवन में आनन्द का अनुभव होता है। कोर्स में भाग लेने के लिये हर पल आनन्द महसूस करते हैं। मन में आध्यात्मिक चेतना का विकास होता है। कोर्स के अन्त में घर में अभ्यास के लिये निर्देश दिये जाते हैं जिसमें केवल प्रतिदिन २५ मिनट का समय लगता है।

पहला कोर्स कर लेने के पश्चात् नियमित अभ्यास आवश्यक है। घर के अभ्यास को सही दिशा में रखने के लिये प्रति सप्ताह सामूहिक सुदर्शन क्रिया का आयोजन किया जाता है। सुदर्शन क्रिया के निरन्तर अभ्यास से चमत्कारी लाभ लोगों को मिला है। निराशा एवं उदासी से ग्रस्त लोगों के लिये यह विशेष लाभकारी है। मानसिक तनाव की कमी के साथ साथ स्वभाव में परिवर्तन आता है। काम करने की शक्ति और दूसरों के प्रति सहनशीलता बढ़ जाती है। जीवन यापन का स्तर उन्नत हो जाता है। इस कोर्स में २१ वर्ष की आयु से लेकर ७५ वर्ष की आयु के सभी लोग भाग ले सकते हैं। इससे अधिक उम्र के लोगों द्वारा यह क्रिया करना उनके स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। किसी भी धर्म एवं सम्प्रदाय के लोग इसमें भाग ले सकते हैं।

श्री श्री रविशंकर जी कहते हैं जीवन में नीरसता इसलिये है कि हमने अपनापन खो दिया है। प्रेम माने दूसरे में भगवान को देखना, ध्यान माने खुद में भगवान को देखना। हमें ऐसे शिक्षक मिलते हैं जो हमारा मार्गदर्शन करते हैं परन्तु विरला ही ऐसा कोई मिलता है जो हमारा स्वयं से परिचय कराये।

गुरुदेव कहते हैं अपनी संगति पर विचार करने की आवश्यकता है। तुम्हारी संगत तुम्हें ऊपर भी उठा सकती है और नीचे भी गिरा सकती है। जो संगत तुम्हें संदेह, निरुत्साह, शिकायत, क्रोध, भ्रम और कामना की ओर नीचे खींचती है वह कुसंगत है। जो संगत तुम्हें आनन्द, उत्साह, सेवा, प्रेम, विश्वास और ज्ञान की तरफ उठाती है वह सुसंगत है, उत्तम संगत है।

जब कोई शिकायत करता है पहले तुम सुनते हो, फिर उसकी हां में हां मिलाते हो, फिर सहानुभूति दिखाते हो और फिर तुम खुद शिकायत करने लगते हो। तुम्हारी संगत स्वर्ग को भी नरक बना सकती है या नरक में भी स्वर्ग की सृष्टि कर सकती है। निर्णय स्वयं को लेना होगा।

गुरुदेव ने कहा ईश्वर एक कुशल व्यापारी है। तुम कम से कम देकर ईश्वर से अधिक से अधिक पाना चाहते हो तो निष्कपट रहो, परमात्मा से ज्यादा चालाकी मत करो। एक बार तुम्हें परम आनन्द मिल जाये, फिर सब कुछ आनन्दमय है। इस परमानन्द के बिना संसार की कोई भी खुशी स्थायी नहीं। आनन्दित होने के लिये गुरुदेव कहते हैं अपना व्यक्तित्व खो दो। यदि,अपने को खो नहीं सकते तो अपने को पा भी नहीं सकते। इसलिये अपना व्यक्तित्व भुला दो। आनन्द के क्षेत्र में पहुंच जाओगे।

गुरु मानने के बाद गुरु का सामीप्य मिलना चाहिए। गुरुदेव कहते हैं ''यदि तुम खुद को गुरु के निकट अनुभव नहीं कर रहे हो तो इसका कारण तुम ही हो। तुम्हारा मन, अहंकार तुम्हें दूर रख रहा है। जो कुछ भी तुम्हारे लिये महत्वपूर्ण है, अन्तरंग है उसे गुरु को बता दो, संकोच मत करो, स्वयं अपना निर्णय मत लो। यदि तुम अपनी आन्तरिक बातें गुरु को नहीं बताओगे, केवल साधारण शिष्टाचार वाली बातें करोगे तब उनके साथ निकटता का अनुभव नहीं कर सकोगे। अन्तरंग बातें बताने के बाद भी यदि तुम गुरु से निकटता अनुभव नहीं कर रहे हो तो उन्हें गुरु मानने की आवश्यकता क्या है। वह तुम्हारे लिये एक बोझ है। तुम्हारे लिये ऐसे ही बहुत से बोझ हैं। बस, अलविदा कह दो।''

यह पक्का जान लें कि उपलब्धि क्रिया प्रधान है, कृपा प्रधान नहीं। अगर हम चाहते हैं कि हमारे अन्दर जीवन जीने की कला विकसित हो जाय तो सुदर्शन क्रिया को अपनाना होगा। गुरुदेव श्री रविशंकर जी के समीप आना हागा। जीवन की गाड़ी कहीं भी फंसे तो ले जाओ गुरु के गैरेज में। गुरुदेव का प्रयोग एक अनुभूत प्रयोग है। देश विदेश में लाखों करोड़ों लोगों ने इस प्रक्रिया को अपनाया जिन्होंने अपनाया उन्हें जीवन जीना आ गया।

♦

चुम्बक एवं अध्यात्म

चुम्बक केवल लोहे का होता है। हम चाहें कि सोने, चांदी, पीतल, तांबा में भी चुम्बकत्व आ जाय तो नहीं आयेगा। चुम्बक का एक निश्चित चुम्बकीय क्षेत्र(मैग्नेटिक फील्ड) होता है। उस क्षेत्र में चुम्बक केवल लोहे को ही अपनी ओर आकर्षित करेगा। अन्य किसी भी धातु में न तो चुम्बकत्व आयेगा और न वह लोहे के अलावा अन्य धातु को अपनी ओर आकर्षित करेगा। चुम्बक जितना शक्तिशाली होगा उसका चुम्बकीय क्षेत्र भी उतना ही व्यापक होगा। चुम्बक के इसी गुण को हम अध्यात्म से जोड़कर देखें तो काफी समानता नजर आएगी। आध्यात्मिक पुरुष का अपना भी प्रभा मंडल होता है। उस प्रभा मंडल क्षेत्र में कहते हैं शेर और बकरी एक घाट पर पानी पी लेते हैं। चुम्बक केवल लोहे को अपनी ओर आकर्षित करता है जब कि आध्यात्मिक पुरुष प्राणीमात्र को प्रभावित करेगा। भगवान महावीर अहिंसा के अवतार थे उनके आसपास के क्षेत्र में हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसा भूल जाते थे। भगवान बुद्ध को मारने हेतु अंगुलिमाल आता है लेकिन उनके नजदीक पहुंचने पर उसकी हिंसक वृत्ति समाप्त हो जाती है और वह भगवान बुद्ध से दीक्षा लेकर उनके संघ में शामिल हो जाता है। आध्यात्मिक पुरुष के क्षेत्र में जानवर भी अपनी हिंसक वृत्ति भूल जाते हैं और पूर्ण रूप से अहिंसक हो जाते हैं।

परमहंस रामकृष्ण देव के पास कई लोग आये लेकिन अपने परम प्रिय शिष्य के रूप में उन्होंने विवेकानन्द को ही पहचाना कि 'मैं तो तुझे ही खोज रहा था।' नरेन्द्र ने भी पूछा कि क्या आपने मां काली को देखा हैं? तो परमहंस रामकृष्ण देव ने कहा कि मैं तो मां काली से उसी प्रकार बात करता हूं जैसे तुमसे बात करता हूं। इतना सुनने पर नरेन्द्र ने उनसे दीक्षा ले ली और उन्हें अपना गुरु मान लिया। गुरु ने उनका नामकरण विवेकानन्द कर दिया और आगे वे उसी नाम से अमर हो गये और भारत के प्रसिद्ध आध्यात्मिक पुरुषों में एक हुए। कहने का तात्पर्य यह है कि गुरुदेव राम कृष्ण देव जी से मिलते कई लोग थे लेकिन विवेकानन्द ही विशेष रूप से आकर्षित हुए। यह कहना उसी प्रकार है जैसे

चुम्बक केवल लोहे को ही यानी अपनी बिरादरी वाले को ही आकर्षित करता है। ठीक उसी प्रकार आध्यात्मिक पुरुष भी उसी को आकर्षित करता है जिसमें अध्यात्म के गुण बीज रूप में विद्यमान रहते हैं। मन्दिरों में दर्शन बहुतेरे करते हैं, सत्संग एवं कथाएं भी लाखों लाख लोग सुनते हैं लेकिन आध्यात्मिक परिवर्तन किसी किसी में ही आता है जिसमें अध्यात्म के बीज निश्चित रूप से विद्यमान रहते हैं। जब आध्यात्मिक पुरुष को अध्यात्म के बीज वाला अन्य पुरुष मिल जाता है तो वह अपने आप उसकी ओर खिंच जाता है और उनमें गुरु शिष्य का तादात्म्य स्थापित हो जाता है।

कितना बड़ा आध्यात्मिक पुरुष कितने बड़े शिष्य को आकर्षित करता है यह उस आध्यात्मिक पुरुष की साधना पर निर्भर करता है। जितनी गहरी साधना होगी वह उतना ही बड़ा आध्यात्मिक पुरुष होगा। तुलसीदास की तरह कितने ही लोगों ने अपनी पत्नी से डांट सुनी होगी कि इस हाड़ मांस के शरीर से जितना प्यार करता है उतना अगर परमात्मा से करता तो कहां से कहां तक पहुंच जाता। लेकिन बात केवल तुलसीदास को ही लगी, कारण तुलसीदास जी में अध्यात्म का बीज जरूर रहा होगा। उस डांट के कारण वह बीज अंकुरित हो गया और तुलसीदास फिर क्या से क्या हो गये यह सर्वविदित है। इसी तरह के प्रसंग इतिहास में भरे पड़ेहैं। अतीत से सीख लें और अपने भविष्य को हम संवारे, यही हमारा उद्देश्य होना चाहिये।

गुरु शिष्य में जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसमें चुम्बक वाला सिद्धान्त ही लागू होता है। जैसे चुम्बक लोहे को ही अपनी ओर आकर्षित करता है ठीक उसी प्रकार गुरु में जैसी आध्यात्मिक शक्ति होगी उसी प्रकार के आध्यात्मिक बीज वाले शिष्य को अपनी ओर आकर्षित कर लेगा और फिर शिष्य के बीज को अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होने देगा। ऐसा शिष्य ही गुरु की व्यवस्था को आगे बढ़ाता है। आज परमहंस रामकृष्ण देव को विवेकानन्द जैसा शिष्य नहीं मिलता तो गुरु की व्यापकता भी इतनी अधिक नहीं होती। ठीक इसी प्रकार भगवान बुद्ध को शिष्य के रूप में अनेक मिले, लेकिन उनका प्रधान शिष्य आनन्द था। आज जो बौद्ध साहित्य हमें उपलब्ध है वह आनन्द की ही देन है। आनन्द एक बार बुद्ध वाणी सुन लेता तो उसे वह पूरी की पूरी स्मरण हो जाती और उसकी स्मरणशक्ति के कारण ही बुद्ध वाणी संग्रहीत होकर प्रकाशित हो सकी। इसी प्रकाशित वाणी के कारण आज सम्पूर्ण संसार यह अनुभव करता है कि बुद्ध क्या थे और बुद्धवाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी भगवान बुद्ध के समय थी।

इसी प्रकार महात्मा गांधी के अनेक शिष्य थे। गांधी जी में केवल

आध्यात्मिक विशेषताएं ही नहीं थी, वे अध्यात्म, राजनीति, शिक्षा आदि सद्‌गुणों के भंडार थे। उनके शिष्य भी अलग अलग गुणों से युक्त होकर अलग अलग हुये। गांधी जी के आध्यात्मिक शिष्य विनोबा जी हुये, राजनीतिक शिष्यों में प्रधान जवाहरलाल नेहरू हुये। गांधी जी ऐसे अध्यात्म पुंज एवं शिखर व्यक्ति हुये कि किसी भी क्षेत्र का व्यक्ति हो, उनका शिष्य हुआ।

हम कहना यह चाहते हैं कि एक ही व्यक्ति को सभी लोग सुनते हैं लेकिन कोई कोई व्यक्ति ही उससे विशेष प्रकार से प्रभावित होता है और उसका कारण यह है कि गुरु ने जहां शिष्य के आध्यात्मिक बीज को पहचाना, दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित हो जाते हैं। यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे लोहे का चुम्बक केवल लोहे को ही अपनी ओर आकर्षित करता है।

♦

अध्यात्म एवं विज्ञान

अध्यात्म एवं विज्ञान विरोधी नहीं हैं, सहयोगी हैं। अध्यात्म जहां अलौकिक सुख देता, विज्ञान लौकिक सुख देता है। अध्यात्म में सुख आप अपने अन्दर खोजते हैं। विज्ञान का सुख बाहरी वस्तुओं में है। विज्ञान शोध की भाषा है वहीं अध्यात्म समाधि की भाषा है। समाधि में चिन्तन है तथा शोध में उपकरण हैं। समाधि कब आती है? जब हमारा मन एकाग्रचित्त होकर अपनी चेतना को परम सत्ता से एकाकार कर लेता है। समाधि की अवस्था में हम जिस ज्ञान का आवाहन करना चाहेंगे हमें सुलभ होगा। भगवान धन्वन्तरि ने तथा बाद में ऋषियों ने हमें आयुर्वेद दिया। यह आयुर्वेद विश्व का प्रथम प्रामाणिक काय चिकित्सा शास्त्र है। भगवान धन्वन्तरि के पास कौन सी प्रयोगशाला थी? कैसे उन्होंने जाना कि वस्तु का गुण क्या है चाहे वह जड़ी बूटी हो, धातु हो या खनिज हो या अन्य कोई वस्तु हो। जब हमारे ऋषि इस प्रकार समाधि में स्थित हो जाते हैं तो उन्हें द्रव्य गुण का पूरा बोध हो जाता है। ठीक इसी समाधि की अवस्था में ही उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि उस वस्तु के उपयोग से शरीर में कौन कौन की व्याधियां दूर होती हैं। इसी समाधि की अवस्था में प्राप्त ज्ञान ने हमारे आयुर्वेद को जन्म दिया। समाधि का सत्य पूर्ण होगा, जब कि विज्ञान में शोध का सत्य खण्डित सत्य होगा, कारण शोध में खण्ड-खण्ड करके ही सत्य की जानकारी प्राप्त होती है।

अध्यात्मिक सत्य एवं वैज्ञानिक सत्य में कोई अन्तर नहीं होता। दोनों एक ही सत्य का उद्घाटन करते हैं। जैसे पेड़ पौधों में भी जान है यह जानने के लिये हमारे वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने बड़ा भारी अनुसंधान किया। अनुसंधान में काफी समय लगा और उन्होंने अपने शोध द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि पेड़ पौधों में भी प्राण होता है। हमारे अध्यात्मिक ऋषियों ने इसी सत्य को प्रमाणित करने के लिये कि पेड़ पौधों में भी प्राण होता है केवल इतना ही कह कि "जो वस्तु बिना जल के मुरझा जाय तो समझो कि उसमें प्राण है"। दोनों का सत्य एक है केवल कहने का तरीका अलग अलग है। कारण विज्ञान वस्तुनिष्ठ है तथा अध्यात्म चेतनानिष्ठ है। इसी प्रकार पेड़ से सेव को नीचे गिरते देखकर महान

वैज्ञानिक न्यूटन को शोध करना पड़ा कि सेव नीचे ही यों गिरता है, ऊपर क्यों नहीं जाता। यानि कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण सेव नीचे गिरता है। मैंने कई वैज्ञानिकों से पूछा कि सेव तो नीचे गिरता है यह समझ में आ गया कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण नीचे गिरा। लेकिन दीपक की लौ या मोमबत्ती की लौ ऊपर क्यों जाती है। इसका ठोस एवं वैज्ञानिक उत्तर हमें कोई नहीं दे पाया। हमारे अध्यात्म ने इसका उत्तर दिया कि सभी वस्तुयें अपने मूल की ओर जाती हैं। सेव नीचे इसलिये गिरा कि सेव पेड़ में है तथा पेड़ का मूल पृथ्वी है। अतः पृथ्वी की ओर गिरेगा। इसी प्रकार सरिता सागर की ओर इसलिये बहती है कि जल का मूल सागर है। अतः वह अपने मूल की ओर प्रवाहित होती है। ठीक इसी प्रकार दीपक की लौ ऊपर इसलिये जाती है कि प्रकाश का मूल सूर्य है। अतः वह अपने मूल की ओर जाती है। अध्यात्म के तर्क में बड़ी जान है और वह उसकी मौलिक व्याख्या कर देता है।

विज्ञान हमारे अन्ध विश्वास को दूर करता है। अध्यात्म भी हमें अन्ध विश्वासी नहीं बनाता लेकिन कुछ पाखण्डी अपने को आध्यात्मिक व्यक्ति समझने लगते हैं और ऐसे ही पाखण्डी पुरुषों ने अन्ध विश्वासों को जन्म दिया और अपना हित साधन किया। हमारे जीवन काल में ही बड़ी चेचक को हम बड़ी माता कहते थे। माता की कितनी मन्नतें मानते थे। कितना परहेज करते थे। चेचक को माता का प्रकोप मानकर उसके शान्त होने के लिये पूजा प्रार्थना आदि किया करते थे। लेकिन विज्ञान ने अपने शोध से उसका मूल कारण खोज निकाला एवं सारे विश्व से इसे निर्मूल कर दिया। इसी प्रकार पहले हैजा प्लेग को भी ईश्वरीय दण्ड मानकर हमने अन्धविश्वास पाल रखा था जिसे विज्ञान ने दूर कर दिया। विज्ञान ने पोलियो जैसी बीमारी से भी विश्व को मुक्त कर दिया। ज्ञान की सभी उपलब्धियों को विज्ञान ने सर्व सुलभ करा दिया। आज ट्रेन हो या प्लेन हो, घड़ी हो या कैलकुलेटर, सभी को सुलभ हो गये। विज्ञान की नित नई उपलब्धियों ने विश्व को इतना छोटा कर दिया कि विश्व के किसी कोने में आदमी १२ घंटे के अन्दर पहुंच सकता है। अन्तर्देशीय यात्रा इतनी सरल हो गई कि कहने की आवश्यकता नहीं। विज्ञान की सारी उपलब्धियों के बावजूद भी अगर आपको मानसिक शान्ति चाहिये, आपको काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणों से मुक्ति चाहिये तो अध्यात्म की शरण में ही जाना पड़ेगा।

विज्ञान पर अध्यात्म का नियंत्रण होना चाहिए नहीं तो विज्ञान निरंकुश हो जायगा। विज्ञान की निरंकुशता कहर ढा देगी। वह इस पृथ्वी को कई कई बार नष्ट कर देगी। जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी में विज्ञान के कहर को आज भी देखा जा सकता है। वहां १९४५ में अणु बम की वर्षा हुई थी जब कि गत ५५ वर्षों

में अणु बम से भी अधिक ताकतवर बम का निर्माण हो चुका है जिसकी मारक क्षमता की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अगर दुनिया के तमाम आयुधों की संहारक शक्ति का पूरा विवरण बता दिया जाय तो हम मूर्छित हो जायेंगे। याने उसे हम सुनकर सहन नहीं कर सकेंगे। आज भी अध्यात्म द्वारा मिले संस्कार ही घातक आयुधों को प्रयोग करने से रोके हुये है। विश्व में एक नियंत्रित व्यवस्था है और यह नियंत्रित व्यवस्था विज्ञान की देन नही हो सकती। यह व्यवस्था केवल अध्यात्म देगा। कारण अध्यात्म द्वारा ही हम विवेकी हो पाते हैं। अध्यात्म हमें सुख देगा– विज्ञान हमें सुख के साधन देगा। नींद हमें अध्यात्म देगा– बिस्तर हमारा विज्ञान देगा। हम सुख अनुभूति नींद आने पर ही करेंगे। हमारे जितने देवी देवता अवतार हैं वे शस्त्र एवं शास्त्र से एक साथ सुसज्जित हैं। इसका तात्पर्य क्या है? आप शास्त्र द्वारा मिले ज्ञान के आलोक में शस्त्र का संचालन करें और शस्त्र से शास्त्र की रक्षा करें। एक बार क्रान्तिकारी भगत सिंह से किसी ने पूछा कि आपने एक हाथ में पिस्तौल एवं दूसरे हाथ में गीता क्यों ले रखी है? उन्होंने जवाब दिया कि गीता हमें बताती है कि अन्याय का प्रतिकार करो और इस पिस्तौल से हम अन्यायी का वध करते हैं। अंग्रेज अन्यायी हैं, अतः उनका वध करना हमारा धर्म है।

इन्सान स्वस्थ तभी माना जाता है जब वह तन एवं मन से एक साथ स्वस्थ हो। तन की बीमारी को तो हम जानते हैं। बीमारी का इलाज जहां होता है उन अस्पतालों को भी जानते हैं तथा बीमारी कौन दूर करेगा उन डाक्टरों एवं आयुर्वेदाचार्यों को भी जानते हैं। तन की बीमारी, उसके इलाज तथा दवा का सम्बन्ध विज्ञान से है। कारण इसका सम्बन्ध शरीर से है। लेकिन मन की बीमारी क्या है और वह कैसे दूर होगी, कौन दूर करेगा तथा कहां दूर होगी, इसका सम्बन्ध अध्यात्म से है। मन की बीमारी है हमारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर आदि–आदि। इन सभी बीमारियों का इलाज अध्यात्म के पास है। आध्यात्मिक पुरुष इन बीमारियों से मुक्त रहता है तथा उसके बताये रास्ते पर सभी इन बीमारियों से मुक्त हो सकते हैं। आध्यात्मिक पुरुष जब इन मन की बीमारियों से मुक्त रहेगा तो तन की बीमारियां भी ऐसे आध्यात्मिक पुरुष को परेशान नहीं करेंगी। मुझे याद है देश के महान संत महर्षि रमण को पीठ में कारबंकल हो गया था। कारबंकल में असह्य पीड़ा होती है। डाक्टर उनको बेहोश करना चाहते थे लेकिन उन्होंने डाक्टर से कहा कि मेरा इलाज बिना बेहोश किये करें, और उस असह्य पीड़ा में भी महर्षि रमण निश्चल होकर बैठे रहे। इस प्रकार जो मानसिक बीमारियों से मुक्त हो गया वह आध्यात्मिक पुरुष हो गया। अतः अध्यात्म एवं विज्ञान का सम्बन्ध केवल भीतर एवं बाहर से है।

अध्यात्म की यात्रा भीतर मन के एकाग्र होने पर प्रारम्भ होती है, वहीं विज्ञान की यात्रा का सम्बन्ध केवल बुद्धि और भौतिक जगत के सम्बन्ध से है। अध्यात्म हमें एक नेक इन्सान बनाता है। जीवन जीने की कला बताता है। प्रेम, भक्ति, आनन्द की सृष्टि अध्यात्म करेगा। अगर विज्ञान चाहे कि आप में प्रेम प्रकट हो जाय, आप में अपने इष्ट देव के प्रति भक्ति के कारण समर्पण आ जाय या हमेशा आप सत अवस्था में रहते हुये आनन्द की अनुभूति करें तो यह विज्ञान के वश का नहीं है। इसी प्रकार भौतिक साधनों का सुख हमें विज्ञान ही देगा। अतः अध्यात्म एवं विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। जिन्होंने भी विज्ञान को अध्यात्म विरोधी बताया वे गलत हैं।

अध्यात्म को हम पैसे से नहीं खरीद सकते। वह साधना से आयेगा। विज्ञान की उपलब्धि वस्तु है और उसको प्राप्त करने के लिये धन चाहिये। विज्ञान हमें अशान्त कर देगा – अध्यात्म हमें शान्ति प्रदान करेगा। पूजा पाठ, विपश्यना आदि तो शान्ति प्राप्त करने के साधन हैं। साधन तो उपकरण हैं– साधना हमारा मार्ग है लेकिन साध्य हमारा लक्ष्य है जहां हमें पहुंचना है।

आध्यात्मिक पुरुष भी विज्ञान की देन भौतिक वस्तुओं का उपयोग करेगा लेकिन अनासक्त होकर, वहीं विज्ञान के कारण हम अनासक्त नहीं हो सकेंगे। हमारी आसक्ति ही हमारे बन्धन का कारण होगी। विज्ञान हमें तोड़ेगा लेकिन अध्यात्म हमें जोड़ने की बात करेगा। एक बात अति महत्वपूर्ण है कि विज्ञान का महत्व स्वीकार करते हुये भी उसका वर्चस्व स्वीकार करना हानिकारक होगा। अध्यात्म के अधीन ही विज्ञान लाभदायक है, नहीं तो भूमण्डल के नष्ट होने में कितना समय लगेगा! अध्यात्म हमारे देश की महानतम सम्पत्ति है। इसे मानवता का मेरुदण्ड कहा जा सकता है। हमें न तो विज्ञान की अद्भुत उपलब्धियों को कम करना है और न अध्यात्म को ही सर्वश्रेष्ठ बताना है। हमें दोनों की उपलब्धियों की आवश्यकता है। आध्यात्मिक व्यक्ति को विज्ञान के साधन जैसे घड़ी, कार, हवाई जहाज, टेलीविजन आदि चाहिये उसी प्रकार विज्ञान के व्यक्ति को भी मानसिक शान्ति चाहिये। अतः अध्यात्म एवं विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। एक दूसरे के बिना दोनों ही अधूरे हैं।

♦

शास्त्र एवं धर्म

हमने एक गलतफहमी पाल रखी है कि जो शास्त्रों के ज्ञाता हैं वे धार्मिक हैं। वास्तव में शास्त्र का ज्ञाता होना एवं धार्मिक होना दो भिन्न भिन्न स्थितियां हैं। शास्त्र हमें धार्मिक बनने का सिद्धान्त मात्र देते हैं जैसे वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, रामायण आदि। लेकिन शास्त्र के सिद्धान्तों को जब तक हम जीवन में धारण नहीं करते, हम धार्मिक बिल्कुल नहीं हैं। इस सत्य में कोई विवाद नहीं है। कारण धर्म तभी धर्म है जब हम उसे धारण करते हैं। धर्म की व्याख्या करते हुये शास्त्र भी कहते हैं:-

(१) धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यस्माद्धारण संयुक्त स धर्म इति निश्चितः।। (महाभारत)
(२) यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म (वैशेषिक)
(३) धर्मो रक्षति रक्षितः।। (नीति)

जो सबको धारण करता है अथवा सभी प्राणियों से धारण किया जाने योग्य है वह धर्म है। जिससे लोक में अभ्युदय प्राप्त हो और जिससे परम कल्याण रूप मोक्ष की सिद्धि हो वही धर्म है।

धर्म की रक्षा किये जाने पर वह स्वयं उसकी रक्षा करता है। यहाँ उपरोक्त सूत्रों में धर्म धारण से अर्थ है धर्म पालन का। इसीलिये संतों ने कहा है कि धर्म आचरण में पलता है एवं सेवा से व्यापक होता है। किसी भी शास्त्र का सिद्धान्त जब तक धारण नहीं किया जाता तब तक वह व्यक्ति धार्मिक नहीं माना जा सकता। धर्म की यह अनोखी एवं अद्भुत व्याख्या केवल हमारे शास्त्रों ने दी है। धर्म का पर्याय शब्द अंग्रेजी में रिलिजन है तथा मुसलमानों में मजहब है लेकिन सच में रिलिजन या मजहब धर्म का समानार्थी नहीं है। कारण रिलिजन या मंजहब में शास्त्र के सूत्रों को धारण करने का बन्धन नहीं है। अन्य किसी भी धर्म का पर्याय चाहे जो भी शब्द हो लेकिन उसमें भी धारण करने का बन्धन नहीं है। अतः सारे विश्व में हमारा धर्म शब्द अन्य धर्मों के मुकाबले अकेला खड़ा है जिसका कोई समानार्थक या पर्याय नहीं है।

उपरोक्त सत्य को समझने के लिये हमें एक उदाहरण का आश्रय लेना उचित होगा। एक बार स्वामी विवेकानन्द जी महाराज ने परमहंस श्री रामकृष्ण देव जी से पूछा कि 'गुरुदेव! कई विद्वानों को देखा जिन्होंने वेद, उपनिषद, गीता, रामायण आदि के अनेक सूत्रों को याद कर रखा है लेकिन फिर भी उनका व्यक्तिगत जीवन पवित्र क्यों नहीं है?' गुरुदेव ने उत्तर में कहा कि गिद्ध निर्मल आकाश में उड़ता है लेकिन उसकी दृष्टि कहां रहती है? जमीन पर पड़े सड़े मांस पर। उसने सड़ा मांस देखा तथा उसकी ओर झपटा। ठीक इसी प्रकार शास्त्रों के सूत्रों को कंठाग्र भले ही कर ले लेकिन उसकी दृष्टि कहां रहती है, इस पर निर्भर करता है उसका धार्मिक होना, न होना। हमारे यहाँ सन्तों ने भी कहा है "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि"। जब तक दृष्टि पावन नहीं होगी, शास्त्रों के सूत्रों को धारण करना असम्भव है।

एक बार स्वामी विवेकानन्द जी धर्म सभा में अमेरिका में बोल रहे थे और अपने देश के गौरवशाली अतीत की चर्चा कर रहे थे। गौरवशाली अतीत की चर्चा सुनकर एक श्रोता ने पूछा कि स्वामी जी, जिस देश का अतीत इतना गौरवशाली था वह गुलाम क्यों हो गया? स्वामी जी ने प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा कि देश ने जिसको जाना उसे धारण नहीं किया, इसलिये गुलाम हो गया। इसका अर्थ है कि जानना और मानना उतने महत्व का नहीं जितना धारण करना। हम एक वैद्य की प्रशंसा करें, उसके नुस्खे की प्रशंसा करें लेकिन उसकी दवा का सेवन न करें तो हमें स्वास्थ्य लाभ होगा? कत्तई नहीं होगा। अतः यह निर्विवाद है कि जानना ठीक है, जानकर मानना भी ठीक है लेकिन जब तक हम धारण नहीं करेंगे, हम लाभान्वित नहीं होंगे।

हमारे देश में आद्याशक्ति त्रिपुरसुन्दरी मां पराम्बा देवी हैं फिर भी हम गुलाम हो गये। मां सरस्वती हैं फिर भी हमारे देश को नोबेल पुरस्कार नहीं मिलता। मां लक्ष्मी के होते हुए भी हम गरीब हैं। बजरंग बली हैं फिर भी एक भी ओलम्पिक पुरस्कार नहीं मिलता। प्रश्न बड़ा गम्भीर है। इसका कारण जानना एवं निवारण भी हमारी योग्यता बढ़ायेगा। हम उपरोक्त सभी शक्तियों की पूजा मात्र करते हैं। उनकी आरती उतारते हैं, फूल माला चढ़ाते हैं, रोली चन्दन भी लगाते हैं। लेकिन न तो उनके आदेश एवं उपदेश का पालन करते हैं और न उनके लौकिक आचरण का अनुसरण या अनुगमन करते हैं। नतीजा होता है कि इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति हमें नहीं होती।

ईश्वर, देवता, ईश्वरावतार, महापुरुष और आचार्य ये सर्वदा सब भाँति कल्याणकारी हैं परन्तु यह कल्याण एवं उत्कर्ष हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम उनके आदेश का पालन और उनके लौकिक आचरण का अनुसरण करें। इन

दोनों सूत्रों की अवहेलना ही हमारे पतन का कारण है। हम केवल अवतारों, आचार्यों एवं महापुरुषों की जय जयकार करते हैं। केवल जय जयकार करना लाभकारी नहीं है। हमारी श्रुति ने उपदेश दिया–

'सत्य वद, धर्मम् चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद'

याने जब तक सत्य बोलते हुए धर्म को आचरण में नहीं उतारेंगे, हमारी मन, वाणी, बुद्धि का शोधन नहीं होगा तब तक हमसे कल्याणकारी कर्म नहीं होंगे। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा–

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो स्विष्ट कामधुक्।।गीता।। ३/१०
यज्ञ, दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्य मेवतत्।।गीता।। १८/५

प्रत्येक लोक हितकारी कर्म का नाम यज्ञ है। समाज से प्राप्त धन, शक्ति, सहायता, ज्ञान आदि को समाज हित में अर्पण करना ही दान है। कष्ट उठाकर लोकोपकारी एवं श्रेयस्कर लक्ष्यों को प्राप्त करने में होने वाले कष्ट को ही तप कहते हैं। क्या हमने राम की भाँति मर्यादाओं का पालन किया? कृष्ण की भाँति अनासक्त भाव से कर्म का सम्पादन किया? क्या हमने राम और कृष्ण की भाँति अन्याय का प्रतिकार किया और धर्म की रक्षा की? क्या हमने हनुमान जी की भाँति सम्पूर्ण सुखों का त्याग करते हुये दृढ़ ब्रह्मचर्य के साथ सज्जनों की रक्षा की, आसुरी शक्तियों का संहार किया?

उपरोक्त कथन से एक बात स्पष्ट होती है कि हमारे शास्त्र हमें सिद्धान्त बताते हैं। वे सिद्धान्त तब तक धर्म नहीं होते जब तक हम उन्हें धारण नहीं करते। कोई भी व्यक्ति धार्मिक तभी होता है जब धर्म के सिद्धान्त उसके आचरण में उतर जाते हैं। जैसे जैसे शास्त्र के सिद्धान्त आचरण में उतरते जायेंगे, व्यक्ति की धार्मिकता बढ़ती जायगी। पूर्ण धार्मिक कब होगा? जब उस व्यक्ति का एकान्त भी पावन एवं पवित्र हो जायेगा। याने एकान्त में भी नारी या धन को देखकर न काम पैदा हो और न लोभ पैदा हो। ऐसे धार्मिक व्यक्ति की कीर्ति की कामना भी समाप्त हो जाती है। हमारे संत कहते हैं कि कंचन छोड़ना कठिन है, कामिनी छोड़ना कठिनतर है तथा कीर्ति की कामना छोड़ना कठिनतम है। मान अपमान से परे होकर सबके प्रति सम भाव आ जाय तो वह व्यक्ति पूर्ण धार्मिक माना जाएगा। हम किसी व्यक्ति की वेशभूषा से या उसके उपदेशों से प्रभावित हो जाते हैं लेकिन व्यक्ति का शुद्ध आचरण ही उसे पूर्ण धार्मिक बनाता है। ऐसे धार्मिक व्यक्ति की सारी क्रियाएं लोक मंगल के लिये होंगी। तब वह कर्ता भाव से विरत हो जायगा। लोक मंगल का कार्य उसके द्वारा स्वभावगत होता रहेगा। जैसे फूलों को सुगन्ध देने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। सुगन्ध देना उनका स्वभाव हो

जाता है। हम प्रति पल साँस लेते हैं। साँस लेने के लिए कोई क्रिया नहीं करती पड़ती। साँस लेना छोड़ना अपने आप स्वाभाविक क्रिया होती रहती है, इसके लिये हमें प्रयास नहीं करना पड़ता। जिस व्यक्ति की सम्पूर्ण क्रियायें स्वाभाविक रूप से लोक कल्याण के लिये होती रहती हैं वही व्यक्ति पूर्ण रूपेण धार्मिक है। शास्त्र हमें सिद्धान्त देते हैं और उन सिद्धान्तों को धारण करना ही हमें धार्मिक बनाता है।

♦

प्रकृति का सम्मान, सनातन धर्म का मूलाधार

सनातन धर्म की विशेषता है कि उसने जितना प्रकृति का सम्मान किया अन्य धर्मों ने नहीं किया। हमारे सूर्य, चन्द्र, गंगा, तुलसी, पीपल का पेड़, पहाड़ आदि के पूजन का उपहास किया गया लेकिन इसके मर्म को ठीक से समझा नहीं गया। हमारे घर बिजली का बिल प्रत्येक माह आता है। भगवान सूर्य के प्रकाश का हम उपयोग करते हैं लेकिन उसका कौन सा बिल आता है? भगवान सूर्य का इतना महान उपकार हमारे जीवन पर है तो क्या इस उपकार के बदले हम भगवान सूर्य के प्रति अपनी कृतज्ञता भी ज्ञापित न करें! हम कैसे कृतज्ञता का ज्ञापन करते हैं। भगवान सूर्य को नित्य जल का अर्घ्य देकर। दीवाली के बाद की षष्ठी को कितना व्रत एवं दान दिया जाता है। वह मूल रूप से भगवान सूर्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन ही है। सूर्य सब प्रकार से स्वास्थ्य प्रदायक, जीवन शक्ति दाता और जगत का नेत्र है। अर्घ देने के अपने फायदे भी हैं। हमारा गायत्री मंत्र सर्वोच्च मंत्र है। यह मंत्र भी सूर्योपासना का ही है। हम सूर्य नमस्कार करके अपने को स्वस्थ रखते हैं। कई बीमारियों में सूर्य क किरणें औषधि का काम करती हैं। सूर्य ऐसा प्रकाश पुंज है जो लाखों करोड़ों वर्षों से निरन्तर प्रकाश एवं ऊर्जा दे रहा है तथा लाखों करोड़ वर्ष तक देता रहेगा। इसी प्रकार चन्द्रमा हमें प्रकाश तथा शीतलता देता है। बच्चे चन्दा मामा को देखकर कितने प्रसन्न होते हैं। कवियों ने सुन्दर स्त्री को चन्द्रमुखी की उपमा दी है। चन्द्रमा का हमारे जीवन पर कितना प्रभाव है, यह इसी से समझा जा सकता है कि समुद्र में ज्वार भाटा चांद के घटने बढ़ने याने पूर्णिमा एवं अमावस्या के कारण आता है। हम चांद को देखकर निश्चित तिथियों में भोजन करते हैं। पूर्णिमा के चांद की रोशनी में खीर रखकर उसका सेवन किया जाता है। मुसलमान दूज को चंद्र दर्शन के उपरान्त ही अपना रोजा खोलते हैं। और भी कितने प्रकार से हम कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। चन्द्रमा की अमृतमय किरणों से सभी औषधि और वनस्पतियाँ पुष्ट होती हैं। गीता में भी कहा गया है: पुष्णामि चौषधीः सर्वा सोमो भूत्वा रसात्मकः।

जलकल विभाग के पानी का सेवन करने पर उसकी कीमत अदा करनी पड़

ती है लेकिन गंगा या अन्य नदियों के जल का सेवन बिना मूल्य चुकाये करते हैं। इन नदियों का हमारे जीवन पर कितना उपकार है। इसका जल पीते हैं, इसमें स्नान करते हैं। गंगा नदी हमारे परिवहन का काम भी करती है। हमारी पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति गंगा के किनारे विकसित हुई। हमारे महात्माओं ने अपनी तपस्या भी नदी किनारे की, याने गंगा के हमारे जीवन पर बड़े उपकार हैं। हमने गंगा जल का आचमन किया और अपने को पवित्र एवं धन्य समझे। ऐसी मां गंगा के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। गंगा पर हमारे आदि गुरु भगवान शंकराचार्य ने गंगा स्तवन लिखकर कितना उपकार बताया है। गंगा लहरी में जिस ढंग से गंगा की उपकृति गायी गई है वह द्रष्टव्य है। हमने उसे पतित पावनी बताया। मुर्दे को चिता पर रखने से पहले गंगा स्नान कराया और कामना की कि तू पतित पावनी है, मैंने जीवन में बड़े पाप किये हैं, अब तो हमें पावन कर दे। चिता की राख को भी गंगा में प्रवाहित करके सरिता के माध्यम से सागर तक पहुंच कर व्यष्टि समष्टि तक पहुंचने की कामना करता है। गंगा जल से भगवान शंकर का जलाभिषेक करके अपने को कृतार्थ मानते हैं। विवाह के बाद बच्चा होने पर गंगा पुजैया होती है।

कार्तिक सुदी ११ (देवोत्थान एकादशी को) तुलसी जी का विवाह हमारे घर की औरतें करती हैं तथा पूरे कार्तिक मास भर तुलसी पूजन करते हैं। मृत शरीर के पास अगर तुलसी के पौधे रख दिये जाते हैं तो स्वर्ग गमन निश्चित माना जाता है। आचमन में गंगा जल एवं तुलसी के पत्ते से मंत्र पढ़ा जाता है 'अकाल मृत्यु हरणं, सर्व व्याधि विनाशनं/ विष्णु पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते'। तुलसी रोग नाशक है तथा इसकी सुगन्ध से कीड़े मकोड़े पास नहीं आते। इतने उपयोगी पौधे के प्रति हम उसका विवाह तथा पूजा आदि कर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। तुलसी के पौधे में औषधीय गुण भी भरे पड़े हैं। संत, महात्मा, गृहस्थ तुलसी की माला पहनते हैं। भगवान का भोग भी तुलसी दल के बिना नहीं लगता।

हमने कैलाश पर भगवान शंकर का वास बताकर भगवान शंकर को पहाडों का देवता बताया। पर्वत पुत्री मां पार्वती से भगवान शंकर का विवाह रचाकर पहाड़ को ही उनका ससुराल मान लिया। भगवान शंकर का भोजन भांग, धतूरा बताकर हमने इन त्याज्य वनस्पतियों की महिमा बढ़ाई। शंकर के जलाभिषेक से जल को महत्व प्रदान किया। शंकर के गले में सर्प की प्रस्तुति दिखाकर हमने सर्प की भी महत्ता दर्शायी। मस्तक में चांद को विराजमान किया एवं जटाओं में गंगा का वास बताया। हमने नन्दी (सांड़) को उनकी सवारी बताकर उसे भी महत्व प्रदान किया। भगवान राम की पत्नी मां सीता को भूमिपुत्री बताकर भूमि को गौरव प्रदान किया। उसी भूमि पर भगवान राम ने राज्य किया। भगवान राम के

सेवक और सैनिक कौन थे? बन्दर, भालू, रीछ आदि पशुओं को गरिमा प्रदान की। गिद्धराज जटायु से रावण का युद्ध हुआ और घायल जटायु को भगवान राम ने अपनी गोद में लेकर वह लोक प्रदान किया जो अन्य को दुर्लभ है। भगवान राम के द्वारा पशु–पक्षियों का सम्मान होना यानी पशु–पक्षियों को भी सम्मान प्रदान करना हमारी संस्कृति की अपनी अवधारणा है।

हाथी पूर्ण शाकाहारी है। हाथी जीव जगत का आकार में सबसे बड़ा एवं सबसे अधिक ताकत वाला जानवर है। इसके मस्तक को प्रथम पूज्य देवता गणपति के मस्तक पर विराजमान कर दिया। गणपति हमारे तीन प्रकार के सुखदाता देवता हो गये: विघ्नहर्ता, ऋषि–सिद्धि के दाता एवं बुद्धि विवेक के प्रदाता। हमारे गणपति ही ऐसे देवता हैं जिनकी प्रथम पूजा होती है। गणपति के पिता जी की भी पूजा पुत्र की पूजा के उपरान्त ही होती है।

हमारे शास्त्रकारों ने अवतारों को मत्स्य, शूकर, नरसिंहावतार आदि के रूप में चित्रित करके पशु पक्षियों को भी पूरी गरिमा प्रदान की। जीव जगत के सबसे हिंसक पशु सिंह या बाघ को मां दुर्गा की सवारी बना दिया गया। मां दुर्गा में देवी देवताओं की शक्ति का समावेश दिखाकर उसके द्वारा ऐसे राक्षस असुरों का वध कराया गया जिनसे सभी देवी देवता त्रस्त थे, यानि महिषासुर, मधुकैटभ, चंडमुंड, शुंभ, निशुंभ आदि।

मां दुर्गा की सवारी 'शेर', मां सरस्वती की सवारी 'हंस' एवं मां लक्ष्मी की सवारी उल्लू को बताकर इन पशु–पक्षियों के प्रति हमारा सनातन धर्म कितना उदार है। मां दुर्गा शक्ति की प्रतीक हैं और शेर भी जंगल का राजा है। अतः मां दुर्गा की सवारी है। मां सरस्वती की सवारी 'हंस'। हंस में नीर क्षीर का याने सत् तथा असत् का विवेक है। उसमें दूध और पानी को अलग करने की क्षमता है। मां सरस्वती की जिस पर कृपा होगी उसमें नीर क्षीर विवेक की शक्ति आ ही जाएगी। मां लक्ष्मी की सवारी उल्लू है कारण उल्लू ही ऐसा पक्षी है जिसको अंधेरे में दिखाई देता है याने जिस किसी को प्रकाश में दिखाई न दे वह भी उल्लू है। उसी प्रकाश में जब सब को दिखाई दे और जिस एक को दिखाई न दे वह भी उल्लू है। इसीलिये मां लक्ष्मी का पूजन कभी अकेले नहीं होता। जब होता है गणपति के साथ ताकि जिसके पास लक्ष्मी है उसका बुद्धि विवेक बना रहे।

भगवान विष्णु का वास समुद्र में दिखाया गया। उनकी शेषनाग की शैया है समुद्र पुत्री मां लक्ष्मी उनकी पत्नी है। शेषनाग से सभी भयभीत रहते हैं लेकिन हमारे भगवान विष्णु शेषनाग की शैया पर भी 'शान्ताकारं' होकर विराजमान हैं याने पूर्ण रूप से शान्त हैं। भगवान विष्णु के वास से क्षीर सागर (समुद्र) एवं शेषनाग को महत्व प्रदान किया गया।

गाय में हमने तैंतीस करोड़ देवता का वास बताया। गाय अति धार्मिक है। गाय के गोबर में लक्ष्मी का वास बताया। गायों की सेवा, उनको चराना आदि पूर्ण परब्रह्म भगवान कृष्ण के द्वारा दिखाया गया तथा भगवान का नाम ही गोपाल बताकर हमने गाय को कितनी पूज्यता और महत्ता प्रदान की। गाय का हमारे ऊपर कितना उपकार है। वह ऐसी चीजों का सेवन करती है जिनका सेवन मनुष्य जाति द्वारा संभव नहीं जैसे भूसा, चोकर, खली, चूनी आदि। ऐसे अनुपयोगी पदार्थों को खाकर गाय हमें अमृत सरीखा दूध देती है। उसका गोबर खाद के काम आता है, गोबर एवं गोमूत्र आदि से पंचगव्य बनता है जो कई प्रकार के रोगों का शमन करता है। इधर कैंसर के इलाज में भी गोमूत्र का सेवन अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हुआ है। गोपाष्टमी को गाय के पूजन का विधान है।

भगवान कृष्ण ने गीता के १०वें अध्याय में अपनी विभूतियों के वर्णन में कहा कि मैं वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूं। पीपल का वृक्ष ही ऐसा वृक्ष है जो चौबीसों घंटे आक्सीजन देता है याने यह पूरे का पूरा पेड़ ही आक्सीजन का सिलिण्डर है। जिस पेड़ का हमारे जीवन पर इतना उपकार हो उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा धर्म है। भगवान कृष्ण ने पीपल को अपनी विभूति बताया। भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्ति भी पीपल के पेड़ के नीचे हुई। हाथी भी पीपल का सेवन करता है और हाथी के मस्तक को गणेश जी पर विराजमान दिखाया गया।

इस प्रकार सनातन धर्म की विशेषता है प्रकृति का सम्मान करने के लिये। प्रकृति के पहाड़, पशु, पक्षी, समुद्र, नदियां, चांद, सूरज आदि को हमने किसी न किसी त्योहार से जोड़ दिया ताकि उनका स्मरण होता रहे और उनके गुणों को याद कर उनके प्रति हमारी कृतज्ञता ज्ञापित होती रहे।

♦

सनातन धर्म अन्य धर्मों से भिन्न है

सनातन धर्म का उद्भव कब हुआ कोई बता नहीं सकता। इसकी सनातनता आदिकाल से चली आ रही है और अनन्त काल तक बनी रहेगी। कारण धर्म के मूल सिद्धान्त किसी काल या देश की सीमा में बद्ध नहीं हैं। सत्य, अहिंसा का पालन सभी काल एवं सभी देशों में आवश्यक है। क्रोध न करना, लोभ से बचना कौन सा धर्म नहीं सिखाता! यही वह सनातन धर्म है जो सनातन रहा है और सनातन रहेगा। लेकिन सनातन धर्म एवं अन्य धर्मों में एक मौलिक भेद है। सनातन धर्म का स्वरूप किसी एक व्यक्ति द्वारा चित्रित एवं व्याख्यायित नहीं किया गया है। इस धर्म में अवतारों एवं महान आत्माओं का समय समय पर अवतरण हुआ और उन्होंने अपने धर्माचरण से उस समय के अधर्म एवं बुराइयों को दूर करने के लिये विशेष प्रकार के आचरण का संदेश दिया। जैसे भगवान राम के अवतरण का हेतु था 'मर्यादा' का पालन करना। भगवान राम के समय सम्पत्ति की लड़ाई नहीं थी। राज्य छोड़कर पिता की आज्ञा का पालन करते हुये चौदह वर्ष तक वन गमन करना इस बात का संकेत है कि पिता की आज्ञा शिरोधार्य करने के लिये कोई भी कष्ट उठाने में तनिक भी देर या संकोच नहीं करना चाहिये। वहीं भाई भरत को राजगद्दी पर बैठाने का प्रयास निष्फल हो गया। भरत ने राज्य का चौदह वर्षों तक संचालन तो किया लेकिन कभी राजा भरत नहीं कहलाये तथा राजगद्दी पर भगवान राम की चरणपादुका ही रखी। उधर भगवान राम का अपूर्व त्याग और इधर भरत का उससे भी बड़ा त्याग कि भगवान राम की तरह ही नंदीग्राम में रह कर एवं वल्कल वस्त्र धारण कर एक तपस्वी की तरह जीवन बिताया। इसी प्रकार भगवान राम ने अपनी मर्यादाओं के पालन द्वारा यह बताने का प्रयास किया कि परिवार, समाज एवं देश में कैसे रहना चाहिये। लंका पर विजय प्राप्ति के पश्चात् भी लंका का राज्य स्वयं न स्वीकार करके रावण के भाई विभीषण को दे दिया। इसी प्रकार बाली का वध करके सुग्रीव को चिन्तामुक्त किया एवं अंगद को उसका उत्तराधिकारी बनाया। इसी प्रकार भगवान कृष्ण के जैसा 'उन्मुक्त' जीवन वाला व्यक्तित्व आज तक विश्व-इतिहास में पैदा ही नहीं

हुआ। जीवन के सारे रसों के बीच रहे, रसराज कहलाये फिर भी रसों से अछूते रहे। कैसे, जैसे पानी के बीच रहकर भी कमल पानी से अलग है। कौरवों ने पांडवों के साथ अन्याय किया तो पहले कौरवों को समझाने का प्रयास किया, निष्फल होने पर युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। यह युद्ध दो भाइयों के परिवारों के बीच हुआ। इससे यह संदेश दिया कि अन्याय का प्रतिकार करना हमारा धर्म है। अगर भाई भी अन्यायी है तो उसके वध से पाप नहीं लगता। युद्ध भूमि में अर्जुन अपने परिवार एवं गुरुजनों को देखकर जब मोहग्रस्त हो गया तो उसके मोह को नष्ट करने के लिये 'श्रीमद्भगवद्गीता' जैसे अमर ग्रंथ का संदेश दिया। अर्जुन का मोह नष्ट हुआ एवं उन्होंने युद्ध के द्वारा अन्याय का प्रतिकार किया। इस भाँति धर्म की स्थापना की। कृष्ण चाहते तो हस्तिनापुर का राज्य स्वयं ले लेते लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया और अपने उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात् द्वारका प्रस्थान कर गये।

हमारे भगवान शंकर 'असीम' हैं, अजन्मा हैं। ये कल्याण के देवता हैं। इनकी आराधना जिसने की उसकी मनोकामना इन्होंने पूरी कर दी। अपने साथ सती का अपमान इन्हें बर्दाश्त नहीं हुआ तो अपने श्वसुर के यज्ञ का ही विध्वंस कर डाला। स्वयं विष ग्रहण किया और अमृत का बंटवारा अन्य देवताओं में करने दिया। विषधर (सर्प) को भी अपने गले का आभूषण बना लिया। भांग धतूरा का सेवन करके भी निरन्तर लोक कल्याण किया। अमृत का सेवन करने वाले देव कहलाये लेकिन जिसने विष को धारण किया वे महादेव कहलाये।

भगवान विष्णु क्या हैं? शेष शाया पर रहकर जहां आदमी भयभीत रहता है वहां भी शान्ताकारं हैं। सारे भय के बीच निर्भय रहने वाला ही पालन का कार्य कर सकता है। इसीलिये हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि भगवान विष्णु जगत के पालक हैं।

हमारी मां लक्ष्मी धन, धान्य एवं सम्पन्नता की प्रतीक हैं। मां सरस्वती विद्या एवं ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी हैं एवं मां दुर्गा शक्ति की प्रतीक हैं। जब महिषासुर जैसे विराट दैत्य से देवता त्रस्त हो गये तो भगवान विष्णु के पास गये और उन्होंने बताया कि महिषासुर को वरदान प्राप्त है कि कोई पुरुष उसका वध नहीं कर सकता। अतः सबके तेज से एक नारी का आविर्भाव हुआ। उसे सभी देवताओं ने अपनी शक्ति और शस्त्र से सुसज्जित कर दिया और मां दुर्गा महिषासुर मर्दिनी हो गई।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक एक अवतार या देवी देवताओं ने सर्वगुण सम्पन्न होते हुये भी एक विशेष अभिप्राय से लोक कल्याण किया। यही सनातन धर्म की जीवंतता है जो अनादि काल से चली आ रही हैं और अनंत काल तक चलती रहेगी।

लेकिन अन्य धर्मावलंबियों की स्थिति भिन्न है। इस समय विश्व के प्रचलित धर्मों में मुख्य हैं क्रिश्चियनिटी, मुस्लिम, बौद्ध तथा सिक्ख धर्म। इनके अलावा भी जितने धर्म संस्थापक हैं सभी व्यक्तित्वपरक हैं। याने सामान्य व्यक्ति की तरह पैदा होते हैं लेकिन अपनी साधना, अपने धर्म तथा अपने संदेश से ईश्वर की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। जैसे क्राइस्ट एक लकड़हारा के घर पैदा होते हैं लेकिन मात्र दो हजार वर्षों में विश्व में उनके अनुयायियों की संख्या सर्वाधिक हो गई। उनकी करुणा एवं मैत्री का संदेश आज भी जीवंत है। क्रिश्चियनिटी के मानने वालों की संख्या किसी एक देश तक सीमित नहीं है, विश्व में कोई स्थान नहीं मिलेगा जहां इस धर्म को मानने वाले न हों। इसी प्रकार मुस्लिम धर्म के प्रवर्तक भी पैगंबर मोहम्मद साहब हैं। एक साधारण व्यक्ति की तरह मात्र डेढ़ हजार वर्ष पहले आये और आज उनके अनुयायियों की संख्या क्रिश्चियन धर्म को मानने वालों के बाद सर्वाधिक है। इनके अनुयायी भी विश्व के सभी देशों में पहुंच गये। इन्होंने भी अपने अनुयायियों को धार्मिक जीवन जीने के लिये व्यवस्था दी तथा नमाज पढ़ना एवं रोजा रखना आवयक बताया। भगवान बुद्ध राज परिवार में उत्पन्न होते हैं। साधारण व्यक्ति की तरह शिक्षा ग्रहण करते हैं, शादी करते हैं, पुत्र उत्पन्न होता है लेकिन जब विरक्ति आई तो राजपाट, पत्नी, पुत्र सभी का त्याग कर जंगल की राह पकड़ ली। अपने त्याग, तपस्या एवं साधना से ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने अपनी अनुभूति के आधार पर अपनी व्यवस्था को अभिव्यक्ति दी। यह संसार का पहला एवं अन्तिम व्यक्ति हुआ जिसने ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त अपने पुत्र एवं पत्नी को भी दीक्षा दे दी। आज बुद्ध धर्म भी संसार के सभी देशों में पहुंच गया। बुद्ध करुणा और शुद्धाचरण अपनाने को प्रेरित करते हैं। भगवान बुद्ध को भी मात्र ढाई हजार वर्ष हुये लेकिन उनके अनुयायियों द्वारा आज भी बुद्ध धर्म जीवित और प्रशस्त है।

भगवान बुद्ध के समकालीन जैन धर्म के तीर्थंकर भगवान महावीर हुये। यों तो जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकर हुये लेकिन जन सामान्य में सर्वाधिक मान्यता भगवान महावीर को ही मिली। जैन धर्म भी अहिंसा एवं साधना पर टिका है। इस धर्म के अनुयायी देश की सीमा में हैं। यह धर्म देश के बाहर नहीं जा सका लेकिन देश में इस धर्म के अनुयायियों की संख्या अच्छी है तथा इस धर्म में साधना भी कठोर है।

गुरु नानक देव जी को भी लगभग ५०० वर्ष हो गये। इन्होंने सिक्ख धर्म की स्थापना की। यह धर्म गुरु प्रधान धर्म है कारण गुरु ग्रंथ, गुरुद्वारा एवं गुरु ही इनके मन्दिर एवं उपास्य देवता हैं। गुरुग्रंथ के सूत्र ही इनकी मान्यताएं हैं। सिक्ख धर्म के अनुयायी बड़े जीवट के परिश्रमी होते हैं।

इसी प्रकार विश्व में अनेकानेक धर्म प्रचलित हैं। सभी धर्मों में मानने वालों की संख्या अलग अलग है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति वह है जो सभी धर्मों के प्रति श्रद्धा रखता है लेकिन उसका विश्वास अपने धर्म में होता है। जहां सनातन धर्म ईश्वरपरक है, वहीं अन्य धर्म व्यक्तिपरक हैं। सनातन धर्म को अनादि कहा जाता है कारण इसका न तो काल निर्धारण हो सकता है और न इस धर्म के प्रवर्तक का नाम लिया जा सकता है। वहीं सनातन धर्म के इतर जितने भी धर्म हैं सभी व्यक्तिपरक हैं। जहां सनातन धर्म में नर से नारायण की यात्रा है वहीं अन्य धर्मों का मूल आचारपरक है। धर्म में विभिन्नताएं उनके स्वरूप एवं मान्यताओं में है। सभी धर्मावलम्बियों को एक दूसरे के धर्म का सम्मान करना चाहिये।

♦

भक्ति की महान् शक्ति

भक्ति में महान् शक्ति है। भक्त जब भगवान को प्रगट कर सकता है तो कौन सा काम उसके लिये असंभव रह जायगा। लेकिन भक्त कौन है इसके लिये शास्त्र कहते हैं कि जैसे गंगा की अजस्त्र धारा समुद्र में निरन्तर गिरती रहती है, उसी प्रकार भक्त की अटूट निष्ठा अपने इष्ट के प्रति होती है। वह निष्ठा चाहे मां काली में परमहंस रामकृष्ण देव जी की हो, चाहे "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" में मीरा की हो। निष्ठा अटूट आवश्यक है। भक्त का अपने इष्टदेव के प्रति पूर्ण समर्पण ही भक्त की पहचान है। भक्त चाहे तो सशरीर अपने इष्टदेव में समा जाये जैसे मीरा समा गई भगवान द्वारकाधीश के मन्दिर में। अलग अलग भक्तों के चरित्र को पढ़ने से यह अनुभूति होगी कि भक्ति में महान शक्ति निहित है। अब हम उन भक्त चरित्रों के माध्यम से भक्ति की शक्ति की चर्चा करेंगे।

भक्त ध्रुव : पाँच वर्ष के इस बालक को जब अपने पिता राजा उत्तानपाद की गोद में बैठने की अनुमति नहीं मिली तो अपनी माता सुनीति के कहने से वे कमलनयन भगवान के चरण कमलों की आराधना करने निकल पड़े। रास्ते में देवर्षि ने उन्हें मंत्र दिया "ऊं नमो भगवते वासुदेवाय" का और बालक ध्रुव ने उसी मंत्र का निरन्तर जाप करते हुए कठोर तपस्या की। जब भोजन, जल, वायु ग्रहण का भी त्याग कर दिया तो भगवान गरुड़ पर बैठ कर ध्रुव के पास गये। ध्रुव को वरदान देते हुए कहा कि "बेटा ध्रुव, तुमने मांगा नहीं लेकिन मैं तुम्हारी हार्दिक इच्छा को जानता हूं। तुम्हें वह पद देता हूं जो दूसरों के लिये दुष्प्राप्य है। उस पद पर अब तक दूसरा कोई पहुंचा नहीं है। सभी ग्रह, नक्षत्र, तारा मण्डल उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। पिता के वानप्रस्थ लेने पर तुम पृथ्वी का दीर्घकाल तक राज्य करोगे और अंत में मेरे धाम में पहुंचोगे जहां पहुंच कर वापस लौटना नहीं पड़ता। अन्त समय में भगवान श्री हरि ने अपने पार्षदों को विमान लेकर भेजा जिन्होंने ध्रुव से कहा कि उस दिव्य लोक को चलो जिसकी सभी ग्रह नक्षत्रादि प्रदक्षिणा करते हैं। ध्रुव ने स्नान किया। वहां के ऋषि-मुनियों को प्रणाम किया। विमान में बैठने लगे इतनी ही देर में मृत्यु देवता आये। मृत्यु ने कहा कि "मेरा

स्पर्श किये बिना कोई इस लोक से न जाय ऐसी मर्यादा है।" ध्रुव ने उन मृत्युदेव के मस्तक पर पैर रखा और विमान पर चढ़ गये। भगवान के भक्तों के चरण स्पर्श पर मृत्युदेव भी धन्य होते हैं। भक्त ध्रुव भगवान के धाम पहुंच गये और आज भी अपने अविचल धाम में भगवान का भजन करते हुए निवास करते हैं। ध्रुवतारा उनका वही ज्योर्तिमय धाम है।

श्री रामकृष्ण परमहंस देव जी – भक्त ध्रुव की कथा तो शास्त्र की कथा है। वह इतिहास से प्रमाणित नहीं होती। लेकिन श्री रामकृष्ण देव जी की कथा तो पूर्ण रूप से इतिहास द्वारा प्रमाणित है। आपका जन्म साधारण परिवार में १८३६ में हुआ। आप आधुनिक भारत के संत शिरोमणि माने जाते हैं। आपको प्रथम समाधि केवल चार साल की अवस्था में लगी। उनकी समाधि की अवस्था दिनों दिन बलवती होती गई। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी पाठशाला तक ही समाप्त हो गई। परन्तु अपने अनुकरणीय चरित्र, कला निपुणता, मधुर सुरीले स्वर, अपूर्व आनन्दमय अनुभव, अलौकिक व्यक्तित्व, असाधारण बुद्धि तथा सभी जातियों और सम्प्रदाय के लोगों से निष्काम प्रेम के कारण वे सभी के प्रशंसा तथा भक्ति के पात्र हो गये। कलकत्ते के निकट दक्षिणेश्वर मंदिर में आपको प्रधान पुजारी का पद मिला। आप मां काली से नित्य बात करते। इन्होंने अन्य धर्मों के अनुसार भी उपासना की और सभी धर्म एक नित्य सत्य की ओर ले जाने वाले मार्ग हैं यह विज्ञापित किया। धर्म के संकुचित एवं साम्प्रदायिक भाव का आपने हमेशा विरोध किया। संसार के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों के अनुसार साधना करके उन्होंने प्रत्येक धर्म के सर्वोच्च ध्येय को प्राप्त किया और साधना द्वारा प्राप्त अपनी आध्यात्मिक सम्पदा को मानव जाति के कल्याण हेतु वितरित कर दिया। उनके प्रत्येक विचार सीधे ईश्वर से प्राप्त होते थे। उनके जीवन की प्रत्येक अवस्था शास्त्र की एक एक अध्याय थी। श्री रामकृष्ण परमहंस देव ने यह सिद्ध कर दिया कि किस प्रकार कोई सच्चा आत्मज्ञानी इन्द्रिय के विषयों से बहिर्मुख होकर परमानन्द में लीन रह सकता है। प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्मत्व को प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है। परमात्मा एक है लेकिन उनके रूप अनेक हैं। विभिन्न जातियां उसकी पूजा विभिन्न नामों एवं रूपों से करती है। अपनी स्त्री को वे मानवी रूप में जगदम्बा ही समझते थे। वे उसकी पूजा करते। विलासिता भरे युग में भी उन्होंने आध्यात्मिक विवाहकी सत्यता प्रमाणित की। उनकी स्त्री मां शारदा ने भी पवित्रता, सतीत्व और जगत-मातृत्व का आदर्श स्थापित किया। उन्होंने अपने पति की पूजा मानव रूप में जगदीश्वर मानकर की। संसार के धार्मिक इतिहास में इस प्रकार के आध्यात्मिक विवाह का अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता। धार्मिक इतिहास में स्त्री तत्व को इतना सम्मान देने वाला

अन्य कोई मसीहा अथवा नेता नहीं मिलता। वे दूसरों के पाप अपने ऊपर ले लिया करते थे और अपनी आत्मिक शक्ति उनमें डाल कर पवित्र कर देते थे। स्वामी विवेकानन्द को भी अपनी अलौकिक सम्पदा देकर उन्होंने कहा था कि "क्या यह उचित होगा कि लोग अज्ञानतम में डूब जायँ, रोते चिल्लाते फिरें और तुम हिमालय की गुफा में समाधि का आनन्द लूटते बैठो। कभी नहीं। इन्हें कौन उबारेगा, कौन इन्हें कीचड़ से बाहर निकालेगा? कौन इन्हें सही मार्ग दिखायेगा? यह सब तुम्हीं को करना है।

भक्त श्री तुकाराम जी – ये दक्षिण के भक्त थे। इनको हुये ४०० वर्ष हो गये। ये छत्रपति शिवाजी महाराज के समकालीन थे। एक बार छत्रपति शिवाजी की इच्छा हुई कि इनको गुरु बना लें। लेकिन तुकाराम जी ने अन्तर्दृष्टि से जान लिया कि उनके नियत गुरु समर्थ गुरु रामदास स्वामी हैं। अतः उन्होंने शिवाजी को उन्हीं की शरण में जाने को कहा। तुकाराम जी का आरम्भिक एवं पारिवारिक जीवन कष्टमय था। इनके दो विवाह हुये, एक पत्नी सौम्य थी। दूसरी रात दिन किच किच लगाये रहती थी। माता पिता की मृत्यु हो गई। भाई व पत्नी का स्वर्गवास हो गया और वे भी अपने को प्रपंच मुक्त समझते हुए तीर्थाटन को निकल गये और फिर परिवार में कभी वापस नहीं आये। व्यापार भी घाटे में चला गया। जिनसे रुपया लेना था उन्होंने भी इनकी सिधाई देखकर नहीं दिया और जिनका इनके ऊपर कर्ज था, वे मांगने आने लगे। ये दयालु इतने थे कि कुछ कमाते लेकिन दीनःदुखियों को देखकर उनमें अपनी सारी कमाई बांट देते। एक बार तो गन्ने का गट्ठर बांध कर ला रहे थे। रास्ते में बच्चे पीछे पड़ गये और गन्ना मांगने लगे। ये सबको प्रसन्नता से देते गये। अन्त में एक गन्ना बचा। उसी को लेकर घर पहुंचे। भूखी पत्नी को बड़ा क्रोध आया। उसने गन्ना छीनकर इनकी पीठ पर दे मारा। गन्ना टूट गया। ये हंस पड़े और बोले कि तुम बड़ी साध्वी हो। हम दोनों के लिये हमें गन्ने के दो टुकड़े करने पड़ते, तुमने बिना कहे ही कर दिये। इससे इनकी क्षमाशीलता तथा सहिष्णुता का पता चलता है। ज्येष्ठ पत्नी मर गई। पुत्र मर गया। दुःख और शोक की हद हो गई। इन्होंने अपने योगक्षेम का सारा भार भगवान पर छोड़कर भगवद् भजन करने का निश्चय कर लिया। प्रायः एकान्त में रहने लगे। विट्ठल भगवान के मन्दिर में जाकर पूजा-पाठ करने लगे। रात दिन नाम स्मरण में लीन रहने लगे। भगवान की कृपा से कीर्तन करते समय इनके मुख से अभंगवाणी निकलने लगी। बड़े बड़े विद्वान और साधु संत इनकी ज्ञानमयी वाणी को मुख से स्फुरित होते देखकर इनके चरणों में नत होने लगे। भगवान के साक्षात् दर्शन हेतु इन्होंने अन्न त्याग दिया। श्री विट्ठल मन्दिर के सामने एक शिला पर बैठ गये कि या तो भगवान मिलेंगे या जीवन का ही अन्त होगा। इस

प्रकार हठीले भक्त तुकाराम जी श्री पाण्डुरंग के साक्षात् दर्शन की आशा लगाये तेरह दिन तेरह रात बिना कुछ खाये पिये साधना रत रहे। अन्त में भक्त के आधीन भगवान बाल वेश धारण कर सामने प्रगट हुये। भगवान ने उन्हें दोनों हाथों से उठाकर छाती से लगा लिया। इनकी अभंग वाणी का सारा संकलन भगवान ने इनके भक्तों को दे दिया। भगवत्-साक्षात् के उपरान्त इनके मुख से सतत अमृत वाग्धारा की वर्षा होती रही। छत्रपति शिवाजी इनकी हरिकथायें बराबर सुना करते थे।

श्री तुकाराम जी महाराज के जीवन में लोगों ने अनेक चमत्कार देखे। ४१ वर्ष की आयु में श्री तुकाराम जी इस लोक से विदा हो गये। इनका मृत शरीर किसी ने देखा नहीं। भगवान स्वयं उन्हें सदेह विमान में बैठा कर अपने वैकुण्ठ धाम ले गये। उनकी अभंगवाणी जगत की अमूल्य एवं अमर आध्यात्मिक सम्पत्ति है।

भक्त नरसी मेहता जी – ये गुजरात के बहुत बड़े भक्त हो गये। इनके भजन केवल गुजरात में ही नहीं बल्कि सारे भारत में बड़ी श्रद्धा एवं चाव से गाये जाते हैं। महात्मा गांधी का सबसे प्रिय भजन "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे, पर दुखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।" भक्त नरसी मेहता जी का ही है। बचपन में साधुओं से सत्संग के कारण श्री कृष्ण भक्ति का उदय हुआ। वे निरन्तर भक्त साधुओं के साथ रहकर श्री कृष्ण एवं गोपियों की लीला के गीत गाने लगे। घर का ताना सुनकर जूनागढ़ के पास भगवान शंकर के मन्दिर में जाकर उपासना करने लगे। इनकी उपासना से प्रसन्न होकर भगवान शंकर प्रगट हुये इन्हें भगवान कृष्ण के गोलोक में ले जाकर गोपियों की रासलीला का अद्भुत दृश्य दिखाया। ये गोलोक की लीला देख कर मुग्ध हो गये। इनकी कृष्ण भक्ति इतनी दृढ़ थी कि इनका विश्वास था कि कृष्ण मेरे सारे दुःखों एवं अभावों को अपने आप दूर करेंगे। हुआ भी यही। उनकी पुत्री के विवाह में भगवान ने रुपये और सामग्री पहुंचा दी और स्वयं उपस्थित होकर सारे कार्य सम्पन्न कराये। इसी तरह पुत्र का विवाह भी भगवत् कृपा से सम्पन्न हो गया। नरसी मेहता की जाति के लोगों ने इनसे पिता का श्राद्ध करके सारी जाति को भोजन कराने का आग्रह किया। नरसी जी ने अपने भगवान का स्मरण किया एवं सारी साम्रगी जुट गई। अन्त में पता चला कि घी घट गया। पात्र लेकर नरसी मेहता घी लाने गये लेकिन वापसी में रास्ते में कीर्तन मंडली मिली सो उसी में शामिल होकर कीर्तन में मस्त हो गये। घर में देरी होते देख भक्त वत्सल भगवान नरसी मेहता का रूप धारण कर स्वयं घी लेकर उपस्थित हो गये। भोजन का कार्य जब सम्पन्न हो गया तो नरसी मेहता जी घी लेकर पहुंचे। देर के लिये क्षमा मांगी तो सभी लोग आश्चर्य में डूब गये। स्त्री एवं पुत्र के देहान्त के उपरान्त वे

एकदम विरक्त हो गये। वे कहा करते "भक्ति तथा प्राणि मात्र के साथ विशुद्ध प्रेम करने से मुक्ति मिल सकती है।" कहते हैं एक बार जूनागढ़ के राव माण्डलीक ने उन्हें बुला कर कहा – यदि तुम सच्चे भक्त हो तो मन्दिर में जाकर मूर्ति के गले में फूलों का हार पहनाओ और फिर मूर्ति से प्रार्थना करो कि वे स्वयं पास आकर तुम्हारे गले में अपनी माला डाल दें। नरसी मेहता ने रात भर प्रार्थना किया और दूसरे दिन सबके सामने मूर्ति ने स्थान से उठकर नरसी जी को माला पहना दी। नरसी जी के जीवन में अनेक ऐसे प्रसंग हैं। नरसी जी की भक्ति का प्रकाश सर्वत्र फैल गया।

भक्त मीरा बाई – भारत की नारी जाति को धन्य करने वाली भक्ति परायणा मीराबाई का जन्म राजस्थान के मारवाड़ में सम्वत् १५५८ में हुआ। इनके पिता का नाम राठौर रतन सिंह जी था। मीरा अपने माता पिता की इकलौती लड़ की थी। बडे लाड़ प्यार में पाली गई थी। मीरा के घर एक साधु आये। उनके पास भगवान की एक सुन्दर मूर्ति थी। मीरा ने साधु से मूर्ति मांग ली। साधु ने कहा कि ये भगवान हैं इनका नाम "गिरधर लाल जी" है। तू प्रति दिन प्रेम से इनकी सेवा–पूजा किया कर। मीरा इस समय दस वर्ष की थी। परन्तु दिन भर उसी मूर्ति को नहलाने, चन्दन पुष्प चढ़ाने, भोग लगाने और आरती उतारने आदि के काम में लगी रहती।

इसी बीच मीरा स्वरचित रचना मधुर स्वरों में गाती। सुनने वालों के हृदय में प्रेम उमड़ने लगता। इस प्रकार भाव तरंगों में पांच साल बीत गये। १५ साल की उम्र में मीरा का विवाह चित्तौड़ के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ कुमार भोजराज के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह के समय एक अद्भुत घटना हुई। विवाह मण्डप में मीरा ने अपने श्याम गिरधर लाल जी को भी विराजमान कर लिया। कुमार भोजराज के साथ फेरा लेते समय श्री गिरधर गोपाल के साथ भी फेरे ले लिये। मीरा ने कहा कि आज भगवान के साथ मेरा विवाह भी हो गया। जब सखियों ने मीरा से गिरधर गोपाल जी के साथ फेरे लेने का कारण पूछा तो मीरा ने कहा–

ऐसे बर को के बरू, जो जन्मे और मर जाये।
बर बरिये गोपाल जी, म्हारो चुड़लो अमर हो जाये।।

माता पिता ने दहेज में बहुत सा धन दिया लेकिन फिर भी मीरा उदास। कारण पूछा तो मीरा ने कहा कि "दे री माई जब म्हां को गिरधर लाल।" मीरा को गिरधर लाल के आगे सारा धन दौलत बेकार लगने लग गया। माता ने बड़े चाव से गिरधर लाल जी का सिंहासन मीरा की पालकी में रख दिया। मीरा ससुराल आई। घर घर बधाइयां बंटने लगीं। कुलाचार के अनुसार देवपूजा करने से मीरा ने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि मैं तो केवल गिरधर लाल जी को

ही पूजूंगी। सास के ताने सुने लेकिन मीरा अपने प्रण पर अटल रही। राजस्थान में अचल सुहाग के लिये गौरी पूजन की प्रथा है लेकिन मीरा ने साफ जवाब दे दिया। मीरा ने कहा कि मेरा सुहाग तो सदा अचल है जिसको अपने सुहाग पर सन्देह हो वह दूसरे को पूजे। कुमार भोजराज मीरा की सरल हृदय की शुद्ध भक्ति से प्रसन्न हुये। उन्होंने मीरा के लिये अलग से श्री रणछोड़ जी का मन्दिर बनवा दिया। मीरा भजन के नये नये पद बनाकर अपने पति को सुनाती तब कुमार का हृदय आनन्द से भर जाता। मीरा ने अपने लौकिक पति को कभी नाराज नहीं किया। अपने सुन्दर और सरल स्वभाव से तथा निःस्वार्थ सेवा भाव से उसे सदा प्रसन्न रखा। कुछ समय बाद मीरा की अनुमति से कुमार ने दूसरा विवाह कर लिया। मीरा को इस विवाह से बड़ी प्रसन्नता हुई। मीरा अपना सारा समय भजन-कीर्तन और साधु संग में लगाने लगी। कई दिनों तक बिना खाये पिये प्रेम समाधि में पड़ी रहती। शरीर बहुत दुर्बल हो गया। घर वालों ने समझा बीमार है- वैद्य बुलाये गये तो मीरा ने कहा - मीरा की प्रभु पीर मिटे जब, वैद सांवलिया होय'' इन अलौकिक प्रेम के दीवानों की दवा बेचारे इन वैद्यों के पास कहां से आती।

विवाह के बाद भक्ति प्रवाह में दस साल बीत गये। कुमार भोजराज का देहान्त हो गया। महाराणा सांगा जी भी परलोक वासी हो गये। मीरा के देवर विक्रमाजीत राजगद्दी पर आसीन हुये। भगवत प्रेम के कारण मीरा वैधव्य के दुःख से दुःखी नहीं हुई। राणा विक्रमाजीत को मीरा का साधुओं की मण्डली में रहना एवं नाचना गाना उचित नहीं लगा लेकिन मीरा अपने भक्ति भाव में अटल रही। अन्त में चरणामृत के नाम से राणा ने विष का प्याला भेजा। चरणामृत का नाम सुनते ही मीरा बड़े प्रेम से उसे पी गई और बाल भी बांका नहीं हुआ। राणा जी ने जब सुना तो उनको आश्चर्य हुआ कि कलियुग में यह दूसरा प्रहलाद कहां से आ गया।

मीरा रात को भी मन्दिर के पट बन्द करके भगवान के आगे उन्मत्त होकर नाचती। मानो भगवान प्रत्यक्ष प्रकट होकर मीरा के साथ बातचीत करते। राणा को मीरा पर पर-पुरुष से रात में बात करने का सन्देह हुआ लेकिन पट खुलवाने पर मीरा प्रेम समाधि में बैठी मिली। राणा लज्जित हुये। कहते हैं मीरा के पदों की प्रशंसा सुनकर एक बार तानसेन के साथ बादशाह अकबर वैष्णव के वेष में मीरा के पास आये। और मीरा की अद्भुत भक्ति का प्रभाव देखकर रणछोड़ जी के लिये एक अमूल्य हार देकर लौट गये। राणा यह सुनकर क्रोधित हुये और एक पिटारी में काली नागिन को बन्द करके शालिग्राम जी की मूर्ति के नाम से उनके पास भेजा। शालिग्राम जी का नाम सुनते ही मीरा अति प्रसन्न हुई और जब पिटारी खोली तो सचमुच उसमें शालिग्राम जी की मूर्ति विराजमान थी। मीरा प्रभु के

दर्शन करके नाचने लगी। मीरा घर छोड़ कर अपने प्रियतम की खोज में वृन्दावन चली गई। वहां विरह के गीत गाती हुई कुंज कुंज में भटकने लगी।

एक बार मीरा जी वृन्दावन में श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य जीव गोस्वामी जी का दर्शन करने गई। गोसाईं ने भीतर से कहला भेजा कि वे स्त्रियों से नहीं मिलते मीरा ने उत्तर दिया कि "महाराज आज तक तो वृन्दावन में पुरुष एक नन्दनन्दन ही थे और सभी स्त्रियां थीं, आज आप एक नये पुरुष प्रगट हुये हैं। मीरा का उत्तर सुनकर गोस्वामी जी नंगे पांव आकर बड़े प्रेम से मीरा जी से मिले। ४२ वर्ष की उम्र में मीरा जी द्वारका जी चली गईं। वहां श्री रणछोड़ भगवान के दर्शन और भजन में समय बिताने लगीं। कहते हैं मीरा के जाने के बाद चित्तौड़ में बड़े उपद्रव होने लगे। राणा जी मीरा को वापस लाने द्वारका जी पहुंचे। राणा जी ने मीरा से क्षमा याचना की और चित्तौड़ लौटने का आग्रह किया। अब मीरा तो प्रेम दीवानी हो गई थी। भगवान का दरवार छोड़कर जाने का प्रश्न ही नहीं था। मीरा भगवान के सामने जाकर नाचने लगी और अन्त में भगवान रणछोड़ जी की मूर्ति में सशरीर समा गई।

भक्ति की शक्ति अनन्त है। भक्त क्या नहीं कर सकता। जब विष भी अमृत हो जाय एवं नागिन भी शालिग्राम की मूर्ति हो जाय तो फिर कौन सा काम भक्त के लिये असम्भव रह जाता है।

◆

विद्वान, ज्ञानी एवं भक्त

एक बार परमहंस रामकृष्ण देव जी को किसी भक्त ने पूछा कि 'भगवन्! कुछ विद्वानों को देखा जिन्होंने सारी गीता, रामायण एवं श्रीमद्भागवत याद कर रखी है, अच्छे विद्वान हैं लेकिन उनका जीवन पवित्र नहीं है, ऐसा क्यों?' तो परमहंस देव जी ने कहा कि 'तुमने गिद्ध को देखा है न, वह निर्मल आकाश में उड़ता है लेकिन उसकी दृष्टि पृथ्वी पर पड़े सड़े मांस पर होती है। जहां उसे सड़ा मांस दिखाई दिया, ऊपर निर्मल आकाश से सीधे नीचे गोता लगायेगा और सड़े मांस पर नोचने के लिए पहुंच जाएगा।' ठीक उसी प्रकार चाहे कितना रामायण गीता पढ़ लें एवं याद कर ले, उसकी दृष्टि कहां है। जैसी दृष्टि होगी वैसी ही सृष्टि का निर्माण उसके लिए होगा। अतः विद्वान का मतलब है कि उसे विषय की जानकारी तो है लेकिन आवश्यक नहीं कि उसका आचरण भी शुद्ध हो। विद्वान का बौद्धिक सत्य जब तक हार्दिक सत्य नहीं होगा, वह ज्ञानी नहीं हो सकेगा। जिस पुरुष के बाहर अखंड प्रवृत्ति चल रही हो और भीतर अखंड निवृत्ति हो ऐसा होता है ज्ञानी पुरुष का जीवन। जिस प्रकार हजारों फनों के शेष नाग पर सोते हुये भी भगवान विष्णु शान्त हैं उसी तरह ज्ञानी हजारों कर्म करते हुए भी रत्ती भर क्षोभ तरंग अपने मानस सरोवर में उठने नहीं देते। अंग्रेजी में पुरानी और प्रचलित कहावत है कि "If wealth is lost nothing is lost, if health is lost something is lost, and if character is lost, everything is lost." विद्वान व्यक्ति का चरित्र शुद्ध होना आवश्यक नहीं। लेकिन ज्ञानी व्यक्ति का चरित्र ही उसकी सम्पदा है। कहते हैं चरित्र मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति एवं सम्पदा है। अनन्त सम्पदाओं का स्वामी होने पर भी अगर चरित्रहीन है तो विपन्न ही माना जायगा।

केवल विद्वत्ता रही तो बोझ बनती है लेकिन यदि वह आचरण में आ गई तो जीवन का आधार बन गई और उसने ज्ञानी बना दिया। उस विद्वत्ता से क्या लाभ जो कर्म को प्रभावित नहीं करती। विद्वान में विद्वत्ता का अहंकार रहता है लेकिन जब विद्वत्ता पच जाती है तो वह ज्ञानी हो जाता है। ज्ञानी होने के बाद अहंकार उसमें रहेगा ही नहीं। भक्त वह है जो अपने आराध्य से विभक्त न हो।

इष्ट की साधना तो करे लेकिन उनसे किसी वस्तु की याचना न करे। मीरा कहती है, मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। भक्त पूरी तरह अपने आराध्य को समर्पित रहता है। हमारे देश के दो भक्त ऐसे हो गये जो अपने आराध्य में ही पूर्णतः समा गये। महाप्रभु चैतन्य अपने आराध्य भगवान जगन्नाथ में समा गये एवं भक्तिमती मीरा अपने आराध्य भगवान द्वारिकाधीश में समा गईं। भक्त की विशेष व्याख्या करना कठिन है कारण उनमें सर्व समर्पण है। भक्त का प्रकार नहीं होता कारण उसकी पहली और अन्तिम व्याख्या है जो अपने आराध्य से विभक्त न हो। अतः भक्त की व्याख्या और विस्तार को हम यहीं विराम देते हैं।

ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं। एक विद्वान ज्ञानी और दूसरा स्वयंभू ज्ञानी। स्वयंभू ज्ञानी उसे कहते हैं जिन्होंने अध्ययन नहीं किया लेकिन उनकी चेतना उच्च स्तर की जागृत होती है जैसे कबीर, रैदास, परमहंस रामकृष्ण देव जी एवं मां आनन्दमयी। कबीर की साखियों पर बड़े बड़े विद्वान शोध कार्य कर रहे हैं। कबीर अनपढ़ थे लेकिन अन्तर्चेतना जागृत थी। रैदास तो इतने पहुंचे हुए थे कि मीरा स्वयं उनकी शिष्या बन गईं। परमहंस रामकृष्ण देव जी से किसी भी प्रकार का प्रश्न लोग पूछते थे तो उनका सटीक उत्तर वे दे देते थे। विश्व प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द जी जैसे उत्कृष्ट विद्वान उनके प्रमुख शिष्य थे। माता आनन्दमयी बहुत कम बोलती थीं। अतः भक्तों की जिज्ञासा उनके मौन दर्शन से ही शान्त हो जाती थी। दूसरे विद्वान ज्ञानी होते हैं जिन्होंने अपनी विद्वत्ता को पचा लिया जैसे स्वामी विवेकानन्द जी एवं महर्षि अरविन्द। दोनों इतने जबरदस्त पढ़ाकू थे कि बड़ी बड़ी पुस्तकों को पढ़ने में देर नहीं लगती थी। दोनों का जीवन भी पवित्र एवं शुद्ध था। कारण उनकी विद्वत्ता उनके आचरण में उतर चुकी थी यानी उनका बौद्धिक सत्य हार्दिक सत्य हो चुका था।

विद्वान की जब वासना छूटने लगे और उपासना जागृत होने लगे तो आप निश्चित मान लें कि उसकी यात्रा विद्वान से ज्ञानी की ओर होने लगी है। ज्ञानी की कसौटी आचरण होती है, न कि अध्ययन, व्याख्यान या प्रचार। जो मनुष्य न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है वह सदा ज्ञानी समझने योग्य है। ज्ञानी का ज्ञान-सत्य जीवन के लिये है, विद्वान की शिक्षा जीविका के लिये है। जब समझ में आ जाय कि जीवन क्या है, जीवन को कैसे जिया जाय और इस जीवन का उद्देश्य क्या है, तभी वह सच्चा ज्ञानी है। ज्ञानी अपने जीवन को उसकी समग्रता में जीता है। जो शरीर, वाणी तथा मन से संयत है, मन से भी कोई पाप कर्म नहीं करता तथा स्वार्थ के लिये झूठ नहीं बोलता ऐसे ही व्यक्ति को सदाचारी कहते हैं। ज्ञानी तो वे हैं जिनकी समस्त संसार से आसक्ति नष्ट हो गई है, जिनका अज्ञान नष्ट हो चुका है और जो कल्याणमय परमात्म स्वरूप में स्थित हैं।

अमृतपान से देव : विषपान से महादेव

जब समुद्र मंथन हुआ तो उससे चौदह चीजें निकलीं, उसका क्रम इस प्रकार है– (१) विष, (२) लक्ष्मी, (३) कौस्तुभ मणि, (४) रम्भा अप्सरा, (५) वारुणी (मदिरा), (६) अमृत, (७) शंख (पाञ्चजन्य), (८) ऐरावत (हाथी), (९) धन्वन्तरि (वैद्य), (१०) शार्ग धनुष, (११) कामधेनु (गाय), (१२) चन्द्रमा, (१३) कल्पवृक्ष, (१४) उच्चैः श्रवा (घोड़ा)।

अन्य चीजों के निकलने का मैं उल्लेख नहीं करूंगा। केवल विष एवं अमृत की चर्चा करना चाहूंगा। पहले कालकूट विष निकला एवं बाद में अमृत। विष जब निकला तो कोई देवता इसका पान करने को तैयार नहीं हुआ। तब लोक कल्याण की दृष्टि से उस विष का पान महादेव ने किया। उस विष को अपने कंठ में रखा एवं नीलकंठ कहलाये। कारण कंठ नीला पड़ गया। लेकिन बाद में जब अमृत निकला तो उस अमृत को पाने के लिये देवताओं में छीना झपटी होने लगी। इसका तात्पर्य क्या हुआ कि जिसने अमृत पान किया वे देवता कहलाये एवं जिसने कालकूट विष का पान किया वे महादेव कहलाये। लोक व्यवहार की दृष्टि से देखा जाय तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि जो सुख सुविधा का सेवन करते हुए लोक मंगल करना चाहते हैं, उनका दर्जा उनसे नीचे रहता है जो कष्ट झेलते हुये भी निरन्तर लोक कल्याण में लिप्त रहते हैं। अपने देश में महात्मा गांधी हुये जो सर्वपूज्य एवं सर्वमान्य नेता थे लेकिन आजकल के नेताओं को देखिये तो आपको देव एवं महादेव का अर्थ समझ में आ जायगा। महात्मा गांधी इतने महान हुए कि महादेव के सदृश हुए। उन्होंने लोक कल्याण हेतु कितने कितने कष्ट सहे। कई कई बार की जेल यात्रा की। साधारण वेश भूषा में रहे। खान पान पर पूरा नियंत्रण। दर्जा तीन में सफर करते थे। अपने त्याग, तपस्या, बलिदान एवं निरन्तर लोक कल्याण के कारण उनको इतनी मान्यता मिली कि वे राष्ट्रपिता कहलाये यानी हमारे देश के महादेव यानी सर्वोच्च नेता। अन्य नेता सारी सुविधाओं का उपयोग करते हुये लोक कल्याण में रत हैं। सुविधाओं का त्याग उनसे नहीं होता। चरित्र पर अधूरा नियंत्रण है। ऐसे नेता वह स्थान नहीं पा सके जो स्थान गांधी ने पाया।

अब मैं उन नेताओं का जिक्र करना चाहता हूं जिन्होंने महादेव के विषपान के कष्ट की भांति जेल का कष्ट सह करके भी देश दुनिया को ऐसा रत्न दिया कि जब तक दुनिया रहेगी, उनकी देन देश दुनिया को आलोकित करती रहेगी, देशवासियों को कर्मयोगी, चरित्रवान एवं ज्ञानवान बनायेगी। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को माडले जेल में अपने 'गीता रहस्य' को लिखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मेरे विचार से आज तक गीता पर जितने भी भाष्य लिखे गये उनमें यह सर्वश्रेष्ठ कृति है। गीता रहस्य के सम्बन्ध में अरविन्द घोष जैसे मर्मज्ञ मनीषी ने कहा "गीता रहस्य नामक जो गीता ग्रंथ है वह भारतीय आध्यात्मिकता का परिपक्व सुमधुर फल है। सच्चे अध्यात्म का सनातन संदेश यह दे रही है जो कि आधुनिक काल के ध्येयवाद के लिए आवश्यक है।" इस गीता ग्रंथ के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने कहा "बुद्धि से खोज निकालने का व्यापक सत्य का भंडार ही यह 'गीता रहस्य' है। यह गीता रहस्य ग्रंथ लोकमान्य तिलक जी ने मांडले जेल में २ नवम्बर १९१० को लिखना प्रारम्भ किया और ९०० पृष्ठों के इस सम्पूर्ण ग्रंथ का लेखन ३० मार्च १९११ को यानी केवल पांच महीनों में इसे पूर्ण कर दिया।

इसी प्रकार महात्मा गांधी ने भी १९३० में यरवदा जेल में गीता पर अपनी भूमिका लिखी। गांधी जी ने गीता को महाभारत का अंग स्वीकार करते हुए इसे उपनिषदों का सार बताया और गीता का अर्थ गाया हुआ उपनिषद बतलाया। इसकी उपयोगिता जन जीवन के लिये कितनी महत्वपूर्ण है यह उन्होंने विस्तार से समझाया और इसे सद्गुरु स्वरूप तथा माता की संज्ञा प्रदान किया। इसके बाद उन्होंने सम्पूर्ण गीता शास्त्र का विवेकपूर्ण सरलतम भाष्य लिखा जिससे सामान्य जन लाभान्वित हो सकें।

महात्मा गांधी की भांति ही उनके अनुयायी संत श्री विनोबा भावे को भी जेल में ही गीता प्रवचन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। यह बात सन् १९३२ 'धुलिया' जेल की है जहां उन्होंने गीता पर अपने अनुभव सिद्ध गीता-विषयक विचारों को प्रवचन के माध्यम से व्यक्त किया था। जिसे 'साने गुरुजी' जैसे भक्त पुरुष के द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। इसमें जैसा उन्होंने (विनोबा जी ने) स्वयं लिखा है "तात्विक विचारों का आधार छोड़े बगैर लेकिन किसी वाद में न पड़ते हुए रोज के कामों का ही जिक्र किया गया है। यहां श्लोकों के अक्षरार्थ का नहीं, एक एक अध्याय के सार का चिन्तन है। शास्त्र दृष्टि कायम रखते हुए भी शास्त्रीय परिभाषा का उपयोग कम से कम किया गया है। मुझे विश्वास है कि इससे गांव वाले हमारे मजदूर भाई-बहन भी इसमें अपना श्रम-परिहार पायेंगे। गीता का मुझ पर अनन्त उपकार है। रोज मैं उसका आधार लेता हूं और रोज मुझे उससे मदद मिलती है। गीता का भावार्थ जैसा मैं समझता हूं इस प्रवचनों में

समझाने की कोशिश की है। मैं चाहता हूं कि यह हरेक घर में पहुंचे और घर घर में इसका पठन, श्रवण और मनन किया जाय।" वास्तव में विनोबा जी का गीता प्रवचन प्रत्येक मनुष्य के स्वाध्याय का विषय है। इससे मानव जीवन की वास्तविक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

पूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का यद्यपि बहुत समय स्वाधीनता आन्दोलन में बीता परन्तु वे अपने लेखक व्यक्तित्व का भी उपयोग करने से वंचित न रहे। वे उत्तम कोटि के विचारक और लेखक थे उन्होंने कई जनोपयोगी पुस्तकें लिखीं जो सभी लोकप्रिय हुईं। उन्हें पर्याप्त ख्याति भी प्राप्त हुई परन्तु उनमें से सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' है जो उनके द्वारा अपनी बेटी को सम्बोधित करके पत्र के रूप में लिखे हुये बहुतेरे लेखों का एक विशिष्ट संग्रह है।

महान पुरुष अपने कठिन से कठिन समय का भी सदुपयोग करने से नहीं चूकते जैसा उनके जीवन के कष्टमय जेल के समय से आंका जा सकता है। जेल यात्रा के कई चरणों में ये पत्र लिखे गये हैं जिनको संक्षिप्त करके ही यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि वे राष्ट्र नेता के साथ ही उच्च कोटि के साहित्य मर्मज्ञ तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के उद्भट विद्वान् थे। यह पुस्तक उनके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा इतिहास के गहरे ज्ञान का सागर है।

जैसा उन्होंने इस संदर्भ में स्वयं लिखा है 'महीने गुजरे, कुछ दिन के लिये जेल से निकला, फिर वापस गया। लिखने का सिलसिला जारी रहा और लिखे हुये पत्रों का पहाड़ सा बन गया। इसको देखकर मैं भी हैरान रह गया। इस तरह इत्तफाक से यह मोटी पोथी बनी। इसमें हजार कमियां हैं लेकिन फिर भी मैं समझता हूं कि इससे फायदा भी हो सकता है।' इस प्रकार उनके लिखे हुए इन्दिरा के नाम १२७ पत्रों के संग्रह के रूप में यह पुस्तक सम्पन्न की गई है। इसमें एशिया और यूरोप के प्राचीन काल से लेकर सन् १९३९ तक के देशों और साम्राज्यों तथा संस्कृतियों का भली प्रकार से दिग्दर्शन कराया गया है। सामान्य लोगों को भी विश्व के प्राचीन और अर्वाचीन सभ्यताओं, सामाजिक रहन सहन, अनेक प्रकार के उथल-पुथल का एक साथ ही बोध कराने में इन लेखों का संग्रह बड़ा ही उपयोगी प्रमाणित हुआ है।

उपरोक्त उदाहरणों से एक बात प्रमाणित होती है कि मनुष्य हर परिस्थिति में लोक कल्याण कर सकता है। जैसे भगवान शंकर ने विषपान करके भी निरन्तर लोक कल्याण किया, उसी प्रकार इन महा पुरुषों ने भी जेल यातना के कष्टों को सहकर भी लोक कल्याण हेतु ऐसा अमृत फल दे दिया जो सृष्टि काल पर्यन्त कल्याण कार्यों में मानव मात्र को प्रवृत्त रखेगा।

देश विदेश में पूजे जाते हैं श्रीगणेश

हमारे देश के विभिन्न भागों में गणेश जी की विशालकाय मूर्ति की चर्चा सर्वत्र फैली है। खजुराहो के मातंगेश्वर मंदिर, लक्ष्मण मंदिर, कंवरिया मंदिर में गणेश जी की अनेकानेक प्रतिमायें भव्य एवं अद्भुत होने के कारण दर्शनीय हैं। टीकमगढ़ के एक मंदिर में जो प्रतिमा स्थापित है वह बारह भुजाओं वाले महागणेश कहलाते हैं। बंबई में हजारों लाखों की संख्या में लोग श्री सिद्धि विनायक गणेश का दर्शन पूजन करते हैं। वाराणसी में भी बड़ा गणेश, ढुंढिराज गणेश आदि की पूजा बड़े धूमधाम से होती है। हमारे देश के अलावा विदेशों में हमारे गणपति काफी पहले से ही पूज्य हो गये हैं। कहीं इन्हें पानी बरसाने वाला सूंड़ का देवता कहा जाता है तो कहीं किसानों का सच्चा दोस्त। भूटान के हिन्दू देवालयों में इस देवता को आसमानी परिधान पहना कर श्रृंगार किया जाता है। यह देवता यहां के किसानों के एक सच्चे दोस्त के नाम से भी चर्चित हैं। यहां के कृषकगण अपने खेतों में इन्हें एक उच्च आसन पर विराजमान करते हैं ताकि हर वर्ष फसल प्रचुर मात्रा में पैदा हो तथा प्राकृतिक आपदा से जनता बची रहे।

इंडोनेशिया के सरकारी नोटों पर तो श्री गणेश का चित्र ही छपा है हालांकि यह एक मुस्लिम मुल्क है परन्तु हिन्दू रीति रिवाज भी यहां लोकप्रिय है। सुमात्रा द्वीप में इन्हें 'अजूबा देवता' के रूप से जाना जाता है। वाली द्वीप में इनकी पूजा जंगली फलों व शहद से की जाती है।

अफ्रिका के जार्जिया जंगल में कुदरत इस देवता से इतनी प्रसन्न हुई कि एक चंदन के पेड़ पर स्वतः गणपति की आकृत्ति उभर आई। यह कुदरती आकृति यहां के आदिवासियों के लिये एक देवता के रूप में अमर है।

मलाया में गणेशजी को 'बैजा' नाम से जाना जाता है। यहां के आदिवासी अपने मुल्क के लोक पर्व के दिनों में इनकी पूजा बड़े बड़े शंख बजाकर करते हैं। वैसे यहां लोक पर्व के दिनों 'बैजा वादा' की मूर्ति गुड़-खांड़ व शहद से निर्मित की जाती है। उपासना के उपरांत मूर्ति को केले के पत्तों में रखकर सरिता में प्रवाहित करने की भी प्रथा है।

फिजी में तो इस देवता के प्रति अटूट आस्था है क्योंकि इस मुल्क में ४६ प्रतिशत हिन्दू बसे हैं। गणेश उत्सव के दिन यहां के हिन्दू देवालयों में गणपति की जय जयकार करते हैं। इसके साथ ही गणपति की मनमोहक झांकियां भी बनाते हैं।

वे जनता के पति है। गणपति गण प्रमुख के रूप में संस्कृति के रक्षक भी हैं। निरुक्त के अनुसार पार्वती संस्कृति एवं शिव राष्ट्र हैं। संस्कृति के लिए राष्ट्र अनिवार्य है तथा राष्ट्र के लिए संस्कृति। गणेश की अवधारणा संस्कृति और राष्ट्र के रक्षक के रूप में प्रतीत होती है। एक व्याख्या के अनुसार उनका गजानन बुद्धिमत्ता का, लंबी सूंड़ तीव्र घ्राण, कमल पवित्रता एवं समृद्धि का, चक्र एवं परशु दण्ड का एवं मोदक सबके लिये भोजन का प्रतीक है।

गणेश जी की व्याख्या तरह तरह से की गई है। 'जाकी रही भावना जैसी' के सिद्धान्त के अनुसार गणेश न केवल सनातन धर्म में वरन् जैन एवं बौद्ध धर्म में भी देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। श्री गणेश अपने देश में ही पूजित नहीं हैं, विदेशों में भी इनकी पूजा होती है। जापान के एक मंदिर में तो गणेश और बुद्ध की गले मिलती हुई एक दुर्लभ मूर्ति विराजमान है।

♦

हमारे प्रत्येक देवता का विशेष संदेश

हमारा कालखण्ड चार युगों में बंटा हुआ है – सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग एवं कलियुग। सतयुग में भगवान का नरसिंहावतार होता है। यह अवतार आधा पशु एवं आधा नर है। इसके अवतरण का हेतु धर्मात्मा पुत्र प्रहलाद की रक्षा करना एवं पापात्मा पिता हिरण्यकशिपु का वध करना था। यह अवतार किसी महिला की कोख से पैदा नहीं हुआ बल्कि खम्भे पर मुक्के के प्रहार से हुआ। हिरण्यकशिपु को कई कई वरदान मिले हुये थे- वह न दिन में मरेगा न रात में, न जानवर के द्वारा मारा जायगा और न मानव के द्वारा, न रात में मारा जायेगा न दिन में, न ब़ाहर मारा जायगा न भीतर, न पृथ्वी पर मारा जायगा और न आकाश में और न अस्त्र से न शस्त्र से। इन सारे वरदानों को बचाते हुये भगवान नरसिंह ने हिरण्यकशिपु का वध किया तो वे न नर थे न जानवर, कमरे की देहली पर वध किया जो न बाहर होता है और न भीतर, सायंकाल के समय याने न दिन में और न रात में, गोद में लेटाकर वध किया याने न पृथ्वी पर और न आकाश में, अपने नाखून से वध किया जो न अस्त्र है और न शस्त्र। इन सभी वरदानों का सम्मान करते हुये भगवान नरसिंह ने हिरण्यकशिपु का वध कर दिया। हिरण्यकशिपु के वध के उपरान्त भगवान नरसिंह के अवतरण का हेतु समाप्त हो गया और वे अन्तर्धान हो गये।

त्रेता में भगवान राम का जन्म मां कौशल्या की कोख से होता है। भगवान राम के जन्म के पहले रावण पैदा हो चुका था। रावण महापंडित था। रावण ने कई कई ग्रंथ लिखें। भगवान राम जब लंका पर विजय प्राप्त करने जाते हैं तो उन्होंने भगवान शिव की पूजा की और पूजा के लिये महापंडित रावण को बुलाया। रावण ने पूजा के उपरान्त राम को 'विजयी भव' का आशीर्वाद दिया। कारण रावण ब्राह्मण था और राम क्षत्रिय थे। अतः रावण आशीर्वाद देने का अधिकारी था। रावण के अत्याचार से ऋषिकुल त्रस्त था क्योंकि ऋषियों के यज्ञादि में वह विघ्न बाधा डालता था। रावण के अत्याचार की हद तो तब हो गई जब उसने भगवान राम की पत्नी सीता को साधु का कपट भेष धारण करके हरण कर लिया। हरण करके अपने पुष्पक विमान से लंका ले गया और अशोक

वाटिका में सीता को छोड़ दिया। सीता को अनेक प्रकार से प्रलोभन दिया कि 'एक बार विलोकु मम ओरा' लेकिन मां सीता को रावण का बल, विद्वत्ता एवं ऐश्वर्य आकर्षित नहीं कर सका। अन्ततोगत्वा राम को अपने बन्दर भालुओं की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई करनी पड़ी और रावण समेत सभी राक्षसों का वध करना पड़ा। रावण एवं अन्य राक्षसों के वध से साधुओं की सुरक्षा हुई। राम ने धर्म को अपने आचरण में उतारकर धर्म की स्थापना की। राम का सम्पूर्ण जीवन ही अनुकरणीय है। कई कई लोगों ने रामायण लिखी है और प्रत्येक ने अपने अपने ढंग से राम को सजाया, संवारा एवं चित्रित किया है। राम ने ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया जिससे कभी किसी भी प्रकार की धर्म मर्यादा का उल्लंघन नहीं हुआ। यही कारण है कि भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। भगवान राम ने धर्म की मर्यादा का पालन कर धर्म की स्थापना एवं रक्षा की है।

द्वापर में भगवान कृष्ण का जन्म यदु कुल में जेल में होता है। इनका लालन पालन नन्द यशोदा ने किया। भगवान कृष्ण ने अपना विराट रूप एक बार अर्जुन को दिखाया और दूसरी बार दुर्योधन को। धृतराष्ट्र ने भी उनका विराट रूप देखने की इच्छा व्यक्त की और जन्मान्ध होते हुये भी भगवान ने उनको दिव्य दृष्टि दे दी ताकि वे विराट रूप का दर्शन कर सकें। जहां अन्याय का प्रतिकार करने के लिये भगवान राम को स्वयं रावण से युद्ध लड़ना पड़ा वहीं भगवान कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध लड़ने के लिये प्रेरित किया और स्वयं उसके सारथी बने। भगवान कृष्ण को न तो गोचारण करने में संकोच हुआ और न माखन चोर कहलाने में। रणछोड़ भी कहलाये और महारास भी रचाई। बाँसुरी भी बजाई, १६१०० को रानियां एवं आठ को पटरानियां बनाया। भोजन में भी छप्पन भोग स्वीकार किया। युद्ध भूमि में अमर ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश देकर अर्जुन का मोह दूर किया। अन्यायी एवं अधर्मी कौरवों को हराकर न्यायी एवं धार्मिक पाण्डवों को विजयश्री दिलाई। गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक अपने बांये हाथ की कानी उंगली पर उठाकर रखा और अपने ग्वाल बालों को इन्द्र के प्रकोप से सुरक्षा प्रदान की। इस प्रकार इन्द्र के दंभ को तोड़ दिया। छः माह का कृष्ण पूतना वध करता है, सात साल का कृष्ण कालिया नाग का दमन करता है। ग्यारह साल का कृष्ण गोपियों के साथ रास रचाता है और द्रौपदी की चीर हरण से रक्षा करता है। कृष्ण का सारा जीवन ही पूर्ण मानवीय जीवन है। इस जीवन में कृष्ण ने माखनचोर, रणछोड़, रास रचैया, युद्ध लड़ैया और सारथी कहलाने में भी गौरव का अनुभव किया और उसके बाद भी योगेश्वर कहलाये। कृष्ण सोलह कलाओं से पूर्ण होकर पूर्ण ब्रह्म हैं। कृष्ण अवतार का सारा समय ही अधर्म का प्रतिकार करने, धर्म की स्थापना करने एवं दुष्टों का नाश करने में लगा।

हमारे एक देवता शंकर ऐसे भी हैं जो आदि ब्रह्म हैं। अतः अजन्मा हैं। भगवान शंकर चूंकि अजन्मा हैं अतः हम उनका जन्म दिन नहीं मनाते। भगवान शंकर अन्य सभी अवतारों से निराले हैं। इनका जन्म नहीं होता। राम ने जहां काम को अस्वीकार किया याने एक धोबी के कहने से एक पत्नी का भी त्याग कर दिया, वहीं कृष्ण ने कभी किसी को अस्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि कृष्ण की १६१०० रानियां एवं ८ पटरानियां थीं। लेकिन भगवान शंकर ने तो काम को ही भस्म कर दिया। राम का जन्म महाराजा दशरथ के महल में होता है, कृष्ण का जन्म जेल में होता है लेकिन शंकर तो अजन्मा हैं। शंकर का कोई मकान नहीं। वे कैलाशवासी हैं। भगवान शंकर का चरित्र भी बड़ा अनूठा है। जिन्होंने अमृत पान किया वे देव कहलाये लेकिन जिन्होंने हलाहल विष धारण किया वे महादेव कहलाये। भगवान शंकर ने केवल विष ही धारण नहीं किया। उन्होंने विषधर को भी अपने गले का आभूषण बनाया। महा श्मशान की राख को भी अपने अंगों में लगाया जो स्वयं में अपावन होती है। भांग धतूरा का सेवन किया। नरमुण्ड माला को अपने गले में धारण किया। भगवान शंकर की बारात में देव-दानव सभी थे। उन्होंने किसी से परहेज नहीं किया। यही कारण है कि देव-दानव समान रूप से भगवान शंकर को अपना पूज्य मानते हैं। सारी अपावन चीजों को धारण करने वाला केवल जगत का कल्याण ही करता है। शिव याने कल्याण करने वाला देवता। सभी देवता वस्त्र धारण करते हैं और स्वर्ग में बसते हैं लेकिन भगवान शंकर तो नंग धड़ंग अवस्था में रहते हुए कैलाश पहाड़ पर निवास करते हैं। कभी क्रीड़ा करने का मन होता है तो भगवान शंकर मां पार्वती के साथ आनन्द क्षेत्र काशी में चले आते हैं।

इन चारों देवताओं याने नरसिंह, राम, कृष्ण एवं शंकर में क्या अन्तर है? चारों का हेतु एक है याने साधुओं की सुरक्षा, दुष्टों का नाश एवं धर्म की स्थापना लेकिन चारों का चरित्र भेद इतना है कि चरित्र में कोई समानता नहीं। नरसिंह भगवान आधे नर एवं आधे पशु हैं। हिरण्यकशिपु का वध करके प्रहलाद को सुरक्षा प्रदान करते हैं। भगवान राम मर्यादाओं का पालन करते हैं चाहे वे वन में हो या युद्ध स्थल में या अयोध्या में राज्य करने के समय। कृष्ण के जैसा अनूठा व्यक्तित्व तो आज तक पैदा नहीं हुआ। कृष्ण सर्वदा सम हैं- योगेश्वर हैं कोई काम छोटा बड़ा नहीं होता चाहे गोचारण करें, चाहे रास रचायें, युद्ध भूमि में रथ के सारथी बनें या गीता का उपदेश दें। कृष्ण सारा काम पूरे मनोयोग से करते हैं कारण कृष्ण ने एक सिद्धान्त दिया कि फल के लालच में कर्म मत करो, कर्म का फल तो मिलना निश्चित है। अतः कर्म के फल लालच से कर्म में तन्मयता कम हो जाती है। कृष्ण का यह आदर्श है कि सारे कर्म करते हुये भी पानी में कमल

की तरह सभी से अछूते रहो। इसीलिये वे योगेश्वर कहलाये। भगवान शंकर अजन्मा हैं। सभी अपावन चीजों को धारण करके भी कल्याण कार्य करते हैं। स्वयं नंग धड़ंग रहते हैं। किसी से भेदभाव नहीं करते और सभी का मंगल करते हैं। कैलाश पर वास करते हैं, समाधि में रहते हैं एवं क्रीड़ा करने हेतु काशी उनका आनन्द क्षेत्र है, जहां मां पार्वती के साथ वास करते हैं।

इस लेख का तात्पर्य यह है कि चरित्र भेद होते हुये भी सभी देवताओं का एक ही उद्देश्य है कि साधुओं की सुरक्षा हो, पापियों एवं दुष्टों का नाश हो एवं धर्म की स्थापना हो।

◆

अवतारों के अवतरण का हेतु

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कहते हैं कि जब धर्म की हानि होती है, अधर्म की वृद्धि होती है तो मेरा अवतरण होता है। अवतरण होने के बाद वे क्या करते हैं:

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

याने साधुओं की सुरक्षा, दुष्टों का नाश तथा धर्म की स्थापना युगों युगों में अवतरण का हेतु बनता है। लेकिन सभी युगों में साधुओं को कष्ट एक ही प्रकार का नहीं होता। उदाहरण स्वरूप आप सतयुग में नरसिंहावतार के अवतरण का हेतु देखें। राजा हिरण्यकशिपु के पुत्र थे प्रहलाद। हिरण्यकशिपु घोर नास्तिक थे। उन्होंने अपने राज्य में घोषणा कर रखी थी कि मैं ही सब कुछ हूं। मेरे राज्य में कोई भगवान का नाम नहीं लेगा। प्रजा तो डर के मारे भगवान का नाम नहीं ले रही थी। लेकिन हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रहलाद ही जब भगवान का नाम लेने से नहीं रुका तो पिता हिरण्यकशिपु ने उसको पहले मना किया, फिर डांटा, मारा तथा फिर जान से मारने का प्रयास किया याने पहाड़ों पर से गिरा दिया। इतना ही नहीं बहन होलिका की गोद में बैठाकर अग्नि लगा दी कारण होलिका को वरदान था कि वह अग्निमें नहीं जलेगी। लेकिन होलिका ने अपने वरदान का जब दुरुपयोग किया याने गोद में बैठाकर प्रहलाद को मारने का प्रयास किया तो उसके वरदान का प्रभाव खत्म हो गया। याने होलिका जल गई एवं प्रहलाद बच गये। हिरण्यकशिपु का प्रहलाद को मारने का प्रयास भी निष्फल हो गया तो स्वयं अपनी तलवार निकाली और पूछा बेटे प्रहलाद से कि बता क्या इस खंभे में भी तेरे भगवान हैं, तू तो उसे सर्वत्र बताता है। तो जैसे ही प्रहलाद ने भगवान का होना खंभे में भी बताया हिरण्यकशिपु ने खंभे पर तलवार से प्रहार किया तो भगवान नरसिंहावतार के रूप में प्रकट हो गये। अवतार में नर एवं सिंह का रूप धारण करने का एक विशेष हेतु था। हिरण्यकशिपु को उसकी घोर तपस्याके कारण वरदान मिला हुआ था कि तुझे मनुष्य और जानवर नहीं मार सकेंगे। तू न दिन में मरेगा और न रात में। न बाहर मरेगा न भीतर, न अस्त्र से न शस्त्र से
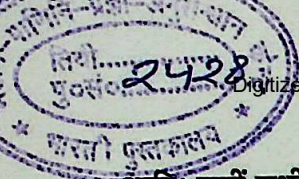
आदि। इन्हीं सभी वरदानों का बचाव करते हुए भगवान नरसिंह ने दरवाजे की देहली पर अपनी गोद में लेकर सायंकाल याने दिन एवं रात के संधिकाल में अपने नाखूनों से बिना किसी अस्त्र शस्त्र के प्रयोग के उसका वध कर डाला। इस प्रकार भगवान ने दुष्ट राजा का वध किया और भक्त प्रहलाद की रक्षा की। ये दोनों क्रियाएं जब होंगी तो धर्म की स्थापना तो अपने आप ही हो जायगी। इस प्रकार आप देखें तो भक्त प्रहलाद दुनिया का प्रथम सत्याग्रही हो गया। सत्य के आग्रह के लिये सारे कष्ट सहे लेकिन कभी सत्य आचरण का पालन करने से परहेज नहीं किया।

जब सत्ययुग में पहले दुष्ट हिरण्यकशिपु आया तो उसके पुत्र के रूप में भक्त प्रहलाद आये। जहां पिता दुष्ट था वहीं पुत्र भक्त था। याने पिता से पुत्र की रक्षा ही भगवान के अवतरण का हेतु बना। इसी प्रकार त्रेता युग में भी पहले रावण आते हैं तो फिर भगवान राम का अवतरण होता है। रावण तथा उसके अनुचरों एवं परिवार वालों ने कितने कितने साधुओं को कष्ट दिया, उनके यज्ञों का विध्वंस किया। जिस प्रकार हिरण्यकशिपु ने अपनी कठिन तपस्या के बल पर कितना महान वरदान प्राप्त कर लिया था उसी प्रकार रावण भी भगवान शिव का परम भक्त था। रावण अपनी कठिन तपस्या के कारण अनेक वरदान प्राप्त कर चुका था। रावण ने भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिये अपने सिर को भी काट कर भगवान को भेंट चढ़ा दिया था। रावण जब चलता था तो धरती डोलती थी। रावण के अत्याचार से प्रजा अत्यन्त दुःखी थी। रावण के भय से सभी प्रजा भयभीत रहती थी। रावण महान विद्वान था, ब्राह्मण कुल का था, महर्षि पुलस्त्य का नाती था, अपनी त्याग तपस्या के बल पर अनेकं वरदान प्राप्त कर चुका था। रावण की विद्वत्ता, बल तथा वरदानों ने उसके अहंकारको इतना बढ़ा दिया कि अपने सामने वह किसी को कुछ नहीं समझता था। रावण के इस रावणत्व याने घोर अत्याचार को समाप्त करना अति आवश्यक था। अतः भगवान राम का अवतरण होता है। भगवान राम अपने पिता के वचन का पालन करने वन् गमन करते हैं और वहीं मां सीता का अपहरण रावण के हाथों हो जाता है। अब सीता मां को प्राप्त करने के लिये राम को लंका पर चढ़ाई करनी पड़ी। रावण की लंका में उसके सभी लोग जब मारे गये तो अन्त में रावण भी भगवान राम के हाथों मारा गया। इस प्रकार दुष्टों का वध हुआ। भगवान राम अपने वन प्रवास तथा विश्वामित्र के साथ जब जंगलों में गये थे तब भी राक्षसों का संहार किया था एवं साधुओं की रक्षा की थी। भगवान राम ने अपने आचरण से धर्म की स्थापना की जैसे सत्ययुग में भक्त प्रहलाद ने भी अपने आचरण से धर्म की रक्षा की। कारण धर्म आचरण में पलता है अतः भक्त प्रहलाद एवं भगवान राम के शुद्ध आचरण

के कारण धर्म की स्थापना होना स्वाभाविक है। यहां भगवान राम ने धर्म की स्थापना के लिये कई कार्य किये। जैसे पिता की वन गमन की कठिन आज्ञा का पालन करना, भाई भरत के द्वारा अनुनय विनय करने पर भी राजगद्दी स्वीकार नहीं करना, वन में साधुओं की रक्षा एवं दुष्टों का नाश करना। रावण का विद्वान ब्राह्मण होते हुये भी उन्होंने निःसंकोच वध किया। दुष्ट अगर दूसरे देश में भी है तो भी उसके वध से परहेज नहीं किया; याने यहां भी भगवान राम के अवतरण से तीनों हेतुओं की रक्षा होती है। भगवान राम की आचरित मर्यादाएं आज भी हमें प्रेरणा देती है।

अब आप द्वापर में भगवान कृष्ण के अवतरण का हेतु देखें। भाइयों याने कौरवों एवं पाण्डवों में सम्पत्ति के बंटवारे को लेकर घोर असन्तोष था। धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा भयंकर जुआ खेलना, अपने राजपाट का हार जाना, स्वयं को हार जाना तथा अपनी पत्नी तक को हार जाना, शर्तो के अनुसार पाण्डवों को अज्ञातवास के बाद उनका राज्य वापस लौटाने से कौरवों का साफ इन्कार कर देना, छल कपट से पाण्डवों का वध करने का प्रयास करना, भरी सभा में द्रौपदी का चीर हरण करना, दुर्योधन के द्वारा द्रौपदी को भरी सभा में अपने जंघे पर बैठने के लिये विवश करना, दुर्योधन का यह साफ कहना कि मैं धर्म को जानता हूँ लेकिन मेरी धर्म में प्रवृत्ति नहीं है तथा अधर्म को भी जानता हूँ लेकिन उससे भी मेरी निवृत्ति नहीं है यह सब धर्म के प्रतिकूल था। कौरवों के पास संख्या बल भी अधिक था; अतः भगवान कृष्ण का अवतरण होता है। धर्म की रक्षा याने पाण्डवों को सुरक्षा प्रदान करना, दुष्टों का नाश याने महाभारत युद्ध में कौरवों का सर्वथा नाश करके तथा युद्ध भूमि में अर्जुन को गीताका उपदेश देकर भगवान आज तक धर्म की स्थापना करते चले आ रहे हैं। गीता भगवान कृष्ण की अमरवाणी है और गीता अमर ग्रंथ है। गीता के सूत्र सभी कालों में पूरी मनुष्य जाति के द्वारा अनुकरणीय हैं। गीता आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी द्वापर युग में थी। गीता अन्याय का प्रतीकार करना बताती है। यह भी बताती है कि अन्याय का प्रतिकार नहीं करना 'कायरता' है। समझौते के सारे प्रयास निष्फल होने पर युद्ध अवश्यंभावी है। अनेक युद्धों में भी दुष्टों का नाश किया। साधुओं एवं धर्मात्माओं की रक्षा की तथा अपने आचरण एवं वचन से धर्म की स्थापना की। भगवान कृष्ण का जीवन एक अमर संदेश है। सारे विषय-सुखों के बीच रहते हुये भी कभी उनमें लिप्त नहीं हुये जैसे पानी के बीच रहते हुये भी कमल को पानी प्रभावित नहीं कर सकता। सुदामा के माध्यम से दुनिया को संदेश दिया कि बाल सखा अगर गरीब है तो भी उसके उचित स्वागत सम्मान में कमी नहीं होनी चाहिए। सुदामा ने गरीब होते हुये भी कृष्ण के पास जाकर भी कुछ माँगा

नहीं, स्वयं कृष्ण ने उन्हें सब कुछ दिया। गोपियों एवं राधा के माध्यम से दुनिया को अनोखा संदेश देते हैं। वृन्दावन में इनके साथ रास एवं महारास रचाने वाला इनको छोड़कर जब द्वारिका चला जाता है तो भी राधा एवं गोपियों में उनके प्रति उत्कट प्रेम था एवं सभी गोपियाँ एवं राधा कृष्ण की दीवानी आजीवन बनी रहीं। यही है गोपियों के प्रेम की पराकाष्ठा। राम के साथ सीता का नाम आता है कारण सीता पत्नी थीं। शिव के साथ पार्वती का नाम आता है कारण पार्वती पत्नी थीं। लेकिन कृष्ण के साथ राधा का नाम आता है जबकि राधा उनकी पत्नी नहीं थी। कैसे कृष्ण की आठों पटरानियों ने इसको बर्दाश्त किया होगा और भगवान कृष्ण ने कैसे अपनी पटरानियों को समझा कर रखा होगा, यह वे ही जानें। शास्त्र कहते हैं भगवान कृष्ण पूर्ण ब्रह्म थे।

अपने शास्त्रों के अनुसार भगवान बुद्ध अब तक के अन्तिम अवतार थे। हमलोग उन्हें बुद्धावतार कहते हैं। उनके आगमन के समय ईश्वर एवं वेद के नाम पर दुराचार फैला था। आदमी आत्मा, मोक्ष, परमात्मा, पुनर्जन्म, शास्त्र, पुरोहित, देव, विधाता, बलि, स्वर्ग, नरक आदि शब्दों का गुलाम हो गया था। आदमी भूल गया था कि अहिंसा, करुणा, मैत्री भी जीवन का आवश्यक अंग है। बुद्ध ने इस धार्मिक गुलामी पर प्रहार किया और निर्वाण का स्वतंत्र मार्ग बताया। संस्कृत भाषा में शास्त्र होने के कारण आदमी शास्त्रों को नहीं समझ पाता था और पुरोहितों पर ही केवल विश्वास करना पड़ता था। बुद्ध ने आम आदमी की बोलचाल की भाषा में धर्मोपदेश दिया। बुद्ध कथन केवल शास्त्र कथन नहीं है। बुद्ध की अभिव्यक्ति उनकी अनुभूति पर आधारित है। बौद्ध विचार धारा में निर्वाण को अन्तिम शुद्धि के रूप में प्राप्त होना वर्णित किया गया है। निर्वाण अहंकार मुक्त मानव की परम सुखमय अवस्था है। बुद्ध ने दुःख का कारण तृष्णा को बताया। तृष्णा त्यागे बिना दुःख का निरोध नहीं हो सकता। बौद्ध दर्शन की विशेषता है कि वह दुःख निवारण को भगवान या तकदीर पर नहीं छोड़ता। यह आदमी के स्वयं के प्रयत्न से ही संभव है। तृष्णा दूर करने के लिए अष्टांग मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। बुद्ध का अष्टांग मार्ग है :-

१ – सम्यक् दृष्टि : नित्य, अनित्य का विवेक।

२ – सम्यक् संकल्प : एकान्त वास के प्रति रुझान, प्राणिमात्र के प्रति शुद्ध प्रेम। स्वयं को या दूसरों को त्रास न देने की प्रवृत्ति।

३ – सम्यक् वाचा : झूठ नहीं बोलना, चुगली नहीं करना, कठोर वाणीका त्याग तथा निरर्थक वाणी का त्याग।

४– सम्यक् कर्म : जीव हिंसा का त्याग, चोरी, व्यभिचार एवं विषय-वासना का त्याग।

५ - सम्यक् आजीव : जीव हिंसा का त्याग, चोरी, व्यभिचार एवं विषय-वासना का त्याग।

६ - सम्यक् व्यायाम : खराब विचार मन में न आवे इसके लिये प्रयत्न करना। ऐसा विचार आवे तो उसे मन से दूर करने की चेष्टा करना। अच्छे विचारों को मन में लाना तथा उन्हें दृढ़ करना।

७ - सम्यक् स्मृति : शरीर का उसके यथार्थ रूप में अवलोकन करना, सुख-दुःख की संवेदना का अवलोकन करना, चित्तवृत्ति का अवलोकन करना तथा सतत जागरूक रहना।

८ - सम्यक् समाधि : मन की चंचलता को दूर करके चित्त की एकाग्रता को प्राप्त करना।

बुद्ध के संदेश आज भी उतने ही प्रांसगिक हैं जितने बुद्ध के समय थे। बुद्ध के उपदेश पीड़ित तथा समस्याग्रस्त मानवता के लिये करुणा, मैत्री, शान्ति, सद्भाव एवं अहिंसा का संदेश आज भी देते हैं। बुद्ध सामाजिक विषमता के विरोधी एवं विचार स्वातंत्र्य के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अंधानुकरण की जगह स्वयं उचित अनुचित पर विचार करने की सलाह दी। बुद्ध ने कहा कि जाति के कारण कोई चांडाल या ब्राह्मण नहीं होता। आचरण ही उसे चांडाल या ब्राह्मण बनाता है। अगर कोई ईश्वर है तो अच्छे बनकर तुम उसे प्राप्त करो। अगर कोई ईश्वर नहीं है तो अच्छा बनना स्वयं उत्तम है। जो दुःख भोगता है वही उसके लिये दोषी है। बुद्ध व्यक्ति नहीं हैं वह एक सत्य की सिद्धि हैं- अपनी मुक्ति स्वयं ही निष्पन्न करो।

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने भी हृदय परिवर्तन द्वारा सत्य की स्थापना की, बुरे विचारों से मुक्ति दिलाई एवं धर्म को आचरण मे उतार कर धर्म की स्थापना की।

♦

गहना कर्मणोगतिः

कर्म की गति बड़ी गहन है। आज तक कर्म की गति को कोई व्याख्यायित नहीं कर पाया। बस, इतना ही कहते हैं– 'जो जस करहिं सो तस फल चाखा।' याने जो जैसा कर्म करेगा उसी के अनुसार फल पायेगा। यह कोई नहीं बता सकता कि किस कर्म का फल हमें कब मिलेगा, कितना मिलेगा और क्या मिलेगा। एक ही प्रकार के कर्म का फल दो व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न रूप में मिलता है। जब कर्म फल की कोई व्यवस्था और व्याख्या नहीं कर पाया, तो भगवान कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में यह कहकर पूर्ण विराम लगा दिया कि कर्म की गति बड़ी गहन है।

क्यों गहन है इसको हम जरा समझने का प्रयास करें। धर्मात्माओं को दुःख, पापियों को सुख, आलसियों को सफलता, विवेकवानों पर विपत्ति, मूर्खों के यहाँ सम्पत्ति, दंभियों को प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठों को तिरस्कार प्राप्त होने के अनेक उदाहरण इस दुनिया में देखने को मिलते हैं। कोई जन्म से ही वैभव लेकर पैदा होता है तो कोई जन्मजात विकलांग होता है। जो इन सबका कारण समझने का प्रयास करता हे, उसे असफलता ही हाथ लगती है। इन विरोधाभासों को देखकर भाग्य, ईश्वर की मर्जी, कर्म की गति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रश्न और संदेह पैदा होने लगते हैं। आज का तर्कप्रधान समाज इन प्रश्नों का समाधान चाहता है। हम कर्म के प्रकार, कर्म की गति और उसके फल पाने के सम्बन्ध में विचार करने का प्रयास करेंगे कि हम इस गंभीर समस्या का कितना उत्तर खोज पाते हैं और कितना अनुत्तरित रह जाता है। इस सम्बन्ध में यहाँ विभिन्न धर्मशास्त्रों, विद्वानों, मनीषियों के विचारों का प्रस्तुतीकरण मात्र है। मेरी कोई मौलिक खोज नहीं है। अतः मेरे विचारों से संतुष्टि न हो तो इस पर और अधिक गंभीर शास्त्र-मंथन की आवश्यकता है।

गरुड़ पुराण में वर्णन आता है कि यमलोक में चित्रगुप्त सबका लेखा-जोखा रखते हैं लेकिन प्राणिमात्र का लेखा-जोखा और वह भी पूरे जीवन भर का रखना एवं उसके अनुरूप फल देना बड़ा अटपटा सा लगता है। यह संभव प्रतीत नहीं

होता। यह भी बोधगम्य नहीं लगता कि ब्रह्मांड में कहीं पर भी स्वर्ग नरक की भौगोलिक स्थिति है। नरक स्वर्ग की कल्पना मात्र भय और लालच है। नरक जहाँ भय का प्रतीक है, वहीं स्वर्ग लालच का।

हमारे कर्म फल कहाँ अंकित होकर रहते हैं इसका उत्तर आज के विज्ञान ने देने का प्रयास किया है। आप कम्प्यूटर की छोटी सी चिप्स में कितनी मेमोरी स्टोर कर लेते हैं ठीक उसी प्रकार मानव मन की अन्तःचेतना में कर्मफल अंकित होते रहते हैं। इस अन्तःचेतना में हमारे कर्म की रेखायें बिना फल दिये मिटती नहीं। कोई यह भ्रम न पाले कि गंगा स्नान से, मूर्ति स्पर्श से, तीर्थयात्रा से हमारे पाप-पुण्य के कर्मफल कट जाते हैं। अगर हम दुःख पा रहे हैं तो निश्चय ही हमारे पाप का फल है तथा सुख पा रहे हैं तो हमारे पुण्य का फल है। चित्रगुप्त नाम से भी यह ध्वनि निकलती है कि गुप्त रूप से हमारे कर्म की रेखायें हमारे अन्तःमन में चित्रित होती रहती हैं। कर्मफल में एक बात और देखने को मिलती है कि पाप-पुण्य का फल हम अलग-अलग भोगते हैं। दोनों का समायोजन नहीं होता। यही कारण है कि पुण्य आत्माओं को भी कष्ट भोगना पड़ता है।

बाहरी दुनिया में मुलजिम को सजा दो विभाग देते हैं- एक पुलिस, दूसरा अदालत। दरअसल सजा तो अदालत ही देता है। पुलिस विभाग केवल विवेचना करता है तथा न्यायालय की मदद करता है। विभिन्न लोगों द्वारा किये गये एक ही प्रकार के कर्म का फल अलग-अलग होता है। अतः यह जानना आवश्यक है कि हमारे प्रत्येक कर्म का हेतु क्या है। एक उदाहरण से हम इसे समझने का प्रयास करें। न्यायाधीश के पास तीन खूनी पकड़ कर लाये गये। इनमें एक को बरी कर दिया, दूसरे को पाँच साल की कैद एवं तीसरे को फांसी। हत्या तीनों ने की। पहला हत्यारा मकान बनाने वाला मजूदर था। छत पर काम करते वक्त पत्थर का टुकड़ा टूट कर गिर गया और नीचे का राहगीर मर गया। जज ने देखा कि मजदूर के कारण हत्या तो हुई लेकिन उसने जानकर हत्या नहीं की। अतः न्यायालय ने उसे निर्दोष माना। दूसरा मुल्जिम एक किसान था। खेट काटते समय चोर को ऐसी लाठी मारी कि वह मर गया। अदालत ने देखा कि चोरी करने के कारण अपराध हुआ लेकिन छोटे अपराध की इतनी बड़ी सजा उचित नहीं। अतः केवल पाँच वर्ष की सजा दी गई। तीसरा मुल्जिम डाकू था। उसने ज़ान भी मारी एवं धन भी लूटा। न्यायालय ने उसे फांसी की सजा सुनाई। अतः सजा चाहे न्यायाधीश दे या हमें पाप-पुण्य भोगना पड़े, सभी के पीछे कारण एक ही है, उस कर्म का हेतु क्या है। अदालती सजा में तो गवाह के अभाव में या अन्य कारणों से अपराधी छूट सकता है एवं निरपराधी सजा पा सकता है। लेकिन अपने ही अन्तःचेतना में जिन कर्मों की रेखाएँ हमने संचित कर रखी हैं उनके कारण पाप-पुण्य झेलने में

भूल नहीं होती। पाप-पुण्य का परिणाम भावना की उदासीनता एवं प्रेम की तत्परता के अनुसार न्यूनाधिक होगा। जैसे एक भूखा व्यक्ति लाचार होकर चोरी करता है, दूसरा शराब पीने के लिये चोरी करता है तो दोनों के पाप की गहराई में कमी बेसी होगी। अतः पाप का भागी भी उसी अनुपात में होगा। अपने पाप-पुण्य का निर्माण हम स्वयं करते हैं। दूसरों को दोष या श्रेय देना अनुचित है। जैसे कभी-कभी घर में नई बहू आई और कोई कमी हो गई तो सारा उलाहना उसके मत्थे मड़ दिया जाता है कि अभागी है, कलमुंही है, डायन घर में आ गई। वहीं अगर घर में आमदनी बढ़ गई तो उसको लक्ष्मी मान लिया जाता है। सच मानिये नई बहू न डायन है, न लक्ष्मी। बहू हमारी बहू है, उसे सहर्ष स्वीकार करें। रामायण के इस सूत्र को याद रखें - 'काहु न कोउ दुख सुखकर दाता, निज-निज कर्म भोग सब भ्राता।' दूसरा कोई प्राणी या पदार्थ किसी को सुख-दुःख देने की शक्ति नहीं रखता।

कुछ लोगों की गलत मान्यताएँ एवं धारणाएँ हैं जैसे हमारे भाग्य में जितना लिखा है उतना हमें मिलेगा ही या हमारी जितनी आयु निश्चित है तो उतने तो हम जीयेंगे ही। ऐसे भाग्यवादियों को कह दिया जाय कि शुभ-अशुभ कर्म से भाग्य की रेखायें बदलने में आप सक्षम हैं तथा अपने खान-पान में संयम एवं प्रातः भ्रमण, योग अपनाने से आपकी आयु बढ़ती एवं अभक्ष्य चीजों के सेवन से आयु घटती है। सबके मूल में एक ही सूत्र काम कर रहा है- 'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।' जीवन में कर्म की प्रधानता को सर्वोपरि समझें। लोग महान होते हैं अपने विवेकपूर्ण कर्मों के करने के कारण।

हमारे शास्त्रों ने दुःख की घटनाओं का प्रकार बताया कि वे दैविक, दैहिक, भौतिक याने तीन प्रकार की होती हैं और इनका हेतु होता है हमारे संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्म। दुःख-सुख प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आते हैं। इससे सुर-नर-मुनि-दानव कोई नहीं बचता। सूरदास जी ने कह दिया 'कर्मगति टारे नाहिं टरे।' दैविक दुःख है जो मन को होते हैं जैसे चिंताएँ, आशंकायें, क्रोध, अपमान, शत्रुता, भय, शोक आदि। दैहिक दुःख शरीर के होते हैं जैसे रोग, चोट, आघात आदि से होने वाले कष्ट। भौतिक दुःख वे होते हैं जो अचानक अदृश्य प्रकार से आते हैं जैसे भूकम्प, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, महामारी, युद्ध आदि। इन्हीं तीन प्रकार के दुःखों की वेदना से मनुष्यों को तड़पता हुआ देखा जाता है। ये तीनों दुःख हमारे मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक कर्मों के फल हैं। मानसिक पापों के परिणाम से दैविक दुःख आते हैं, शारीरिक पापों के फलस्वरूप दैहिक और सामाजिक पापों के कारण भौतिक दुःख उत्पन्न होते हैं।

तीनों प्रकार के दुःखों के हेतु हमारे तीन प्रकार के कर्म हैं - संचित कर्म वे

हैं जो हम दिन भर अच्छे कर्म करते हैं। प्रारब्ध कर्म वे हैं जो हमें आकस्मिक तरीके से मिलते हैं जैसे रोग से मृत्यु, मकान गिर पड़ना, धन खो जाना, गिर पड़ने से चोट लगना आदि। क्रियमाण कर्म शारीरिक हैं जिनका फल प्रायः साथ ही साथ मिलता रहता है। जैसे शराब पिया और नशा आया। भोजन किया और पेट भरा। जिन शारीरिक कर्मों के पीछे कोई मानसिक गुत्थी नहीं होती, केवल शरीर के द्वारा शरीर के लिये किये जाते हैं वे क्रियमाण कहलाते हैं।

इसको एक उदाहरण से यों समझा जा सकता है। हमने भोजन किया, तत्काल पेट भर गया। हम पहलवान बनना चाहते हैं तो तत्काल नहीं बन सकते, वर्षों तक रियाज करेंगे तो बन पायेंगे। लेकिन जब भी बनेंगे इसी जीवन में। लेकिन हम जो दान देते हैं या सैवा या कल्याण करते हैं उनका फल मिलना आवश्यक नहीं कि इसी जन्म में मिले। सेवा कार्य के फल जन्म जन्मान्तर में मिलते हैं याने खाया तो पेट भरा, हमारा क्रियमाण कर्म हो गया। इसी जीवन में मिला वह संचित हो गया तथा आगे के जन्मों में मिला, वह प्रारब्ध हो गया।

हमें दुःखों से घबड़ाने की आवश्यकता नहीं। अगर दुःख आये हैं तो सुख आने की संभावना बढ़ गई। कारण पहले रावण आये तभी राम के आने की संभावना बढ़ी। इसी प्रकार पहले कंस आये तभी कृष्ण आये। पहले कांटे आये तभी गुलाब आये एवं पहले कीचड़ हुआ, तभी कमल आया। याने कहने का तात्पर्य कि दुःख का आना हमारे सुख के आने का संकेत है। दुःखों से परेशान होने के बजाय उन्हें सहन करें। आप यह मानकर चलें कि दुःख मेरे साहस की परीक्षा लेने आये हैं। मैं तैयार हूँ और साहस पूर्वक तुम्हें स्वीकार करने के लिये छाती खोल कर खड़ा हूँ।

संसार को भी बुरा न बतायें। यह संसार भी ईश्वर की पुण्य कृति है। सृष्टि पर दोषारोपण करना तो उसके कर्ता पर आक्षेप करना होगा। अपने अज्ञान को अपने दुःख का कारण मानें। जो स्वयं शुद्ध-बुद्ध हैं उनको सृष्टि में कहीं बुराई नहीं दिखती। अतः सृष्टि में बुराई या दोष देखना हमारा ही दृष्टिदोष है। हम काला चश्मा पहनेंगे तो दुनिया काली दिखेगी, काला चश्मा उतार कर देखें कहीं कालापन नजर नहीं आयेगा। हम अपने अन्तःकरण को पवित्र कर लें तो हमारे दुःखों की निवृत्ति हो जायगी।

हम अपनी दुनिया के स्वयं निर्माता हैं। हम प्राणवान हैं एवं संसार निष्प्राण वस्तु है। कुम्हार की मिट्टी कुछ नहीं कहती और न करती है। इसी प्रकार सुनार सोने से चाहे गले का हार बनाये या अंगूठी, यह सुनार पर निर्भर करता है। सोना कुछ नहीं कहता। ठीक उसी प्रकार हम प्राणवान हैं एवं सृष्टि निष्प्राण है। इसे हम जैसा बनाना चाहते हैं बन जायगी। हम बगीचे से गुलाब के फूल तोड़ते हैं तो

कांटों से अपने को बचाकर तोड़ते हैं। ठीक उसी प्रकार दुनिया में सद्गुण दुर्गुण दोनों हैं। यह दुनिया सत, रज, तम का सम्मिश्रण है। यह हमारे पर निर्भर करता है कि हम कितनी खूबसूरती से बिना कांटों में उलझे गुलाबों को तोड़ लेते हैं। यह ध्यान रखें कि कोई स्त्री हमें कामी नहीं बना सकती जब तक हम स्वयं कामी न हों। काम का अवसर आने पर भी काम भोग को अस्वीकार करते देखा गया है। अर्जुन ने उर्वशी से भोग करना अस्वीकार कर दिया। हमारे चन्द्रशेखर आजाद ने भी एक नारी की याचना को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि तू मेरे जैसा पुत्र चाहती है तो मुझे ही अपना पुत्र मान ले। कहने का तात्पर्य कि हर व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनिया है। हम समाज में अच्छे-बुरे व्यक्तियों को देखते हैं। इसी समाज में जब अच्छा होकर दूसरा रह सकता है तो हम भी अच्छे होकर क्यों नहीं रह सकते? अच्छे बनने के लिये हमें अच्छा आचरण स्वीकार करना पड़ेगा।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि हर व्यक्ति जो मौज मार रहा है उसे पूर्व जन्म का धर्मात्मा और कठिनाई में पड़े हर व्यक्ति को पूर्व जन्म का पापी मान लेना भी उचित नहीं है। इस भ्रम के आधार पर आत्मग्लानि से बचें। कर्म की गति बड़ी गहन है उसे हम नहीं जानते। केवल परमात्मा ही जानता है। हम यह मानकर चलें कि हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं, लेकिन फल पाने में परतंत्र हैं। याने प्रभु आधीन हैं। मनुष्य की जिम्मेदारी अपने कर्तव्य कर्म का पालन करने की है।

♦

गीता का कर्मयोग

गीता के सभी अठारहों अध्याय 'योग' हैं। इस ग्रंथ में कोई ज्ञानयोग देखता है तो कोई भक्ति योग। कोई सांख्य योग देखता है तो कोई कर्म-संन्यास योग। परम पूज्य मोरारी बापू ने भी गीता को योग शास्त्र कहा और रामायण को प्रयोग शास्त्र। गीता के योग के सूत्रों का प्रयोग देखना हो तो रामायण में मिलेगा। लेकिन कई विद्वानों की दृष्टि में तथा मेरी दृष्टि में भी गीता का प्रतिपाद्य विषय 'कर्मयोग' है न कि ज्ञान-भक्ति-सांख्य योग आदि। कारण अर्जुन को गीता का उपदेश देकर भगवान कृष्ण ने उसे भयंकर युद्ध रूपी कर्तव्य कर्म करने की प्रेरणा दी और गीता के अन्त में भगवान कृष्ण को अर्जुन ने कह दिया कि-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। (१८ . ७३)

अर्जुन क्षत्रिय होकर मोहग्रस्त हो गया और अपने गाण्डीव धनुष को रख दिया तथा 'युद्ध नहीं करूँगा' इसके लिये बड़े-बड़े तर्क देने लग गया। भगवान कृष्ण ने उन सभी तर्कों का सटीक उत्तर देकर तथा स्वधर्म का बोध कराकर उसे युद्ध करने याने कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त करने का मूलमंत्र दे दिया जिसके कारण अर्जुन युद्ध में प्रवृत्त हुआ और विजयश्री प्राप्त किया। हम भी अपने जीवन में अर्जुन की तरह कई-कई बार किंकर्तव्य विमूढ़ होते हैं और हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिए, इसका निश्चय नहीं कर पाते तो महात्मा गांधी की तरह जायें गीता माता की शरण में, दुविधा नष्ट हो जाएगी और निश्चयात्मक बुद्धि मिल जाएगी। जब दुविधा समाप्त हुई और मन में निश्चय हुआ तो हम स्वभावतः कर्तव्य कर्म मे प्रवृत्त हो जायेंगे। बस, यही गीता का मूल प्रतिपाद्य विषय है।

गीता का जोर सतत कर्म पर है। कृष्ण जनक का उदाहरण देते हैं। जनक को भी कर्म से पूर्णता मिली। फिर ज्ञानी के लिये वह कहते हैं कि वह कर्म में आसक्त अज्ञानी को विचलित न करे कारण अज्ञानी आसक्त होकर कर्म करते हैं। ज्ञानी अनासक्त होकर कर्म करते हैं। अनासक्त होकर कार्य करने वालों के लिये भगवान

कृष्ण ने कह दिया– 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः स्तत्तदेवेतरोजनः' याने श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं बाकी के लोग वैसा ही आचरण करने लगते हैं। प्रकृति के सभी सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, निरन्तर समभाव से चलायमान हैं। उनका समता का भाव ही अनासक्ति का द्योतक है। सम दर्शन करने वाले को न तो दुःख में उद्विग्नता होती है और न सुख में स्पृहा (प्रीति)।

गीता के वक्ता श्रीकृष्ण हैं और जिज्ञासु हैं अर्जुन। श्रीकृष्ण एकतरफा उपदेशक नहीं हैं। अर्जुन प्रश्न-प्रतिप्रश्न करते हैं, कृष्ण समाधान देते हैं। गीता कहती है– 'योगः कर्मसु कौशलम्।' याने कुशलतापूर्वक किया गया कर्म ही योग है। गीता में योग को तप, ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ माना है। योग क्या है? 'आसक्ति त्याग कर समुचित कर्म करना ही योग है।' 'हे अर्जुन, तेरा कर्म करने में अधिकार है, फल तो प्रकृति की सारी शक्तियों के योग से आता है। अतः तू फल की आशा छोड़, कर्म करने में प्रवृत्त हो जाओ।'

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश ऐसी विषम परिस्थिति में दिया था जब अर्जुन के लिये यह निर्णय कर पाना कठिन था कि कर्तव्य क्या है? कर्तव्य यदि युद्ध है तो विनाशकारी है। कर्तव्य यदि पलायन है तो कायरता है एवं सामाजिक हितों के विरुद्ध है। इस ऊहापोह रूपी अंधकार में डूबते अर्जुन के माध्यम से मानव मात्र को भगवान ने गीता के रूप में कर्तव्य की जीवन के उद्देश्य एवं जीने की कला के रूप में सुन्दर एवं अद्‌भुत व्याख्या प्रस्तुत की एवं इसे कर्मयोग नाम दिया। कारण 'गीता' हिन्दुओं का धर्मग्रंथ नहीं है। इस ग्रंथ में कही हिन्दू शब्द आया भी नहीं। यह तो मानव मात्र के कल्याण का ग्रंथ है चाहे वह किसी देश, सम्प्रदाय, काल, जाति का हो। यह ग्रंथ सार्वकालिक, सार्वजनीन एवं सार्वदेशिक है। यह ग्रंथ हमें जीवन जीने की कला देता है तथा हमारे जीवन को मूल्यवान बनाता है।

मानव धर्म का सर्वोत्कृष्ट रूप कर्तव्य कर्म गीता का प्रतिपाद्य विषय है। गीता में भगवत् प्राप्ति के अन्य सभी साधनों से कर्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है। कहा गया है कि योगी तपस्वी से श्रेष्ठ है, ज्ञानी से श्रेष्ठ है, आसक्तिपूर्वक निरन्तर कर्म में लगे रहने वाले से श्रेष्ठ है, अतः अर्जुन तू योगी बन। 'तस्मात् योगी भवार्जुन।' कर्तव्य के महत्व का प्रतिपादन करने हेतु गीता में यहाँ तक कह दिया गया कि केवल अग्नि में पकाये भोजन का त्याग करने वाला या केवल लौकिक व्यवहार का त्याग कर देने वाला संन्यासी या योगी नहीं है बल्कि जो कर्मफल में अनासक्त हुआ निरंतर कर्तव्य कर्म का पालन कर रहा है वही संन्यासी या योगी कहलाने योग्य है। समाज में परस्पर निर्भरता एक आवश्यक एवं उपयोगी तत्व है। विकसित एवं साधन सम्पन्न जीवन व्यवस्था का मूल परस्पर निर्भरता ही है। इस

प्रक्रिया का आधारभूत तत्व कर्तव्य पालन ही है। किसी भी स्तर पर कर्तव्य की उपेक्षा होगी तो सामाजिक व्यवस्था विघटित होने लगेगी। इसीलिये गीता में कहा गया है कि अपने कर्तव्य कर्म के पालन से मनुष्य परमतत्व को प्राप्त कर सकता है। "स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः" ऐसे कर्तव्यनिष्ठ लोगों की भगवान ने अपने प्रियजनों में गिनती की है।

सफलता का पहला सिद्धान्त है कर्म। कर्म की महिमा को ऋषियों-मुनियों, संत महात्माओं, और विचारकों ने अनेक प्रकार से समझाया है। इनका एक ही तात्पर्य है कि प्रकृति का मुख्य कारक कर्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। नदी का प्रवाह निरन्तर कर्म करने का संदेश देता है। शरीर में जो तत्व विद्यमान हैं उन्हें प्रवाहमान होना चाहिये। जीवन के लिये कर्म की अवधारणा अमृत के समान है। अकर्म पृथ्वी पर मृत्यु का पर्याय है। स्थिर जल तालाब में संचित होकर दुर्गन्धयुक्त अपेय हो जाता है जबकि प्रवाह जल को स्वच्छ पीने योग्य बनाता है। आलस्य और प्रमाद में समय गंवाना वस्तुतः तालाब में स्थिर पानी की तरह जीवन को उपेक्षित करने जैसा है। सार्थक जीवन का मूलमंत्र है क्रियाशील जीवन।

अकर्मण्यता ने जीवन को सर्वाधिक क्षति पहुँचाई है। कल्पना को साकार करने के लिये कर्म का आश्रय अनिवार्य है। जीवन में प्रत्येक सफलता के पीछे कर्म का निश्चित योगदान पाया जाता है। इसीलिये कहा गया है- 'सकल पदारथ एहि जग माहिं, करमहीन नर पावत नाहिं।' कर्मशीलता एवं कर्महीनता के मध्य यह जीवन है। कर्मशीलता हमारे जीवन को मूल्यवान एवं उपयोगी बनाती है, कर्महीनता हमें विनाश के गर्त की ओर ले जाती है।

हमारे शास्त्रों में उल्लेख मिलेगा कि कर्तव्य कर्म का पालन ही धर्मधारण है। केवल भगवान की पूजा करें लेकिन अपने कर्तव्य कर्म का पालन न करें तो ऐसी पूजा को भगवान भी स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत कर्तव्य कर्म या पालन करें भले ही पूजा न करें तो भगवान भी प्रसन्न होंगे। इसे इसी प्रकार से यों समझा जा सकता है। किसी प्यासे को पानी पिलाना ही भगवान शंकर का जलाभिषेक है। इसी प्रकार कल्याण के कार्य में प्रवृत्त रहना ही भगवान शंकर की अप्रत्यक्ष पूजा है। गीता में भगवान ने यह स्पष्ट किया है कि तत्वज्ञ, भगवत्प्राप्त एवं सिद्ध पुरुषों को भी अपने स्वाभाविक कर्तव्य कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि यदि वे कर्तव्य कर्मों का त्याग करते हैं तो अन्य लोग भी उनका अनुसरण करेंगे एवं साधना से विचलित हो जायेंगे। साधना करने वाला भी योगी है एवं साध्य को प्राप्त करने वाला भी योगी है। वस्तुतः साध्य की प्राप्ति होने पर साधन और साध्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता। सच मानें योगी को कर्तव्य और

ईश्वर में कोई भेद नहीं दिखाई देता। तभी तो भक्त रैदास ने मोची का काम करके भगवत् प्राप्ति की एवं सदना कसाई भी अपने कार्य को ईमानदारी से करते हुये ईश्वरमय हो गया। इसलिये भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं, "हे अर्जुन मुझे इन तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है तो भी मैं सदैव कर्म में लगा रहता हूँ।"

परमात्मा की आराधना की विविध पद्धतियों में निष्काम कर्म श्रेष्ठ है। गीता में कर्म को यज्ञ की संज्ञा दी गई है। गीता में उल्लेख है कि दान से बचे हुये अन्न को खाने वाले पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर के पोषण हेतु ही अन्न पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं। तात्पर्य यह है कि अपने से सम्बन्धित प्राणियों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करने के उपरान्त ही स्वयं उपभोग करना उचित है। इस प्रकार का आचरण यज्ञ कहलाता है। कर्म ही यज्ञ है 'यज्ञः कर्मसमुद्भवः'। स्वयं भगवान भी कर्मरूप यज्ञ में अधिष्ठित हैं।

गीता मनुष्य मात्र को कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त करने वाला ग्रंथ है। स्वामी विवेकानन्द जी अमेरिका में अपने प्रवचन में गीता के कर्मयोग का जब प्रतिपादन कर रहे थे तो एक श्रोता स्वामी जी से पूछ बैठा, 'जिस देश में 'गीता' हो वह आज आठ सौ वर्षों से गुलामी क्यों झेल रहा है?' जवाब में स्वामीजी महाराज ने कहा, 'हमने गीता को माना लेकिन गीता के सूत्रों को धारण नहीं किया। लाभ तो धारण करने से होगा। यही कारण है हमारी गुलामी का।' गीता का कर्मयोग अपनाने से जीवन उपयोगी होगा न कि केवल अध्ययन, भाषण, उपदेश या ग्रंथ की महत्ता बताने से। यही कारण है कि हमारा धर्म धारण करने पर ही धर्म माना गया।

गीता का प्रतिपाद्य विषय कर्मयोग है। यह मनुष्य मात्र के जीवन को उपयोगी बनाता है। इसलिये हमारे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश महोदय ने कहा कि गीता को राष्ट्रीय धर्मग्रंथ घोषित किया जाना चाहिए। ठीक उसी तरह जैसे हमारा राष्ट्र-गान है, राष्ट्रीय पक्षी मोर है एवं राष्ट्रीय पशु 'गाय' है। ऐसा हमारे देश के राजनेता कर सके तो निश्चित ही गीता का महत्व बढ़ेगा। देशवासियों का ही नहीं, विश्व के लोगों का ध्यान गीता की ओर आकृष्ट होगा एवं यह ग्रंथ मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी साबित होगा। गीता का उपदेश उस समय भी उपयोगी था जब रणांगन में कहा गया, आज भी उपयोगी है एवं अनन्त काल तक उपयोगी रहेगा। यह अमर ग्रंथ है। इसलिये पूज्य श्री मोरारी बापू ने कहा गीता पुस्तक नहीं है यह हमारे देश का मस्तक है।

♦

योग अपनाइये - रोग भगाइये

हमारे यहाँ स्वस्थ व्यक्ति वही है जो तन से नीरोग हो एवं मन से निर्मल हो। तन की बीमारियाँ तो हम जानते हैं लेकिन मन की बीमारियाँ हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर आदि। योग में ही शक्ति है जो हमें तन से नीरोग एवं मन से निर्मल कर दे। भगवान भी अपने मिलने की विधि बताते हैं और कहते हैं, 'निर्मल मन जन सो मोहिं पावा मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।' योग कहते हैं जोड़ को। दो अपूर्ण चीजों का मिलन जब उनको पूर्णता प्रदान कर दे तो योग सिद्ध हो जाता है। जैसे आँख हो लेकिन प्रकाश न हो तो हम देख नहीं सकते। इसी प्रकार प्रकाश हो और आँख न हो तो भी हम नहीं देख सकते। इस प्रकार आँख एवं प्रकाश के मिलन ने ही दृष्टि को पूर्णता प्रदान की, वरना दोनों अधूरे हैं। यहाँ योग का अभिप्राय है क्रिया के साथ श्वासों का संचालन। क्रिया के साथ मन केन्द्रित हो जाय या स्थिर हो जाय तो यह महायोग है और यदि आत्मा के साथ परमात्मा का मिलन हो जाय तो यह परमयोग हो जायगा। योग प्राप्ति के दो ही साधन हमारे शास्त्रों ने बताये – अभ्यास और वैराग्य। अभ्यास याने नियमित अभ्यास। वैराग्य का अर्थ बताया विषयों से अनासक्ति ही वैराग्य है। साधारण रूप में वैराग्य का अर्थ है जो वस्तु तन–मन के लिये आवश्यक नहीं है उसका सेवन नहीं करना। जैसे पान, पान मसाला, बीड़ी, सिगरेट, शराब, खैनी, तम्बाकू आदि शरीर के लिये अनावश्यक वस्तुओं का सेवन नहीं करना। जैसे अगर हमारा शरीर दो रोटी से जीवित रहता है तो तीन रोटी का भोजन नहीं करें। तीसरा वैराग्य का अर्थ है संयमित एवं नियंत्रित भोग। अनियंत्रित एवं असंयमित भोग हमें वैराग्य वृत्ति से विमुख करता है। अतः योग की साधना के लिये अभ्यास में निरन्तरता होनी चाहिये एवं वैराग्य वृत्ति होनी चाहिए।

स्वामी रामदेव ने हमारी प्राचीन योग विद्या को ऐसा पुनर्जीवित किया कि इसकी मांग सारे देश में ही नहीं, विदेशों तक जा पहुँची। स्वामी जी ने मानव मात्र को आश्वस्त कर दिया कि 'योग अपनाइये – रोग भागइये'। यह बिना पैसे की दवा है जो आपको केवल नीरोग ही नहीं करता, आपको स्वस्थ भी करता है।

जटिल, असाध्य समझी जाने वाली बीमारियों का इलाज भी योग विद्या में है। कैंसर, डायबिटीज जैसी बीमारियों से ग्रस्त रोगियों को तो योग ने ठीक किया ही है। एड्स जैसी प्राणघातक बीमारी से भी छुटकारा पाने के लिए प्रयोग चल रहे हैं और स्वामी रामदेव जी ने विश्वास व्यक्त किया है कि शीघ्र ही इसका भी इलाज संभव हो सकेगा। योग का प्रभाव है शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास करना। हमारे ऋषि-मुनि नीरोग रहते थे एवं दीर्घ जीवी होते थे केवल योग के बल पर। आप बस एक बात जान लें, योग को जानने एवं मानने से भला होने वाला नहीं है। इसको धारण करना पड़ेगा और इसका नियमित अभ्यास आवश्यक है। स्वामी रामदेव स्वयं रोगग्रस्त हो गये थे लेकिन योग विद्या से अपनी बीमारी उन्होंने दूर कर ली और अब उनका संकल्प है कि इस विद्या को अपना कर मानव मात्र रोग मुक्त हो जाए। स्वामी जी बाल ब्रह्मचारी हैं। रोग मुक्त होने के लिये सहायक औषधि के रूप में आयुर्वेदिक औषधियों का भी सेवन करने की सलाह देते हैं। स्वामी जी का मानना है कि योग ऋषि क्रान्ति है एवं आयुर्वेद कृषि क्रान्ति है। आयुर्वेदिक औषधियों में ही वह शक्ति है जो आपको बिना विपरीत प्रभाव (साइड इफेक्ट) के नीरोग कर दे।

योगशास्त्र के प्रणेता महर्षि महर्षि पतंजलि हैं। उनका पहला सूत्र है 'योगः चित्त वृत्ति निरोधः' याने चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। हमारे स्वामी रामदेव जी आधुनिक पतंजलि के रूप में मान्यता प्राप्त कर इस सोयी हुई विद्या को पुनर्जागृत कर रहे हैं। उन्हें तमाम विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों से उनको लोहा लेना पड़ रहा है। सम्पूर्ण राष्ट्र आज स्वामी जी के साथ खड़ा है। हमारे राजनेताओं को भी स्वामी जी के योगदान का महत्व समझ में आ रहा है। अतः कई प्रदेशों ने तो उनको अपना ब्राण्ड एम्बेसेडर बना रखा है। स्वामी जी का आकर्षक व्यक्तित्व है, मनमोहक हंसी है एवं सम्मोहक वाणी है। उनके एक-एक शिविर में दस-दस हजार की संख्या में लोग योगाभ्यास करने आते हैं और योगाभ्यास करके स्वास्थ्य लाभ करते हैं।

स्वामी रामदेव ने योग के प्रति इतनी चेतना जागृत कर दी कि हर घर में स्त्री-पुरुष योगाभ्यास करने लगे। सुबह शाम पार्कों में, अपने घर के बाहर बरामदे पर नाखून रगड़ते, कपालभाति, अग्निसार, अनुलोम, विलोम करते हुए लोग मिल जायेंगे। स्वामी जी ११० करोड़ की लागत से पातंजल योगपीठ की स्थापना कर रहे हैं। इस केन्द्र में योग एवं आयुर्वेद के संयोग से इलाज तो होगा ही, इन विषयों पर आधुनिक पद्धति से शोध एवं अनुसंधान भी होगा ताकि दुनिया को योग एवं आयुर्वेद के लाभ से आश्वस्त कर सकें।

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में आसन को 'स्थिरं सुखमासनम्' अर्थात् जो स्थिर सुखदायी हो, शरीर की वह स्थिति आसन है। अपने अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार को बहिरंग तथा धारणा, ध्यान, समाधि को अन्तरंग योग कहा गया है। योगवाशिष्ठ के अनुसार मन को शान्त करने का उपाय योग है। योगासनों को नियमित करने वाला व्यक्ति कभी रोगी एवं दु:खी नहीं हो सकता।

स्वामी रामदेव ने कहा कि अंग्रेजी दवाओं से रोग दबाये जा सकते हैं, पर समाप्त नहीं किये जा सकते। इसके विपरीत योग, प्राणायाम एवं आयुर्वेदिक औषधियों के जरिये कैंसर एवं डायबिटीज जैसे रोगों को भी जड़ से समाप्त किया जा सकता है। तनाव एवं नकारात्मक सोच से भी बचने के लिये योग, प्राणायाम, आसन आवश्यक है। इस विधि को अपनाने से गरीब-अमीर सभी स्वस्थ एवं प्रसन्न रह सकते हैं। इस विद्या का देश, काल, सम्प्रदाय से कुछ लेना-देना नहीं। चाहे किसी देश का प्राणी हो, भूत, वर्तमान एवं भविष्य कालखंड का हो, चाहे स्त्री हो या पुरुष, योग विद्या तो मनुष्य मात्र के लिये सर्वथा उपयोगी है। आपका स्वस्थ शरीर आपकी आत्मा का भवन है एवं बीमार शरीर आपकी आत्मा का कारागार है। आज के दूषित वातावरण, मिलावटी खाद्य पदार्थ, अटपटी जीवन शैली के दौर में योग में ही शक्ति है जो आपके जीवन को सहज बना सकती है। योग अपनाने से आवेशों, आवेगों और आकांक्षाओं पर नियंत्रण भी संभव है। योग कहता है कि प्रत्येक रोग की जड़ हमारे मन में रहती है। मन को मजबूत बनाने का एकमात्र साधन योगाभ्यास है। अगर मन सध गया तो निश्चित है कि आप व्याधिमुक्त हो जायेंगे। योगासनों से व्यक्ति फुर्तीला बना रहता है तथा काम करने में थकान का अनुभव कम करेगा। योगासन करते समय अपने ध्यान को उस अंग पर लगायें जहाँ बल पड़ रहा है। एक घंटे का नियमित योगाभ्यास आपको स्फूर्त रखेगा। योगाभ्यास समाप्ति के आधे घंटे तक कुछ भी खाना नहीं चाहिये। जीवन जीने की कला के धर्म गुरु श्री रविशंकर ने कहा कि योग, प्राणायाम एवं आसन अपनाने से व्यक्ति नशे की आदत से छुटकारा पा सकता है। उन्होंने जीवन को स्वस्थ एवं प्रसन्न रखने के लिये योग अपनाने की सलाह दी है। उन्होंने यह भी कहा कि विश्व के अन्य देश हमारे देश से योग की शिक्षा ले सकते हैं।

स्वामी रामदेव कहते हैं कि योग काई पूजा पाठ नहीं, विज्ञान है। योग करना सबसे सस्ता और सबसे सरल है। हर व्यक्ति को योग करना चाहिये। इससे न केवल जटिल रोगों से मुक्ति मिलती है, बल्कि मनुष्य स्वस्थ एवं स्वच्छ भी रहता है। योग सम्पूर्ण समस्याओं का अचूक समाधान भी है। उन्होंने शिक्षा के साथ

'यौन शिक्षा' देने के बजाय *'योग शिक्षा'* देने पर बल दिया है। उन्होंने कहा कि मौत का पर्याय बन चुकी बीमारी भी अब योग से दूर हो सकती है। उनके शिविरों में अब तक एक करोड़ से अधिक लोग भाग ले चुके हैं लेकिन टेलीविजन के माध्यम से तो करोड़ों-करोड़ों लोग लाभान्वित हो रहे हैं।

योग की महत्ता पुनर्स्थापित करने में स्वामी रामदेव का योगदान निर्विवाद सफल है। गत रामनवमी के दिन उनकी विशाल योजना के प्रथम चरण 'पतंजलि योग पीठ' का उद्घाटन हुआ और उसमें धर्माचार्यों एवं सभी राजनीतिक पार्टियों के विशिष्ट लोगों ने भाग लिया। स्वामी रामदेव के योगदान से सभी आश्वस्त हैं। लोगों को विश्वास हो गया है कि अगर स्वस्थ रहना है तो आज से ही योग अपनाइये – रोग भगाइये की सच्चाई स्वीकार करनी होगी।

♦

महान् कार्य सभी उम्र में संभव है

हमारा जीवन कुछ करने के लिये हैं, केवल मरने के लिए नहीं है। अक्सर यह कहते हुए सुना गया है कि इतनी छोटी या इतनी बड़ी उम्र में यह काम करना कैसे संभव है। आदमी संकल्प कर ले तो सभी उम्र में सभी काम संभव है। एक बार महान नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण जी मिश्र ने एक बड़े महत्व की बात कही कि आदमी में जब तक संतान उत्पन्न करने की क्षमता है, तभी तक उसमें सृजन की क्षमता है। श्री मिश्र जी के इस कथन का थोड़ा विश्लेषण करना चाहूंगा। आदमी की संतान उत्पन्न करने की क्षमता लगभग १५-१६ वर्ष से प्रारम्भ हो जाती है लेकिन वृद्धावस्था में किस उम्र तक संतान उत्पन्न कर सकता है, इसकी कोई अधिकतम उम्र नहीं है। यह उसके स्वास्थ्य, खान-पान, आचार-विचार आदि पर निर्भर करता है। कारण अस्सी-नब्बे वर्ष की उम्र में भी संतान उत्पन्न करने की क्षमता देखी गई है। हमारे देश में तो साठ वर्ष की उम्र के बाद कोई पुरुष दूसरा विवाह कर ले तो वह चर्चा का विषय हो जाता है। समाज उसे एक अजीब उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता है। जैसे उसने कोई बड़ा अपराध कर लिया हो। बढ़ी उम्र में विवाह केवल काम-तृप्ति के लिये नहीं किया जाता, एक सहधर्मिणी चाहिये ताकि अपने मन की बात कह सकें। समय पर भोजन मिल जाय तथा बीमार पड़ने पर सेवा हो सके। विदेशों में वृद्धावस्था में विवाह करना याने सौ वर्ष की उम्र तक विवाह करने पर भी व्यक्ति चर्चित नहीं होता और न समाज उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। इस प्रकरण से यह कहना चाहता हूं कि पुरुष की संतान उत्पन्न करने की क्षमता पूरी उम्र बनी रहती है। याने उसमें सृजन शक्ति कभी मरती नहीं है। हां, महिलाओं के सम्बन्ध में यह सही नहीं है। महिलाओं का मासिक धर्म ११-१२ वर्ष की उम्र से प्रारम्भ हो जाता है जो आगे ४७-४८ वर्ष की उम्र तक चलता है। याने महिलायें ४८ वर्ष की उम्र तक ही संतान पैदा कर सकती हैं। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि महिलायें ४८ वर्ष की उम्र के बाद भी नया सृजन कर सकती हैं भले ही उसमें संतान सृजन की क्षमता न रह जाय। अतः श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र जी का कथन आंशिक रूप से सत्य माना जा सकता है।

हां, यह बात अवश्य सत्य है कि प्राय: महान कार्य जवानी की उम्र में ही हुये हैं लेकिन केवल जवानी में ही होना संभव है, यह सत्य नहीं है। मैं नीचे कुछ महान लोगों के नाम एवं महान कार्य का उल्लेख करूँगा जिन्होंने अल्पायु पाई फिर भी महान कार्य करना संभव हो सका तथा जिन्होंने वृद्धावस्था में जाकर महान कार्य किये। मेरी अल्पायु से तात्पर्य है चालीस वर्ष से नीचे की आयु एवं वृद्धावस्था से तात्पर्य है साठ वर्ष की अधिक की आयु।

आदि गुरु शंकराचार्य ने मात्र ३२ वर्ष की आयु पाई। क्राइस्ट ने मात्र ३३ वर्ष की, स्वामी विवेकानन्द ने ३९ वर्ष की, स्वामी रामतीर्थ ३३ वर्ष, रामानुजन ने ३३ वर्ष की, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ३४ वर्ष की। वहीं तुलसीदास ने आयु तो पाई १२५ वर्ष की लेकिन महान कार्य का प्रारम्भ किया ७८ वर्ष की उम्र में। वहीं प्रभुपाद स्वामी ने भी उम्र तो पाई ८१ वर्ष की लेकिन महान कार्य का शुभारम्भ किया ६८ वर्ष की उम्र में। नीचे अल्पायु में एवं दीर्घायु में जो महान कार्य इन लोगों ने किये हैं, इनका उल्लेख करना चाहूंगा।

आदि गुरु शंकराचार्य :– इनका जन्म दक्षिण भारत में बारहवीं शताब्दी में हुआ। इनके बारे में पंडित नेहरू ने लिखा– 'दक्षिण भारत मे एक अद्‌भुत आदमी ने जन्म लिया। वह एक अपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह हिन्दू धर्म के या हिन्दू धर्म के एक विशेष बौद्धिक रूप के, जिसे शैव मत कहते हैं, पुनरुद्धार में लग गया। वह अपनी बुद्धि एवं तर्क के बल पर बौद्ध धर्म के विरुद्ध लड़ा। बौद्ध संघ की तरह उसने भी संन्यासियों का संघ बनाया, जिसमें सब जाति के लोग शामिल हो सकते थे। उसने संन्यासियों के चार केन्द्र भारत के चारों कोनों (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) में स्थापित किये। उसने सारे भारत की पैदल यात्रा की एवं जहां भी गया, सफल हुआ। वह एक विजेता के रूप में बनारस भी आया। अंत में केदारनाथ गया जहां उनका ३२ वर्ष की में देहावसान हो गया। शंकर भाष्यों, ग्रंथों और तर्कों से सारे देश में एक बौद्धिक हलचल सी मच गई। शंकर सिर्फ ब्राह्मण का ही महान नेता नहीं बना बल्कि मालूम होता है उसने जन साधारण के चित्त को भी आकर्षित कर लिया था। यह एक असाधारण बात मालूम होती है कि कोई आदमी सिर्फ अपनी बुद्धि के बल पर एक महान नेता बन जाय और फिर करोड़ों लोगों पर तथा इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ दे। शंकर के छोटे से किन्तु कठोर परिश्रम के जीवन से दूसरी बात यह साबित होती है कि उसने सारे भारत के चारों कोनों में चार पीठों की स्थापना से सांस्कृतिक एकता स्थापित की। उसके आंदोलन के थोड़े ही समय में महान सफलता यह भी जाहिर करती है कि बौद्धिक और सांस्कृतिक धारायें कितनी तेजी से देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच सकती हैं। यह उस समय संभव हुआ जब यात्रा के लिये न मोटर

गाड़ियां थी, न रेल थी और न हवाई जवाज थे। अपनी बात को बड़े समूह में कहने के लिये लाउड-स्पीकर भी नहीं थे और न ग्रंथों को छापने के लिये कम्प्यूटर एवं प्रेस थे। हम उनकी अल्पायु में महान कार्य की केवल कल्पना कर सकते हैं। यों देखने में उनके कार्य असंभव प्रतीत होते हैं।

शंकर ने मात्र १६ वर्ष की आयु में सबसे कठिन ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' की व्याख्या लिखनी प्रारम्भ कर दी थी। भारतीय धर्म को आत्म निर्भर बनाने के लिये आचार्य शंकर ने स्तोत्र, प्रकरण और तंत्र आदि विधाओं में विविध ग्रंथों की रचना की। उनके प्रतिपादनों में भारतीय धर्म सम्प्रदाय का जो रूप उजागर हुआ है उसे अद्वैत वेदान्त कहते हैं। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन मानते थे कि अद्वैत वेदान्त दर्शन शास्त्र का शिखर है। बुद्धि की कोई भी क्षमता इससे आगे नहीं जा सकती। अपने महान कार्य को संपादन करने के लिये आचार्य शंकर दिग्विजय यात्रा पर निकल पड़े। हिमालय से कन्याकुमारी और कश्मीर से असम के कामरूप कामाख्या तक पैदल भ्रमण किया। इन महान यात्राओं में उन्होंने सभी समकालीन प्रकांड विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। ब्रह्मसूत्र, ग्यारह प्रमुख उपनिषदों और भगवद्गीता पर भाष्य लिखकर आचार्य शंकर अमर हो गये। उनके प्रख्यात ग्रंथ विवेक चूड़ामणि तथा अपरोक्षानुभूति से उनके अगाध ज्ञान एवं अपरिमित कल्पना शक्ति का पता चलता है।

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है- 'आचार्य शंकर एक महान तत्वज्ञानी थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि बौद्ध धर्म का सारतत्व वेदान्त दर्शन से भिन्न नहीं है। उनके अनुयायी उन्हें शिव का अवतार मानते हैं। आचार्य शंकर ने जितने महान कार्य इस अल्पायु में किये, वे अविश्वसनीय हैं किन्तु सत्य हैं।

ईसामसीह :- हिन्दी में ईसामसीह उन्हें कहते हैं जिन्हें हम अंग्रेजी में क्राइस्ट कहते हैं। क्राइस्ट ही क्रिश्चियन धर्म के प्रवर्तक हैं। इस धर्म को मानने वालों की संख्या दुनिया में सर्वाधिक है। क्राइस्ट के उपदेश उनके 'बाइबिल' नाम के धर्मग्रंथ में संग्रहीत हैं। आज से दो हजार वर्ष पूर्व क्राइस्ट का जन्म पच्चीस दिसम्बर को उनकी माता मरियम की कोख से हुआ। प्रभु प्रेरणा से होने के कारण ईश पुत्र कहलाये। इनके पिता पेशे से बढ़ई थे। ईसामसीह ने तीस वर्ष तक का जीवन अपने माता-पिता के साथ बिताया और उसके बाद निकल पड़े घर से। तीन वर्ष तक मानव के कल्याण हेतु उपदेश एवं आदेश दिये। तैतींस वर्ष की आयु तक वे मानव कल्याण का संदेश देते, समाज में व्याप्त बुराइयों का विरोध करते रहे तथा धर्म के अनुपालन में जो विसंगतियां थीं, उनके विरुद्ध आवाज उठाते रहे। ईसामसीह ने कहा- 'पैसे वालों का स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता। सूप के छेद से ऊंट भले ही निकल जाय, धनवान व्यक्ति प्रभु के राज्य मे

नहीं पहुँच सकता। अपनी सारी दौलत गरीबों को बांटकर, अकिंचन बनकर मेरे साथ आओ।" ऐसी बातें सुनकर पैसे वाले लोग ईसा के विरोधी हो गये। पुरानी गलत प्रथाओं का भी ईसा ने विरोध किया। सत्य के लिये वे किसी भी कष्ट को सहने को तैयार थे। नतीजा हुआ कि दिन–प्रतिदिन उनका विरोध बढ़ने लगा और इन विरोधियों ने मिलकर उनको शूली पर लटका दिया। जिस दिन शूली पर लटकाया गया उसे पुण्य शुक्रवार या 'गुड फ्राइडे' कहा जाता है। यह महान आत्मा मात्र तैतींस वर्ष की आयु पाकर अमर हो गई। आज इनके अनुयायियों की संख्या करोड़ों में है जो सारी दुनिया में फैली है।

ईसा को शूली पर चढ़ने में कितना कष्ट हुआ होगा लेकिन इस महान आत्मा के मन में प्रेम, आत्मीयता और करुणा की भावना भरी है। अंतिम समय में उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की– 'हे पिता, इन्हें क्षमा करें क्योंकि ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।'

ईसा मानवता के आदर्श प्रचारक, सच्चे बंधु और मार्गदर्शक थे। वे दुर्लभ गुणों के भंडार थे। उनमें असीम धैर्य एवं विनम्रतापूर्वक कष्टों को सहन करने की अपार क्षमता थी। उनकी करुणा ने दरिद्रों के घरों को पवित्र कर दिया। गिरे एवं पददलित लोगों के प्रति उनके प्रेम ने सारे संसार को परोपकार एवं सहानुभूति ने अनगिनत कार्यों से भर दिया। अकथनीय यातनाओं के मध्य उनका अपरिमित धैर्य हमारे दुःखों के प्याले को मधुर बना देता है।

महान गणितज्ञ रामानुजन :– इन्होंने भी मात्र ३३ वर्ष की आयु पाई। २२ दिसम्बर १८८७ को जन्में एवं २६ अप्रैल १९२० को दिवंगत हो गये। इनके स्कूल के प्रधानाचार्य ने इनके बारे में कहा– 'उनके आकलन के लिये १०० में से १००० अंक भी निहायत अपर्याप्त है।'

गणित के महान विद्वान् रामानुजन के जीवन में एक ऐसा भी समय आया जब वे गरीबी के कारण लिखने के लिये कागज भी खरीदने में असमर्थ थे। वे स्लेट पर गणित के प्रश्न हल करते और उसे मिटा देते। ऐसा बराबर करने से उनके हाथ की चमड़ी काली एवं कठोर हो गई, परन्तु वे अपनी साधना में दिन रात लगे रहे। आज वे विश्व के महान गणितज्ञों में गिने जाते हैं।

बचपन में जिद्दी स्वभाव होने के कारण जो काम उन्हें नहीं करना होता, उसे नहीं करते। कक्षा में बराबर फेल होते गए। शरीर से कमजोर थे। मात्र १७ से २० वर्ष की आयु में गणितीय कार्य का पहला संकलन एक नोट बुक के रूप में प्रकाशित हुआ। मद्रास पोर्ट ट्रस्ट में तीस रूपये महीने की नौकरी की। वहाँ इनको लोग सनकी जीनियस समझने लगे। १९११ में रामानुजन का पहला शोधपत्र जर्नल आफ इंडियन मैथमेटिक्स सोसायटी में प्रकाशित हुआ। उनके काम के बारे में

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अग्रणी गणितज्ञों को लिखा गया। प्रोफेसर हार्डी ने देखा तो समझ गये कि इनके काम में दम है। वे १९१४ में इंग्लैण्ड गये और प्रो० हार्डी के साथ काम किया। पूरा कैम्ब्रिज रामनुजन को भारत के गणित जीनियस के रूप में जानने लगा। १९१७ में प्रो० हार्डी के प्रयास से रामानुजन रायल सोसायटी के सदस्य बने तथा ट्रिनटी के सदस्य बनने में सफलता प्राप्त की। भारत के अखबारों के रामानुजन के बारे में काफी कुछ छपा। मार्च १९१९ में वे भारत लौटे। मद्रास विश्वविद्यालय मे उन्हें प्राध्यापक का पद दिया गया। इनकी सेहत बिगड़ती गई। इन्हें टी. बी. हो गई और इनकी बीमारी का असर इनके दिमाग पर भी पड़ने लगा। लेकिन इस महान गणितज्ञ ने अपने गणित के कार्य को मृत्यु के चार दिन पहले तक नहीं छोड़ा। इनके अंतिम समय के नोट प्रो० हार्डी के पास नहीं पहुँच सके लेकिन कैम्ब्रिज की लाईब्रेरी में वे पाये गये। अपनी खराब सेहत को ठीक नहीं कर पाये और यह महान गणितज्ञ मात्र तैंतीस वर्ष की अवस्था में मृत्यु का आलिंगन कर बैठा। मृत्यु के समय रामानुजन की ख्याति चरम पर थी। नोबुल पुरस्कार विजेता भारतीय भौतिकशास्त्री एस० चन्द्रशेखर उस जमाने के बारे में कहते हैं, 'तब हमें गांधी, टैगोर, नेहरू एवं रामानुजन पर गर्व था।

स्वामी विवेकानन्द :- स्वामी जी ने अपने सनातन धर्म को देश की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखा, विदेशों तक याने सारी दुनियां तक पहुँचा दिया। अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म महासभा में उन्होंने अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में जैसे ही मेरे अमेरिका निवासी बहनों एवं भाइयों कहकर सम्बोधन का प्रारम्भ किया तो सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। उस समय उनकी उम्र मांत्र तीस वर्ष की थी। अमेरिका में जब स्वामी जी का नाम हुआ तो अपने देश में भी उनकी पहचान बन गयी। शास्त्रों में संन्यासियों के लिये समुद्र यात्रा वर्जित है लेकिन स्वामी जी ने अपने को शास्त्रों की रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों में कभी नहीं बांधा। उनका दृष्टिकोण व्यापक था एवं धर्म को उसकी गहराइयों एवं ऊंचाइयों तक उन्होंने आत्मसात् कर लिया था।

विवेकानन्द का जन्म बंगाल में १२ जनवरी १८६३ को हुआ तथा वे ८ जुलाई १९०२ को मात्र ३९ वर्ष की आयु में दिवंगत हो गये। इस छोटी सी आयु में हमारे देश का यह ब्रह्मचारी सोने की तरह तप कर खरा उतरा। प्रारम्भ में इनका नाम 'नरेन्द्र' रखा गया लेकिन इनकी माता इनको 'विश्वेश्वर' नाम से पुकारती थी। कारण उन्हें विश्वास था कि उन्हें प्रभु की कृपा से यह पुत्र प्रसाद स्वरूप प्राप्त हुआ है। नरेन्द्र के घर में पूजा पाठ, कथावार्ता, चलती ही रहती थी। जिस कथा से नरेन्द्र ने इतिहास, साहित्य, दर्शन इत्यादि का गहन अध्ययन किया। अपने विद्यार्थी जीवन में इनको ईश्वर का स्वरूप जानने की इच्छा हुई तो

अध्यापक ने कहा उनका स्वरूप जानने के लिये तुम्हें संसार से सम्बन्ध विच्छेद करना होगा तथा ईश्वर भक्ति में लीन होना होगा। इन्होंने ईश्वर का दर्शन करने का दृढ़ संकल्प ले लिया। लेकिन उन्हें ईश्वर का दर्शन कराने वाला कोई नहीं मिला। एक दिन उन्हें ऐसे गुरु मिले जो उन्हें ईश्वर का दर्शन करा सकें। वे गुरु रामकृष्ण परमहंस थे। दक्षिणेश्वर में पहली भेंट में ही परमहंस जी बोले– 'नरेन्द्र तू साधारण मनुष्य नहीं है। तुझे परमात्मा ने मानव कल्याण हेतु पृथ्वी पर अवतरित किया है। तू भगवान का वरद पुत्र है।' एक दिन नरेन्द्र नाथ ने परमहंस जी से पूछ लिया, 'आपने ईश्वर के दर्शन किये हैं?' परमहंस जी हंस कर बोले, 'जैसे मैं तेरे से बात करता हूँ उसी तरह मैं ईश्वर से बात करता हूँ।' बस, उसी समय नरेन्द्र ने परमहंस को अपना गुरु मान लिया और उन्हें विश्वास हो गया कि एक दिन मुझे परमात्मा के दर्शन अवश्य होंगे। वे अब नरेन्द्रनाथ से स्वामी विवेकानन्द हो गये।

उन्होंने पूरे देश का भ्रमणः किया। अंत में कन्याकुमारी जाकर समुद्र पार एक शिला पर तीन दिन तीन रात तक ध्यान मग्न होकर बैठ गये। अपने भारत भ्रमण में उन्होंने देश की दुर्दशा देखी। ध्यानावस्था में मां से प्रार्थना कर रहे थे कि कैसे देश का प्रत्येक व्यक्ति खुशहाल होगा। मां ने आशीर्वाद दिया, जाओ और देशवासियों को जागृत करो। देशवासी अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें। अपनी गरीबी स्वयं दूर करने का प्रयास करें। उन्होंने पूरे भारत में भ्रमण कर देशवासियों को जागृत किया, अपने सनातन धर्म को व्याख्यायित किया, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, राजयोग पर प्रवचन किया। स्वामी जी की कंचन, कामिनी एवं कीर्ति पाने की लालसा समाप्त हो चुकी थी। संसार के राग द्वेष से वे मुक्त हो चुके थे। उनके आचरण एवं प्रवचन का इस देश पर गहरा असर पड़ा। विदेशों में भी जाकर अपने धर्म के मूल तत्वों को उन्होंने व्याख्यायित किया। अपने छोटे से जीवन काल में स्वामी विवेकानन्द जी का योगदान हमारे देश की अमूल्य धरोहर है। भारत की आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सिद्धान्तों का दर्शन स्वामी जी के जीवन में हम कर सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द जैसे महात्मा देश और काल की, जाति और वर्ण की, मत और सम्प्रदाय की सीमाओं में कभी नहीं बंधते। वे तो घट–घट वासी उस अविनाशी को सर्वत्र देखते हैं। धर्म तत्व को जानने वाले ऐसे महात्मा अपनी चारित्रिक पवित्रता से अपने चतुर्दिक के वातावरण को भी पवित्र कर देते हैं।

वेदांत के साकार रूप स्वामी रामतीर्थ :– इनका जन्म २२ अक्टूबर १८७३ को एवं निर्वाण १६ अक्टूबर १९०६ को हुआ। इनको केवल ३३ वर्ष की आयु मिली। इतनी अल्पायु में प्रज्ञावान वेदांत के साक्षात् स्वरूप स्वामी राम

परलोक गमन हो गया। स्वामी राम की मस्ती देखने लायक थी। निर्वाण के दिन दीपावली थी और सोमवती अमावस्या। गंगा स्नान को उतरे और गंगा के प्रवाह में पद्मासन की मुद्रा में प्रवाहित हो गये। दो बार ओम् ओम् शब्द का उच्चारण भी किया। ऐसे निर्भीक, अस्थावान, प्रज्ञावान एवं पूर्ण संन्यासी कहां देखने को मिलते हैं? वे मूर्तिमान वेदांत थे। वे शिशु जैसे सरल, पुष्प जैसे प्रसन्न, सागर जैसे गंभीर और हिमालय जैसे उच्च एवं दृढ़ थे। वे जहाँ भी गये आनन्दामृत की वर्षा होने लगी। उनके सामने जड़ भी चेतन का चोला पहन लेता था। उनका हृदय भक्ति, ज्ञान, वैराग्य से सम्पन्न था।

स्वामी रामतीर्थ का मूल नाम तीर्थराम था। वे निर्धन ब्राह्मण कुल में पैदा हुये। पढ़ाई में हमेशा सर्वोच्च अंक प्राप्त किया। इन पर भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। कई-कई दिनों तक भोजन नहीं मिलने पर भी इनके मुख मण्डल की आभा देखने लायक थी। वे अपने प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते थे। वे गणित के अध्यापक बनना चाहते थे और उनकी नियुक्ति क्रिश्चियन कालेज में गणित के अध्यापक पद पर हो गई। उन्होंने संन्यास ग्रहण नहीं किया था लेकिन उनकी विरक्ति देखने लायक थी। उन्होंने कहा- मुझे धन सम्पत्ति बटोरने में रुचि नहीं, स्त्री के आभूषण बनाने की कोई खुशी नहीं, मुझे मेज कुर्सी आदि सामान की भी आवश्यकता नहीं। मेरे लिये वृक्ष की छाया मकान का काम दे सकती है, राख मेरी पोशाक का, सूखी धरती मेरे बिस्तर का और दो चार घरों से मांगी हुई रोटियां मेरे भोजन का। अगर मुझे इतना मिल जाय तो मैं परम सुख मानूंगा। मैं तो साक्षात् आनन्द हूँ। जग को खोकर जगत्पिता को पा लेना ही जीवन की सार्थकता है।

तीर्थ राम की मुलाकात स्वामी विवेकानन्द से लाहौर में १८९७ में हुई। स्वामी विवेकानन्द ने पहचान लिया कि प्राध्यापक रामतीर्थ वेदान्त के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य करने की क्षमता से सम्पन्न हैं। रामतीर्थ ने संन्यास लेने का मन बना लिया और उत्तर काशी जाकर स्वामी रामाश्रय जी से संन्यास ग्रहण कर लिया। गुरु महाराज ने इनका नाम तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ कर दिया।

जापान में धर्म सम्मेलन हो रहा था। स्वामी राम ने जाने की स्वीकृति दे दी। टोक्यों में सीधे इंडो जापान क्लब नामक संस्था में गये तो पता लगा कि यहाँ कोई धर्म सम्मेलन नहीं हो रहा है। स्वामी राम खूब हंसे वे बोले, 'प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती हैं। राम को हिमालय के उस एकांत से निकाल कर संसार का पर्यटन कराने हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली। राम तो स्वयं धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यह टोक्यो (जापान) विश्व सम्मेलन नही करना चाहता तो राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।' टोक्यों में स्वामी राम की भेंट संस्कृत के

प्रख्यात विद्वान प्राध्यापक श्री तकात्केसू से हुई। उन्होंने कहा– 'मैंने ऐसा महान व्यक्ति नहीं देखा। उनमें वेदांत और बौद्ध धर्म एक साथ एक स्थान पर एकत्र हुआ है। वे स्वयं धर्म हैं। वे एक सच्चे कवि एवं दार्शनिक हैं।'

स्वामी राम टोक्यो से सीधे अमेरिका पहुँचे। साथ में जापानी छात्र भी थे। छात्रों के पास धन नहीं था। जहाज में सफाई का काम कर अपना भरण-पोषण करते। स्वामी राम के पूछने पर छात्रों ने बताया कि हम अपने देश का धन विदेशों में जाकर क्यों खर्च करें। छात्रों ने जवाब से स्वामी राम अत्यन्त प्रभावित हुये। स्वामी राम के पास पैसा नहीं था। किसी ने पूछ दिया, आपका निर्वाह कैसे होता है? स्वामी राम ने कहा– 'मैं प्राणी मात्र से प्रेम करता हूँ। मैं जब प्यासा होता हूँ तो कोई मुझे पानी पिला देता है और जब भूखा होता हूँ तो कोई रोटी का टुकड़ा दे देता है।' उसने फिर पूछा कि क्या अमेरिका में आपका कोई मित्र है? तो राम ने कहा, 'हां, एक है और वह तुम हो।' स्वामी राम से प्रभावित होकर वह व्यक्ति राम का भक्त हो गया।

स्वामी राम ने अनेक विश्वविद्यालयों एवं गिरजाघरों में व्याख्यान दिये। लोग उन्हें ईसा का अवतार मानकर सम्मान देते। उनका जीवन वेदान्त की व्यावहारिक व्याख्या थी। वे चलते-फिरते तीर्थ थे जहां भी जाते पाप एवं कलुष को धो डालते। वे तो घट-घट वासी उस अविनाशी को सर्वत्र देखते थे। उपनिषद के उस वाक्य को स्वामी राम ने चरितार्थ किया– 'जो ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है।' हमारे देश की यह महान आत्मा मात्र ३३ वर्ष की अवस्था में परलोक गमन कर गई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :– आपका जन्म ९ सितम्बर १८५० को हुआ और आप मात्र ३४ वर्ष की आयु पाकर ५ फरवरी १८८५ को दिवंगत हो गये। आपका नाम बाबू हरिश्चन्द्र था लेकिन आपकी हिन्दी साहित्य के योगदान को देखते हुये आपको भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहा जाने लगा। आप हिन्दी साहित्य के इतिहास को प्रभावित करने वाले आधुनिक हिन्दी के जनक, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, यशस्वी कवि, उपन्यासकार, निबंधकार, कहानीकार, व्यंग्यकार, इतिहासवेत्ता, पुराणवेत्ता, बहुभाषाविद, समाज सुधारक, चिन्तक, विचारक, महान राष्ट्रभक्त, प्रतिष्ठित शिक्षाविद, आदर्श आचार्य, अद्‌भुत संगठन कर्ता, उन्मुक्त दानी, अक्खड़ खांटी बनारसी थे। आपका जन्म काशी में हुआ और आपका निवास ठठेरी बाजार में भारतेन्दु भवन के नाम से आज भी विद्यमान है। आप क्वींस कालेज में पढ़े तथा वहाँ से संस्कृत, फारसी, अरबी, उर्दू की शिक्षा ग्रहण की। आपको देश की २०-२५ भाषाओं का ज्ञान था। अपने रचना संसार का शुभारम्भ विद्या सुन्दर नाटक का हिन्दी में अनुवाद करके किया जो सर्वत्र सराहा गया। तदनन्तर सत्य

हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, धनंजय विजय, चन्द्रावली, कर्पूर मंजरी, भारत दुर्दशा, भारत जननी, पाखण्ड विडम्बन, वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति, अन्धेर नगरी, मृच्छकटिक आदि रचनायें की। आपकी रचनाओं की संख्या इतनी अधिक है कि सबका उल्लेख करना संभव नहीं। इस अल्पायु में इतना महान कार्य कैसे संभव हुआ, देखना हो तो भारतेन्दु जी के जीवन में झांक कर देखा जा सकता है। भारतेन्दु जी का स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष बल था। उन्होंने १८६६ में चौखम्बा स्कूल की स्थापना की जो हरिश्चन्द्र स्कूल के नाम से विख्यात होकर आज भी चल रहा है जहाँ पाँच हजार विद्यार्थी शिशु कक्षा से लेकर पोस्ट ग्रेजुएट तक की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

इन्होंने देश के विभिन्न भागों की यात्रा की। अपनी बलिया यात्रा में 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो' पर दिया गया व्याख्यान उनका ऐतिहासिक दस्तावेज बन गया। भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी के युग प्रवर्तक महापुरुष हैं। धार्मिक पाखण्ड के उजागर करने हेतु वैदिकी हिंसा न भवति प्रहसन में आपने वेद वाक्यों के उल्टे व मनमाने अर्थ द्वारा स्वयं की पिपासा शांत करने की प्रवृत्तियों का पर्दाफाश कर सच्ची तस्वीर सामने रख दी। धर्म का असली स्वरूप भुलाकर अपने विकारों को एक सच्चाई का बाना पहनाने वालों को खूब लताड़ा। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक द्वारा धर्म की शक्ति का परिचय कराने में वे सफल हुये। उन्होंने अपने नाटकों में अज्ञान, रूढ़िवादिता एवं मोह पर करारा प्रहार किया। स्वार्थपरक शासकों की खोखली नीति का अंधेर नगरी में चित्रण किया तथा सुशासन की आवश्यकता पर बल दिया। हमारे समाज की कुरीतियां उन्हें कुरेदती रहतीं, अतः अनेक प्रहसन प्रसंग लिखकर धर्म के ठेकेदारों, धर्मगुरुओं को सावधान करते रहे। अपने जीवन में महान कार्य करने वाला साहित्य का यह महान साधक क्षय रोग से ग्रसित होकर मात्र ३४ वर्ष पाँच महीने की लघु वय प्राप्त कर नश्वर शरीर को त्याग कर अमर हो गया।

तुलसीदास जी :– इनकी अमर कृति है उनमी रामचरितमानस। यों उन्होंने विनय पत्रिका, गीतावली आदि कई ग्रंथों का प्रणयन किया। जिस समय अपनी अमर कृति रामचरितमानस को लिखना उन्होंने प्रारम्भ किया उस समय उनकी उम्र ७७ वर्ष थी। यह ग्रंथ २ वर्ष ७ महीने २६ दिन में पूरी हुई। विनय पत्रिका, गीतावली आदि ग्रंथ तो रामचरितमानस के बाद ही लिखे गये याने ८० वर्ष की आयु के बाद भी उनका लेखन रुका नहीं।

संत तुलसीदास जी के पहले हमारे सभी धर्मग्रंथ संस्कृत भाषा में ही लिखे गये चाहे वेद हों, पुराण हों, महाभारत हो या श्रीमद्भागवत। वाल्मीकि जी द्वारा रचित रामायण भी संस्कृत भाषा में ही लिखा गया। संत तुलसीदास जी का प्रथम

प्रयास था कि उन्होंने सारे धर्मशास्त्रों का निचोड़ हिन्दी की अवधी भाषा में इस प्रकार लिख दिया कि उसे अनपढ़ से लेकर विद्वान तक स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान, बूढ़े, देशी, विदेशी, स्वदेश या परदेश में सभी समान रूप से गुनगुनाते हैं तथा उसमें वर्णित चरित्रों से प्रेरणा लेते हैं। आज कोई हिन्दू घर ऐसा नहीं मिलेगा जहां रामचरितमानस की पुस्तक न मिले। राम का चरित्र पहले वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में लिखा लेकिन वही चरित्र जन-जन तक पहुँचा संत तुलसीदास जी के रामचरितमानस के माध्यम से। भाव एवं अर्थ को संस्कृत से हिन्दी में इस प्रकार उतार देना कि जन सामान्य समझ भी जाय तथा भावार्थ भी पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे, तुलसीदास जी इस कौशल में अतुलनीय एवं अनुपम हैं। धर्म-तत्व की सारी गहराइयों एवं ऊंचाइयों को लेकर बोलचाल की भाषा में पावन चरित्रों का वर्णन करना कितना कठिन है, इसकी कल्पना सहज में की जा सकती है।

तुलसीदास जी के रामचरितमानस पर कितने-कितने छात्रों ने शोध करके डाक्टरेट प्राप्त की तथा अन्य अनेक शोधछात्र अभी भी शोध कर रहे हैं तथा अनन्त काल तक करते रहेंगे। कारण यह ग्रंथ तो शोध के विद्यार्थियों के लिये अक्षय भंडार है। आप विभिन्न व्यासों को सुनिये तो वे भी एक ही चौपाई के अर्थ को भिन्न-भिन्न तरह से प्रस्तुत करते हैं। शायद इन अर्थों की कल्पना तुलसीदास जी ने भी नहीं की होगी। सारे इतिहास में तुलसीदास जी अकेले खड़े हैं कारण उनकी अमर रचनाओं की टक्कर का कोई साहित्य आज तक हिन्दी में उपलब्ध नहीं हो सका।

तुलसीदास ने ७७ वर्ष की आयु में रामचरितमानस लिखना प्रारम्भ किया। अक्सर लोग ७७ वर्ष की उम्र में अपने को बूढ़ा मानकर किसी काम लायक नहीं समझते, लेकिन इस उम्र में की गई रचना ने यह प्रमाणित कर दिया कि कोई भी कार्य संकल्पित होकर किया जाय तो उम्र कभी बाधक नहीं हो सकती।

तुलसीदास जी का बचपन से लेकर पूरा जीवन बड़े कष्ट में बीता। बचपन में माता-पिता का साया उठ गया। दर-दर भटकने लगे। शादी तो हुई लेकिन पत्नी के झिड़कने ने इनको कामी से निष्कामी बना दिया। काशी में तथा अन्यत्र वेद-वेदांगों का गहन अध्ययन किया। इनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि जो एक बार पढ़ लेते या सुन लेते वह कंठाग्र हो जाता। ये चित्रकूट गये और उन्हें भगवान राम के दर्शन हुये। भगवान शंकर ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम जाकर अयोध्या में रहो एवं हिन्दी में काव्य रचना करो। फिर अयोध्या, चित्रकूट, काशी में रहकर आपने अमर ग्रंथों का प्रणयन किया। सारे जीवन बिना माता-पिता, पत्नी एवं घरबार के भटकने वाला यह व्यक्ति कैसे यह अमर ग्रंथ दे गया, इस पर शोध होना चाहिये। यह इस बात को दर्शाता है कि संकल्पित व्यक्ति को कोई भी

परिस्थितिया बाधा उत्पन्न कर विचलित नहीं कर सकती।

भगवान राम को इतना व्यापक प्रचार करने का श्रेय किसी एक व्यक्ति को जाता है तो वे संत तुलसीदास जी ही हैं। भगवान राम की गाथा ऐसे चित्रित की गई है कि अपने जीवन में हम उसे धारण कर सकते हैं। परिवार में, समाज में तथा संकट के समय या अन्य परिस्थितियों में मर्यादा का निर्वाह कैसे किया गया, यह देखना हो तो रामचरितमानस में देखा जा सकता है।

स्वामी प्रभुपाद जी :- इन्होंने ही भगवान कृष्ण को विश्व पटल पर स्थापित किया। विदेशों में भगवान कृष्ण के अनेकों मंदिर बने। विदेशियों को कृष्ण भक्त बनाया। विदेशियों को कृष्ण ने इतना आकर्षित किया कि उन्होंने घर-परिवार छोड़ दिया, भारतीय वेशभूषा पहन ली, तिलक लगाया तथा यज्ञोपवीत धारण कर लिया। कृष्ण के भजन गाते हैं तो नाचते-गाते-बजाते कृष्णमय हो जाते हैं। ऐसे विदेशियों की पत्नियों ने भी भारतीय साड़ी पहन ली। तिलक लगाया, सिन्दूर लगाया, चूड़ी पहनना तथा माला फेरना उनका स्वभाव हो गया। इनके बच्चे भी बचपन से ही कृष्ण के रंग में रंग गये। बाल मुड़ाकर, शिखा रखकर साधारण वेशभूषा में इन विदेशियों का समर्पण देखते ही बनता है। इनके सभी मंदिर बड़े भव्य, सुन्दर एवं सुव्यवस्थित हैं। इन्होंने पूरे श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी में अनुवाद करके महान कार्य किया। गरीबी इतनी थी कि स्वयं लिखते एवं स्वयं ही टंकण करते। इसके अलावा भी अन्य अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। यह सब आश्चर्यजनक, ऐतिहासिक एवं अविश्वसनीय कार्य किसने किया एवं कैसे किया, यह जानना आवश्यक है। हम देंखें कि एक मनुष्य में कितनी शक्ति निहित है। इन सारी उपलब्धियों का श्रेय स्वामी प्रभुपाद जी को है जिनका जीवन दर्शन एवं कार्य जानने लायक है।

स्वामी प्रभुपाद जी का जन्म ९ सितम्बर १८९६ को कलकत्ते में हुआ। इनका निर्वाण १४ नवम्बर १९७७ में वृन्दावन में हुआ। ये कुल ८१ वर्ष जीये लेकिन ८१ वर्षों के कार्य का लेखाजोखा अल्लादीन के चिराग की तरह अचरज भरा जादुई सा लगता है। इनके जन्म के समय ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी। 'यह बालक सत्तर वर्ष की उम्र का होगा तो समुद्र पार जायगा, धर्म धुरन्धर होगा और १०८ मंदिर स्थापित करेगा।' भविष्यवाणी एकदम सच निकली कारण स्वामी प्रभुपाद जी ६८ वर्ष की आयु में विदेश गये। विदेश में केवल कृष्ण के मंदिर ही स्थापित नहीं किये, विदेशियों को कृष्ण का दीवाना बना दिया। प्रभुपाद जी का मानना था कि कृष्ण रसिया थे, नटवर थे, योगेश्वर थे, माखनचोर थे, रणछोड़ थे याने क्या नहीं थे। ऐसा पूर्ण ब्रह्म, पूर्णावतार का परिचय और स्थापन हमारे देश के बाहर भी होना चाहिए। यह पुनीत कार्य सर्वप्रथम प्रभुपाद ने ही किया।

स्वामी प्रभुपाद के परिवार में कपड़े का व्यापार था। सब कुछ खो दिया और दीवाला निकल गया। उन्हें कृष्ण वचन पर विश्वास होने लगा कि जब मैं किसी के प्रति विशेष कृपामय बनता हूँ तो धीरे-धीरे उसकी सम्पत्ति ही हर लेता हूँ। तब उसके मित्र तथा परिवार वाले भी उसे अत्यन्त दीन-हीन समझ कर उसका परित्याग कर देते हैं और उसके पास केवल कृष्ण ही रह जाते हैं। प्रभुपाद जी ने दिवाला निकलने पर तथा मित्र एवं परिवार से बिछुड़ने पर यही कहा, 'मेरी सबसे बड़ी आसक्ति का अंत हो गया और अब मैं भी श्री राधा कृष्ण के प्रति पूर्णतया अर्पित तथा शरणागत हूँ।'

नितान्त एकाकी जीवन होने पर वृन्दावन आकर बस गये। वे वृन्दावन को सर्वाधिक पवित्र स्थल मानते थे क्योंकि पाँच हजार वर्ष पूर्व कृष्ण ने अवतार लेकर वहीं पर बाल्य लीलाएं की थीं। वृन्दावन में इनका मन खूब रमा। स्वामी प्रभुपाद जी ने अपने ८१ वर्ष के जीवन में लेखन, मंदिर स्थान, विदेशियों को कृष्णमय बनाने तथा धर्मोपदेश के जो महान कार्य किये वे अविश्वसनीय अवश्य लगते हैं, लेकिन संभव हुये।

उपरोक्त चरित्रों के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि अल्पायु एवं दीर्घायु में भी महान् कार्य किये जा सकते हैं। मनुष्य इस भावना से ग्रसित होकर निश्चिन्त न बैठ जाय कि अभी आयु छोटी है या अब मैंने अवक़ाश ले लिया है, अतः किसी काम का नहीं रह गया। व्यक्ति काम करना चाहे तो चाहे जिस परिस्थिति में रहे, चाहे जिस अवस्था में रहे, चाहे जिस स्थान पर रहे, शुभ काम करना प्रारम्भ कर दे। शुभ समय आने की प्रतीक्षा न करे। बस, केवल संकल्पित होने की आवश्यकता है।

♦

संकल्प

संकल्प उसे कहते हैं जब हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये दृढ़ निश्चयी हो जाते हैं और निश्चय को वास्तविकता में परिवर्तित कर देते हैं। संकल्प से स्वप्न यथार्थ बन जाता है। कल्पना वास्तविक अनुभव बन जाती है। संकल्प की शक्ति कल्पनातीत है। संकल्प वह शक्ति है जिसमें से उपलब्धियों का बीज अंकुरित एवं विकसित होता है।

संकल्पित व्यक्ति अपने समय की बर्बादी नहीं करता। कर्म एवं पुरुषार्थ से अपने संकल्प को पूरा करता है।

बिना साहस एवं हिम्मत के संकल्प नहीं होता। साहस एक ऐसा अनूठा गुण है जो सफलता तक पहुँचाने की क्षमता रखता है। एक कवि ने ठीक ही कहा है–

कदम चूम लेती है खुद बढ़ के मंजिल
मुसाफिर अगर अपनी हिम्मत न हारे।

जो व्यक्ति अपने को परिस्थितियों का गुलाम बना लेता है वह कभी संकल्पित नहीं हो सकता। अपने भाग्य के निर्माता आप स्वयं बनो। पुरुषार्थ उसे कहते हैं जब लक्ष्य प्राप्ति के लिये पूरे मनोयोग से व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति एवं सम्पदा से परिश्रम करता है। संकल्पित व्यक्ति वादा करता नहीं, वादा निभाता है।

बल स्थूल होता है, संकल्प सूक्ष्म। बल की सत्ता संकल्प पर निर्भर करती है। संकल्प का कोई स्वरूप नहीं होता। रूपाकार में बल दीखता है।

संकल्पित व्यक्ति के लिये विश्राम करने का समय वही होता है जब तुम्हारे पास उसके लिये समय न हो।

शक्ति का स्रोत संकल्प है और संकल्प की परख विपत्ति में होती है। मन का संकल्प एवं शरीर का पराक्रम किसी काम में लगा दिया जाय तो मिलना निश्चित है।

धीरज धरो। न धन से काम होता है, न बल से काम होता है। न नाम से काम होता है न यश से काम होता है वरन् संकल्प ही कठिनाइयों की संगीन दीवारों को तोड़कर अपना रास्ता बना लेता है।

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है। जिसके पास बुद्धि एवं बल है वही संकल्प कर सकता है।

आर्ट आफ लिविंग के गुरु श्री रवि शंकर जी कहते हैं संकल्प से ही अपनी बुरी आदतों से छुटकारा पा सकते हैं। समय और स्थान को ध्यान में रखकर संकल्प करो। संकल्प समयबद्ध होना चाहिये। फिर तुम्हारा व्यवहार भी अच्छा होगा और तुम पथ से विचलित होने से बच जाओगे।

हमारे देश में आचार्य चाणक्य ने संकल्प लिया। मगध के अत्याचारी राजा नन्द ने ब्रह्म भोज से इस काले कलूटे कुरूप ब्राह्मण को यह कहकर निकाल दिया कि– "इस चाण्डाल को ब्रह्म भोज में क्यों लाया गया।" वह ब्राह्मण इस अपमान को सहन नहीं कर सका और उसने भोजन छोड़कर तत्काल अपनी शिखा खोलते हुये यह प्रतिज्ञा की– "जब तक मैं इस नंद वंश को समूल नष्ट करके अपने अपमान का बदला नहीं ले लूंगा, तब तक शिखा नहीं बाधूंगा।" ऐसी गर्जना करता हुआ वह ब्राह्मण ब्रह्मभोज से उठकर चला गया।

इस ब्राह्मण चाणक्य ने नंद के विरुद्ध चन्द्रगुप्त को तैयार किया। उसे राजनीति की शिक्षा स्वयं दी एवं युद्ध कौशल मुख्य सैनिक कमाण्डर शकटार ने सिखाया। चन्द्रगुप्त ने नंद को कैद कर लिया और उसे एक कैदी के रूप में चाणक्य के सामने उपस्थित किया। चाणक्य ने अपनी तलवार से नंद का गला काट दिया और अपनी शिखा बांध ली। इस प्रकार चाणक्य ने अपना संकल्प पूरा किया।

नेपोलियन बोनापार्ट के बारे में कहा जाता है कि वह भी संकल्प का धनी था। वह तो कहा करता था कि असंभव शब्द केवल शब्दकोष में होता है। कोई काम असंभव नहीं होता। नेपोलियन को आलप्स पर्वत पार करना था। पर्वत के नीचे बैठी बूढ़ी औरत से नेपोलियन ने पूछा– "मां, मैं इस पर्वत को पार करना चाहता हूँ" तो बूढ़ी औरत ने कहा– 'तू पार नहीं कर सकेगा।' पूछा क्यों, तो बोली– 'आज तक कोई पार नहीं कर सका।' तो नेपोलियन ने कहा– 'मैं तो पार करके रहूँगा। तो उस बूढ़ी और ने कहा– तू पार हो जायगा।' नेपोलियन ने पूछा कि– 'मां अभी तो तू कह रही थी कि पार नहीं कर सकेगा और अब कह रही है कि पार हो जायगा।' बूढ़ी मां ने कहा– 'बेटा, अभी तक किसी ने नहीं कहा कि मैं तो पार करके रहूँगा। तू पहला व्यक्ति है जिसने कहा– पार करके रहूँगा। जो पार करने का संकल्प कर लेगा वह तो पार हो ही जायगा' और नेपोलियन ने वह आलप्स पर्वत पार कर लिया। यह है संकल्प शक्ति कास कमाल।

संकल्प लिया था महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने। गुलाम देश में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करने का। पहले उन्होंने महाराजा बनारस से भूमि मांगी और उसके बाद उस समय के सभी राजा महाराजाओं एवं

धनी परिवारों से सम्पर्क किया। जहाँ गये वहाँ से विश्वविद्यालय के लिये कुछ लेकर आये। अपने मान-अपमान का कोई ख्याल नहीं किया। केवल पैसा लाना ही महत्वपूर्ण नहीं था। सारे विश्व में विश्वविद्यालय का भव्य स्वरूप देखना हो तो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को देखें। उस समय के विशिष्टतम विद्वानों को इस विश्वविद्यालय में लाने का श्रेय भी मालवीय जी महाराज को था। महान दार्शनिक डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को भी कुलपति पद पर आसीन किया। इस विश्वविद्यालय ने मालवीय जी महाराज को मरणोपरान्त भी अमर कर दिया। उनकी अमर कृति आज भी विद्यमान है। यहाँ से अब तक लाखों अशिक्षित शिक्षित होकर निकले हैं और सारे देश दुनिया में फैले हैं। इस विश्वविद्यालय में स्थित इस सुन्दर लाल अस्पताल ने भी लाखों रोगियों को रोगमुक्त किया। मालवीय जी महाराज का यह शिक्षा मंदिर हमें भी संकल्पित होने की प्रेरणा देता है।

संकल्पित व्यक्ति अपनी मानसिकता को कर्म प्रधान बनाता है। लक्ष्य निर्धारित करके पूरे मनोयोग से उसमें जुट जाता है। हार से पैदा हुई हताशा को उत्साह का दुश्मन मानकर कभी इसे पास नहीं फटकने देता। शार्टकट से कोई काम नहीं करता। शार्टकट मजबूरी हो सकती है, सफल होने का सही रास्ता नहीं।

गीता प्रेस के संस्थापक श्री जयदयाल जी गोयंदका ने कहा है कि लक्ष्य बनाकर संकल्पित होकर चलने वाला व्यक्ति निश्चित ही देर सबेर लक्ष्य तक पहुँचाता है।

स्वामी भजनानंद सरस्वती जी महाराज ने कहा कि संकल्पित व्यक्ति ही कर्तव्य कर्म का पालन कर सकता है। कर्तव्य कर्म का पालन ही धर्म का कारण है।

संकल्पित व्यक्ति चिंता नहीं करता। चिंतन करता है। चिंता नकारात्मक है तो चिंतन सकारात्मक। चिंता भय से उपजती है और चिंतन हमारी सोच को रचनात्मक बनाता है। चिंतन से ही चिंता को दूर किया जा सकता है। चिंता से हमारी ऊर्जा नष्ट होती है, जब कि चिंतन से स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित होता है। वर्तमान में जियें और भविष्य की व्यर्थ की चिंता से दूर रहें।

चाहत शुभ होने के साथ इसे संकल्प से जुड़ा होना चाहिए। संकल्प, चाहत में ऐसी ऊर्जा भर देता है कि वह अपने लक्ष्य तक पहुँच कर ही ठहरती है। चाहत सदा अपनी निजी सामर्थ्य एवं योग्यता के अनुरूप होनी चाहिये। यह हमारी पहुँच की सीमा में हो। परिस्थिति के साथ इच्छाओं का सामंजस्य सफलता का रहस्य है। सफल एवं गरिमायुक्त व्यक्तित्व के निर्माण में श्रेष्ठ कामनाओं का अपार योगदान है। हमारा जीवन सदैव शुभ संकल्पों से भरा होना चाहिये।

संकल्प सूक्ष्म होते हुये भी उपलब्धियां महान हो सकती है। उपनिषद में ऋषि अपने शिष्य को पीपल के बीज के दो भाग करने को कहते हैं और पूछते

हैं- 'तुम्हें क्या दीखता है?' शिष्य बोला- 'कुछ नहीं।' तब गुरु बोले- 'इस लघु बीज में से विशाल पीपल वृक्ष का विकास होता है। बीज वृक्ष का हेतु है। हेतु सूक्ष्म होते हुये भी परिणाम विश्वसनीय रूप से वृहत् हो सकता है। यह दृश्य एवं अदृश्य जगत दिव्य संकल्प की परिणति है।

मन किसी वस्तु की इच्छा करता है, बुद्धि उसे आकार प्रदान करती है और संकल्प उसे कार्यान्वित करता है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं- 'ऐसा कभी न कहना कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम अनन्त स्वरूप हो, तुम्हारी जो इच्छा होगी वही कर सकते हो, तुम सर्वशक्तिमान हो।'

संकल्प दो प्रकार के होते हैं। एक स्वार्थजन्य अहं केन्द्रित होता है। इसे आसुरी संकल्प कहते हैं। दूसरा परमार्थी संकल्प होता है उसे दैवी संकल्प कहते हैं। भगवद्गीता आसुरी संकल्प को काम संकल्प कहती है अर्थात् स्वार्थ और इन्द्रिय कामनाओं से उत्पन्न संकल्प। गीता के अनुसार काम संकल्प का पूर्णतया त्याग करना चाहिये क्योंकि इससे मनुष्य निश्चित रूप से बंधन में फंसता है, कष्ट पाता है और उसका नाश हो जाता है। गीता के अनुसार कामना के संकल्प से रहित होकर कर्म करना चाहिये। जब आप लोक संग्रह के लिये कर्म करते हैं तो आपका कार्य प्रभु कार्य बन जाता है और आप दैवीय इच्छा से जुड़ जाते हैं। इसमें काम संकल्प का दोष नहीं होता है। दैवीय संकल्प का गीता भी समर्थन करती है।

'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' का संकल्प हमारे देश के महान ऋषि करते हैं और यही ऋषिवाणी हमारे महान आंदोलनों का प्रेरक तत्व रही है।

हम कोई भी धार्मिक अनुष्ठान करने के पूर्व संकल्प लेते हैं। उस संकल्प में उस अनुष्ठान का हेतु निहित रहता है। पूर्व में राजाओं द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ भी बिना संकल्प के सम्पन्न नहीं होता था। इस संकल्प के पीछे विजयश्री की कामना होती थी। इस प्रकार संकल्प किसी महान कार्य हेतु सामूहिक प्रयास या वचनबद्धता है।

हमारे देश में बलिदानी स्वतंत्रता सेनानी मातृभूमि की सेवा का संकल्प लेते थे और उसे गुलामी की बेड़ी से मुक्त कराने में अपना जीवन भी समर्पित कर देते थे।

संकल्प का काम विकल्प से नहीं होता। विकल्प माने काम को टालने की प्रवृत्ति। संकल्प विकल्प के अलावा एक निर्विकल्प अवस्था होती है। यह सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि है। ऐसी अवस्था में आदमी संकल्प विकल्प के परे चला जाता है और आत्मानन्द के क्षेत्र में पहुँच जाता है।

♦

कर्म का सिद्धान्त

पहले की बहुत सी मान्यताएँ अब विश्वसनीय हो गई हैं। जैसे जैसे अविश्वसनीय विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की वैसे वैसे अविश्वास बदलने लग गया विश्वास में। मैं यहां केवल दो उदाहरण दूंगा और मेरे जैसे अन्य लोगों का अविश्वास भी विश्वास में बदलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

मेरी मां प्रत्येक वर्ष तुलसी जी का विवाह रचती थीं, आंवला नवमी को आंवला पेड़ के नीचे भोजन करती थीं, स्नान के समय सूर्य को जलदान करना तथा उगते सूर्य को प्रणाम करना, प्रातः उठने के वक्त पृथ्वी पर पैर रखने के पूर्व पृथ्वी को प्रणाम करना आदि आदि उनकी नित्य क्रिया थी। इन सब में मेरी आस्था नहीं थी तथा ये सारी क्रियायें अनावश्यक प्रतीत होती थीं। लेकिन अब ये ही क्रियायें उचित एवं आवश्यक प्रतीत होने लगीं। हम बिजली जलाते हैं एवं पानी का उपयोग करते हैं तो बिजली कम्पनी एवं जल संस्थान बिल भेजता है और हम उसे चुकता करते हैं लेकिन सूर्य के प्रकाश का या गंगा जल का कौन सा बिल आता है? अतः उनके उपकार के बदले क्या हम उन्हें प्रणाम करके अपनी कृतज्ञता भी ज्ञापित नहीं कर सकते? तुलसी का विवाह एवं आंवला के पेड़ के नीचे खाने का कारण उसके महत्व को जिंदा रखना है। तुलसी एवं आंवला का सेवन हमें स्वस्थ रखेगा यह सर्वविदित है। हमारे आचार्यों एवं ऋषियों का चिन्तन कितना दूरदर्शी था कि प्राकृतिक जगत में जिन्होंने भी हमारा उपकार किया उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा धर्म माना गया।

इसी प्रकार का एक सिद्धान्त था कि बिना ईश्वर की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता तो हम अगर बुरा कर्म करते हैं तो उसकी मर्जी से करते हैं। अतः उसके पापपुण्य के भागी हम क्यों होते हैं, होना चाहिए उनको जिनकी मर्जी से पत्ता हिलता है। इस सिद्धान्त के रहस्य को तर्क एवं दर्शन शास्त्र की दृष्टि से अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। उदाहरण के तौर पर बिजली की मोटर चलाने के लिये हमें बिजली रूपी करेन्ट भी चाहिये तथा मोटर भी चाहिये। दोनों में से एक का भी अभाव होगा तो क्रिया नहीं होगी। बिजली रूपी करेन्ट सभी प्रकार के

उपकरणों में समान रूप से रहता है चाहे वह हीटर हो, कूलर या अन्य कोई उपकरण। सभी प्रकार के उपकरणों में एक ही प्रकार का करेन्ट होने पर भी क्रियायें भिन्न भिन्न होती हैं। यानी हीटर होगा तो गर्मी पैदा करेगा तथा कूलर होगा तो ठंडक पैदा करेगा। यानी एक ही प्रकार के करेन्ट से विभिन्न प्रकार के उपकरण विभिन्न क्रियायें करते हैं। ठीक यही स्थिति बिना ईश्वर की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता की उक्ति की है। हमारे शरीर में प्राण रूपी चेतना ईश्वर ने दी है और क्रियाएं करने के लिए हम स्वतंत्र हैं। जैसी क्रियाएं करेंगे उसका प्रतिफल उसी के अनुरूप होगा। अच्छी क्रियाओं का फल पुण्य के रूप में मिलेगा तथा बुरी क्रियाओं का फल पाप के रूप में मिलेगा। अतः बिना ईश्वर की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता का अर्थ हुआ कि हमारी क्रियाएं तभी तक होती हैं जब तक हमारे में ईश्वर का दिया हुआ प्राण तत्व है। प्राण तत्व गया कि सारी क्रियाएं बन्द। अतः यह उक्ति बिल्कुल ठीक है कि बिना प्रभु की मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता। फिर कर्म फल का सिद्धान्त अलग है। यह आवश्यक नहीं कि क्रिया का फल तत्काल मिल जाय, वर्षों बाद मिले, इस जन्म में मिले या आगे के जन्मों में मिले। अगर कर्म करेंगे तो फल मिलना निश्चित है, कब मिलेगा यह अनिश्चित है। इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीता ने स्पष्ट व्यवस्था दी है कि कर्म करने में तेरा अधिकार है फल प्राप्त करने में नहीं। फल प्राप्त करने की कोई समय सीमा नहीं। अतः भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि फल के प्रलोभन से कर्म मत कर। तू केवल कर्म करने में विश्वास रख। बिना कर्म फल की इच्छा के क्रिया में पूर्णता रहेगी। जैसे कुछ पेड़ एक साल के अन्दर फल दे देते हैं, जैसे केला, पपीता आदि लेकिन कुछ पेड़ वर्षों बाद फल देते हैं जैसे नारियल आदि। अतः कर्म फल मिलने की कोई समय सीमा नहीं।

प्रत्येक प्राणी पाप कर्म करके पाप का फल भोगना नहीं चाहता। लेकिन बिना पुण्य कर्म किये पुण्य का फल भोगना चाहता है। हम अच्छे काम का श्रेय लेना चाहते हैं और बुरे कर्म का भार प्रभु पर छोड़ देते हैं। कर्म का सिद्धान्त यह है कि हमारे में जब तक कर्तापन का भाव होगा, कर्म फल के भोक्ता भी हम ही होंगे। जिस दिन हम अच्छे बुरे सभी कर्मों का भार ईश्वर पर छोड़ देंगे उसी दिन से हम कर्म फल के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे। यह भाव् तब जागृत होगा जब हम अच्छे कर्म का श्रेय नहीं लेंगे कि मैंने यह किया, वह किया और बुरे का दोष ईश्वर को नहीं देंगे। हम अपनी सारी क्रियायें प्रभु आश्रित होकर करेंगे तो कर्म फल के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे तथा पाप-पुण्य के भागी भी नहीं होंगे। अगर हमें पाप-पुण्य के फल से मुक्त होना है तो यह दृढ़ आस्था होना आवश्यक है कि "हे प्रभु, हम जो कुछ करते हैं तेरी मर्जी से करते हैं, मेरा अपना कुछ नहीं।

इतनी दृढ़ आस्था जब हो जायगी तो हमारी सारी क्रियाएं ईश्वर प्रेरित होंगी और हम कर्म फल के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे।''

कर्म के सिद्धान्त के अनुसार हमारा जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक ही सीमित नहीं है। यानी हम जन्म के पहले से लेकर मृत्यु के बाद तक हैं यानी जन्म एवं मृत्यु एक श्रृंखला है। कर्म फल के कारण हम अमीर या गरीब होते हैं, बुद्धिमान या मूर्ख होते हैं, स्वस्थ या अपंग होते हैं। अगर हमने अच्छा कर्म किया है तो अच्छे कुल में पैदा होंगे यानी अच्छे कर्म का नतीजा अच्छा यानी सुखदायक होगा और बुरे कर्म का नतीजा बुरा यानी दुःखदायक होगा। यह निश्चित है। न हम नीम या करेला लगा कर मीठा फल आम या लीची प्राप्त कर सकते हैं और न मीठा फल सेव सन्तरा लगाकर कड़वा या तीता फल प्राप्त कर सकते हैं। हमारा भाग्य क्या है, कितना है हमें मालूम नहीं। लेकिन यह निश्चित है कि कर्म फल का संचित कोश ही भाग्य के रूप में आता है। अतः भाग्य का अच्छे या बुरे रूप में आना हमारे कर्म का ही प्रतिफल है। अगर हम इस सिद्धान्त को समझ लें तो सुख दुःख की अनुभूति से बच जायेंगे।

इन्सान की स्वाभाविक कमजोरी है कि अच्छा भाग्य होने पर अपने पुरुषार्थ का उल्लेख करता है लेकिन बुरा होने पर ईश्वर को दोष देता है यानी उसे यह समझ में नहीं आता कि जो कुछ भी हम आज भाग्य के रूप में पा रहे हैं वह हमारे ही अच्छे बुरे कर्म का प्रतिफल है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने भाग्य की रेखाओं को भी पलट देते हैं। ऐसे व्यक्ति वे ही हो सकते हैं जो दृढ़ शुभ संकल्प के धनी होते हैं। भगवान बुद्ध राज परिवार से थे, अपनी सर्व सुन्दरी स्त्री को तथा एक दिन के पुत्र को छोड़कर मात्र २९ वर्ष की आयु में सारे सुखों को त्याग कर जंगलों की राह पकड़ लिये और तब तक चैन नहीं लिया जब तक उन्हें इच्छित वस्तु नहीं मिल गई। जंगल में क्यों गये, कारण वे रोगी, वृद्ध, शव आदि को देखकर विचलित हो गये। उनमें करुणा जागृत हो गई कि मनुष्य को कष्ट मुक्त कैसे किया जाय। ज्ञान प्राप्ति से बुद्ध में क्या परिवर्तन आया? पहले भगवान बुद्ध सुख दुःख के भोक्ता थे लेकिन ज्ञान प्राप्ति के बाद वे द्रष्टा हो गये यानी सुख दुःख से परे हो गये। अब वे न दुःख से दुःखी होते हैं और न सुख से सुखी। ऐसे शुभ संकल्प के धनी व्यक्ति के पाप पुण्य भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि में लकड़ी भस्म हो जाती है। जीवन मुक्त या अनासक्त व्यक्ति भी पाप पुण्य के प्रभाव से वंचित हो जाता है। हम पाप पुण्य के भोक्ता तभी तक हैं जब तक हम पाप पुण्य करते रहेंगे। हम जब उस क्षेत्र में पहुंच जायेंगे जहां हमारा कर्तापन का बोध ही समाप्त हो जाय तो हमारा भोक्तापन भी अपने आप छूट जायेगा। यों तो भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि कर्म की

गति बड़ी गहन है "गहना कर्मणो गतिः" फिर भी जितना मेरे मानस पटल पर आया और समझ सका उसे यहां प्रस्तुत कर दिया। मेरा विश्वास है कि मेरे जैसे अन्य लोगों की धारणायें बदलने में यह लेख सहायक होगा और कर्म का सिद्धान्त समझने में सुगमता होगी।

यह ध्यान रहे कि दोनों चीजें एक साथ घटित होंगी यानी कर्तापन का भाव जाना तथा भोक्तापन का संग छूटना। हम केवल अपमान को छोड़ना चाहेंगे तथा मान को भोगना चाहेंगे तो यह क्रिया असंभव होगी। मान अपमान जब रहेंगे साथ रहेंगे और जब छूटेंगे तो साथ छूटेंगे। अगर हम कर्म बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं तो कर्तापन के भाव से मुक्त हो जाएं। कर्तापन का भाव गया कि कर्म बन्धन अपने आप छूटे।

♦

ज्ञान एवं कर्म

ज्ञान एवं कर्म जब मिलते हैं तो योग सिद्ध होता है। वरना दोनों अधूरे हैं। ज्ञान प्रकाश है एवं कर्म क्रिया है। याने ज्ञान के आलोक या प्रकाश में जब क्रिया होगी तो उस क्रिया को पूर्णता प्राप्त होगी। केवल ज्ञान से कोई कार्य सिद्ध नहीं होगा तथा बिना ज्ञान के क्रिया भी अधूरी मानी जायेगी। भगवान कृष्ण ने अर्जुन के रथ की लगाम थाम कर उसे दिशा दी तथा तीर चलाया धर्नुधर अर्जुन ने। यहाँ कृष्ण ज्ञान के प्रतीक हैं तथा अर्जुन कर्म के। हमारे विश्वविद्यालय ज्ञान के प्रतीक हैं तथा उन विश्वविद्यालयों से शिक्षित एवं दीक्षित छात्र जब कर्मक्षेत्र में प्रवेश करते हैं याने वकालत करते हैं, डाक्टरी करते हैं, इंजीनियर होकर कल-कारखाने बैठाते हैं तो वे कर्म के प्रतीक हो जाते हैं। अतः ज्ञान एवं कर्म का समन्वय आवश्यक है।

वकालत पढ़ लिये और न तो कानून के सलाहकार बने, न प्राध्यापक बने, न न्यायमूर्ति बने और न वकील बने तो वकालत की विद्या किस काम की? इसी प्रकार डाक्टरी पढ़ लिये लेकिन एक भी रोगी ठीक नहीं कर सके तो डाक्टरी पढ़ाई किस काम की? याने ज्ञान की शिक्षा का रूपान्तरण कर्म में याने वकील, डाक्टर, उद्योगपति बनने में होना चाहिए। अगर यह रूपान्तरण नहीं होता है तो पढ़ाई पढ़ने का याने ज्ञानार्जन करने का कोई अर्थ नहीं होता। हमने बड़े-बड़े बिजली पैदा करने के संयंत्र लगा लिये लेकिन उस बिजली से न 'बल्ब जलाया, न पंखा, न बिजली मोटर चलाई और न अन्य कोई उपकरण ही चलाया तो उस बिजली पैदा करने का कोई अर्थ नहीं। ऊर्जा ज्ञान का प्रतीक है तथा उससे उपकरण का संचालन कर्म का प्रतीक है। इसको समझाने के लिये हम विभिन्न उदाहरणों का आश्रय ले सकते हैं।

बुद्ध ने गया में ज्ञान प्राप्त किया। लेकिन मृत्यु पर्यन्त ४४ वर्षों तक लगातार भ्रमण कर ज्ञान दान करते रहे। वे चाहते तो ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त किसी गुफा में वास कर लेते लेकिन उस अवस्था में न तो बुद्ध को कोई जानता और न उनके ज्ञान से देश-विदेश के लोग लाभान्वित होते। अपने ज्ञान को लोकहित में लगाना ही वास्तविक ज्ञान है। केवल स्वयं ज्ञानी हो जाने का कोई अर्थ नहीं।

महात्मा गाँधी ने विदेश में कानून की उच्च शिक्षा बैरिस्टरी पास की। लेकिन जोहनसवर्ग में रेल यात्रा के समय एक अंग्रेज द्वारा रेल से अनुचित तरीके से उनको उतार दिये जाने की घटना ने उनमें संघर्ष करने की प्रेरणा पैदा कर दी। इसी प्रेरणा के कारण उन्होंने देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने का संकल्प लिया। आजीवन संघर्ष किया। देश को आजाद कराया। यहाँ उनकी वकालत का रूपान्तरण देश को आजाद कराने में हो गया। अतः आवश्यक नहीं कि कानून पढ़ा व्यक्ति केवल वकील बने या डाक्टरी पढ़ा व्यक्ति केवल डाक्टरी करे तो ही ज्ञान का रूपान्तरण है। उसका रूपान्तरण उसके स्वभाव, शिक्षा, परिस्थिति के अनुसार किसी अन्य क्षेत्र में भी हो जाता है तो वह भी ज्ञान का कर्म में रूपान्तरण ही है।

हमारे भगवान कृष्ण महाज्ञानी थे दुर्योधन के अधर्म को धर्म में लाने हेतु उन्होंने कितने प्रयास किये, किन्तु असफल रहे। अन्ततोगत्वा युद्ध रचाकर अवतरण के तीन हेतुओं 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे' याने साधुओं की सुरक्षा, दुष्टों का नाश तथा धर्म की स्थापना की, रक्षा की। केवल महाज्ञानी हो जाते लेकिन बाकी का कोई कार्य न करते तो महाज्ञानी होने का कोई अर्थ नहीं होता।

आदि शंकराचार्य ने छोटी उम्र में ही सभी शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। यों तो उनकी उम्र ही केवल ३२ वर्ष थी लेकिन इस छोटी सी उम्र में ही उन्होंने अविश्वसनीय कार्य किया। शास्त्रार्थ द्वारा दिग्विजयी हुये तथा देश के चारों कोनों में चार पीठों की स्थापना करके पूरे देश को एकता के सूत्र में आबद्ध कर दिया। ज्ञान का रूपान्तरण हितोपदेश एवं देशहित में किया।

इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द भी मात्र ३९ वर्ष जिये। इस अल्पायु में ही उन्होंने हमारे धर्म की कितनी रूढ़ियों पर प्रहार किया तथा हमारे सनातन धर्म के बारे में अमेरिका की धर्म सभा में प्रवचन देकर विश्व पटल पर स्थापित किया। सारे देश का पैदल भ्रमण किया और कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर बैठकर माँ से प्रार्थना की कि देश को अन्ध विश्वासों एवं रूढ़ियों से बचाओ। देश की गरीबी दूर करो, हे माँ, ताकि प्रत्येक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। कौन संन्यासी इतना कष्ट उठाकर देशहित में तथा जनहित में माँ से प्रार्थना करेगा? तीन दिनों तक भूखे प्यासे रहकर उस शिलाखण्ड पर विवेकानन्द ने माँ का ध्यान लगाया। इसी को कहते हैं ज्ञान का कर्म में रूपान्तरण।

स्वामी प्रभुपाद जो इश्कान मंदिर के संस्थापक हैं, उन्होंने ६९ वर्ष की आयु में पहली बार अमेरिका जाकर भगवान कृष्ण के भागवत धर्म का संदेश दिया। आज उन्हीं की देन है कि विश्व के अनेकानेक देशों में राधा कृष्ण मंदिर स्थापित

हुये। विदेशियों ने बुरी आदतें छोड़ दीं। भारतीय धोती कुरता पहन लिया। मस्तक पर तिलक, बालों का मुण्डन, शिखा एवं सूत्र (यज्ञोपवीत) को धारण कर लिया। निरन्तर हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे का जाप करते हैं। अपनी पत्नियों को भी साड़ी ब्लाउज पहना दिया। तिलक भी धारण कराया और उनको भी हरे कृष्ण हरे कृष्ण के जाप में निमग्न कराया। अपने बच्चों में भी यही संस्कार आरोपित किये। भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने ढोल मृदंग लेकर जब नाचते हुए गायन भजन करते हैं तो देखते ही बनता है। अगर भगवान कृष्ण को विश्व पटल पर स्थापित किया तो स्वामी प्रभुपाद ने। स्वामीजी की क्या व्यवस्था है! उनके दिव्य धाम जाने के बाद भी इनके मन्दिर एवं भक्तों का विस्तार हो रहा है। सारी व्यवस्था उत्तमोत्तम एवं अनुकरणीय है। स्वामी प्रभुपाद जी ने अपने ज्ञान का रूपान्तरण इस प्रकार न किया होता तो भगवान कृष्ण केवल हमारे देश तक ही सीमित रह जाते। भगवान कृष्ण पूर्णब्रह्म तथा पूर्णावतार हैं। अतः उनके पूर्णत्व का दिग्दर्शन मानवमात्र के कल्याण हेतु विश्व के तमाम मानवों को होना चाहिये।

इस प्रकार मैं कितने उदाहरण दूँ! ज्ञान का रूपान्तरण ही ज्ञान के महत्व को प्रतिपादित करता है। कोरा ज्ञान महत्वहीन है। अतः अपने ज्ञान का लोकहित, देशहित एवं शास्त्रहित में रूपान्तरण करें, तभी ज्ञान की सार्थकता है।

◆

संन्यास बनाम गृहस्थ धर्म

प्रवृत्ति मार्ग का प्रतीक है गृहस्थ धर्म एवं निवृत्ति मार्ग का प्रतीक है संन्यास धर्म। गृहस्थ धर्म का हमारे शास्त्रों ने जो अर्थ बताया है वह है कि पुरुष एवं स्त्री विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करते हैं। परिवार का पालन-पोषण करते हैं। उद्योग, व्यापार, खेती, सेवाआदि करते हुये अपनी गृहस्थी का संचालन करते हैं। हमारे शास्त्रों ने केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये स्त्री पुरुष के मिलन की अनुमति दी है। बिना सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के स्त्री पुरुष के मिलन को शास्त्रों ने भोग विलास की संज्ञा दी है। ऐसे गृहस्थों के उदाहरण भी मिलते हैं जिन्होंने सन्तानोत्पत्ति के अलावा भोग विलास किया ही नहीं। ऐसे लोग भले ही संन्यास धर्म को ग्रहण न करें लेकिन गृहस्थी में रहते हुये भी संन्यासी के समान ही हैं। गृहस्थों में ऐसे भी लोग मिलते हैं जिनको अपनी पत्नी से सन्तुष्टि नहीं होती है तो अन्य महिलाओं से भी सम्पर्क रखते हैं तथा महिलायें भी अन्य पुरुषों से सम्पर्क रखती हैं। यह सर्वमान्य सत्य है कि सच्चा गृहस्थ जहाँ पहुँचेगा वहीं सच्चा संन्यासी भी पहुँचेगा। लेकिन इस लेख का प्रयोजन यह बताना है कि संसार को संन्यासियों की क्या देन है तथा गृहस्थों की क्या देन है। हम उदाहरण के तौर पर संन्यास एवं गृहस्थ क्षेत्र के महानतम लोगों का चरित्र चित्रण एवं सामाजिक योगदान का वर्णन करने का प्रयास करेंगे और यह देखेंगे कि इस दुनिया को संन्यासियों ने एवं गृहस्थों ने क्या-क्या दिया।

गृहस्थों के योगदान को देखें तो हम प्रारम्भ करते हैं पाराशर के पुत्र महर्षि वेदव्यास जी से। वेदव्यास जी ने वेदों को चार भागों में बाँट कर महान कार्य किया। वेद के चार भाग हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद। उन्होंने वेदों एवं उपनिषदों का सार दिया वेदान्त शास्त्र (उत्तर मीमांसा) में। अठारह पुराण भी वेदव्यास जी द्वारा ही प्रणीत हैं। एक एक पुराण भी अपने आप में विशाल ग्रंथ है। एक लाख श्लोकों के विश्व के विशालतम ग्रंथ महाभारत की रचना भी महर्षि वेदव्यास जी द्वारा की गई। लोक कल्याण के लिए सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रचलित ग्रंथ श्रीमद्भागवत महर्षि वेदव्यास जी की देन है।

महर्षि वशिष्ठ को महर्षियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आपका विवाह अरुन्धती से हुआ। आपने मुख्य रूप से वशिष्ठ स्मृति की रचना की है। कणाद ने भी विवाहोपरान्त वैशेषिक शास्त्र का प्रणयन किया। गीता में भगवान कृष्ण ने कपिल मुनि को सर्वश्रेष्ठ मुनि बताया और उन्होंने भी सांख्य शास्त्र का प्रणयन किया। यह सांख्य शास्त्र इतना उच्च कोटि का ग्रंथ है कि बड़े-बड़े विद्वान भी इसका अर्थ बताने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। गौतम ऋषि ने भी गृहस्थी बसाई और न्याय शास्त्र का प्रणयन किया। गौतम ऋषि के पुत्र द्रोणाचार्य भी शस्त्र गुरु हुये पाण्डवों के। द्रोणाचार्य के पुत्र हुये अश्वत्थामा।

जैमिनी ने भी मीमांसा शास्त्र दिया। रावण की अनेक रानियां थीं लेकिन सबसे प्रिय थी मन्दोदरी और रावण भी उच्च कोटि का विद्वान था जिसने रावण संहिता, तंत्र-ग्रंथ तथा शिवताण्डव स्तोत्र दिया। महर्षि पतंजलि ने भी योग शास्त्र एवं महाभाष्य व्याकरण दिया। चरक ने काय चिकित्सा शास्त्र दिया एवं सुश्रुत ने शल्यक्रिया शास्त्र। दिवोदास धन्वन्तरि ने आयुर्वेद शास्त्र दिया। दुनिया के महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन ने थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी दिया। सारे इतिहास में बुद्ध अकेले खड़े हैं जिन्होंने अपने अनुभव पर आधारित धर्म-व्यवस्था दी। महाराजा जनक तो गृहस्थ राजा थे। इनको विदेह कहा जाता है। जो विदेह होता है उसमें न तो देहासक्ति होती है और न देहाभिमान। ऐसे राजा जनक से उपदेश ग्रहण करने हेतु पधारते हैं महान संन्यासी एवं विरक्त महात्मा शुकदेव जी महाराज। सायनाचार्य जी ने चारों वेदों का भाष्य लिखा। बाद के जितने भी वेदों पर भाष्य लिखे गये सभी ने सायनाचार्य जी के भाष्य को ही आधार माना। कालिदास ने विद्योत्तमा से विवाह किया और अभिज्ञानशाकुन्तलम्, रघुवंशम् आदि ग्रंथों की रचना कर अमर हो गये। कबीर जैसा निर्भीक महापुरुष सदियों में पैदा होता है। तुलसी ने तो रत्नावली से विवाह किया लेकिन रत्नावली की एक झिड़की ने उन्हें तुलसीदास बना दिया और उन्होंने अमरग्रन्थ रामचरितमानस की रचना की। महात्मागांधी, जयदयाल गोयन्दका, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि गृहस्थों की देन के एक नहीं हजारों लाखों उदाहरण मिलेंगे। इसके पहले कि गृहस्थ एवं संन्यास पर तुलनात्मक टिप्पणी करूँ, कुछ महान संन्यासियों की चर्चा करना उचित होगा।

शास्त्रों में आदि गुरु शंकराचार्य के पहले गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासियों का वर्णन नहीं मिलता। पहले भी संन्यासी रहे होंगे लेकिन संन्यास धर्म को व्यवस्थित स्वरूप दिया आदि गुरु शंकराचार्य ने जिनको हुये लगभग १३०० वर्ष हो गये। इनके जन्म को लेकर भी विवाद है। कुछ इनको २२सौ वर्ष पहले मानते हैं। हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कारण यह शोध का विषय है लेकिन यह निर्विवाद है कि संन्यास धर्म के स्वरूप को मान्यता आदिगुरु शंकराचार्य के समय

में ही मिली। इन्होंने देश के चार कोनों में चार पीठों की स्थापना की जो बद्रीनाथ, द्वारका, जगन्नाथपुरी एवं शृंगेरी में हैं। इन चारों पीठों की स्थापना से इन्होंने हिन्दू समाज को संगठित करने का ठोस प्रयास किया। इनकी विवेक चूड़ामणि, अपरोक्षानुभूति, उपनिषदों के भाष्य, गीता का भाष्य आदि अमर ग्रंथ हैं। संन्यासी होने के उपरान्त भी इनका अनुपम योगदान है। इनके बाद अन्य आचार्य हुये उनमें प्रमुख हैं निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्दाचार्य (कबीर के गुरु), स्वामी रामसुख दास जी महाराज, रामकृष्ण देव, माता आनन्दमयी, देवरहा बाबा, धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज (स्वामी जी विवाहित थे, एक पुत्री हुई लेकिन उसके उपरान्त संन्यास धर्म ग्रहण किया। विवाह एवं सन्तान उत्पन्न भी पिता की आज्ञा के कारण करना पड़ा। अतः उन्हें हम संन्यासी ही मानते हैं।)

रामानुजाचार्य – इनका जन्म दक्षिण भारत में हुआ। इन्होंने ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम और और दिव्य प्रबन्धम् की टीका लिखी। इनका मत विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। इनके द्वारा शास्त्रीय आचार एवं भक्ति की भारत में पुनः स्थापना हुई। आदि गुरु शंकराचार्य ने सनातन धर्म को प्रतिष्ठित किया और उसका पुनरुद्धार रामानुजाचार्य द्वारा हुआ। इनकी परम्परा में अनेक संन्यासी और भक्त हुये और उन्होंने भी विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के ग्रन्थों का बहुत महत्वपूर्ण विस्तार किया।

मध्वाचार्य – इनका भी आविर्भाव दक्षिण में हुआ। बचपन में ही इन्हें पढ़ने की रुचि के कारण अल्प काल में ही समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हो गया था। ११ वर्ष की अनवस्था में ही आपने संन्यास की दीक्षा ली और इनका नाम वासुदेव से बदल कर मध्वाचार्य हो गया। इन्होंने शास्त्रार्थ और उपदेश द्वारा भक्ति मार्ग की स्थापना की। उन्होंने अनेक श्री विग्रहों की स्थापना करके हिन्दू धर्म को सुदृढ़ किया। भक्ति पक्ष की प्रधानता के कारण इनके द्वारा द्वैतवाद की स्थापना की गई। इन्होंने वेदान्त का भाष्य द्वैतवाद में किया है।

निम्बार्काचार्य – इनका भी जन्म दक्षिण भारत में हुआ। कहते हैं कि इन्हें स्वयं नारद जी ने ही दीक्षा दी थी। इनको सुदर्शन चक्र का अवतार भी माना जाता है। इनका मत द्वैताद्वैत सिद्धान्त है। आचार्य ने प्रस्थानत्रयी की जगह श्रीमद्भागवत को चतुर्थ प्रस्थान मान कर प्रस्थानचतुष्टय की स्थापना की। इनके मत में भगवान श्रीकृष्ण परमाराध्य हैं। इनका एक मात्र ग्रन्थ वेदान्त सूत्रों पर भाष्य 'वेदान्त पारिजातसौरभ' ही प्राप्त है।

वल्लभाचार्य – आपका भी जन्म दक्षिण भारत में हुआ। ११ वर्ष की ही अवस्था में काशी में श्री माघवेन्द्रपुरी से श्री वल्लभ ने समस्त शास्त्राध्ययन पूर्ण

कर लिया। अनेक विद्वानों को पराजित कर इन्होंने वैष्णवाचार्य की उपाधि ग्रहण की। इन्होंने भी उज्जैन में बुद्ध की ही भाँति किसी पीपल वृक्ष के नीचे तपस्या की और ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त 'शुद्धाद्वैत' मत का प्रचार किया। जीवन के अन्तिम समय में आचार्य काशी में निवास करने लगे और अन्त में यहीं गंगा स्नान कर ही रहे थे कि कोई उज्जवल ज्योति शिखा उठी और लोगों ने देखा कि आचार्य सशरीर ऊपर उठते जा रहे हैं। मात्र ५२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने मर्त्यलोक छोड़ दिया। ये संन्यस्त होते हुये भी गृहस्थ ही थे। श्री बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का मानना है कि कार्य कारण रूप जगत ब्रह्म ही है। ब्रह्म अपनी इच्छा से ही जगत रूप बना है। भगवान का अनुग्रह ही पुष्टि है। पुष्टि को प्रधान मानने से ही श्री वल्लभाचार्य का मत पुष्टि मार्ग कहा जाता है। इनके वंशधरों और शिष्यों ने इस मत का बहुत प्रचार किया। सूरदास जी एवं सभी अष्टछाप के कवि इनके शिष्य थे।

रामानन्द – सम्भवतः इनका भी जन्म दक्षिण भारत में ही हुआ। इस तेजोमय निष्पक्ष महापुरुष ने काशी के पंचगंगा घाट को अपने निवास से पवित्र किया। उनका माहात्म्य इसी से सिद्ध है कि महात्मा कबीरदास जी ने उनके चरण धोखे से हृदय पर लेकर उनके मुख से निकले 'राम' नाम को ही गुरु मन्त्र मान लिया। आचार्य ने शिव एवं विष्णु के उपासकों में चले आ रहे अज्ञानमूलक भेदभाव को दूर किया। इनके प्रमुख शिष्यों में कबीर एवं रैदास हैं। रैदास की ही शिष्या मीरा थीं। इनका मानना था कि भगवान का द्वार बिना किसी भेदभाव के सब धर्मों और जातियों के लिये खुला है। इस परम सत्य को आचार्य ने व्यावहारिक रूप से स्थापित किया।

श्री चैतन्यमहाप्रभु – श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म बंगाल के नदिया ग्राम में हुआ। ये भगवान के प्रेमावतार कहे जाते हैं एवं छोटी अवस्था में ही प्रकाण्ड विद्वान हो गये। इन पर श्री कृष्ण भक्ति का रंग चढ़ गया था। अद्वैताचार्य वासुदेव सार्वभौम जैसे प्रकाण्ड विद्वान महाप्रभु की रसधारा में निमग्न हो गये। इन्हें गौरांग महाप्रभु के नाम से जाना जाने लगा। ये भगवत् कीर्तन करते प्रेमोन्मत्त हो उठते थे और अपने इष्ट भगवान जगन्नाथ में इन्होंने सशरीर प्रवेश कर लिया।

स्वामी करपात्री जी – आपका जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ। बचपन से ही संन्यास वृत्ति थी लेकिन माता-पिता की आज्ञा के कारण विवाह किया और एक पुत्री पैदा की। आपने जगत्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी से दीक्षा ली और दण्ड धारण किया। आप उच्च कोटि के विद्वान थे और सनातन धर्म के सर्वमान्य व्याख्याता थे। आपको धर्म सम्राट की उपाधि से विभूषित किया गया। आपने 'वेद पारिजात' जैसे गन्थ का प्रणयन किया। इसके अलावा भी आपके द्वारा अन्य

ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। आपने आजीवन सनातन धर्म का प्रचार किया और अपने प्रवचन के अन्त में 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्‌भावना हो, विश्व का कल्याण हो, गो माता की जय एवं गोहत्या बन्द हो' का नारा दिया। गोरक्षा के लिए एवं गोहत्या बन्द कराने के लिए आपने प्रहार सहे और जेल यात्रा की। ७६ वर्ष की अवस्था में यह महान आत्मा काशी में ही परमात्मा में विलीन हो गई।

देश और समाज को देन के मामले में गृहस्थ बहुत आगे हैं सन्यासियों से। अगर गृहस्थ न होते तो संतति पैदा न होती। देश का प्रवाह और विकास ही रुक जाता। अगर सारी दुनिया में गृहस्थों की देन का मूल्यांकन किया जाए तो सच मानिये गृहस्थों की देन के आगे हमारे संन्यासी कहीं नहीं ठहरेंगे। हमारे सारे देवता भगवान शंकर, राम, कृष्ण आदि सभी ने विवाह रचाया, सन्तान उत्पन्न की और अपने शुद्ध आचरण और विशुद्ध ज्ञान से दुनिया को उपदेश दिया। अतः यह निर्विवाद है कि गृहस्थों का योगदान सर्वोपरि है। गाँधी जी के आश्रम में गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी आया और उसने आश्रम में रहने की इच्छा व्यक्त की तो गाँधी जी ने उससे कहा कि आश्रम में रहने के लिये आपको गेरुआ वस्त्र का त्याग करना पड़ेगा। संन्यासी ने पूछा क्यों? तो गाँधी जी ने कहा कि इन गेरुये वस्त्रों को देखते ही हमारे देशवासी इन्हें धारण करने वालों की सेवा पूजा शुरू कर देते हैं। इन वस्त्रों के कारण अन्य लोग आपकी सेवा स्वीकार नहीं करेंगे। जो वस्तु हमारे सेवा कार्य में बाधा डाले उसे छोड़ देना चाहिये। फिर संन्यास तो मानसिक वस्तु है। गृहस्थ का पोशाक छोड़ने से संन्यास नहीं आता। गेरुआ वस्त्र पहन कर आपको सफाई का कार्य कौन करने देगा'। गांधी जी की बातें सुनकर उन्होंने तत्काल गेरुआ वस्त्र त्याग दिया।

◆

मानव जीवन केवल भोगने के लिए नहीं

प्राणी जगत में दो प्रकार के जीव हैं। एक मनुष्य योनि, दूसरी अन्य योनियां जैसे नभचर (आकाश के पक्षी), जलचर (जल के जीव जन्तु) एवं थलचर (पृथ्वी के ऊपर या भीतर रहने वाले जानवर)। इन दो प्रकार के जीवों में एक मौलिक अन्तर है। मनुष्य अपने कर्मों से अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है। लेकिन मनुष्य के अलावा जीव जगत के जितने प्राणी हैं चाहे नभचर हों, जलचर हों या थलचर, सभी प्राणी केवल अपना किया भोगने के लिए जन्म लेते हैं एवं मरते हैं। हमारे यहां स्वर्ग नरक की व्यवस्था है। हम अच्छा काम करके स्वर्ग का सुख प्राप्त करते हैं एवं बुरा काम करके नरक का दुःख प्राप्त करते हैं। यों स्वर्ग नरक की कोई भौगोलिक स्थिति नहीं दिखाई पड़ती। फिर भी स्वर्ग नरक की व्यवस्था व्यावहारिक जगत में लालच एवं भय की व्यवस्था है। आदमी दो प्रकार से कार्यरत रहता है। या तो लालच से या भय से। स्वर्ग नरक नहीं होने के पीछे एक तर्क और है कि स्वर्ग नरक के सुख दुःख तो हम मरने के बाद भोगते हैं जबकि इसी जीवन में हम सुख दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं। अतः जब हम सुख दुःख इस जीवन में भोग लेते हैं और जो संचित कर्म के कारण हम इस जीवन में नहीं भोग पाते उसे अगले जीवन में भोगना पड़ता है। इसी से कोई राजा के घर पैदा होता है, कोई गरीब के घर। कोई सांगोपांग पैदा होता है, कोई अपंग। कोई अच्छे संस्कार लेकर पैदा होता है तो कोई बुरे संस्कार। फिर भी अगर स्वर्ग नरक को मान लिया जाय तो वह केवल सुख दुःख भोगने के लिये है। सुख-दुःख भोगने के उपरान्त 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति' के अनुसार जब निश्चित भोग भोगने के कारण समाप्त हो जाते हैं तो वह पुनः जीव जगत में आ जाता है। हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार मनुष्य एवं अन्य जीवों में बस एक मौलिक अन्तर है कि अन्य जीवों का शरीर केवल भोग क्षेत्र है। वह पिछले कर्मों के फल को भोगने के लिए ही है। औरों की तरह मनुष्य भी पिछले कर्मों का फल भोगता है लेकिन उसको अपने वर्तमान एवं भविष्य को सजाने संवारने का साधन और अवसर भी प्राप्त है। मनुष्य के पास अन्य जीवों के मुकाबले बुद्धि विवेक है जिसके आधार

पर अच्छे बुरे का निर्धारण कर सकता है। पशु योनि में यह बात असंभव है। हमारे लिये यह संभव है कि अपनी मूर्खता से बुरे मार्ग पर चल कर नरक का रास्ता खोल लें या विवेक से चलें और अपना कल्याण प्राप्त करें।

मनुष्य का शरीर तो देवताओं से भी श्रेष्ठ माना गया है। कारण देवताओं को भी यह स्वतंत्रता नहीं है कि पाप के द्वारा नरक, पुण्य के द्वारा स्वर्ग और निष्काम कर्म करते हुये मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य ने अपने बुद्धि, विवेक एवं श्रम से अपने भोजन के लिये भोजन सामग्री पैदा की, पहनने के लिए रूई एवं कपड़ा पैदा किया, रहने के लिए मकान बनाया, एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिये सायकिल, कार, रेल, हवाई जहाज, पानी के जहाज का निर्माण किया। अपने जीवन को समय सीमा में संचालित करने के लिये घड़ी का निर्माण किया। अन्य लोकों में जाने के लिये राकेट का निर्माण किया। यह मनुष्य योनि है जो अपने निर्माण एवं नष्ट होने के साधन जुटा सकती है। मनुष्य जीवन को उपयोगी बनाने के लिये अपने को शिक्षित किया तथा जीवन एवं जगत के सम्बन्धों को व्याख्यायित करने के लिए धर्म की व्यवस्था दी। धर्म की आवश्यकता यों भी मानव को पड़ी ताकि मानव शरीर अपने जीवन काल में अधिक से अधिक उपयोगी हो सके।

अब अन्य जीवों को आप देखें कि वह न बोल सकता है और न अपने बुद्धि विवेक से अच्छे बुरे का निराकरण कर सकता है। जानवर के लिये कोई विधान एवं दिनचर्या नहीं कि कहां खायें एवं कहां गन्दा करें तथा किस समय सोयें तथा कितना खायें। न उनके भोजन का ठिकाना और न रहने का। अन्य जीवों के लिये हमारे शास्त्रकारों ने यह कह दिया कि मनुष्य की तरह ही उनमें आहार, निद्रा, भय, मैथुन एवं बल है। जैसे मनुष्य आहार करता है, निद्रा लेता है, भयभीत होता है, मैथुन करता है तथा बलवान होता है ठीक ये सारे गुण जानवरों में भी होते हैं। मनुष्य में केवल बुद्धि ही इनसे श्रेष्ठ बनाती है अन्यथा वे भी पशु ही हैं। पागल मनुष्य का जीवन भी जानवर की तरह ही हो जाता है। कारण उसका बुद्धि विवेक नष्ट हो जाता है।

अब आप मनुष्य जीवन का कमाल देखें। प्रत्येक मनुष्य का आकार, प्रकार, रूप, रंग, स्वरूप भिन्न-भिन्न होते हैं। मनुष्य अपने शुभ अशुभ कर्मों से अपने भविष्य का निर्माण करता है। इसी मनुष्य शरीर में आपको अवतारी पुरुष मिलेंगे जैसे बुद्ध, महावीर एवं गांधी जो तन एवं मन से पूरी तरह शुद्ध हैं। इसी शरीर में देवता पुरुष मिलेंगे जो परोपकार ज्यादा करते हैं तथा अन्य लोगों के प्रति करुणा भाव रखते हैं जैसे नेहरू, पटेल, सन्त महात्मा आदि। इसी शरीर में ऐसे आदमी भी मिलेंगे जो अच्छे बुरे एक साथ हैं। वे अच्छाई भी करते हैं तो बुरे काम

करने से भी बाज नहीं आते जैसे दिन में उद्योग चलाते हैं तो रात में अन्य व्यसनों का सेवन करते हैं। ऐसे लोगों की अच्छाई उनकी बुराइयों को नियंत्रित करने में सक्षम नहीं है। एक तरह के मनुष्य और मिलेंगे जिन्हें दानव श्रेणी का कहा जाता है। ऐसे दानव शरीर वालों से अच्छे काम कम एवं बुरे काम ज्यादा होते हैं। ये चोरी डकैती करेंगे। अपहरण एवं बलात्कार से भी इनको परहेज नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह कि मानव शरीर अवतार, देवता, मानव एवं दानव चारों बन सकता है। यह हमारे बुद्धि विवेक और प्रयास पर निर्भर करता है कि हम क्या बनना चाहते हैं। हमें मानव जीवन को सार्थक एवं अधिक उपयोगी बनाने के लिये ही धर्म की आवश्यकता पड़ी। धर्म एक आदर्श जीवनशैली है, सुख से रहने की पावन पद्धति है, शान्ति प्राप्त करने का सुगम पथ है, अनुशासन में रहने की शिक्षा है एवं सर्वोपरि जनकल्याण करने की आचार संहिता है। धार्मिक जीवन अपनाने वाला गलत कामों से बचेगा एवं अच्छे कामों को करके अपने जीवन को सार्थक एवं उपयोगी बनाने का प्रयास करेगा। धार्मिक जीवन जीने के लिये धर्मशास्त्र हमें व्यवस्था देते हैं और अवतारी पुरुष धार्मिक जीवन जीकर हमें भी धार्मिक जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं।

याद रखें यह मानव जीवन जीने के लिये मिला है, विषय भोगने के लिये नहीं। कुछ करने के लिये मिला है, केवल ढोने के लिये नहीं। आत्महत्या वे ही करते हैं जिनका जीवन उदास, हताश एवं निराश हो चुका है। जो अपनी गरीबी, बेरोजगारी एवं बीमारी से परेशान हो जाते हैं। ख्याल रखें दरिद्रता कोई दैवी प्रकोप नहीं है। यह आपके आलसी जीवन का प्रतिफल है। कर्मयोगी का जीवन जियें, सत्कार्य में प्रवृत्त रहें, जीवन जीने में आनन्द आयेगा और जीने का मन करेगा।

◆

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत' का मुहावरा काफी पुराना एवं प्रचलित है। मन क्या है, मन कैसे काम करता है, मन का शरीर पर क्या प्रभाव है तथा क्यों मन के हारे हार एवं मन के जीते जीत कहा गया? मन को इतना महत्व क्यों दिया गया – इस सम्बन्ध में आगे इस लेख में हम चर्चा करने का प्रयास करेंगे।

मन पर लिखना बड़ा कठिन है कारण उसका कोई आकार-प्रकार नहीं है। मन दिखाई नहीं देता। अगर मन रुक गया तो इन्द्रियों का संचालन भी रुक गया। अतः यह मान लेना उचित होगा कि शरीर की तमाम क्रियाओं का संचालक मन ही है। मन की गतिविधियां निश्चित रूप से स्थूल शरीर पर अपना असर डालती हैं। हमारे शरीर में पांच कर्मेन्द्रियां हैं जैसे हाथ, पैर, वागिन्द्रिय, जननेन्द्रिय तथा गुदा एवं पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं- त्वचा (स्पर्श), आंख (देखना), कान (सुनना), नाक (सूंघना), जीभ (स्वाद पहचानने के लिये)। मन हमारी ग्यारहवीं इन्द्रिय है। हमारे शरीर का व्यवहार दस इन्द्रियों एवं मन के द्वारा ही संचालित होता है। मन पर संयम न होने से इन्द्रियां विकृत हो जाती हैं। कोई ज्ञानेन्द्रिय जब काम करती है तथा मन अगर उस समय अन्यत्र है तो सचमुच उस इन्द्रिय से अपना काम पूरा नहीं होता। जैसे हम किसी वस्तु को देख रहे हैं तथा मन कहीं अन्यत्र है तो हमने उस वस्तु को ठीक से देखा नहीं। इसी प्रकार अगर हम किसी की बात सुन रहे हैं और उस समय मन कहीं और घूम रहा है तो हमने ठीक से सुना ही नहीं।

मन के व्यापार को मनोवृत्ति कहते हैं। इस शरीर की उपमा रथ से दी गई है जिसका स्वामी आत्मा, सारथी बुद्धि, लगाम मन तथा इन्द्रियां घोड़े के समान हैं। मन की लगाम ढीली होने पर इन्द्रिय रूपी घोड़े अनियन्त्रित होकर शरीर की क्रियाओं को विकृत कर देते हैं।

मन अत्यन्त चंचल होता है तथा हमेशा दौड़ता रहता है। मन की गति सबसे तेज है कारण तत्काल चाहे जहां पहुंच जाता है। मन अक्सर वहां नहीं रहता जहां हम हैं। मन कोई निश्चय नहीं कर पाता कारण यह संकल्प एवं विकल्पात्मक है। निश्चय बुद्धि से होता है। विवेक से हम अच्छे बुरे की पहचान

करते हैं। मन को अगर वश में करना है तो ध्यान, प्राणायाम आदि के द्वारा ही किया जा सकता है। मन का एकाग्र होना ही तन–मन की शक्तियों का संगठित होना है। हमारे शास्त्रों ने महात्मा उसे माना जो मनसा, वाचा, कर्मणा एक हो याने जो मन में हो वही वाणी एवं क्रिया में होना आवश्यक है।

मन हमारे बन्धन एवं मोक्ष का भी कारण है। मन के द्वारा संचालित इन्द्रियां जब गलत रास्ते पर चली जायेंगी तो मन बन्धन का कारण बनेगा और वही जब अच्छे एवं शुभ कार्यों में लग जायेंगी तो यह मोक्ष का कारण बनेगा। जैसे ताले की चाभी से ताला खुलता एवं बन्द दोनों होता है ठीक उसी प्रकार मन भी हमारे बन्धन एवं मोक्ष का हेतु बन जाता है। हमारे शास्त्रों ने यह भी कहा कि जो शत्रु पर विजय प्राप्त करे वह वीर एवं जो अपने मन पर विजय प्राप्त करे वह महावीर। संन्यासी को 'स्वामी' कहा गया। वह किसका स्वामी है? संन्यासी तो तभी बनता है जब लौकिक वस्तुओं की आसक्ति का त्याग कर देता है। संन्यासी को स्वामी इसलिए कहा गया कि वह अपने मन समेत सभी इन्द्रियों का स्वामी है। हम इन्द्रियों के गुलाम हैं और यही कारण है कि इन्द्रियों के गलत उपयोग होने से अपराधी हो जाते हैं। संन्यासी की सभी इन्द्रियां उसके वश में हैं अतः वह स्वामी है।

भगवान कृष्ण भी अर्जुन से गीता में कहते हैं कि मन बड़ा चंचल है। इसको वश में करना वायु को वश में करने के समान दुष्कर है। जब स्वामी ने मन को वश में कर लिया तो चक्रवर्ती सम्राट भी ऐसे स्वामी के आगे नतमस्तक हो जाता है। कारण लौकिक सम्पदाओं का स्वामी होने पर भी मन को वश में करने की सर्वोच्च सम्पदा उसके पास नहीं है। मन की एकाग्रता ही कार्य सिद्धि में सहायक है। ध्यान, ध्याता और ध्येय के एक होने को समाधि कहते हैं। ऐसी अवस्था में मन पूरी तरह एकाग्र हो जाता है। हम रहते हैं वर्तमान में लेकिन सोचते रहते हैं हमेशा भूत एवं भविष्य की। वर्तमान में रहने का अभ्यास करना ही मन को एकाग्र करने का सहज साधन है।

हमारे शास्त्रों ने कहा है कि चार चीजों से परहेज करो और उसमें प्रथम कहा 'बिना जीता मन, दूसरा शत्रु की प्रीति, तीसरा स्वार्थ और खुशामद एवं चौथा बाजारू ज्योतिषी की भविष्यवाणी। लक्ष्मण उसे माना जिसका मन लक्ष्य में स्थिर हो।

हमारी बुद्धि विश्लेषण करती है, विवेक निर्धारण करता है, मन मानता है एवं अन्तःकरण धारण करता है। यह निश्चित है कि मन जितना एकाग्र होता जाएगा, शक्ति सामर्थ्य उतना ही बढ़ता जायगा। अंग्रेजी की कहावत भी मन के महत्व को उजागर करती है 'As you think so you become'. जो व्यक्ति अपने

शरीर एवं मन का दुरुपयोग करता है, उसका शरीर और मस्तिष्क अशक्त हो जाता है। वह एक प्रकार से ईश्वर की अमानत में खयानत का अपराधी हो जाता है। उसे अपने दुष्कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। जगत को वही जीत सका जो मन को जीत सका। तन काम में एवं मन राम में लग जाए तो जीवन सार्थक हो जाय। मन का संकल्प एवं शरीर का पराक्रम किसी काम में लगा दिया जाय तो सफलता मिलना निश्चित है। हमारे यहां पाखंडी उसे कहा गया जिसके मन के विचार एवं व्यवहार में सामंजस्य न हो। हम किसी की मंगल कामना करते हैं। मंगल उसी अवस्था में होगा जब मन प्रसन्न रहेगा। सदाचारी की परिभाषा में कहा गया कि वह मन, वाणी, शरीर से संयत है, मन से कोई पाप कर्म नहीं करता, स्वार्थ के लिये झूठ नहीं बोलता। मन में विकार उठे तो उसे निग्रहीत एवं संयमित करना चाहिये। कबीर ने कह दिया–

मन सब पर असवार है, मन के पेड़ अनेक।
जो मन पर असवार है, सो कोई विरला एक।।

मन के महत्व को बताने के उपरान्त हम मन के विषय, उसके लक्षण, उसकी क्रियाविधि आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

मन का विषय – इन्द्रियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध का ग्रहण एवं कल्पना सुख–दुःख का अनुभव यह मन के विषय हैं। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो हम महसूस करते हैं उसे मन ग्रहण करता है।

मन के लक्षण – मन भी सात्विक, राजसी एवं तामसी होता है। सात्विक मन के लक्षण दयालुता, सहनशीलता, धैर्य, स्मृति, सत्यता, धर्माचरण, विषय भोग से अनासक्ति आदि। अतः सात्विक मन निर्दोष व विकाररहित होता है। राजसी मन के लक्षण हैं अहंकार, क्रूरता, गर्व, असंतोष, असत्य भाषण तथा धैर्य का अभाव आदि। तामसिक मन के लक्षण हैं निराशा, मन्द बुद्धि, नास्तिकता, पाप कृति, अज्ञानता, प्रमाद आदि।

मन की क्रिया विधि – मन इन्द्रियों के साथ जब युक्त होता है तब इन्द्रियां विषयों से सम्बन्धित होकर उस विषय का आस्वादन मन को कराती हैं। मन की गति सबसे अधिक तीव्र है। मन शरीर का ही एक उपकरण है। इसे एक विषय पर एकाग्र करें तो वह दूसरे विषयों का चिन्तन नहीं करेगा। मन का यात्राक्रम है– (१) स्थूल शरीर द्वारा वस्तु के पास पहुंचना, (२) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उस वस्तु का दर्शन और स्पर्श, (३) इन्द्रियों द्वारा ग्रहीत सूचना मन तक पहुंचाना, (४) मन ने सूचना को संग्रहीत किया, स्मृति कोष में उसी तरह के पूर्व संचित अनुभवों से प्राप्त सूचना की तुलना की और प्राप्त सूचना को ठीक–ठीक वर्गीकृत करके बुद्धि के द्वारा सुख और दुःख का अनुभव किया, (५) इसी भांति बुद्धि से सुविचारित

शुभाशुभ कार्यों को मन ही कर्मेन्द्रियों द्वारा सम्पन्न कराता है, (६) मन ने शरीर एवं कर्मेन्द्रियों को कार्य हेतु प्रेरित किया। इस प्रकार यह चक्र पूरा होता है।

कार्य करने के लिए सर्वप्रथम मन में उसे करने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। तत्पश्चात् मस्तिष्क में वैसे ही विचार उत्पन्न होते हैं। विचारों से तत्सम्बन्धी चेतना प्रवाहित होती है जिससे उस कार्य को करने वाली इन्द्रियों से एक प्रकार की उद्दीपन रूपी तरंगों का प्रादुर्भाव होता है और स्नायुमंडलों द्वारा प्राण और शरीर की जीवनी शक्ति मस्तिष्क से तुरन्त वहां पहुंच कर उस अंग या अवयव को गति प्रदान करती है। इसी प्रकार से हमारे शरीर के सारे कार्य सम्पादित होते रहते हैं।

छान्दोग्योपनिषद के अनुसार खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त होता है- १- अन्न का स्थूल भाग मल के रूप में शरीर से निष्कासित होता है, २- मध्य भाग से कोशिकाओं व मांस पेशियों का निर्माण होता है और ३- अन्न का पाचन होकर उसका सार सूक्ष्म भाग मन का निर्माण करता है। इस प्रकार मन का निर्माण भी भोजन पर आधारित है। इसलिए प्रसिद्ध कहावत है कि 'जैसा खावै अन्न वैसा होवे मन'। सात्विक भोजन भी यदि मात्रा से अधिक खाया जाए तो तमोगुण की वृद्धि करता है। अन्न की मात्रा का निर्धारण शरीर के बल व पाचनशक्ति के अनुसार करना चाहिए।

इसी प्रकार अनेक रोग मानसिक विपर्यय से ही होते हैं। तन को स्वस्थ रखने के लिए सात्विक स्वाथ्यवर्द्धक आहार ग्रहण करना चाहिए तथा मन के विचार और भावनाएं भी शुद्ध सकारात्मक एवं रचनात्मक होनी चाहिए। क्रोध, ईर्ष्या, चिन्ता, लोभ आदि मन को निर्बल और विकृत कर देते हैं। ये विकृत विचार शरीर के अन्दर विषाक्त हारमोन्स को प्रोत्साहित करते है, जो रक्त से मिलकर रक्त को दूषित कर देते हैं और दूषित रक्त से ही बहुत सी असाध्य तथा कष्टकर व्याधियां जन्म लेती हैं। मन की शुद्ध सकारात्मक वृत्तियां प्रेम, मैत्री, करुणा, दया, परोपकार के भाव जागृत करती हैं।

इस प्रकार शरीर पर मन का सर्वाधिक असर है। तन से हार जाने पर तो आदमी पुनः जीतने का प्रयास करता है लेकिन मन से हार जाने पर पुनः प्रयास छोड़ देता है। शुद्ध और प्रशांत मन के कारण मोक्ष मिलता है और अशुद्ध और अशांत मन बन्धन कारक होता है। हमारे मन का निर्माण हमारे भोजन पर भी बहुत कुछ आधारित है। इसे सात्विक और पवित्र रखें। अतः 'मन के हारे हार है मन के जीते जीत' वाली कहावत एकदम सटीक है।

♦

मनुष्य जीवन : वरदान है या अभिशाप

मानव शरीर ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इससे उत्कृष्ट शरीर का निर्माण तो अभी तक ईश्वर भी नहीं कर पाये। हमारे शास्त्र कहते हैं कि मानव शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मानव शरीर मिलता है। कहते हैं मानव शरीर की योनि कर्मयोनि है, बाकी सभी योनियाँ भोग योनि हैं। इस अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर की स्थिति को देखें तो दुनिया की आधी आबादी आज भी गरीबी रेखा से नीचे का जीवन जीने को मजबूर है। खाने को अन्न नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं तथा रहने को मकान नहीं। ऐसे सभी लोग दया के पात्र हैं। शरीर धारण किया और जानवरों की तरह मर गये। मानव शरीर में कुछ कर भी न पाये। मानव शरीर धारण करके जो अपना जीवन यापन भी न कर सके, उसके लिये उसका जीवन तो अभिशाप ही रहेगा। मानव शरीर वरदान तो तब हो जब केवल अपना ही भरण पोषण न करके अन्य का भरण पोषण करने में भी सक्षम हो।

हम पैदा होते हैं एकदम निर्मल। बच्चों में कोई छल कपट नहीं। ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती गई हमारे मन में छल कपट आते गये। बचपन की चंचलता समाप्त हो गई और हम पुरुषार्थी से आलसी हो गये। हमारे में हीन भावना ने घर कर लिया कि हम किसी काम के लायक नहीं हैं। हमारी शिक्षा दीक्षा कहां गलत हो गई। हमारी सामाजिक व्यवस्था में कहां कमी आ गई, हमें भी उसका भान नहीं। शिक्षा एवं समाज शास्त्रियों को इस गंभीर समस्या पर विचार करना होगा, इस कमजोरी का कारण जानना होगा और इसका निवारण भी करना होगा। हम उन कारणों को नीचे की पंक्तियों से जानने का प्रयास करेंगे।

हमारे देश में बेकारों की फौज खड़ी है। लेकिन देश के सभी अखबारों में लाखों की संख्या में आवश्यकताएं भी छपती हैं। आवश्यकता भी एक बार नहीं छपती, कई कई बार छपती है। तब भी योग्य व्यक्ति नहीं मिलते। पढ़े-लिखे, पी-एच०डी० हैं लेकिन योग्य नहीं हैं। योग्यता में कहां कमी है इसको जानने का हमने प्रयास नहीं किया, केवल पढ़ाते चले गये। पढ़े लिखों की एक और भारी समस्या है कि केवल क्लर्की करना चाहते हैं, हाथ से श्रम का काम नहीं करना

चाहते। अगर बी०ए० कर लिया तो घर में अपनी खेती का काम नहीं करेंगे, भले ही ज्यादा आमदनी हो लेकिन क्लर्क की कम आमदनी वाली नौकरी कर लेंगे। हमारे देश का इंजीनियर भी अपने हाथ से कम करने में शर्म महसूस करता है। वह समझता है कि मैं इंजीनियर हूं, मेरा काम केवल बताना है, स्वयं काम करना नहीं। इंजीनियर औजार छूने में अपनी तौहीन समझता है। कम पढ़े लिखे बढ़ई, लोहार, दर्जी, बिजली मिस्त्री, राजमिस्त्री आदि को काम तत्काल मिल जायगा लेकिन पढ़े लिखों के लिए काम की समस्या है। हमारे यहां यह भाव भर दिया गया कि पढ़ लिखकर अपने हाथ से काम करना अपमान जनक है। इसी प्रकार सरकारी नौकरियों ने तो देश की कार्य संस्कृति को ही विकृत कर दिया। सरकारी नौकरी में तनख्वाह अधिक, काम कम एवं ऊपरी आमदनी अलग से। सरकारी नौकरी ने देश के कामगारों को कामचोर बना दिया कारण सरकारी नौकर उतना ही काम करेगा जिससे उसकी नौकरी बची रहे। कोई अधिकारी कड़ाई करना चाहे तो ट्रेड यूनियन हड़ताल कराकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता है। अधिकारी भी एक्शन लेने से अपना हाथ खींच लेता है नहीं तो ऊपर वालों से आरोपित हो जाएगा कि तुमने टैक्ट से काम नहीं लिया। कुछ समस्यायें ऐसी हैं कि बिना मेजर सर्जरी किये यानी सख्त कदम उठाये, ठीक नहीं होंगी। इस संस्कृति को बदलने के लिये हमारे देश को चीन की संस्कृति अपनानी होगी। किसी कर्मचारी को कभी भी निकाला जा सकता है। ट्रेड यूनियन ने अगर हड़ताल करा दी तो उसे जेल भेज दिया जायेगा कारण उसका काम उत्पादन बढ़ाना है न कि हड़ताल कराकर उत्पादन कम कराना। चीन की इस व्यवस्था से उत्पादन बढ़ेगा, उत्पादन लागत कम आयेगी, उद्योग बीमार या बन्द नहीं होंगे तथा नये उद्योग भी स्थापित होंगे। बेकारी एवं बेरोजगारी घटेगी तथा सरकार के राजस्व में वृद्धि होगी। हमारे उत्पाद भी सस्ते होंगे। हम उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की चुनौती का सामना कर सकेंगे तथा अपने उत्पादों को विदेशों में भेजने लायक भी बना सकेंगे। इस प्रकार की श्रम नीति अपनाने का विरोध हो रहा है जो गलत है। कारण इसी नीति को अपनाने से श्रमिकों के लिये रोजगार के नये अवसर सृजित होंगे। जब तक हम सभी हाथों से काम नहीं लेंगे तब तक मानव जीवन वरदान न होकर अभिशाप बना रहेगा।

हमारा देश क्यों आठ सौ वर्षों तक गुलाम रहा? मुसलमान लुटेरे बनकर आये तथा अंग्रेज व्यापारी बनकर आये और दोनों इस देश के शासक बन बैठे। 'कोउ नृप होय हमें का हानी' की कहावत ने हमारी विरोध एवं संघर्ष करने की क्षमता ही समाप्त कर दी। हमारे देश में मन्दिर ज्यादा, मन्दिरों में भीड़ ज्यादा, सिद्धपीठों की कमी नहीं। सिद्ध महात्माओं की संख्या सर्वाधिक। गुरुओं की

महिमा का बखान करते हुए यहां तक कह दिया ग़या कि गोविन्द से गुरु ऊपर हैं। गुरु वन्दना में सारे सामर्थ्य तुच्छ बता दिये गये। जिस देश में मां लक्ष्मी हों वह गरीब क्यों? आज हमारा देश देशी विदेशी कर्ज से इतना दब गया कि ब्याज चुकाने के लिए भी कर्ज लेना पड़ता है। हमारे यहां मां सरस्वती हैं लेकिन हम कितने नोबुल प्राइज जीत कर लाते हैं? जिस देश में बजरंग बली हों उसकी ओलम्पिक में यह स्थिति कि केवल एक कांस्य पदक वह भी एक महिला को मिला। सौ करोड़ से अधिक आबादी का देश किस क्षेत्र में आगे है? हमारा योग भी विदेशों से योगा बनकर आता है तो उसके महत्व को हम पहचानते हैं। अंग्रेज चले गये लेकिन अंग्रेजियत बढ़ती जा रही है। स्वदेशी भावना का लोप होता जा रहा है। विदेशी माल के प्रति हमारा आकर्षण बढ़ा है। अंग्रेजी में बोलने वाले को हम अधिक सभ्य एवं बुद्धिमान मानने लगे हैं। हम गंगा में नहाकर या मन्दिरों में दर्शन कर या कुंभ स्नान करके पाप मुक्त होना चाहते हैं। पाप का फल भोगना नहीं चाहते एवं बिना पुण्य किये सुख भोगना चाहते हैं। हमने श्रम से ज्यादा संन्यास को महत्व दिया एवं सेवा से ज्यादा पूजा को महत्व दिया। नतीजा हुआ कि हम सेवा एवं श्रम से विमुख होते चले गये। सेवा एवं श्रम से विमुख होना ही हमारी गुलामी एवं गरीबी का कारण बना। आज मंदिरों में भीड़ है लेकिन दातव्य संस्थायें कार्यकर्ताओं के अभाव में या तो मृत अवस्था में हैं या आधी अधूरी सेवा कार्य कर रही हैं। हमारा साधु समाज सीख तो देता है लेकिन स्वयं अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करने से विमुख है। इसीलिये गांधी जी के वर्धा आश्रम में जब एक गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी ने रहने की इच्छा प्रकट की तो गांधी जी ने कहा कि आश्रम में रहने के लिये गेरुआ वस्त्र उतारना पड़ेगा। संन्यासी जी चौंके और गांधी जी से कारण पूछा तो गांधी जी ने कहा कि अब गेरुआ वस्त्र केवल पूजा और सम्मान का वस्त्र रह गया है। आप गेरुआ वस्त्र पहनकर आश्रम का पाखाना साफ नहीं कर पायेंगे या नीम की चटनी के सेवन से परहेज करेंगे।

जिस देश में ज्ञान अपनी अन्तिम ऊंचाई एवं गहराइयों तक पहुंच चुका है, जिस देश में दूध दही की नदियां बहती थीं यानी सभी को भरपूर खाने को मिलता था, कोई कुपोषण का शिकार नहीं था, जो देश सोने की चिड़िया था यानी सभी दृष्टियों से सम्पन्न था, वह आज गरीब क्यों हो गया? दुर्लभ मानव शरीर का भरण पोषण भी एक गंभीर समस्या हो गई। हमें अपनी आबादी घटाने पर मजबूर होना पड़ रहा है। आज हम गरीबी एवं बेरोजगारी के लिये बढ़ी आबादी को बुरा बता रहे हैं और यही कारण है कि दुर्लभ मानव जीवन एक बोझ एवं अभिशाप हो गया।

मानव जीवन को अभिशाप की जगह वरदान कैसे बनावें! हमारी मान्यताओं को बदलना पड़ेगा। हमें श्रम की व्यवस्था को पुनः स्थापित एवं गौरवान्वित करना होगा। संन्यास का अर्थ बताना होगा कि यह कर्म का संन्यास न होकर कर्म की आसक्ति का संन्यास है। सेवा को पूजा मानना पड़ेगा। हम जब कल्याण कार्य कर रहे हैं तो वह भगवान शंकर की अप्रत्यक्ष पूजा ही है। जब प्यासे को जल पिला रहे हैं तो शंकर का जलाभिषेक ही है। कर्म के मर्म को समझने के लिये भगवान कृष्ण के जीवन को समझना होगा जिन्होंने कर्म को कभी छोटा समझा ही नहीं चाहे गाय चराई, गायों को नहलाया, बांसुरी बजाई, गिरिराज पर्वत को उठाकर इन्द्र का मान मर्दन किया, गोपियों के साथ महारास रचाया, युद्ध स्थल में अमर वाणी 'गीता' का उपदेश दिया, युद्ध लड़ाया एवं मथुरा वृन्दावन छोड़कर द्वारका जाकर बस गये। जिस काम को किया पूरे मनोयोग से किया। कृष्ण तत्व के तीन संदेश हैं, काम कोई छोटा बड़ा नहीं होता, किसी भी कर्म में आसक्त नहीं हुये तथा सभी काम पूरे मनोयोग से किये बिना फल की इच्छा के। उन्होंने यह भी बताया कि फल तो मिलना निश्चित है। जिस क्षण हमें राम की मर्यादा और कृष्ण का तत्व समझ में आ जायेगा, उसी क्षण हमारा यह मानव शरीर अभिशाप न बनकर वरदान बन जायगा। सार्थक जीवन ही वरदान है, निरर्थक जीवन ही अभिशाप है। अगर निरर्थक जीवन को सार्थक बनाने की कला अपना लें तो मानव जीवन वरदान हो जायगा। हमने ऊपर बताने का प्रयास किया है कि जीवन को कैसे सार्थक बनाया जाय। किसी शायर ने ठीक ही कहा कि एक पत्थर की तकदीर भी संवर सकती है बशर्ते सलीके से तराशा जाय। मानव जीवन भी अभिशाप से वरदान हो जायगा अगर हमने आलस्य ही गरीबी है एवं परिश्रम ही पूंजी है के मूल मंत्र को अपना लिया। दरिद्रता कोई दैवी प्रकोप नहीं है, उसे आलस्य, प्रमाद, अपव्यय एवं दुर्गुणों के एकत्रीकरण का प्रतिफल ही कहना चाहिये।

◆

हमारा जीवन कैसे ढले?

हम मुर्दा जाते देखते हैं तो उसे नमन कर लेते हैं। मन्दिर में जाकर मूर्तियों को भी प्रणाम करते हैं। लेकिन जो जीवित हैं उनके प्रति हमारा व्यवहार कैसा होता है? या तो उनके प्रति हमारा राग होता है या द्वेष होता है। हम जीवित व्यक्ति की कभी प्रशंसा करते हैं तो उसको गाली देने में भी देर नहीं करते। यह हमारे जीवन का कैसा विकास है! मुर्दों एवं मूर्तियों के प्रति हम आदर, सम्मान एवं पूजा का भाव रखें तो यही भाव अगर जीवित व्यक्ति के प्रति भी रखें तो हमारा क्या बिगड़ जाएगा। आप जगत का वन्दन करें तो जगत आपका अभिनन्दन करेगा। यह निर्विवाद सिद्धान्त है। हम अगर मुर्दे एवं मूर्तियों के प्रति राग द्वेष विहीन हो सकते हैं तो जीवित मनुष्यों के प्रति क्यों नहीं हो सकते! हम अगर मुर्दे एवं मूर्तियों के प्रति सम्मान, आदर एवं पूजा का भाव न रखें तो न तो हमें मुर्दा शिकायत करने आयेगा कि मेरी अन्तिम यात्रा में भी तुमने मेरे प्रति सम्मान व्यक्त नहीं किया और न मूर्तियां आपको शिकायत करेंगी कि आपको हमारे प्रति सम्मान एवं पूजा का भाव रखना चाहिये था। लेकिन किसी जीवित व्यक्ति के प्रति हम अनादर की भावना रखेंगे तो वह जरूर शिकायत करेगा कि भइया, आपको मेरे से क्या तकलीफ है। उपरोक्त कथन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि जो सम्मान आदर एवं पूजा का भाव हम मुर्दे एवं मूर्तियों के प्रति रखते हैं वही आदर एवं सम्मान का भाव अगर हम जीवित व्यक्तियों के प्रति भी रखें तो इसमें हमारा क्या नुकसान होगा? बल्कि हम सुधर जायेंगे। हमारा देखने का नजरिया ही बदल जायगा। दोष दर्शन की वृत्ति का ही समूल नाश हो जाएगा। दोष दर्शन की वृत्ति का समाप्त होना ही हमारे धार्मिक होने का लक्षण है। हमारा धर्म भी हमें यही सिखाता है कि तुम क्यों किसी का दोष दर्शन करते हो? दोष दर्शन अपना करो एवं परायों के गुणों को ही देखो। एक महान सन्त ने तो इससे भी ऊंची बात कह दी कि जब आप अपना दोष दर्शन करना भी बन्द कर देंगे तो दोष दर्शन की वृत्ति का नाश हो जाएगा। आपको दुनिया में कहीं दोष दिखाई नहीं पड़ेगा। हम अगर ऐसी दृष्टि विकसित कर सकें तो समझ लीजिये हमारा धर्म हमारे अन्दर उतर गया एवं हमारा जीवन संस्कारित हो गया।

हम जब मुर्दे को लेकर शवयात्रा में जाते हैं तो "राम नाम सत्य है" इसका उच्चारण करते हैं। इस उच्चारण से हमें यह बोध होता है कि 'राम नाम सत्य है'। राम नाम सत्य है यह सभी जानते हैं। लेकिन यह उच्चारण अगर किसी के विवाह में या अन्य शुभ एवं मांगलिक अवसरों पर कर दिया जाय तो लोग मारने को खड़े हो जायेंगे। जबकि इस राम नाम सत्य है के उच्चारण में कहीं गलती नहीं है। यह उच्चारण इतना सत्य है कि कहीं भी उच्चारित किया जाय, मंगलमय ही होगा लेकिन हम लोगों ने इसके प्रयोग को केवल शवयात्रा तक सीमित कर दिया। इसका नतीजा हुआ कि शवयात्रा के अलावा अन्य अवसरों पर भी राम नाम सत्य है कहना एवं समझना भूल गये यानी इस परम सत्य को जो सभी अवसरों के लिए उपयुक्त है उसको केवल एक अवसर तक सीमित कर दिया। हमें केवल शवयात्रा में ही यह बोध कराया जाता है कि राम नाम सत्य है। क्या अन्य अनेक शुभ अवसरों पर राम नाम की सत्यता संदिग्ध है? इस प्रकार हमने स्वयं इस परम सत्य को सीमित कर दिया। नतीजा हुआ कि राम नाम की सत्यता के प्रति हमारे विचार सार्वकालिक, सार्वदेशीय एवं सार्वजनीन नहीं हो पाये। राम नाम की सत्यता को हमने सम्पूर्ण जीवन में स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार 'राम नाम सत्य है' के गलत प्रयोग के कारण हम राम नाम की सत्यता को चौबीसों घंटे अनवरत श्वास श्वास में स्वीकार नहीं कर पाये, नतीजा हुआ कि मर्यादा पुरुषोत्तम का आदर्श जीवन हम पूर्ण रूप से हर समय स्वीकार करने से विमुख हो गये हैं। अगर इस परम्परा को हमारे विद्वान, धर्मात्मा, सन्त महात्मा सुधार पाये ताकि 'राम की सत्यता' चौबीसों घंटे हमारी स्मृति में बनी रहे तो मानव जाति के सुधार में सहायता मिलेगी।

हम भाग्य पर अधिक भरोसा करते हैं। अपनी कमी कमजोरियों का कारण अपने भाग्य को मानते हैं। जाते हैं पंडे, पुजारियों, ज्योतिषियों के पास और पूछते हैं कि महाराज! हमें बताओ कि हमारे भाग्य में क्या लिखा है? पंडा, पुजारी, ज्योतिषी भी बेचारे क्या करें! वे मानव मन की कमजोरी जानते हैं। पहले तो भाग्य की अच्छाइयों को बतायेंगे और फिर किसी राहू केतू की महादशा खराब बताकर पूजा, पाठ, दान आदि बता देंगे ताकि ग्रह शान्त हो जाए और आपका कष्ट मिट जाए। ये ज्योतिषी एवं कर्मकाण्डी जब अपना कष्ट दूर नहीं कर पाते, अपने ग्रहों को शान्त नहीं कर पाते तो आपका क्या करेंगे! ख्याल रखें कि आपके जीवन की उपलब्धियां क्रिया प्रधान होती हैं, कृपा प्रधान नहीं। हम अपनी उपलब्धियों का श्रेय या तो अपने इष्ट को देते हैं या अपने गुरु को लेकिन उसी इष्ट या गुरु के अन्य चेले या भक्त को कष्ट पाते देखते हैं तो उसका श्रेय गुरु या इष्ट को न देकर उसके भाग्य का दोष बता देते हैं। इस सम्बन्ध में बहुत गंभीरता

से विचार करने की आवश्यकता है। भगवान बुद्ध जैसे पूर्ण शुद्ध बुद्ध पुरुष ने क्या कहा, वह समझने योग्य है। बुद्ध ने अपने प्रधान शिष्य आनन्द से कहा कि, 'आनन्द, तुझे जो कुछ भी मिलेगा, तेरे प्रयास एवं प्रयत्न से मिलेगा, मेरी कृपा एवं आशीर्वाद से कुछ नहीं मिलेगा। मैं तो केवल रास्ता दिखा दूंगा, चलना तो तुझे स्वयं पड़ेगा।' भगवान बुद्ध का यह कथन ही पूर्ण रूप से सत्य कथन है। मनुष्य अपनी उपलब्धि को कृपा या आशीर्वाद का प्रसाद न माने। अगर यह मानने लगेगा तो आलसी एवं निकम्मा हो जाएगा। इसका यह अर्थ नहीं कि गुरु या इष्ट की कृपा या आशीर्वाद न ले या उनका अनादर एवं अपमान करे। गुरु या शास्त्र के बताये मार्ग पर चले। यह निश्चित मान लें कि बताये हुए मार्ग पर चले बिना आपको कुछ भी मिलने वाला नहीं चाहे सौ गुरु या सौ इष्ट आपको क्यों न मार्ग बतायें। अतः महत्व इस बात का है कि उपादेय मार्ग पर चल पायेगा वही जो बताये मार्ग पर चलेगा। जो नहीं चलेगा वह नहीं पायेगा। यह निश्चित है कि चलना भी स्वयं को ही पड़ेगा। इसीलिये हमारे यहां धर्म की परिभाषा में कहा गया है कि धर्म वह तभी बनता है जब धारण कर लिया जाता है। गीता, रामायण, आदि स्वयं में धर्म नहीं है। गीता रामायण के सूत्रों को जब हम धारण करते हैं तभी हम धार्मिक कहलाते हैं। इसीलिये हमारे विद्वान कहते हैं कि धर्म आचरण में पलता है एवं सेवा से व्यापक होता है। हमारे उपरोक्त कथन का यह अर्थ कदापि नहीं कि गुरु एवं इष्ट का महत्व नहीं। इनका महत्व है कि इनके बताये रास्ते पर चलें। अगर आप बताये मार्ग पर नहीं चल सकते तो श्रेय नहीं पायेंगे चाहे जितने गुरु आपको आशीर्वाद दें। अतः हमारी उपलब्धि हमारे प्रयास एवं प्रयत्न पर निर्भर करती है इसलिये वह क्रिया प्रधान है।

हमने जब से श्रम से ज्यादा संन्यास को महत्व दे दिया, हमारा विकास पथ ही अवरुद्ध हो गया। हमारे यहां संन्यास का अर्थ विकृत हो गया। हमने कर्म से संन्यास ले लिया जब कि होना चाहिए कर्म की आसक्ति से संन्यास। एक बार मैंने गोशाला के सफल संचालन के लिए धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज से १० संन्यासियों की मांग की ताकि हम व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित कर सकें। स्वामी जी महाराज ने कह दिया कि 'संन्यासी ही काम करता तो संन्यास क्यों लेता।' हम भूल जाते हैं संन्यास में जो सामाजिक जीवन की परिस्थितियों से नहीं लड़ सका वह तप की तितिक्षाओं को कैसे सहन करेगा! एक कहावत है कि एक सज्जन एक महात्मा जी के पास गये यह पूछने कि 'महाराज पत्नी को वश में करने का वशीकरण मंत्र बतायें' तो महात्मा जी ने कहा कि 'अगर वही मंत्र हमें आता तो संन्यास क्यों लेता' यानी संन्यासियों में अधिकतर ऐसे लोग मिलेंगे जो सामाजिक जिम्मेदारियों से भाग कर साधु हो गये, भीख मांग

कर खाना और समाज की कोई सेवा नहीं करना ही उनकी नियति हो गई। हमें पुनः समाज में श्रम के महत्व को स्थापित करना होगा। कारण हमारे शास्त्रों में श्रम से विमुख कोई व्यवस्था किसी भी अवस्था में नहीं है। जैसे ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम जैसी चारों अवस्थाओं में श्रम लगा है। इतना ही नहीं हमारे विश्राम में भी श्रम लगा है यानी हम उतना ही विश्राम करें ताकि पुनः श्रम करने लायक हो जाएं। एक सन्त का वचन बड़े महत्व का है कि योगी बनने के लिये उपयोगी बनो। जो अपनी उपयोगिता खो देता है वह फेंक दिया जाता है चाहे व्यक्ति हो चाहे वस्तु हो। अतः प्रेम के द्वारा प्रभु के लिये, त्याग के द्वारा अपने लिये और सेवा के द्वारा सबके लिये उपयोगी बनो।

हम कलियुग को खराब बताते हैं तथा सतयुग को सर्वश्रेठ। त्रेता, द्वापर युग भी क्रमशः सतयुग से हल्का एवं कलियुग से अच्छा बताते हैं। पर हम यह भूल जाते हैं कि गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं कहा कि जब धर्म की हानि होती है एवं अधर्म की वृद्धि होती है तो मैं अवतरित होता हूं। सतयुग में नरसिंहावतार के रूप में आये, त्रेता में रामावतार के रूप में आये तथा द्वापर में कृष्णावतार के रूप में लेकिन कलियुग में अभी तक कोई अवतरित नहीं हुआ। अतः हमारा अभी का कलियुग उस समय के सतयुग, त्रेता, द्वापर से श्रेष्ठ हो गया। फिर जिस युग में रहना है उसको खराब बताने से हमारा जीवन ही अशान्त हो जाएगा। फिर भगवान बुद्ध, महामानव गांधी, विश्व का महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन आदि किस युग की देन हैं। हमारी आज की अन्य उपलब्धियां भी केवल कलियुग की देन है। अतः कलियुग हमारा सर्वश्रेष्ठ युग प्रमाणित होता है। हम कलियुग को खराब बताने से बाज आएं।

याद रखें हम बीती बात के लिये शोक तथा भविष्य के लिये निरर्थक चिन्ता न करें। सच्चे अर्थों में वर्तमान में प्रयत्नशील रहने वाला ही ज्ञानी है।

आज हमारे नेता भी बदनाम हो गये। सबकी पोल दिन पर दिन खुलती जा रही है। हम ईमानदार तभी तक हैं जब तक रंगे हाथ पकड़े नहीं गये। रंगे हाथ पकड़े जाने पर भी अपराध स्वीकार नहीं किया। न्याय इस देश में मिलता कहां है? हमारे न्यायाधीश स्वयं कहते हैं कि विलम्ब से मिला न्याय, न्याय नहीं मिलने के समान है। नीचे की अदालत से सर्वोच्च न्यायालय तक अपराध प्रमाणित होने में जिन्दगी गुजर जाती है। जब तक अन्तिम न्यायालय अपराधी घोषित नहीं करता तब तक कोई अपराधी नहीं माना जाता। यानी न्यायालय जब अपराधी होने का फैसला देगा तभी अपराधी, वर्ना रोज अपराध करते रहें फिर भी अपराधी नहीं। अपराध करके पकड़े जाने पर अपराध स्वीकार करना तो हमारे देशवासी जानते ही नहीं। न्यायालय का आदेश स्वीकार करना हमारी

मजबूरी है अतः हमें मानना पड़ता है। अब इस देश का न्यायाधीश भी बेदाग नहीं रह गया। अतः अपराधी के न्यायालय से अपराध मुक्त होने की संभावनाएं दिन पर दिन बलवती होती जा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि न्यायालय को दो पालियों में कर दिया जाय ताकि नये मामलों में न्याय अधिकतम छः माह में मिल जाए तथा पुराने मुकदमें भी जल्दी निपट जाएं। न्याय व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। यह साहसिक कदम हमारे देश को उठाना पड़ेगा वर्ना आने वाले समय में कानून व्यवस्था की स्थिति और अधिक गंभीर होती चली जाएगी और कोई भी सुरक्षित नहीं बचेगा। गरीबी, बेरोजगारी ने तो यों ही हमारे नौजवानों को बेरोजगार कर रखा है तो संस्कृत की ''बुभुक्षितं किम् न करोति पापं'' यानी भूखा आदमी कौन सा पाप नहीं करता वाली कहावत चरितार्थ होना अवश्यम्भावी है। चुनाव के समय सभी नेता अपना घोषणापत्र गलत भरते हैं। चुनाव खर्च सीमा से कई कई गुना अधिक होता है फिर भी कम बताते हैं। यानी जो नेता गलत घोषणा के आधार पर चयनित होकर आएगा उससे हम सही आचरण की उम्मीद कैसे कर सकते हैं? ठीक इसी प्रकार हमारे धर्माचार्य जिन्होंने बड़े बड़े मठ एवं कोठियां बना ली हैं वे भी आयकर एवं अन्य करों से बचने के लिये गलत घोषणा करते हैं। जिन धर्माचार्यों की बुनियाद ही गलत घोषणा पर आधारित होगी, उनसे समाज एवं देश में धर्म की स्थापना कैसे हो पाएगी?

उपरोक्त कथन से यह प्रमाणित होता है कि हम निर्मल एवं निर्विकार पैदा होते हैं लेकिन ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती है हम विकारयुक्त होते जाते हैं। इस प्रकार जब तक हमारा जीवन बाहर भीतर से शुद्ध नहीं होगा तब तक देश को सुधरने की गुंजाइश नहीं है। हमारे नेताओं एवं धर्माचार्यों पर बाहर भीतर शुद्ध होने की जिम्मेदारी ज्यादा है कारण प्रकृति का नियम है कि हर चीज ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है। हमारे नेता हमारे मार्गदर्शक, शासक हैं जो सेवा के कारण सत्ता में आते हैं। फिर अपनी सेवा का विस्तार करते हैं। ये जैसा आचरण करेंगे समाज में उन्हीं मूल्यों की स्थापना होगी। इसी प्रकार हमारे धर्माचार्यों की भी स्थिति है। आज भी देशवासियों पर पकड़ है तो केवल नेताओं एवं धर्माचार्यों की। ये चाहें तो हमारे जीवन को ऐसे ढाल सकते हैं जिससे समाज में ऐसे मूल्य स्थापित होंगे जिनका अनुकरण सारा देश तो करेगा ही, विश्व के अन्य देशों के लिए भी अनुकरणीय होगा।

♦

योग क्या है?

साधारण बोलचाल की भाषा में योग का अर्थ है एक से अधिक संख्या का जोड़। इस जोड़ के कारण संख्या की कीमत बढ़ जाती है जैसे- दस की संख्या में दस जोड़ा तो बीस हो गया, यानी दस से बीस की कीमत बढ़ गई। थोड़ा गहरे अर्थ में लें तो योग माने दो समान भाव की चीजों का मिलन जो उसे पूर्णता प्रदान करें। यह पूर्णता प्रदान करने के कारण योग का महत्व बढ़ गया। मिलन के पहले दोनों अधूरे थे। उदाहरण से इसे यों समझें कि एक व्यक्ति अन्धा है तथा दूसरा लंगड़ा। दोनों ही नहीं चल पा रहे हैं। लेकिन अंधे के कंधे पर लंगड़ा बैठ जाय तो दोनों ही चल पड़ेंगे कारण अंधे की टांग काम करेगी तथा लंगड़े की आंखें। इन दोनों के मिलन को ही योग कहते हैं। जब तक अंधा-लंगड़ा अलग अलग थे दोनों अधूरे थे। लेकिन दोनों के मिलन ने उन्हें पूर्णता प्रदान कर दी तथा दोनों ही चल पड़े। इसी प्रकार हमें आंख हो लेकिन अन्धेरा हो तो हम नहीं देख सकेंगे। केवल आँख भी अधूरी तथा केवल प्रकाश भी अधूरा। अतः आंख एवं प्रकाश दोनों का मिलन ही हमें देखने लायक बनाते हैं और यही दो मिलकर अधूरे को पूर्णता प्रदान करते हैं। यह भी योग है। और गहराई में उतरते हैं तो एक प्रकार की शारीरिक क्रिया को हम व्यायाम कहते हैं तथा दूसरे प्रकार की शारीरिक क्रिया को योग कहते हैं। जिस शारीरिक क्रिया में क्रिया के साथ हमारी सांसों का तालमेल रहता है वह योग हो जाता है। अगर सांसों के साथ क्रिया का तालमेल नहीं होगा तो वह व्यायाम हो जायगा। अतः योग एवं व्यायाम के अर्थ को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

हमारे शास्त्रों में भगवान कृष्ण को योगेश्वर कहते हैं (यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धर्नुधरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।) तथा भगवान शंकर को योगीश्वर कहते हैं। यों तो हमारे सभी आराध्य चाहे राम हों चाहे कृष्ण चाहे शंकर, सभी पूर्ण ब्रह्म हैं। लेकिन कभी कभी व्यवहार में लगेगा कि कोई बड़ा छोटा है जैसे कृष्ण को सोलहों कलाओं से सुसज्जित पूर्णावतार कहते हैं तो भगवान राम को बारह कलाओं से सुसज्जित कहते हैं। इससे कृष्ण बड़े एवं राम छोटे हो गये, ऐसा अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिये। ये सभी पूर्ण ब्रह्म एवं

पूर्णावतार हैं। इसी प्रकार भगवान कृष्ण को योगेश्वर कहा तो वे योग के प्रवर्तक हो गये और भगवान शंकर को योगीश्वर कहा तो वे सर्वश्रेष्ठ योगी वह जो योग को धारण करें और योगीश्वर वह जो योगियों में सर्वश्रेष्ठ हो। इस प्रकार भगवान कृष्ण को योगेश्वर होने के कारण बड़ी तथा भगवान शंकर को योगीश्वर होने के कारण हम छोटा न समझ लें। हमारे यहां योगी उसे कहा जाता है जिसका मन तथा क्रिया एकाकार हो। अतः पूर्ण योगी वही हो सकता है जिसका मन पूर्ण रूपेण वश में हो गया हो। यानी जो क्रिया हम करें पूरे मनोयोग से। भगवान कृष्ण ने जो भी काम किया चाहे गाय चराने का, चाहे बंशी बजाने का, चाहे रास रचाने का, चाहे मक्खन चुराने का, चाहे युद्ध लड़ाने का या युद्धभूमि में उपदेश देने का– सभी काम पूरे मनोयोग से किया। कृष्ण की कोई क्रिया पूरे मनोयोग से कम की है ही नहीं। इसीलिये भगवान कृष्ण को योगेश्वर कहा गया है। मन एवं क्रिया का तालमेल ही उसे योगी बना देता है। जब योगी हो जायेगा तो उस व्यक्ति में निष्कपटता, सरलता, सत्यवादिता, समचित्तता, स्थिरता, नम्रता, दृढ़ता, विशाल हृदयता, उदारता अपने आप आ जायगी। पूर्ण योगी पूर्ण संतोषी होगा और हमेशा आनन्द में प्रतिष्ठित रहेगा। हम योगी में देखते हैं कि उसकी आत्मा अपने परमात्मा में प्रत्येक क्षण स्थित है। यह कैसे संभव है? हमारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर आदि ही हमारे आवरण हैं। इन आवरणों से हम मुक्त हुये कि आत्मा का परमात्मा मे मिलन हुआ। जहां आत्मा का परमात्मा में मिलन हुआ कि वह व्यक्ति परम शुद्ध बुद्ध हो गया और उसे ही हम परमयोगी कहते हैं।

योग शब्द से जुड़े कई शब्द हैं जैसे योग, वियोग, संयोग, प्रयोग, उपयोग, सहयोग, उद्योग आदि। इन शब्दों के अर्थ में जायेंगे तो और भी गहरे अर्थ निकलेंगे। योग की व्याख्या तो हमने की लेकिन गोपियों का वियोग क्या था? गोपियों का अपने प्रेमास्पद से मिलन हो या न हो, लेकिन प्रेमास्पद जहां रहे स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे। गोपियाँ अपने प्रेमास्पद का निरन्तर चिन्तन करती रहती है। प्रेम (पूर्ण योग) में मिलने का महत्व नहीं है लेकिन प्रेमी के स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने का महत्व है तथा उसकी तरफ निरन्तर चिन्तन होने का महत्व है। इस प्रकार गोपियों ने वियोग के महत्व को भी बढ़ा दिया और वह प्रेम योग बन गया। संयोग में अकस्मात् किसी चीज का मिलना या घटना घटित हो जाना होता है। प्रयोग के बारे में विद्वान कहते हैं कि गीता योग शास्त्र है लेकिन रामायण प्रयोग शास्त्र है। यानी योग का प्रयोग ही योग को महत्ता प्रदान करता है। उपयोग यानी किसी चीज को उपयोगी बनाना है। उपयोगी तभी होगा जब हम उसे धारण करेंगे। औषधि का उपयोग उसके धारण करने में है। सहायोग में किसी को सहयोग देकर मदद करना है। कोई नीचे से बोझा नहीं उठा पा रहा लेकिन आपने उसे सहयोग देकर उठवा

दिया। कोई बच्चा, वृद्ध या बीमार अगर नहीं चल पा रहा है उसे सहारा देकर गन्तव्य स्थान तक पहुंचा देना ही सहयोग है। उद्योग में एक विशेष प्रकार का योग निहित है। यानी वस्तु, प्रक्रिया (प्रोसेस) तथा श्रम। ये तीन जब मिलते हैं तो वस्तु को अधिक मूल्यवान तथा उपयोगी बनाते हैं। खनिज लोहा किसी काम का नहीं। लेकिन उद्योग में खनिज पदार्थ जब श्रम के द्वारा प्रक्रिया से गुजरता है तो हमें लोहा मिल जाता है। यह लोहा उपयोगी भी होता है तथा मूल्यवान भी। अतः उद्योग उसे कहते हैं जो अनुपयोगी को उपयोगी तथा मूल्यवान बनावे। उद्योग के इसी गुण के कारण उद्योग का इतना महत्व है। आज जो भी देश चाहे अमेरिका हो या जापान, जर्मनी हो या इंग्लैण्ड, अगर सम्पन्न है तो केवल अपने उद्योग के कारण। हमारा देश अगर विपन्न है तो केवल इस कारण कि हमने उद्योगों का जाल नहीं बिछाया। हमारे देश पर देशी विदेशी कर्जा बढ़ता जा रहा है। हम अपना ब्याज भी कर्जा लेकर ही चुकाते हैं। अतः उद्योगों का विस्तार एवं स्वस्थ संचालन ही हमें गरीबी एवं बेरोजगारी से छुटकारा दिलायेगा।

गीता में अट्ठारह अध्याय है तथा सभी अध्याय योग हैं। प्रत्येक अध्याय का विवेचन करने पर योग का अर्थ और भी स्पष्ट हो जायगा। योगी कर्म में तो निरन्तर लगा रहता है लेकिन परमेश्वर के आश्रित होकर अनासक्त भाव से कर्म करने के कारण वह फलाफल से निर्लिप्त रहता है। यही निष्कर्म है यानी निरन्तर कर्म करते हुये भी कर्म बन्धन से मुक्त है।

महर्षि पतञ्जलि ने योग की व्याख्या में कहा कि चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। चंचल मन को शान्त करना ही चित्त की वृत्तियों को निर्धारित यानी नियंत्रण में करना है। इसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। अतः इसके पुनः विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है।

कठोर श्रम से योग सिद्ध होता है तथा पवित्रता आती है। योगी को आत्मज्ञान के लिये प्रयास नहीं करना है आत्म ज्ञान स्वयं अन्दर से प्रकट होगा।

योग हमारे देश की प्राचीनतम कला है जिससे मनुष्य का भौतिक और तात्त्विक विकास सम्भव है। यह मानव द्वारा संग्रहीत सबसे मूल्यवान खजाना है। मनुष्य तीन वस्तुओं से बना है--शरीर, मन और आत्मा। शरीर से शारीरिक, मन से मानसिक तथा आत्मा से आध्यात्मिक, इन तीन अवस्थाओं का सन्तुलन ही योग है। योग एक ऐसा रास्ता है जो मनुष्य को स्वयं को पहचानने में मदद करता है। मानव शरीर को स्वस्थ और निरोग बनाता है। मनुष्य को बाहरी तनावों एवं शारीरिक विकारों से मुक्ति दिलाता है। मनुष्य अपने संकुचित एवं निम्न विचारों से छुटकारा पाता है। योग का शाब्दिक अर्थ है 'मिलन'। शुद्ध चेतना और मानव में निहित व्यक्तिगत आवृत्त चेतना का मिलन।

शक्ति एवं साहस

शक्ति एवं साहस का अर्थ समझने लायक है। शक्ति शारीरिक बल है जबकि साहस आत्मबल है। एक बार महात्मा गांधी से किसी ने पूछा कि आपको कहीं शेर मिल जाय तो आप क्या करेंगे? तो गांधी जी ने कहा कि मुझे क्या करना है, उस समय तो जो करना है शेर को करना है। शेर आ जायं या कोई संकट आ जाय और घबड़ाहट न हो तो वह साहस है। गामा पहलवान में जो शक्ति है वह केवल शारीरिक बल का प्रतीक है लेकिन गांधी जी साहस के प्रतीक हैं कारण वे शक्तिशाली अंग्रेजी सत्ता से भी परेशान नहीं हुये और निर्भय होकर अहिंसक तरीके से अंग्रेजों को स्वदेश जाने को विवश कर दिया। हमारे आराध्य बजरंग बली हनुमान जी महाराज शक्ति एवं साहस के समन्वित स्वरूप हैं। इनमें शारीरिक शक्ति भी थी और साहस भी था। कारण अकेले ही शक्तिशाली रावण के दरबार में उपस्थित होकर रावण को सीख दिये।

हमारे महापुरुष कहते हैं कि हिम्मत (साहस) से काम होता है यानी हिम्मत की कीमत है। काम केवल शक्ति से नहीं, साहस से होता है। बुद्धिमान मनुष्य अपनी हानि पर कभी नहीं रोते, वे साहसपूर्वक क्षतिपूर्ति का उपाय करते हैं। शक्ति के साथ बुद्धि का संतुलन ही आपको साहसी बनाता है। हमारे यहां कहावत है कि चरित्र ही मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति एवं संपदा है। अनेक संपदाओं का स्वामी होने पर भी अगर चरित्रहीन है तो विपन्न ही माना जायगा। जिस तरह एक जवान औरत एक बूढ़े का आलिंगन करना नहीं चाहती उसी प्रकार लक्ष्मी भी आलसी, भाग्यवादी एवं साहसविहीन व्यक्ति को नहीं चाहती।

संघर्षपूर्ण जीवन ही मानव का श्रृंगार है। संघर्ष करने की शक्ति साहस से आयगी। संकल्प का स्रोत साहस है, शक्ति नहीं। कारण संकल्प मन से होता है। साहसी व्यक्ति दुःखों का हरण करता है, दुःखों से हार नहीं मानता। साहसी व्यक्ति कष्टों के आभूषण से साहस का श्रृंगार करता है। कहते हैं पृथ्वी पर ये तीनों व्यर्थ हैं, बेवकूफ की विद्या, कंजूस का धन एवं कायर का बल। कायर वही होता है जिसमें साहस की कमी होती है। जितनी अधिक मात्रा में साहसी व्यक्ति

हों यह पृथ्वी का भाग्य है। जगत को वही जीत सका जो मन को जीत सका। मन को जीतने के लिये संकल्प एवं साहस आवश्यक है। मन का संकल्प एवं शरीर का साहस किसी काम में लगा दिया जाय तो सफलता मिलना निश्चित है। मृत्यु पराजय नहीं, पराजय है मृत्यु से डरना। हमारे सारे देवी देवता शक्ति एवं साहस के प्रतीक हैं। हमारे परीक्षित जी को सातवें दिन तक्षक नाग के काटने से मृत्यु लिखी थी लेकिन श्रीमद्‌भागवत की कथा सात दिन तक सुनी तो तक्षक नाग ने काटा और मृत्यु हो गई लेकिन सप्ताह सुनने से मृत्यु का भय भाग गया। हमारे भगवान विष्णु तो 'शान्ताकारं भुजग शयनं' हैं। आदमी तो एक सर्प से ही डर जाता है लेकिन भगवान विष्णु सर्पों की शैय्या पर शान्त भाव से शयन कर रहे हैं। कारण निर्भय हैं। निर्भयता तभी आएगी जब व्यक्ति साहसी होगा। हमारे भगवान शंकर ने कंठ में हलाहल धारण कर रखा है। साथ ही गले में सर्प को आभूषण की तरह पहने हुए हैं कारण निर्भय हैं। निर्भयता एवं साहसिकता का सीधा रिश्ता है यानी जब तक साहसी नहीं होगा निर्भय नहीं हो सकता जब तक निर्भय नहीं होगा, साहसी हो नहीं सकता।

आपने सर्कस में रिंग मास्टर को देखा होगा। शेरों से एवं अन्य खतरनाक जानवरों से खेलता है कारण निर्भय है। घोड़े पर बैठने वाला घुड़सवार दुबला पतला एवं कमजोर है लेकिन बदमाश से बदमाश घोड़े की सवारी कर लेगा या हाथी का कमजोर पीलवान भी हाथी को वश में रखता है- अपने साहस एवं निर्भयता के कारण। सपेरा को देखिये, कितने सांपों के साथ खेलता है और सांपों को वश में रखता है कारण निर्भय है।

साहसी व्यक्ति कभी अवसरवादी नहीं बनेगा, सिद्धान्तवादी बनेगा। विजय न हो, तब भी सिद्धान्तों से समझौता नहीं करेगा। जिस प्रकार पत्नी की परीक्षा गरीबी में, योद्धा की परीक्षा रणांगन में उसी प्रकार साहसी व्यक्ति की परीक्षा संकट के समय होती है। ख्याल रखें मनुष्य अविचार से हमेशा भयभीत रहेगा लेकिन श्रद्धा से निर्भय एवं साहसी हो जायगा। साहसी व्यक्ति बाहर भीतर से हमेशा शांत रहेगा। शारीरिक श्रम से शरीर की शक्ति बढ़ती है लेकिन तप से आत्मबल, मनोबल या साहस बढ़ता है। एक जिन्दा मनुष्य ही पानी की धारा के विपरीत तैरने का साहस रखता है। मुर्दा तो पानी की तेज धारा के साथ बह जाता है। जीत ही उनको मिली जो हार से जमकर लड़े हैं। हार के डर से डिगे जो वे धराशायी पड़े हैं। महमूद गजनवी ने सत्रह बार सोमनाथ मंदिर पर चढ़ाई की और हर बार हारा। लेकिन अपनी अठारहवीं बार की चढ़ाई में जीत गया। कारण अपना साहस नहीं खोया। हम पत्थर को तोड़ते हैं। बीसवीं चोट पर टूटता है तो यह न समझना कि पहले की उन्नीस चोटें बेकार गईं। उन उन्नीस चोटों ने उसे

जर्जर बनाया और बीसवीं चोट में टूट गया। संकल्पधारी मनुष्य के मन में भय, बाधा, विपत्ति, आपदा, अवरोध, परिस्थिति, संकट आदि शब्द अपने अर्थ खो चुके होते हैं। संकल्पधारी केवल साहसी व्यक्ति ही हो सकता है। एक बार भगवान बुद्ध को किसी ने पूछा 'भगवान चट्टान से भी कठोर क्या है?' बुद्ध ने उत्तर दिया 'लोहा जो चट्टान को तोड़ देता है।' फिर उसने पूछा लोहा से कठोर क्या है, बुद्ध ने कहा 'अग्नि' जो लोहे को पिघला देती है। फिर पूछा कि अग्नि से ज्यादा शक्तिशाली कौन तो बुद्ध ने कहा जल जो अग्नि को ठंडा कर देता है। फिर पूछा कि जल से भी प्रबल कौन तो बुद्ध ने कहा वायु जो मेघों को भी उड़ाकर ले जाता है। तो पुनः प्रश्न किया कि भगवान अन्तिम एवं अपराजेय शक्ति कौन सी है उसे बताने की कृपा करें तो बुद्ध ने कहा कि संकल्प शक्ति। संकल्पशक्ति के सहारे मनुष्य असंभव को भी संभव कर सकता है। उसे कोई परास्त नहीं कर सकता। संकल्पशक्ति एवं साहस दोनों एक शब्द के पर्याय हैं। अतः जीवन में सफल होना है तो साहसी बनो।

♦

चिता, चिन्ता एवं चिन्तन

अगर शब्द गठन की दृष्टि से देखें तो चिता एवं चिन्ता में ज्यादा अन्तर नहीं है। केवल चिन्ता में ऊपर एक बिन्दी है। लेकिन अर्थ पर दृष्टिपात करें तो आप पाएंगे कि अर्थ में गहरा अन्तर है। चिता हमारे मृत शरीर को एक बार जला कर हमारा अस्तित्व हमेशा के लिए समाप्त कर देती है लेकिन चिन्ता न तो हमारा अस्तित्व समाप्त करती है और न एक बार में हमारा पिण्ड छोड़ती है। जब तक हम चिंतित रहेंगे, चिन्ता हमें सताती रहेगी। यानी चिता मुर्दे को जलाती है तो चिंता जिन्दे को। चिता हमारा अस्तित्व समाप्त करती है जबकि चिन्ता हमारा अस्तित्व बरकरार रखते हुए हमें परेशान करती रहती है। हमें चिता पर दूसरे लोग ले जाते हैं। चिंतित होने के हम स्वयं कारण हैं। हम चिता से पिण्ड नहीं छुड़ा सकते- एक न एक दिन हमें चिता पर जाना ही पड़ेगा। लेकिन हम चाहें तो चिंता से पिण्ड छुड़ा सकते हैं। चिता हमारे स्थूल शरीर को समाप्त करती है लेकिन चिंता का कारण हमारा सूक्ष्म शरीर यानी मन, बुद्धि है। चिंतित व्यक्ति के शरीर में आवश्यक नहीं कि ऐसे परिवर्तन आ जाएं जिन्हें देखकर आप कह सकें कि आप चिंतित हैं। चिता अवश्यम्भावी है, लेकिन चिन्ता से आप जब चाहें पिण्ड छुड़ा सकते हैं। यानी हम स्वयं चिंता के कारण हैं। प्रायः बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो चिन्ता मुक्त हों। हमें चिन्ता का कारण जानने की आवश्यकता है। उसे दूर करने के क्या उपाय हो सकते हैं। एक आदमी चिंतित क्यों है और दूसरा चिन्ता मुक्त क्यों है? चिंता वास्तविक होती है या हमेशा काल्पनिक होती है। चिंता हमारे तन मन को हमेशा नुकसान करती है या इससे किसी प्रकार से कुछ फायदे भी हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह जवान हो या बूढ़ा, स्त्री हो या पुरुष-चिन्ता मुक्त होना चाहता है। अब हम आगे इसका विवेचन करने का प्रयास करेंगे कि हमें चिन्ता क्यों होती है और उससे छुटकारा कैसे मिले। चिंता कभी कभी इतनी भयंकर होती है कि चिंता के कारण आदमी रोगग्रस्त हो जाता है, स्वभाव में गुणात्मक परिवर्तन आ जाएगा। चिढ़चिढ़ापन आना एक चिंतित व्यक्ति का गुण हो जाता है। चिंतित व्यक्ति हमेशा भयभीत रहता है। हर आदमी चाहता है कि हम चिंता मुक्त हों। हम चिंता

के कारण जानने का प्रयास करेंगे तथा उन चिन्ताओं को दूर कैसे किया जाए उसकी चर्चा करेंगे। कैसे कुछ लोगों की चिंता दूर हुई है उसको जानने का प्रयास करने पर हम भी चिन्ता मुक्त हो सकते हैं।

आदमी जब भूतकाल या भविष्य काल में जियेगा तो ही चिंतित होगा। जब तक वर्तमान में जियेगा उसे चिंता नहीं सताएगी। बच्चे वर्तमान में जीते हैं, अतः चिन्ता मुक्त हैं। जवान भविष्य काल में जीते हैं। उनके सपने और अरमान उन्हें भविष्य में हम ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे की गर्वोक्ति से परेशान रखेंगे। चिंता कहां से उठती है? जब हम किसी चीज या उद्देश्य को प्राप्त करने की कामना करते हैं तो हमें चिन्ता होनी प्रारम्भ हो जाएगी। यानी हमारी चिन्ता का कारण हमारी इच्छाएं हैं। इच्छाओं और आवश्यकताओं में मौलिक अन्तर है। हमारी इच्छाएं कभी समाप्त नहीं होंगी। एक पूरी होगी तो दूसरी इच्छा चालू हो जाएगी लेकिन हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में ज्यादा परेशानी नहीं होती। हमें पहनने को वस्त्र मिल जाए, रहने को मकान मिल जाए, जीने के लिए भोजन मिल जाए तो हमारी आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी और हम चिन्ता मुक्त रहेंगे। आवश्यकताएं सीमित होती हैं, पर इच्छाएं अनन्त होती हैं। इच्छाओं की अनन्त श्रृंखला के कारण ही हम परेशान रहते हैं। अगर मनुष्य की इच्छाएं समाप्त हो जाएं तो चिन्ता भी समाप्त हो जाएंगी।

एक बूढ़ा व्यक्ति हमेशा भूतकाल में जियेगा यानी 'हमने ऐसा किया वैसा किया'। उसे अपने भूतकाल का स्मरण होगा और जब देखेगा कि हमने जैसा किया और जीवन जैसा जिया वैसा अब नहीं हो रहा है तो उसकी चिन्ता प्रारम्भ हो जाएगी। बूढ़ा व्यक्ति स्वयं तो करने में अपने को अक्षम पाएगा लेकिन उसके अरमान रहेंगे कि कम से कम जिन उपलब्धियों को मैंने प्राप्त किया उसको मेरे साथ या परिवार वाले भी प्राप्त करें। मैंने इनको जो संचित धन या व्यापार दिया है उसकी वृद्धि न कर सकें तो कम से कम उसकी सुरक्षा तो जरूर करें। जब देखेंगे कि न तो वृद्धि हो रही है और न सुरक्षा, बल्कि नुकसान हो रहा है तो उनका चिंतित होना स्वाभाविक हो जाएगा। यह भी देखा गया है कि बढ़ी उम्र में यानी साठ साल की उम्र के बाद अगर आदमी चिन्ताग्रस्त रहता है तो बहुत सी शारीरिक बीमारियां भी हो जाती हैं और उसका तन एवं मन उसे हमेशा परेशान किये रहता है। जवान की इच्छाएं तथा बूढ़े व्यक्ति का असन्तोष उसकी चिन्ता का कारण बनते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि क्या चिंता करना सार्थक है या हांनिकारक? क्या चिन्ताएं हमारी उन्नति या उपलब्धियों में किसी भी प्रकार से सहायक या साधक होती हैं या हमेशा हमारे लिए बाधक होती हैं। आप विश्वास रखें, आपकी

उन्नति एवं उपलब्धियां आपके पुरुषार्थ एवं शुभ संकल्प के कारण होती है, न कि चिन्ता के कारण। चिन्ता हमेशा हमारी प्रगति में बाधा उत्पन्न करेगी। कारण चिन्ता कभी यथार्थ नहीं होती। यह हमेशा ही काल्पनिक एवं सत्य से परे हुआ करती है। अतः चिन्ता हमेशा त्याज्य है। आप जितने ही चिन्तामुक्त होते जायेंगे, आपका विश्वास एवं संकल्प उतना ही बढ़ता जाएगा। चिन्ता के कारण आप हमेशा परेशान रहेंगे। आपका काम भी हमेशा अधूरा पड़ा रहेगा। अगर आप चाहें कि आपका आज का काम आज ही पूरा हो जाए तो ऐसा होना उसी व्यक्ति के लिए सम्भव हो पाएगा जो चिन्ता मुक्त एवं संकल्पयुक्त हो जाएगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम चिन्ता मुक्त हों कैसे? मुझे एक प्रकरण याद आता है। एक व्यक्ति जो अत्यधिक चिन्तित था और यह मानता था कि मेरे से अधिक चिन्तित व्यक्ति शायद ही मिले। वह व्यक्ति एक महात्मा के पास जाता है और महात्मा जी से अपनी चिन्ता का निवारण पूछता है। महात्मा जी ने उससे पूछा कि तुम्हारी चिन्ता क्या है तो उसने पारिवारिक, व्यापारिक तथा व्यवहारिक चिन्ताएं बतानी प्रारम्भ कर दी। आधा घंटा तक उसने अपनी चिन्ताएं बताई और महात्मा जी ने बड़े ध्यान से सुना। जब उसने बताना बन्द कर दिया तो महात्मा जी ने उससे पूछा कि बता दुनिया में सबसे सुन्दर फूल कौन सा है? तो उसने बताया गुलाब। फिर महात्मा जी ने कहा कि तुमने बिना कांटों के पेड़ में गुलाब देखा है? गुलाब के पेड़ में कांटे पहले आते हैं और गुलाब बाद में। कितने अधिक कांटों के बीच थोड़े से गुलाब खिलते हैं। इतने कांटों के बीच भी गुलाब अपनी सुगन्ध और सुन्दरता बनाए रखता है। फिर महात्मा जी ने उससे पूछा कि दुनिया का सबसे पवित्रतम फूल कौन सा है? तो उसने कहा 'कमल'। तो फिर महात्मा जी ने पूछा कि बिना कीचड़ के कमल देखा है? कीचड़ सबसे गन्दा और उससे निकला फूल सबसे पवित्र। तुमने दीपक देखा है? जो स्वयं नहीं जला, वह क्या दुनिया को प्रकाश दे पाया है? इसी प्रकार एक पत्थर में भगवान की मूर्ति को जब तरासा जाता है तो कितनी चोटों के बाद मूर्ति उभर कर सामने आती है। तुम अपनी परेशानियों के कारण अपने को परेशान न समझो, उन्हें अपनी तरक्की और प्रगति का कारण समझो। अगर पहले कांटे न आते तो गुलाब खिलने की संभावना शून्य थी। इसी प्रकार अगर पहले कीचड़ न होता तो कमल का प्रश्न ही नहीं था। दीपक जलने पर ही प्रकाश दे पाया और पत्थर चोट खाने पर ही मूर्ति दे पाया। आज गांधी गांधी न होते अगर उन्होंने अन्याय के प्रतिकार हेतु संघर्ष न किया होता। आज बुद्ध भी भगवान बुद्ध न होते अगर उन्होंने राज सुख, पत्नी सुख, पुत्र सुख न छोड़ा होता तथा कठिन तपस्या एवं साधना न की होती। गांधी या बुद्ध कभी चिन्ता नहीं करते थे। अपनी समस्याओं के निराकरण हेतु

आप संकल्पबद्ध हो जाएं। चिन्ता रूपी कोहरा छंट जाएगा और आप अपने को यथार्थ के धरातल पर पाएंगे।

समस्याओं का निराकरण तो है लेकिन चिन्ताओं का निराकरण कभी नहीं होता। इसका एकमात्र कारण है कि चिन्ताएं हमेशा काल्पनिक होती हैं और समस्याएं हमेशा वास्तविक। चिन्ताएं हमेशा अकारण होती हैं और समस्याओं का कोई न कोई कारण। कारण का तो निवारण हो जाएगा। चिन्ता के कारण हमेशा मन-बुद्धि का संतुलन बिगड़ा रहेगा। काम जब भी पूरा होगा, मन बुद्धि के संतुलन के कारण। अतः अगर जीवन सफल एवं सुफल बनाना है तो चिन्ता कभी न करना। जो भी समस्या आए उसे दूर करने के लिए संकल्पबद्ध हो जाएं। अगर समस्या समाधान का रास्ता न दिखाई पड़े तो प्रबुद्ध एवं ज्ञानी लोगों के पास जाएं और वे हंस की तरह आपकी हर समस्या को दूध एवं पानी की तरह अलग अलग कर देंगे। प्रबुद्ध लोग किस तरह से समस्याओं का समाधान करते हैं उसका भी एक उदाहरण है। एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को कुआं बेचा। लेकिन उसने बताया कि हमने कुआं बेचा है, पानी नहीं बेचा है और कुआं खरीदने वाले को कुएं के पानी का उपयोग करने से मना कर दिया। कुआं बेचने वाले में एवं खरीदने वाले में इसी को लेकर हमेशा द्वन्द्व रहता। दोनों ही किसी प्रबुद्ध व्यक्ति के पास गये और अपना अपना तर्क दिया। प्रबुद्ध व्यक्ति ने जो फैसला सुनाया उससे दोनों पक्ष संतुष्ट हो गये और दोनों को अपनी गलतियों का एहसास हो गया। प्रबुद्ध व्यक्ति ने कहा कि तूने कुआं बेचा है, पानी नहीं बेचा। तो तुमने उसके कुएं में इतने दिनों तक पानी रखा तो उसको इसका किराया भरो और आगे अपना पानी निकाल कर इसे खाली कुआं हैण्ड ओवर करो। अगर दोनों पक्ष प्रबुद्ध व्यक्ति के पास जाने को राजी हो जाएं तो निश्चित समस्या का निराकरण हो जाएगा। हमने उपरोक्त लेख में चिन्ता के कारण और निराकरण को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। मुझे विश्वास है कि आप चिन्ता मुक्त हो सकेंगे।

चिता एवं चिन्ता के बाद चिन्तन शब्द की चर्चा जब होती है तो यह पता चलता है कि इस शब्द के बड़े गहरे अर्थ हैं। चिन्तन में मन का स्थिर होना आवश्यक है। ज्यों ज्यों चिन्तन बढ़ता जाएगा, चिन्ता अपने आप समाप्त होती जाएगी। जैसे प्रकाश तथा अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार चिन्ता एवं चिन्तन भी एक साथ नहीं रह सकते। चिन्ता हमेशा परेशान करेगी लेकिन चिन्तन हमें हमेशा प्रसन्नता प्रदान करेगा। हमारे जीवन यात्रा का उद्देश्य चिन्तित होना नहीं, चिन्तनशील होना है। चिन्ता हमेशा दुःखदायी होती है लेकिन चिन्तन हमेशा ही आनन्ददायक है। अगर चिन्तामुक्त होना है तो अपनी चिन्ता को चिन्तन में बदल दें। चिन्तन कभी काल्पनिक नहीं होगा, वह हमेशा यथार्थ का होगा।

चिन्तन हमेशा एक दिशा में होगा जबकि चिन्ता की कोई दिशा नहीं होती। एक चिन्ता गई तो दूसरी प्रारम्भ हुई और चिन्ता इसी प्रकार एक के बाद दूसरी सताती रहेगी। अतः चिन्ता को चिन्तन में बदलने के लिये आवश्यक है कि अच्छे धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करें, विशेष रूप से गीता का। ऊंचाई को प्राप्त सन्तों का समागम एवं सान्निध्य भी हमें अपने आप चिन्तामुक्त करता है। मैंने स्वयं अनुभव किया कि मां आनन्दमयी के पास जाते ही चिन्ताएं अपने आप निर्मूल हो जाती थीं और चिन्तन की प्रक्रिया चालू हो जाती थी।

◆

पारस पत्थर

हमारे देश में प्रचलित है कि पारस पत्थर में लोहा स्पर्श करा दिया जाय तो वह सोना हो जायगा। साथ ही यह भी सत्य है कि आज तक किसी ने पारस पत्थर देखा ही नहीं जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो सके। विश्व इतिहास भी इसका साक्षी है कि कहीं इसका ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता कि इतिहास के किसी कालखण्ड में किसी ने पारस पत्थर देखा हो और लोहे के स्पर्श से सोना बनना प्रमाणित हो। अगर पारस पत्थर होता तो क्या गरीब देशों में गरीबी रहती? बिल्कुल नहीं रहती। कारण जहां लोहा आज बीस रुपये किलो बिक रहा है वहीं सोना पांच लाख रुपये किलो है। यानी ढाई हजार गुना अधिक मूल्यवान। फिर पारस पत्थर की क्षमता कोई सीमित तो है नहीं कि एक दिन या एक वर्ष में इतना ही लोहा स्पर्श कराने से सोना हो जाएगा। हमारे यहां शास्त्र वचन है कि समुद्र मंथन से लक्ष्मी का आगमन हुआ तथा 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी' यानी उद्यमी पुरुष लक्ष्मी को प्राप्त करता है। लेकिन पारस के स्पर्श से सोना होता तो शास्त्र की इस उक्ति को ही झुठला देता। स्पर्श में कहीं परिश्रम है ही नहीं। अतः यहां सोना रूपी लक्ष्मी का आगमन बिना परिश्रम के हो जाता। इस प्रमाण से भी यह सिद्ध नहीं होता कि पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा का सोना होना संभव है। इस प्रकार किसी भी दृष्टि से यह प्रमाणित नहीं होता कि पारस पत्थर होता है जो लोहे को सोना बना दे।

पारस पत्थर का होना भले ही सत्य न हो लेकिन लोकप्रसिद्ध किंवदन्ती तो है ही। आखिर इस असत्य उदाहरण से हमारे शास्त्रकार हमें कौन सा संदेश देना चाहते हैं। भले ही जड़ जगत में यह संभव न हो, क्या जीव जगत में ऐसा संभव है? जड़ जगत में लोहा से सोना होना संभव नहीं है लेकिन यह तो संभव हो ही सकता है कि लोहे की तरह सबसे कम मूल्य का मनुष्य सबसे महंगे धातु सोने की तरह मूल्यवान हो जाय। यानी समाज के लिये सबसे अधिक निकृष्ट मनुष्य किसी विशिष्ट व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर सबसे अधिक उपयोगी एवं मूल्यवान हो जाय। अगर ऐसा जीव जगत में संभव हो सके तो वह महान व्यक्ति पारस

पत्थर ही है जिसके सम्पर्क में आने पर निकृष्ट मनुष्य भी सर्वोत्कृष्ट हो जाय। इतिहास में खोजने पर ऐसे लोग मिल जायेंगे। अंगुलिमाल डाकू था। केवल डाका ही नहीं डालता था, अंगुली काट कर अपने गले का हार भी उन्हीं अंगुलियों से बना लेता था। अंगुलिमाल समाज का सबसे निकृष्ट व्यक्ति। अंगुलिमाल ने जब बुद्ध को देखा तो उद्यत हो गया उनके ऊपर प्रहार करने के लिये। बुद्ध ने कहा अंगुलिमाल ठहर जा। मुझे मारने से पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे या अंगुलिमाल जो डाल तोड़ कर ले आया जो बुद्ध ने कहा कि जा इस डाल को उसी वृक्ष में पुनः जोड़ दे। अंगुलिमाल सहम गया और बोला यह तो संभव नहीं है। तब बुद्ध ने कहा कि जब तू किसी को जीवन नहीं दे सकता तो किसी का जीवन लेने का तुझे क्या अधिकार है? बुद्ध के इस प्रश्न ने अंगुलिमाल को झकझोर दिया। वह गहराई में डूब गया और सोचने लगा कि किसी को मारना कहां तक न्यायसंगत है। उसे जब लगा कि मारने का मैं अक्षम्य अपराध करता हूं तो तुरन्त ही अपने हथियार फेंक कर बुद्ध के शरणागत हो गया। बुद्ध से दीक्षा देने की प्रार्थना की और तथागत ने उसे दीक्षा देकर बुद्ध संघ में शामिल कर लिया। अब अंगुलिमाल पूर्णतः बदल चुका था। उसकी सारी हिंसक वृत्ति अहिंसक हो गई। अंगुलिमाल जितना क्रूर था उतना ही अक्रूर हो गया। उसी अंगुलिमाल ने अपनी सारी शक्ति एवं ऊर्जा बुद्ध धर्म के प्रसार प्रचार में लगा दी। ऊर्जा का परिवर्तन, यही है बुद्ध का पारस होना। यही है अंगुलिमाल का लोहे से सोना होना। इसी तरह के उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। वाल्मीकि डाकू से महान कवि हो गये और वाल्मीकि रामायण जैसे महान ग्रंथ की रचना कर दी। कालिदास महा मूर्ख थे लेकिन विश्ववन्द्य कवि हो गये। तुलसीदास अति कामी थे लेकिन परिवर्तन आया तो ऐसा आया कि उनकी रचना तुलसी कृत रामचरित मानस की टक्कर का ग्रंथ विश्व साहित्य में नहीं मिलेगा। भले ही ऐतिहासिक दृष्टि से पारस पत्थर का होना प्रमाणित न होता हो लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से जीव जगत में ऐसा देखने को मिलता है। इस तरह के परिवर्तन से उद्योग से लक्ष्मी के आगमन की कहावत भी नहीं झुठलाती।

पारस पत्थर की एक और विशेषता है कि केवल लोहे को स्पर्श से सोना बनाता है। अगर चांदी, तांबा, पीतल, अल्युमिनियम आदि अन्य धातुओं को स्पर्श कराया जाय तो कोई परिवर्तन नहीं आयेगा जब कि लोहे के मुकाबले अन्य धातु अधिक महंगे हैं। धातु जगत में लोहा सबसे सस्ती धातु है और सोना सबसे महंगी धातु है। केवल सबसे सस्ता चीज ही सबसे महंगा होती है। इस परिवर्तन के आध्यात्मिक रहस्य को भी समझना चाहिये। अत्यधिक निम्नकोटि को अत्यधिक मूल्यवान बनाना आसान है, कारण केवल दिशा परिवर्तन की आवश्यकता है।

जिनका कुछ भी मूल्य है उनमें पूरा परिवर्तन लाना अत्यन्त कठिन है कारण उनका तर्क वितर्क उन्हें परिवर्तित होने में बाधक होता है।

जिस प्रकार पारस पत्थर होता नहीं उसी प्रकार सर्पमणि होती ही नहीं। कहावत है कि सर्पमणि स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित होती है। उसे न तो सूर्य का प्रकाश चाहिये और न चन्द्रमा का। जब सर्प को मणि होती ही नहीं तो सर्पमणि शब्द का गठन भी पारस पत्थर की तरह काल्पनिक है। लेकिन व्यवहार जगत में यह संभव है। कबीर, रैदास आदि अध्यात्म जगत में महान विभूति हो गये लेकिन इन्होंने न तो गीता से ज्ञान लिया और न रामायण से प्रेरणा ली। अपने ही ज्ञान से प्रकाशित हो गये। जिस प्रकार सर्पमणि अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होती है, उसी प्रकार कबीर रैदास आदि अपने ही ज्ञान से ज्ञानी हो गये।

हमारे शास्त्रों में हंस का वर्णन आता है। हंस की विशेषता है कि वह दूध एवं पानी को अलग अलग कर देता है। लेकिन इतिहास साक्षी है कि हंस होता ही नहीं। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो महान पुरुष ही नीर क्षीर विवेक वाले हैं। वे सभी परमहंस हैं। उनके सामने आप कितनी ही उलझनें लेकर जाएं, वे दूध पानी की तरह उसे सुलझा देंगे। उनके सामने जाने से आपकी उलझन, उलझन नहीं रहेगी और वह सुलझ जायेगी। ऐसे नीर क्षीर विवेकी पुरुष को ही हंस या परमहंस कहा जाता है।

इसी प्रकार के और भी शब्द होंगे जैसे कामधेनु गाय। यानी आप जब चाहें तब दूध ले लें। कल्प वृक्ष यानी जब चाहे तब फल दे दे; आदि आदि।

इस लेख के माध्यम से मैं यह बतलाने का प्रयास कर रहा हूं कि शब्दों के निहितार्थ को हम लोग समझने का प्रयास करेंगे तो उसकी सच्चाई समझ में आ जायगी। एक शब्द के माध्यम से एक चरित्र का संकेत मिलता है। वही चरित्र ही उस शब्द का निहितार्थ है।

♦

सुख क्या है और कहाँ है

मैं जब श्रीमद्भागवत में माता कुन्ती का प्रकरण पढ़ रहा था तो मुझे लगा कि आज तक किसी ने वरदान में विपत्तियाँ नहीं मांगी किन्तु माता कुन्ती ने भगवान कृष्ण से कहा 'हे जगद्गुरु, हमारे जीवन में सर्वदा पद पद पर विपत्तियां आती रहें क्योंकि विपत्तियों में ही निश्चित रूप से आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आना पड़ता। ऊंचे कुल में जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्ति के कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता, क्योंकि आप तो उन लोगों को दर्शन देते हैं जो अकिंचन हैं। एक प्रचलित कहावत है:-

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को होय।।

वृद्ध, रोगी एवं मृतक को देखकर राजकुमार सिद्धार्थ चिन्तित रहने लगे। वृद्धावस्था, रोग एवं मृत्यु से लोगों को कैसे छुटकारा मिल सकता है और इसका उपाय क्या है? अपने विलासी जीवन से उन्हें घृणा हो गई, मन में वैराग्य हो गया। दुःख से छुटकारा पाने का मार्ग खोजने के लिये मन उद्विग्न हो उठा। निकल पड़े महल, पत्नी एवं पुत्र को छोड़कर। सात वर्ष तक घूमते फिरते रहे। अन्त में उनको ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने दुःख से मुक्ति का उपाय खोज निकाला। राजकुमार अगर महल में ही रहते तो दुःख मुक्ति का उपाय न खोज पाते। कुन्ती ने विपत्तियां मांगी कि विपत्तियों में प्रभु के दर्शन होते रहेंगे। प्रभु दर्शन के सुख के आगे दुःख भी दुःख नहीं रह जाते। बुद्ध को महल छोड़ने में जो सुख मिला वह महल में नहीं मिलता।

महाभारत युद्ध के पहले अपने स्वजनों को देखकर अर्जुन को विषाद (दुःख) हुआ। अगर अर्जुन को यह दुःख न होता तो भगवान कृष्ण का अमर संदेश 'गीता' के रूप में प्रवाहित न होता। गीता ने केवल अर्जुन के विषाद को दूर नहीं किया। आज के पांच हजार वर्ष से ज्यादा पहले की गीता आज भी सबका दुःख हरण कर रही और जब तक इस पृथ्वी पर मनुष्य रहेगा, गीता उसका दुःख

दूर करती रहेगी। इस प्रकार दुःख से ही सुख पैदा होता है सुख की उत्पत्ति दुःख से होती है। प्रकृति में भी पहले कांटे आये, तब गुलाब आया। पहले कीचड़ आया तब कमल आया। पहले रावण आये तब राम आये। पहले कंस आये, तब कृष्ण आये।

पहले विष आया, तब अमृत आया एवं पहले गुलामी आई, तब गांधी आये। श्रीमद्भागवत में भी भगवान ने यही बात दोहराई है कि सुख के साधन-उपकरणों को त्यागे बिना कोई भी परमानन्द नहीं प्राप्त कर सकता। पांच वर्ष के बालक ध्रुव को राजा (पिता) की गोद से हटा देने पर जब उसे ठेस लगी तभी वह अखंड दुःखमय तप करके संसार के सर्वोच्च ध्रुव पद का अधिकारी हुआ। कुन्ती पुत्र पाण्डवों ने महान कष्ट सहने के बाद ही सुख साधन सम्पन्न पृथ्वी का राज्य प्राप्त किया। हमारे पूर्वज महार्षियों ने अपने उग्र तप से ही सभी सिद्धियों को प्राप्त किया और महान् गौरव मण्डित हुये। आधुनिक काल में भी गांधी, विनोबा, तिलक, महामना मालवीय, सुभाष आदि का जीवन भी इसका ही उदाहरण है और तो और स्वयं मानव शरीर धारण करने वाले भगवान राम को भी पहले वनवास और अन्य भयंकर क्लेश सहन करने के बाद ही राजसत्ता मिली। इसी भाँति भगवान कृष्ण को जन्म से ही नाना प्रकार की आपत्तियों और असुरों से जूझना पड़ा। इसके बाद ही पूर्णावतार के रूप में उनकी ख्याति हुई। जगद्गुरु शंकराचार्य का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्ष का रहा जिससे उन्हें साक्षात् शंकर का अवतार माना गया। महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द को भी इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिये।

बलिदान के कारण ही भारत को हम आज स्वतंत्र देखते हैं। उन सभी बलिदानियों का त्याग हमारे हृदयदेश पर अंकित है और अमर है। बिना दुःख उठाये लोक परलोक का सभी सुख अप्राप्य है। कबीर साहब ने कहा है:-

सुख के माथे सिल पर नाम हिये से जाय।
बलिहारी वा दुःख की पल पल नाम रटाय।

पाण्डवों की माता कुन्ती ने तो भगवान कृष्ण से वरदान में ही यही मांगा था कि हे कृष्ण, आप मुझे विपत्तियों (कष्टों) में बार-बार डाला करें जिससे मुझे सर्वदा आपकी स्मृति बनी रहे। जिसको संसार में श्रुति, पुराण, महान् गुरुजन प्रयत्न करने पर भी नहीं सिखा सकते, आपत्ति काल का एक ही थपेड़ा सिखा देने हेतु पर्याप्त है।

तो सुख क्या है? यह लौकिक सम्पत्ति, ऐश्वर्य, परिवार आदि में नहीं है। यह सब केवल सुख का आभास मात्र है। असली सुख तो इनके त्याग में है। जिसने त्याग किया वही सुखी हुआ। त्याग में सुख है और जब हमारी आसक्ति

नहीं रहेगी तो हम सुखी हो जायेंगे। एक राजा भी संन्यासी के आगे झुक जाता है। राजा परिग्रह का प्रतीक और संन्यासी अपरिग्रह का। याने संग्रह झुक जाता है त्याग के आगे। यह रहीम की वाणी प्रसिद्ध ही है:-

चाह गई चिन्ता मिटी मनवा बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिये वाही शाहंशाह।।

♦

दर्शन और नीति

'दर्शन जीवन का मूलाधार है। यह सत एवं असत दोनों को समान रूप से प्रकाशित करता है। यह विनाशी एवं अविनाशी का स्पष्ट विभाजन करता हुआ वास्तविक जीवन का दिग्दर्शन कराता है।

वास्तविक जीवन का रहस्य या जीवन दर्शन पर आधारित सिद्धान्त है (१) जो कुछ मिला है वह अपना नहीं है और केवल अपने लिये नहीं है, (२) मैं और मेरा के नाश में जीवन की पूर्णता निहित है। इन सिद्धान्तों को जीवन में चरितार्थ करने के लिये कौन सी नीति अपनाई जाय! यह माना गया है कि दर्शन एक प्रकाश है और नीति उसका क्रियात्मक रूप है। नीति दर्शन का व्यावहारिक प्रयोग है। ये नीतियां दर्शन सिद्धान्त से प्रतिपादित तथा उन्हीं पर आधारित हैं। अपना जो दर्शन है अर्थात् जीवन को देखने की अपनी जो दृष्टि है उसी के अनुरूप जीवन को ढालने में ये नीतियां साधन रूपा हैं।

नीति का पालन व्यवहार को सुन्दर तथा सुविधाजनक बनाता है। इसको सभी नीतिज्ञ जानते और मानते हैं। इसी कारण मानव समाज में विभिन्न प्रकार की नीतियां प्रचलित हैं जो परस्पर सम्बन्ध एवं व्यवहार को सुव्यवस्थित रखती हैं। अतः व्यावहारिक जीवन को आदर्श जीवन बनाने के लिये नीति का अनुसरण अनिवार्य है। परन्तु नीति अनीति में भेद है। जो नीति हमें अपने लक्ष्य की ओर ले चले वह असली नीति है, बाकी जो लक्ष्य से दूर ले जाय वह अनीति है। नीति ही स्वीकार्य है, अनीति सर्वथा अस्वीकार्य एवं त्याज्य है।

कुछ सर्वमान्य नीतियां हैं जो हमारे जीवन को आलोकित करती हैं-

(१) अपनी पद्धति में विशेषता तथा दूसरे की पद्धति में न्यूनता का दर्शन करना ही भेद एवं संघर्ष को जन्म देता है।

(२) अपना गुण एवं पराये में दोष देखने से पारस्परिक एकता सुरक्षित नहीं रहती।

(३) अपने सुख-दुख का कारण दूसरों को मानना भूल है।

(४) हम यह मानकर चलें कि अन्याय का अन्त न्याय तथा प्रेम से होता है।

(५) मिली हुई सामर्थ्य एवं सम्पदा का दुरुपयोग मत करो, केवल सदुपयोग करो।

(६) व्यक्ति चरित्रवान होगा तो ही समाज चरित्रवान होगा।

(७) नीति वही सार्थक है जो दोषों के नाश में और निर्दोषता की अभिव्यक्ति में सहायक हैं।

(८) विवेक ही हमारा विधान है। विधान का निर्माण वीतराग पुरुष ही कर सकते हैं। विधान की अधीनता में ही स्वाधीनता है। जो विधान हमेशा सर्वहितकारी नहीं है वह अनुकरणीय नहीं है।

(९) भूल को भूल मान लेना भूल के नाश में हेतु है।

जो नीति जीवन और विधान की एकता में समर्थ नहीं है वह नीति नहीं, अनीति है। उसका मानव जीवन में कोई स्थान नहीं है। नीति का क्रियात्मक रूप न्याय है। निर्दोषता के बिना जीवन की उपयोगिता सिद्ध नहीं होती। कोई भी व्यक्ति सर्वांश में अपने को दोषी मानकर जीवित नहीं रहना चाहता और न कोई मानव सर्वांश में दोषी हो सकता है। दोष का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है अपितु गुणों के अभिमान से ही दोष पोषित होते हैं। अतः विधान से अनुशासित मानव को किसी अन्य शासन की अपेक्षा नहीं रहती।

अपने दोष का ज्ञान जिस ज्ञान में है वही ज्ञान विधान का प्रतीक है। ज्ञान दोष का प्रकाशक है, नाशक नहीं। निर्दोषता की कामना ही दोष का नाशक है। न्याय की आवश्यकता निर्दोषता के लिये है, किसी के विनाश के लिये नहीं। न्याय के नाम पर किसी का विनाश करना और किसी को हानि पहुंचाना, न्याय के रूप में घोर अन्याय है। अपने पर न्याय करने की पद्धति प्रचलित हो जाने पर किसी अन्य न्यायाधीश की अपेक्षा नहीं रहती। अपने लिये किसी अन्य न्यायाधीश की आवश्यकता अपने प्रति न्याय न करने से होती है। कोई भी न्यायाधीश अन्य के प्रति यथेष्ट न्याय नहीं कर पाता। यही कारण है कि शासन प्रणाली के द्वारा निर्दोषता की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। अब प्रश्न है कि हम अपना दोष कैसे जानें? यह बात अनुभव सिद्ध है कि व्यक्ति आत्म चिन्तन के द्वारा अपने दोषों को जान लेता है। कठिनाई जानने में नहीं है, कठिनाई दोषमुक्त होने में है। दोषमुक्त होना तभी संभव है जब दोष मुक्त होने की उत्कट लालसा जागृत हो जाय। हम अपने प्रति जब न्याय प्रिय हो जायेंगे तो दोष को दोहराने की आवश्यकता महसूस ही नहीं होगी। यह तभी संभव है जब व्यक्ति अपने पर अपना शासन करे। अपने दोष का ज्ञान उन्हीं को होता है जो पर दोष दर्शन नहीं करते। की हुई भूल की वेदना अनिवार्य है, न दोहराने का दृढ़ संकल्प भी परम आवश्यक है।

समस्त विश्व एक है। उसमें स्वरूप की भिन्नता नहीं है कारण कि सारी सृष्टि एक ही प्रकार पंचभूतों से निर्मित है। परन्तु इन्द्रिय ज्ञान से उस एकता में अनेक प्रकार की भिन्नता का दर्शन होता है। जिस प्रकार किसी भी जलकण को सागर से भिन्न नहीं कर सकते अर्थात् प्रत्येक जलकण जलरूप ही है। उसी प्रकार किसी भी वस्तु या व्यक्ति को विश्व से विभक्त नहीं कर सकते। विश्व की दृष्टि से समस्त प्राणिमात्र एक हैं। एक शरीर में भी प्रत्येक अवयव की आकृति तथा कर्म अलग अलग है फिर भी शरीर के प्रत्येक अवयव में प्रीति की एकता है। कर्म में भिन्नता होने से प्रीति का भेद नहीं होता। इसके मूल में कारण यह है कि समस्त शरीर एक है। इसी प्रकार विश्व की एकता में आस्था कर ली जाय तो भाषा, मत, कर्म, विचारधारा, पद्धति, आकृति, रहन सहन आदि में भिन्न भिन्न प्रकार का भेद होने पर भी प्रीति की एकता सुरक्षित रह सकती है। यही अनेकता में एकता का दर्शन है। यही सच्चा "वसुधैव कुटुम्बकम्" है।

एक नियम यह भी है जो नहीं करना चाहिये उसके न करने पर वह स्वतः होने लगता है जो करना चाहिये। जिसके द्वारा किसी के अधिकार का अपहरण नहीं होता, उसके द्वारा दूसरों के अधिकार की सुरक्षा स्वतः होने लगती है। गतिशील जीवन में पतन का निरोध होते ही उत्थान स्वतः होने लगता है।

एक और ध्यान देने योग्य नीति है कि किसी की अवनति के द्वारा प्राप्त की हुई उन्नति अवनति ही है। आरम्भ में भले ही ऐसा प्रतीत होता हो किसी की हानि में किसी का लाभ है पर परिणाम में तो यही सिद्ध होगा कि किसी की हानि से उत्पन्न लाभ एक बड़ी हानि की तैयारी है। इसी भूल के कारण दो देशों में, दो वर्गों में, दो व्यक्तियों में, दो मतों में परस्पर संघर्ष होता रहता है। बल का उपयोग निर्बलों के विनाश में न करके उनके विकास में करना ही सार्थक माना गया है।

जब तक मानव विश्व से प्राप्त वस्तु को व्यक्तिगत मानता है तब तक उसका जीवन जगत के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होता क्योंकि प्राप्त वस्तुओं की ममता उसकी उदारता को अपरूप कर उस बेचारे को लोभ मोह आदि विकारों में आबद्ध कर देती है। उसका परिणाम यह होता है कि वह अप्राप्त वस्तुओं की कामनाओं में उलझ जाता है और अन्त में उसकी शान्ति भंग ही सारे अनर्थों का मूल है।

सेवक को भोग की रुचि नहीं होती। सेवक के आवश्यक संकल्प उसके निःसंकल्प होने पर भी स्वतः पूरे हो जाते हैं। क्योंकि उसका अपना कोई संकल्प नहीं है। जिसका अपना कोई संकल्प है वह सेवा नहीं कर सकता। इसी प्रकार बल पूर्वक किया हुआ भोग ह्रास का हेतु है, विकास नहीं। मिले हुये बल का भोग में व्यय करने से पतन ही होता है।

निर्भयता के बिना कर्तव्य को कर्तव्य जानकर उसका पालन और अकर्तव्य को अकर्तव्य जानकर उसका त्याग नहीं हो पाता। किसी भय के कारण बुराई न करने पर भी बुराई का नाश नहीं होता। इसी प्रकार किसी प्रलोभन से प्रेरित होकर किया हुआ कर्तव्य कर्म फलासक्ति में आबद्ध करता है। अतः अकर्तव्य को अकर्तव्य जानकर त्यागने तथा कर्तव्य को कर्तव्य जानकर करने से ही मानव कर्तव्य-परायण माना जाता है।

अपने अहित की आशा कोई भी किसी से नहीं करता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी के अहित की भावना किसी भी मानव को नहीं करनी चाहिये। जब तक प्राणी किसी का बुरा नहीं चाहता, तब तक अशुद्ध संकल्पों की उत्पत्ति ही नहीं होती, तो फिर अकर्तव्य में प्रवृत्ति हो ही कैसे सकती है। किसी को बुरा न समझने से विश्व की सेवा और अपनी शुद्धि स्वतः हो जाती है। शुद्धता की अभिव्यक्ति होने पर जीवन सभी के लिये उपयोगी स्वतः सिद्ध हो जाता है।

◆

कर्त्तव्य एवं अधिकार

आज आदमी अधिकार तो चाहता है लेकिन कर्त्तव्य कर्म करने में उदासीन है। ऐसी स्थिति जब तक रहेगी न व्यक्ति का भला होगा, न समाज का एवं न राष्ट्र का। आज सरकारी नौकरी किसी लड़के को मिल जाय और उसकी शादी की बात नौकरी मिलने के बाद चले तो शादी का रेट बढ़ जाता है। रेट कितना बढ़ता है यह निर्भर करता है उसे कितना कमाऊ पद मिला है। सरकारी नौकरी मिलने के बाद उसका रेट क्यों बढ़ा अगर इसकी गहराई में जाकर इसका कारण समझने का प्रयास करेंगे तो कई सच्चाइयां सामने आयेंगी। पहली सच्चाई आंयेगी कि कमाई केवल नौकरी की नहीं होगी, ऊपरी आमदनी भी मजे की होगी। दूसरी सच्चाई आयेगी कि जैसा पद वैसा अधिकार। जब अधिकार बढ़ेगा तो रुतबा भी बढ़ जायेगा। तीसरी सच्चाई आयेगी कि एक बार सरकारी नौकरी मिल गई तो समझो कि जीवन सफल हो गया। कारण काम करो या न करो, काम पर पूरे समय जाओ या कम समय जाओ, कभी न भी जाओ तो कोई पूछने वाला नहीं। सवाल पूछेगा कौन? कारण पूछने वाला भी इसी तरह करता है तो भय किसका? अगर काम पर आ भी गये तो काम करें या नहीं, कौन देखेगा? काम के सम्पादन की कोई समय सीमा नहीं। अगर किसी के दबाव में काम करना ही पड़े तो ऐसा अड़ंगा लगा देंगे कि फाइल घूमती रहे। उसका निस्तारण होगा ही नहीं। ऊपर के अधिकारी की हिम्मत नहीं कि नीचे के अधिकारी द्वारा गलत लिखे गये को ठीक कर सकें। ऐसा होता क्यों है? कारण स्पष्ट है। हम अपने अधिकारों के प्रति तो जागरूक हैं लेकिन अपने कर्त्तव्यों के प्रति लापरवाह एवं उदासीन हैं। प्रकृति का नियम है कि हर चीज ऊपर से नीचे को चलती है। ऊपर का व्यक्ति ठीक होगा तो स्वाभाविक है कि नीचे वाला भी ठीक होगा एवं ठीक रहेगा। कोई काम-व्यवसाय या उद्योग ऐसा नहीं कि किसी सरकारी विभाग से उसका पाला न पड़े। सरकारी विभाग की कार्य संस्कृति अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति लापरवाही की है। यही समाज में सब जगह फैलेगी। आदमी बिना कर्त्तव्य कर्म किये अधिकार की बात करेगा। आज सरकारी विभाग अगर समाज एवं देश के लिये उदाहरण हो जायँ तो

समाज एवं देश कितना आगे बढ़ जायेगा, इसकी कल्पना सहज में की जा सकती है।

इसी प्रकार उद्योग एवं व्यवसाय के हित में बनाये गये श्रमिक संगठनों के आन्दोलन ने भी देश का अहित ही किया है। कितने उद्योगों को इस आन्दोलन ने बीमार एवं बन्द करा दिये। अगर भारत सरकार एवं प्रदेश सरकार इन आंकड़ों को एकत्र कर प्रकाशित करे तो आश्चर्यजनक परिणाम सामने आयेंगे। ट्रेड यूनियन वाले अपनी ताकत का परिचय हड़ताल-घेराव आदि करा कर ही देते हैं। छोटे उद्यमी या व्यवसायी के पास इतनी कानूनी लड़ाई लड़ने की समझ एवं समय तथा पैसा या धैर्य नहीं होता कि वह उस लड़ाई को झेल सके। नतीजा होता है कि उद्योग बीमार या बन्द हो जाते हैं। इस आन्दोलन के नेता अपने सदस्य श्रमिकों को यह सीख नहीं देते कि आप अपना काम पूरी तन्मयता से करें। कर्मचारी जब तक काम के साथ मानसिक रूप से एकाकार नहीं होगा तब तक न तो गुणात्मक सुधार आयेगा और न उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ेगी। इस आन्दोलन के प्रणेताओं को हर पुरुष के अन्दर छिपे महापुरुष को जागृत करना पड़ेगा और यह सीख देनी पड़ेगी कि काम का सम्पादन अपनी पूरी क्षमता से करें। यह कार्य संस्कृति हमारे देश में ट्रेड यूनियन आन्दोलन अगर पैदा कर सका तो इसमें कर्मचारियों का भला तो निश्चित है ही, नियोजक का तथा परोक्ष रूप से प्रदेश एवं देश का भी भला है। इस प्रवृत्ति से केवल स्थापित उद्योग ही ठीक से नहीं चलेंगे, नये नये उद्योगों को स्थापित करने की संभावना भी काफी बढ़ जायेगी। अगर यह आन्दोलन अपनी कार्य संस्कृति में परिवर्तन नहीं लाता तो सरकार को यह छूट देनी चाहिये कि उद्योग या व्यवसाय वाले जब चाहे किसी भी कर्मचारी को उसकी देय रकम देकर निकाल सकेंगे। इससे वे नियोजक का भय मानेंगे एवं काम में प्रवृत्त होंगे। यह आन्दोलन अपने अधिकारों का प्रयोग भी गलत तरीके से करता है। कर्त्तव्य कर्म करने को प्रेरित नहीं करता और यही कारण है कि यह गलत दिशा पकड़ लेता है।

आजादी के पहले आप देखें तो जितने नेता पैदा हुये सबके सब योग्यतम एवं देश के प्रति समर्पित थे। गांधी एवं नेहरू बैरिस्टर थे। सरदार बल्लभ भाई पटेल एवं डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद वकील थे। तिलक साहब पत्रकार थे। सुबास बोस आई०सी०एस० थे। कितनों के नाम गिनाऊं? सबके सब अति विद्वान, अति सरल एवं देश के लिये अति समर्पित। इन सबमें अन्याय का प्रतिकार करने की क्षमता थी। देश को आजाद कराने के लिये कोई भी कष्ट उठाने एवं बलिदान करने को हमेशा तत्पर रहते थे। अपनी योग्यता के अनुरूप काफी कमाई कर सकते थे लेकिन कमाई छोड़ कर महान त्याग करके देश सेवा में लग गये। लेकिन

आजादी के बाद कैसे नेता पैदा हो गये? न तो योग्यता है, न अन्याय का प्रतिकार करने के लिये कष्ट उठाने को तैयार हैं। उन्हें चाहिए क्या? केवल मंत्री पद जिससे कमाई पूरी हो, अधिकार पूरे रहें, सामाजिक सम्मान पूरा मिले। नेतागिरी व्यवसाय हो गया। नतीजा क्या निकला? यह कि न हम एक गांधी पैदा कर सके और न नेहरू या पटेल या राजेन्द्र प्रसाद या सुभाष। कारण ये सारे महान नेता संघर्ष से पैदा होते हैं। राजनीति भी सिद्धान्तों की न होकर सुविधा की हो गई। अधिकारों का ख्याल रखते हैं लेकिन अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति उदासीन हैं। यही कारण है कि नेता शब्द ही बदनाम हो गया। सेवा से सत्ता प्राप्त करने की भावना समाप्त हो गई। केवल सत्ता प्राप्त करने की होड़ लग गई। जो किसी अन्य व्यवसाय को नहीं कर पाया उसने राजनीति का सहारा ले लिया। राजनीति गन्दी एवं दूषित हो गई। राजनीतिज्ञ अपने त्याग एवं योग्यता से समाज एवं देश को कुछ दे नहीं पाये। नतीजा हुआ कि देश में आचरण दोष आ गया। हमारे पास सारी सम्पदायें जैसे बौद्धिक, श्रम शक्ति, समुद्र, वन, खनिज आदि आदि होते हुये भी न हम अपनी गरीबी दूर कर पाये और न बेरोजगारों को रोजगार दे पाये। आज भी देश में अशिक्षित लोग हैं। प्रत्येक देशवासी विदेशी एवं देशी कर्ज के कारण कर्जदार है। इसका मूल कारण अधिकारों के प्रति सचेष्ट होना लेकिन कर्तव्य कर्मों के प्रति लापरवाह होना है।

हमारे देश का साधु समाज ज्यादातर पलायनवादी है। सामाजिक जिम्मेदारियों को छोड़कर साधुवेष धारण कर लिया और भीख मांगने लग गया। जो थोड़े समझदार एवं योग्य हैं वे भी समाज सेवा से विमुख हो गये। आज हमारी समाज सेवी संस्थाएं कार्यकर्ताओं के अभाव में या तो बन्द हैं या बिल्कुल पंगु हैं। हमारे देश की एक संस्था 'रामकृष्ण मिशन' है जिसके संन्यासी विद्यालय चलाते हैं, अस्पताल में रोगियों की देखभाल पूरी तन्मयता से करते हैं। अपना आचरण पवित्र रखते हुये सेवा कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं। आज देश में साधु संन्यासियों की जमात कम से कम एक करोड़ के ऊपर होगी। इस पूरी जमात का न कोई उद्योग है और न व्यवसाय। ये समाज का खाते हैं। अगर सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करने लग जाएं तो देश में एक नई कार्य चेतना विकसित होगी जो सारे देशवासियों को अनुप्राणित करती रहेगी। हमारी सारी समाज सेवी संस्थाएं अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने लग जाएंगी। देश में कोई अशिक्षित नहीं रहेगा। यह साधु समाज अपनी सेवा से देशवासियों में कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना भर सकता है। जिस दिन देश में यह भावना जागृत हो जाएगी कि हमारे कर्त्तव्य ही हमें अधिकार दिलायेंगे तो हमारी लड़ाई अधिकार पाने की समाप्त हो जायेगी और हम अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति जागरूक हो जायेंगे।

गीता का अमर संदेश है कि कर्म करो, फल के लालच में नहीं। फल तो अपने आप मिलेगा ही। लेकिन इस अमर संदेश से देशवासी कैसे अनुप्राणित होंगे? अनुप्राणित करने वाली सारी संस्थाएं स्वयं बदनाम हो गईं। आम जनता का विश्वास उन पर से उठ गया चाहे वह सरकारी कर्मचारी हो या ट्रेड यूनियन आन्दोलन। नेताजी हों या साधु समाज के लोग। अब समस्या केवल यह है कि ये सारी संस्थाएं सुधरेंगी कैसे? यह देश अवतारों एवं आचार्यों का है। गीता के अनुसार जब जब धर्म की हानि होती है, अधर्म की वृद्धि होती है भगवान प्रकट होते हैं। जरूर कोई महापुरुष पैदा होगा। हमें वह कर्त्तव्यबोध कराएगा। तब हम अधिकार के लिये कर्त्तव्य नहीं करेंगे। सारे कर्त्तव्य हम अपने कर्त्तव्य कर्म समझ कर करेंगे।

हमारे देश ने 'देव' उन्हें कहा जिन्होंने समुद्र मंथन से निकले अमृत को पिया लेकिन 'महादेव' उसे कहा जिन्होंने समुद्र मंथन से निकले कालकूट विष को पिया। महान उसे माना जिन्होंने देश एवं समाज के लिये कष्ट सहते हुये त्याग एवं कर्त्तव्य कर्म किया। जिन्होंने केवल सुविधा भोगी और अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति जो सचेष्ट नहीं रहे उनको मान्यता नहीं मिली। हमारे देश ने कर्त्तव्य पालन को ही धर्म धारण माना। अतः कर्त्तव्य करने के कारण अधिकार मिले तो ठीक है केवल अधिकार से कर्त्तव्य कर्म करना कर्त्तव्यनिष्ट व्यक्ति की पहचान नहीं मानी गई। अतः कर्त्तव्य कर्म में ही प्रवृत्त होना चाहिये। अधिकार तो स्वतः अपने आप मिलेंगे। अधिकार के लिये संघर्ष करना ही कर्त्तव्य कर्म से च्युत होना है।

◆

श्राप एवं वरदान

कठिन साधना एवं तपस्या के उपरांत तपस्वी साधकों को भगवान ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तथा अन्यों द्वारा वरदान देने की कथायें प्रचलित हैं। सतयुग में हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यप तथा होलिका को वरदान मिला। त्रेता में रावण तथा कुम्भकर्ण आदि को वरदान मिला। द्वापर में कर्ण तथा अर्जुन और अश्वत्थामा आदि को वर मिला। कलियुग के प्रारम्भ में परीक्षित को श्राप मिला। लेकिन परीक्षित के बाद के पांच हजार वर्ष वाले कलियुग में श्राप एवं वरदान का कोई उदाहरण नहीं मिलता। ऐसा नहीं कि कलियुग के गत पांच हजार वर्षों में किसी ने कोई कठिन साधना या तपस्या नहीं की। अब यह विचारणीय विषय है कि क्या कारण है कि अब श्राप या वरदान के कोई उदाहरण नहीं मिलते ? हमारे शास्त्रों में ऐसा भी वर्णन आता है कि दो विरोधी पार्टियां लड़ने के पहले जब किसी एक सिद्ध पुरुष के पास आशीर्वाद लेने जाती हैं तो वह सिद्ध पुरुष एक को 'विजयी भव' का आशीर्वाद देता है तथा दूसरे को 'कल्याण भव' का आशीर्वाद देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि तेरा कल्याण हारने में ही है कारण तूने अधर्म तथा असत्य का पक्ष ले रखा है। जिसका धार्मिक तथा सत्य का पक्ष होता है उसके लिये आशीर्वाद में 'विजयी भव' की वाणी निकलती है। आगे हम चर्चा करेंगे कि प्रत्येक युग में वरदान किसको क्या मिला और उस वरदान का हश्र क्या हुआ? देखने में यह आता है कि वरदान का दुरुपयोग या दूसरे का अहित करने पर वरदान भी निष्प्रभावी हो जाता है।

सतयुग में दोनों भाइयों हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकश्यप ने घोर तपस्या से ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर लिया और अजर अमर होने का वरदान प्राप्त कर लिया। परन्तु भगवान विष्णु से द्रोह तथा देवताओं को कष्ट देकर अपने पाये हुये वरदान को क्षीण कर लिया। इन्हीं सब दुराचारों से वरदानी शक्ति नष्ट हुई और हिरण्याक्ष को भगवान विष्णु ने शूकर रूप से तथा हिरण्यकश्यप को नरसिंह रूप में मार डाला।

हिरण्यकश्यप की बहन ढुण्ढा (होलिका) के तप त्याग से संतुष्ट होकर भगवान विष्णु ने उसे अग्नि कवच का वरदान दे दिया। होलिका ने समझ लिया

कि वरदान पाने के बाद वह अग्नि में नहीं जलेगी। परन्तु जब उसने भक्त प्रहलाद को जलाकर मार डालने की इच्छा प्रकट की तो उसकी वरदानी शक्ति नष्ट हो गई और होलिका स्वयं जल गई। भक्त प्रहलाद अपनी अग्नि परीक्षा में सफल हो गये और पूर्ण सुरक्षित होकर बाहर निकल आये।

भस्मासुर (वृकासुर) ने भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु घोर तपस्या की। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दे दिया कि वह जिसके सिर पर हाथ रखेगा वह भस्म हो जायेगा। अपने वरदान का दुरुपयोग भगवान शिव पर ही करने के लिये भस्मासुर दौड़ पड़ा। उसकी कामना थी कि शिव को भस्म करके पार्वती को प्राप्त कर लूंगा। भगवान शिव को वरदान की महिमा रखने हेतु भागना पड़ा परन्तु अपने इस दुष्ट विचार के कारण भगवान विष्णु द्वारा प्रेरित होकर वह स्वयं अपने सिर पर हाथ रखते ही जलकर भस्म हो गया।

रावण महामुनि विश्रवा का पुत्र था परन्तु माता कैकसी के असुर कुल के स्वभाव को ग्रहण करके स्वयं असुरोचित आचार करने लगा और अपने को विश्व विजेता बनाने हेतु ब्रह्मा जी की घोर तपस्या की। ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर उसे अजेय और विश्व विजयी होने का वरदान दे डाला। इसके बाद भगवान शिव को संतुष्ट करके अमरत्व का वरदान भी उसने प्राप्त कर लिया। इस भाँति इन वरदानी शक्तियों का आश्रय ले वह विश्व को और विशेष कर ऋषि मुनियों और धार्मिकों को कष्ट देने लगा। मां सीता का हरण किया इससे उसकी वरदानी शक्ति नष्ट होती गई और अंत में अपने कुल के सहित स्वयं भगवान श्रीराम के हाथों मारा गया।

बलि का पुत्र वाणासुर भगवान शिव की तपस्या करके उनसे अतुलित बल और पराक्रम का वरदान प्राप्त करके बल के दर्प में त्रिभुवन को तुच्छ गिनने लगा और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण से विरोध कर बैठा। परिणाम स्वरूप अहंकार के परवश श्रीकृष्ण से युद्ध करने हेतु उद्यत हो गया और अपने सहस्र भुजाओं का बल गँवा बैठा। शिव की प्रार्थना पर भगवान श्रीकृष्ण ने उसे जीवित तो छोड़ दिया परन्तु उसकी संपूर्ण वरदानी शक्ति को नष्ट कर दिया।

मृकण्डु ऋषि संतानहीन थे। संतान की लालसा से उन्होंने ब्रह्मा जी की तपस्या की और एक पुत्र होने का वरदान प्राप्त कर लिया। परन्तु उसकी आयु १२ वर्ष की ही निश्चित थी। पुत्र मार्कण्डेय बचपन से ही भगवान शिव की आराधना में तल्लीन रहने लगा। इसी बीच उसकी १२ वर्ष की आयु समाप्त हो गई और स्वयं काल (यमराज) उसे लेने के लिये उसके आराधना स्थल पर पधारे। उनको देखकर बालक मार्कण्डेय भय से भगवान शिव के शरणागत हुआ। भगवान आशुतोष शिव उस पर प्रसन्न होकर त्रिशूल लिये स्वयं प्रगट हो गये। उन्हें इस भाँति क्रुद्ध देखकर यमराज साष्टांग पृथ्वी पर गिर उनकी स्तुति करने लगे।

भगवान ने मार्कण्डेय ऋषि को सात कल्प की आयु प्रदान कर दी और यमराज को लौट जाने की आज्ञा दी।

महिषासुर ने ब्रह्माजी की आराधना और घोर तपस्या से सबसे अभय होने और विश्व विजयी बनने का वरदान प्राप्त कर लिया परन्तु अपने आसुरी स्वभाव के कारण जगत को कष्ट देने लगा। देवताओं को स्वर्ग से मार कर भगा दिया और त्रैलोक्य का निष्कण्टक राजा बन गया। पर उसका अत्याचार इतना बढ़ गया कि भगवती दुर्गा को उसे मारने के लिये विवश होना पड़ा। अपने दुष्कृत्यों के कारण वरदानी शक्तियों के रहते हुए भी भगवती से युद्ध में मारा गया।

रक्तबीज असुर को ब्रह्माजी द्वारा अजेयता का वरदान प्राप्त था। उसे यह भी वरदान प्राप्त था कि पृथ्वी पर जितने बूंद उसके खून गिरेंगे उतने ही समतुल्यबल राक्षस उत्पन्न हो जायेंगे। परन्तु इस शक्ति को पाकर वह अपने बल के दर्प में देवता और ऋषियों को कष्ट देने लगा जिससे इन शक्तियों के रहते भी भगवती कौशिकी द्वारा वह मारा गया।

शुंभ निशुंभ आदि असुरों को भी इसी प्रकार वरदानी शक्तियां प्राप्त थीं परन्तु उनका दुरुपयोग कर सज्जनों को कष्ट देने और स्वयं भगवती कौशिकी को मोहवश पत्नी रूप में प्राप्त करने की दुर्भावना वश उनकी सभी शक्तियों का हनन करके भगवती ने उन्हें मार डाला।

त्रिपुरासुर तीनों भाई ब्रह्मा से वरदानी शक्ति पाकर तीन अभेद्य लोकों में निवास करते हुये त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त कर लिये थे। परन्तु सबको अपने सामने नगण्य और तुच्छ समझते हुए देवता और सज्जनों को कष्ट देने लगे। अन्त में भगवान शिव ने एक ही वाण से अभेद्य गढ़ों के साथ ही तीनों भाइयों को भी नष्ट कर दिया।

आदि सृष्टि में मनुष्यों के आदि पूर्वज मनु और शतरूपा ने भगवान राम को तप से प्रसन्न कर लिया। भगवान राम के प्रकट दर्शन पाकर उनके द्वारा वर देने की इच्छा प्रकट करने पर उन्होंने भगवान के समान ही पुत्र पाने की इच्छा की। इच्छा कालान्तर में भगवान ने उनकी पूर्ण की।

स्वायम्भुव मनु की वंश परम्परा में ध्रुव का जन्म राजा उत्तानपाद से हुआ। अपनी विमाता सुरुचि से अपमानित होकर इन्होंने अपनी मां और नारद जी से प्रोत्साहन और दीक्षा प्राप्त करके घोर तपस्या की। भगवान विष्णु प्रसन्न हुए और इन्हें चिरंतन लोक का राज्य और अटल ध्रुव पद की प्राप्ति का वरदान देकर कृतार्थ किया। आज भी ध्रुव तारा के रूप में उनका लोक दृश्य है।

उपरोक्त कथानकों से स्पष्ट है कि वरदान प्राप्त कर अपनी वरदानी शक्ति का शुभ कार्यों में उपयोग करने पर परिणाम सदा कल्याणमय रहता है परन्तु

वरदानी शक्तियों से दूसरों को नष्ट करने या कष्ट पहुंचाने से दुरुपयोग करने पर शक्ति नष्ट हो जाती है और परिणामस्वरूप वरदान पाने वाला स्वयं नष्ट हो जाता है।

आज से दो हजार वर्ष पूर्व चाणक्य ने लिख दिया था कि आजकल वरदान प्रभावी क्यों नहीं होता :-

परान्नेन मुखं दग्धं हस्ता दग्धौ प्रतिग्रहात्।
परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कुतः श्रापो कलौयुगे।।

श्राप या आशीर्वाद देने में तीन अंग काम करते हैं। इन तीनों अंगों के तेजस्वी रहने पर ही श्राप या आशीर्वाद सत्य होते हैं। इस कलिकाल में ब्राह्मणों के मुख का तेज दूसरों के दिये अन्न से, हाथ का तेज दान लेते लेते और मन का तेज परस्त्री को कुदृष्टि से देखने के कारण नष्ट हो जाता है। इसीलिये श्राप या आशीर्वाद सत्य नहीं होते।

♦

प्रेम और वासना

प्रेम क्या है इसे अनुभव करना या शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। क्योंकि प्रेम अनिर्वचनीय है। लेकिन वासना की व्याख्या करना आसान है। वासना युक्त व्यक्ति हम नित्य देखते हैं। वासना बाह्य रूप पर आधारित है। वासना में स्वार्थ है। प्रेम अलौकिक है। प्रेम निःस्वार्थ एवं निष्काम है। प्रेम का विलोम नहीं है। जैसे दुख का सुख है, दिन का रात है। एक बार प्रेम की अवस्था में पहुंचा व्यक्ति उसी स्थिति में अवस्थित हो जाता है। प्रेम में स्थायित्व है। लेकिन वासना में क्षणभंगुरता है। प्रेम नित्य और सनातन है। वासना अनित्य और क्षणिक। अर्थात् स्थूल दृष्टि से प्रेम और वासना प्रकृति के दो परस्पर विरोधी भाव मात्र हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी ने प्रेम तत्व की अभिव्यक्ति इस तरह से की है-"वह कौन सी वस्तु है जो अणुओं को लाकर अणुओं से मिलाती है, परमाणुओं को लाकर परमाणुओं से मिलाती है। बड़े बड़े ग्रहों को आपस में एक दूसरे की ओर आकृष्ट करती है। पुरुष को स्त्री की ओर एवं स्त्री को पुरुष की ओर, मनुष्य को मनुष्य की ओर एवं पशुओं को पशुओं की ओर आकृष्ट करती है। मानों समस्त संसार को एक केन्द्र की ओर खींचती है। यह वही वस्तु है जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम से बढ़कर किसी अन्य से सुख या आनन्द की कल्पना नहीं की जा सकती।"

प्रेम आनन्द की अभिव्यक्ति है। जीवन एवं जगत का विकास इसी प्रेम के कारण हो सका है। हर क्षेत्र में इसकी विशिष्टता को स्वीकारा एवं अनुभव किया जा सकता है। धर्म, विज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र आदि के विद्वानों ने प्रेम को परिभाषित किया है। एक ओर जहां अध्यात्मवेत्ताओं ने प्रेम को भावना, संवेदना एवं करुणा का विकास माना है तो वहीं दूसरी ओर वैज्ञानिकों ने इसे जैविक रसायन का अद्भुत चमत्कार कहा है। जो भी हो प्रेम मानव जीवन का अनिवार्य एवं आवश्यक अंग तो है ही।

प्रेम में सदैव आदर्श का चरमोत्कर्ष है। प्रेम मनुष्य एवं मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न नहीं करता। समग्र विश्व को प्रेम अपने घर जैसा बना लेता है। प्रेम में

किसी प्रकार का भय नहीं रहता। प्रेम ही जीवन है। जिसमें प्रेम नहीं है वह जी भी नहीं सकता। जहां प्रेम है वहीं विस्तार है, जहां स्वार्थ है वहीं संकोच है। अतः प्रेम ही जीवन का सर्वोच्च विधान है। जो प्रेम करता है वही जीवित है। जो स्वार्थी है वह मृतक है।

प्रेम से अलौकिक शक्ति मिलती है। प्रेम से भक्ति उत्पन्न होती है। प्रेम ही ज्ञानदाता है। प्रेम ही मुक्ति की ओर ले जाता है। प्रेम मानवीय शरीर में ईश्वर की उपासना है। प्रेम की अवस्था को प्राप्त करना ही सिद्धावस्था है। प्रेम कभी निष्फल नहीं होता। प्रेम का पुरस्कार स्वयं प्रेम ही है। प्रेम ही वह तत्व है जो समस्त दुःखों को दूर कर देता है। प्रेम कोई पुरस्कार नहीं चाहता प्रेम सर्वदा प्रेम के लिये होता है। भक्त इसलिये प्रेम करता है कि वह इसके बिना रह नहीं सकता। प्रेम में न प्रश्न है और न कुछ मांगने की कामना। प्रेम भिखारी नहीं होता। प्रेम ही विश्व को रूपांतरित करने में सक्षम है।

एक संत ने कहा कि प्रेम तो पुष्प से भी अधिक कोमल है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा कि प्रेम कभी दावा नहीं करता। वह तो हमेशा देता ही रहता है। प्रेम हमेशा कष्ट सहता है। वह न कभी झुंझलाता है और न कभी बदला लेता है। विद्वान लेखक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के मतानुसार जो आदमी मृत्यु को जीत लेता है या जीत सकता है वही प्रेम को मस्तक पर धारण कर लेता है। प्रेम कर्कश को मधुर बना देता है। असत् को सत् में परिवर्तित कर देता है। पापी को पुण्यवान बनाता है और अंधेरे को ज्योतिर्मय कर देता है। प्रेम मानव जीवन की मौलिक भावना है। प्रेम मानव जीवन का सार है। प्रेम में वह शक्ति है जो नरक के नैराश्य में भी स्वर्ग की रचना कर लेता है।

प्रेम का विकास भाव विकास का चरमोत्कर्ष है। अब तक इस प्रेम रस का रसास्वादन कुछ लोग ही कर पाये हैं। उनमें प्रमुख हैं राधा, चैतन्य, मीरा एवं रामकृष्ण परमहंस देव। पाश्चात्य दृष्टिकोण इतना व्यापक एवं गहरा नहीं है फिर भी उन्होंने इस अद्‌भुत एवं अनिवार्य सत्य को स्वीकारा है। पाश्चात्य विद्वान कहते हैं – प्रेम मानवीय विकास का महत्वपूर्ण तत्व है। इसके द्वारा मनुष्य अपनी आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है। प्रेम को सुन्दर-सुकोमल एवं सृजनशील तत्व के रूप में दर्शाया गया है। हर व्यक्ति प्रेम की चाहत रखता है। जब व्यक्ति किसी से प्रेम करता है या आकर्षित होता है तो उस समय मन एवं हृदय उत्साह तथा उल्लास से भर उठता है। जीवन प्रसन्नता एवं आनन्द से आप्लावित रहता है। जो भी हो, प्रेम एक अद्‌भुत रसायन का नाम है। यह एक ऐसा नशा है जिसे पी लेने के बाद मनुष्य सब कुछ भूल जाता है केवल वह अपने इष्ट रूपी प्रेमी को याद करता है। प्रेम की क्षमता अपरिमित एवं शक्ति असीम

होती है। प्रेम चाहे किसी व्यक्ति से हो या समाज से, यह अपना जादुई प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहता जिसकी परिणति समृद्धि, शान्ति एवं आत्मशाति के रूप में होती है। प्रेम का यह भाव यदि वस्तु, व्यक्ति से ऊपर उठकर प्रभु समर्पित हो तो वह अनन्त, असीम और अनिवर्चनीय हो जाता है। प्रेम आत्मा की आवाज है। वह सतत अपने इष्ट एवं लक्ष्य के प्रति एकाकार एवं तदाकार होने की चाह है। प्रेम की उपरोक्त व्याख्या से आप देखेंगे कि प्रेम का वर्णन करना कठिन है। प्रेम की अवस्था में पहुंचा व्यक्ति उसी अवस्था में रहता है।

वासना में स्थायित्व नहीं है। वासना बदलती रहती है। वासना बाह्य शरीर के प्रति होती है। अतः शरीर की अवस्था के अनुसार वासना का स्वरूप भी बदलता रहता है। विचारों में भेद से भी वासना बदलती है। वासना का अन्तर्मन से सम्बन्ध नहीं होता। प्रेम जितना ही सात्विक है वासना उतनी ही तामसी है। प्रेम में योग है, वासना में भोग है। प्रेम उत्कृष्ट है वासना निकृष्ट है। प्रेम में शान्ति और सुख है, वासना में उत्तेजना एवं दुःख। प्रेम प्रेमी के हृदय को उच्च और पवित्र करता है, काम कामी के हृदय को नीच और कलुषित। प्रेम में मधुरता है वासना में कटुता। जहां प्रेम प्रियतम के चरणों पर न्यौछावर हो अपनी सत्ता मिटा देता है, वहां वासना न्यौछावर चाहता है और असफल होने पर वासना की सत्ता समाप्त हो जाती है। प्रेम का कोई विरोधी एवं शत्रु नहीं है, वासना में स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ नहीं। कृष्ण का महारास प्रेम की अभिव्यक्ति है, आनन्द नृत्य का आयोजन है। महारास में प्रेम की विजय पताका वासना के नग्न प्रासाद पर चिरकाल से फहरा रही है। कुछ विद्वानों ने प्रेम और वासना का सम्बन्ध स्थापित यों किया है "अनियंत्रित प्रेम ही वासना है, नियंत्रित वासना ही प्रेम है। प्रेम और वासना में मिलने की तमन्ना तो है लेकिन प्रेम नित्य है, सनातन है। वासना अनित्य है, क्षणभंगुर है।

♦

काम

हमारे चार पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के बारे में विद्वानों के मतानुसार अर्थ एवं काम के दो किनारों के बीच हमारे जीवन के कर्म एवं मोक्ष रूपी प्रवाह का संचालन होना चाहिये। धर्म हमें जीवन जीने की कला बताता है, अर्थ के बिना तो कोई कार्य हो नहीं सकता, काम एक ऊर्जा है जिससे नई सृष्टि का निर्माण एवं संचालन होता है। मोक्ष हमारे जीवन की अंतिम अभिलाषा है यानी जीने एवं मरने के आवागमन से मुक्ति। हमारे धर्मशास्त्रों ने मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का सर्वोच्च अभीष्ट बताया है।

काम के प्रचलित दो अर्थ हैं- एक काम माने कार्य यानी हम पूछते हैं कि तुम्हारा अमुक काम हुआ या नहीं। दूसरा अर्थ है भोग से। उपरोक्त वर्णित पुरुषार्थ चतुष्टय के एक अंग 'काम' को हमने इतना गंदा बना दिया कि समाज में इसकी चर्चा तक करना अपराध हो गया। कोई संत महात्मा 'काम' की चर्चा नहीं करते और कभी चर्चा करने का प्रसंग आ ही जाए तो मुंह के आगे रूमाल लगा लेते हैं जैसे यह बहुत ही गंदी चीज है। वस्तुतः काम गंदा नहीं है। काम की आसक्ति गंदी है। तो आसक्ति तो हमारे दुःखों का मूल है ही। हमें आसक्ति से परहेज करना चाहिये।

अपराध है कहां इसे समझने की जरूरत है। हमारे देश के हर शहर में लाल बत्ती क्षेत्र हैं जहां खुलेआम वेश्याएं रहती हैं। उन वेश्याओं का जीवन यापन ही वेश्यावृत्ति से चलता है। वेश्यावृत्ति उनका पेशा है। वेश्याओं को कोई सामाजिक मान्यता नहीं मिली हुई है। वेश्याओं के बच्चे आज भी अपने पिता का नाम नहीं जानते। इस वेश्यावृत्ति के पेशे को कानूनी मान्यता भी नहीं है। नतीजा क्या होता है? पुलिस जब इच्छा होती है छापा मारकर दो चार वेश्याओं को एवं उनके ग्राहकों को पकड़ कर बन्द कर देती है। जिस क्षेत्र में वेश्यायें रहती हैं उस क्षेत्र के थाना पुलिस उनसे नियमित वसूली भी करते हैं तथा वेश्याओं के देह का शोषण भी करते हैं। एक बात बहुत ही गंभीरता से विचारने की है कि सरकार को जब जानकारी है कि वेश्यायें निश्चित क्षेत्र में रहती हैं और वेश्यावृत्ति कानूनी

अपराध है तो उन्हें या तो उजाड़े या कानूनी मान्यता देवे। न तो उजाड़ती है और न कानूनी मान्यता देती है। नतीजा क्या है कि वेश्याएं तथा ग्राहकों के जीवन में हमेशा भय बना रहता है कि कहीं पुलिस आकर पकड़ न ले जाय। मेरी ऐसी मान्यता है कि इस भय को समाप्त करना चाहिये। हम कोई काम चोरी छिपे करें इससे बचना चाहिये। इस एक मसले पर राष्ट्रीय बहस होनी चाहिये कि वेश्यावृत्ति को कानूनी संरक्षण मिले या नहीं। वेश्याओं तथा उनकी सन्तानों को समाज स्वीकार करे। कोई वेश्या अगर विवाह करके गृहस्थ जीवन बिताना चाहे तो उसे अनुमति मिले या नहीं! वेश्यावृत्ति का पेशा आदिकाल से चला आ रहा है और यह अनन्त काल तक चलता रहेगा। जब यह जीवन का एक सत्य है तो इसे अधर में क्यों लटकने दें? यह समस्या केवल हमारे देश की नहीं है। विभिन्न देशों में इस समस्या के प्रति अलग अलग दृष्टिकोण है। हमारे देश की संस्कृति एवं परम्परा को दृष्टिगत रखते हुए समस्या का यथार्थ हल निकालना चाहिए। केवल सिद्धान्त की बात करने से कोई लाभ नहीं।

हमारे देश में हर व्यक्ति का दोहरा चरित्र है। सार्वजनिक रूप तो दिखाने के लिये पवित्र एवं धार्मिक है लेकिन एकान्त गंदा है। हमने धार्मिक रूप इसलिये धारण कर रखा है कि हमारी कमियां छिपी रहें। हम छिप कर गलत कार्य करते हैं कि हमें कोई देख न ले। अगर कोई देख लेगा तो समाज ने हमारे बारे में जो मान्यता बना रखी है वह बदल जायगी। हमारी प्रतिष्ठा इसीलिए है कि हमारा सार्वजनिक रूप पवित्र एवं धार्मिक है तथा हमारा एकान्तिक रूप कोई देखता ही नहीं। इस दोहरे चरित्र के रहते हम अपनी कमियों को छिपाते हैं चाहे शराब की गलत आदत हो, चाहे जुए की या वेश्यावृत्ति की। इस छिपाने की वृत्ति ने हमें कभी सही रूप से पवित्र नहीं होने दिया और इसका नतीजा होता है कि हम मूल रूप से गलत हो जाते हैं। हम चोर हो जाते हैं। इन सफेदपोश चोरों से कैसे बचा जाय? मनुष्य का एकान्त भी उतना ही शुद्ध एवं पवित्र होना चाहिये जितना सार्वजनिक जीवन। इस गंभीर समस्या पर हमारे धार्मिक, राजनैतिक शिक्षा जगत एवं समाज सुधारकों को विचार करना चाहिये और इसका हल निकालना चाहिये।

विदेशों में मैंने देखा है कि दोहरा चरित्र कम है। अगर शराब पीता है तो छिपाता नहीं। किसी लड़की से प्यार करता है तो उसे भी छिपाता नहीं। या अन्य कोई गलत काम भी करता है तो उसे छिपाकर नहीं करता। इसका एक लाभ तो है कि चोर नहीं कहलाता। किसी आदमी का मूल्यांकन करने में दिक्कत नहीं होती। दिक्कत तो तब होती है कि बहन जी बहन जी करते करते जब मौका लगा तो उसका संयम समर्पण में बदल जाता है। हम गये फकीर का बेटा बनकर और हम निकल गये शिकारी। जिसका शिकार किया उसको अफसोस इसी बात का है

कि तुझे शिकार करना था तो शिकारी के भेष में आया होता तो हम चौकन्ने रहते। आया तू फकीर के भेष में तब हम निश्चिन्त थे कि तू फकीर है। लेकिन करने लग गया शिकार, नतीजा क्या हुआ? तूने धोखा दिया। ऐसे ही हम भी धोखा खा जाते हैं धार्मिक लोगों से।

काम गंदा कैसे हो सकता है? सृष्टि संचालन के लिये इसकी आवश्यकता है। एक आदर्श संन्यासी से एक आदर्श गृहस्थ बनना ज्यादा कठिन है एवं ज्यादा उपयोगी है। एक आदर्श गृहस्थ वह है जो समाज में रहते हुए सामाजिक जिम्मेदारियों से पलायन नहीं करता तथा अपने चरित्र को भी चाहे वह सार्वजनिक हो या एकान्तिक, पवित्र बना कर रखता है। सामाजिक जिम्मेदारियों का पूरी निष्ठा से निर्वाह करता हुआ समाज में रहता है। जिस काम से गांधी, अरविन्द, विवेकानन्द आदि पैदा होते हों, वह गंदा कैसे हो जायगा। गंदा तो हमने कर दिया। काम गंदा नहीं है, काम के प्रति विशेष आसक्ति गंदी है। केवल आसक्ति को हटाने की आवश्यकता है।

विज्ञान के अनुसार ब्रह्मचर्य धारण करना अत्यन्त कठिन है। हम उस ब्रह्मचर्य की बात करते हैं जिसका निरूपण हमारे धर्मशास्त्रों ने किया है। ब्रह्मचर्य केवल शुक्र रक्षण नहीं है। इसमें तो मन में भी भोगने की प्रवृत्ति नहीं आती। मन से भोगें और तन से न भोगें ऐसी अवस्था ब्रह्मचर्य है ही नहीं। ऐलोपैथिक डाक्टर बताते हैं कि शुक्र रक्षण की नितान्त आवश्यकता नहीं है। अपनी उम्र, अवस्था तथा स्वास्थ्य के अनुसार काम भोग स्वास्थ्य के लिये अनुकूल होता है। हमारी वैवाहिक व्यवस्था के बारे में विद्वानों का मत है कि 'अनेक रूपों में भटकते काम को एक रूप में केन्द्रित करना ही विवाह की व्यवस्था है।' हमारी विवाह व्यवस्था हमारे ऋषियों की अनुपम देन है। विश्व में इस व्यवस्था से सुन्दर व्यवस्था आज तक किसी भी देश ने नहीं दी। विदेश के लोग हमारे विवाह को देखकर तथा आजीवन एक स्त्री के साथ ही विवाह सूत्र में आबद्ध देखकर आश्चर्य चकित होते हैं। हमारे देश में विवाह विदेशों की तरह कान्ट्रैक्ट नहीं है। यह एक पवित्र गठबन्धन है। विवाह स्त्री पुरुष को पूर्णता प्रदान करता है वरना दोनों अधूरे हैं। इसीलिये 'एक नारी ब्रह्मचारी' वाली उक्ति ज्यादा सही लगती है। हमारे यहां नारी को केवल भोग की वस्तु नहीं माना गया। वह जीवन संगिनी है। जीवन के हर सुख दुःख में साथ रहती है। पत्नी को धर्म पत्नी इसलिये कहा कि कोई धार्मिक कृत्य बिना पत्नी के सम्पन्न होता ही नहीं।

काम गन्दा नहीं है। जैसे कामी होना गंदा है वैसे ही क्रोधी तथा लोभी होना भी गंदा है। जनता का हजारों करोड़ रुपया डकार जाना उतना बड़ा अपराध नहीं जितना दूसरी स्त्री से सम्पर्क रखना। दूसरी स्त्री से सम्पर्क रखना व्यक्तिगत

मामला है जबकि जनता के पैसे का दुरुपयोग करना सार्वजनिक सम्पत्ति का दुरुपयोग है। हमने प्याज लहसुन का सेवन न करने वालों को तो धार्मिक माना लेकिन घूस खाने की उसे छूट दे दी और घूस खाने वाले को अधार्मिक नहीं माना।

हमारे शास्त्रों ने कहा कि "कामातुराणां न भयं न लज्जा" कामी पुरुष को भय लाज नहीं रहती। लेकिन काम जीवन की आवश्यकता है। पुरुषार्थ चतुष्टय का यह एक आवश्यक अंग है। कामुकता खराब है। जैसे संयमित भोजन हमें स्वास्थ्य प्रदान करता है उसी प्रकार संयमित काम भी हमें स्वस्थ एवं संयमित रखता है।

♦

पूजा एवं प्रार्थना

एक बार महात्मा गाँधी से एक वकील साहब ने कहा कि आप प्रत्येक दिन प्रार्थना में इतना समय लगाते हैं वह समय अगर देश सेवा में लगाते तो देश को आजादी जल्दी मिल जाती है। इस पर महात्मागाँधीं ने वकील साहब से कहा कि वकील साहब, 'आप भोजन-जलपान में नित्य इतना समय लगाते हैं। वह समय अगर अपने मुकदमों को देखने में लगायें तो आपके मुकदमें जल्दी निपट जायेंगे।' तो वकील साहब ने कहा कि अगर हम भोजन जलपान नहीं करेंगे तो कमजोरी आ जायेगी और हम काम नहीं कर सकेंगे। तो गाँधी जी ने भी यही कहा कि मेरी प्रार्थना मुझे उसी प्रकार शक्ति देती है जिस प्रकार आपका भोजन आपको देता है। मैं भी बिना प्रार्थना के काम नहीं कर सकता।

लेकिन दोनों के कथन में अन्तर है। वकील साहब अगर भोजन नहीं करेंगे तो शरीर ही कमजोर होगा लेकिन प्रार्थना से अहंकार पिघलता है तथा मानसिक कमजोरियाँ जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर आदि कम हो जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं। गाँधी जी में जो अपूर्व आत्मबल था उसका कारण उन्हें प्रार्थना से प्राप्त बल था। जब देहधारी निराहार रहता है तब उसके विषय ढीले पड़ जाते हैं पर विषय रस नहीं छूटता, विषय रस तो प्रार्थना से ही छूटेगा। आत्मबल में वृद्धि प्रार्थना से ही होगी ज्यों-ज्यों प्रार्थना गहरी होती जायेगी, आत्मबल में वृद्धि होती जायेगी।

लोकाचार एंव सामान्य भाषा में 'पूजा' को उपकरणें जैसे घड़ी, घंटा, पूजा सामग्री, चंदन, रोली, माला, फूल, आरती से जोड़ते हैं। जबकि प्रार्थना तो अन्तरात्मा की भावना का एहसास है। लेकिन सही अर्थ में लिया जाय तो पूजा एवं प्रार्थना का गन्तव्य एक ही है। पूजा एवं प्रार्थना का अर्थ ही है अपने आराध्य एवं इष्ट से जुड़ना। प्रारम्भ में सामान्य व्यक्ति के लिये मूर्ति, तीर्थ, गुरु व ग्रंथ से जुड़ना आवश्यक है। प्रतिमा साकार होने के कारण सहायक है, साधन है, साध्य नहीं। मार्ग है, मंजिल नहीं, पड़ाव है, गन्तव्य नहीं। प्रार्थना को हम मानस पूजा कह सकते हैं। प्रारम्भ में वाचिक, फिर मानसिक व अन्त में

अजपा जप है। पूजा प्रार्थना एक भाव दशा है क्रिया नहीं। पूजाप्रार्थना हृदय की गहराई से होनी चाहिए। पूजा प्रार्थना की महत्ता इसके उद्देश्य में निहित है।

सार्थक पूजा प्रार्थना वही है जो प्रार्थी देवता एवं उपास्य से जोड़े। प्रार्थना का प्राण तो तन्मयता है। महत्व साधन का नहीं, श्रद्धा का है। लोभ और भय पर आधारित पूजा प्रार्थना निरर्थक है। कंचन, कामिनी एवं कीर्ति की कामना प्रार्थना में बाधक है। ममता, मान एवं मद से मुक्त मन प्रार्थना में सहायक है। वासना एवं प्रार्थना का सहअस्तित्व संभव नहीं है। हम जैसा सोचेंगे वैसा ही हम बन जायेंगे। महत्व मन की निर्मलता है। निष्काम प्रार्थना सर्वोत्तम है। इससे मानसिक स्वास्थ्य सुधरता है। प्रार्थना में याचना नहीं है।

प्रार्थना का यह अर्थ नहीं कि आप कर्म छोड़कर मंदिर में बैठे आरती करते रहें, घंटी बजाते रहें और आपका काम दूसरा कोई सम्पन्न कर देगा। प्रार्थना व्यक्ति को आंतरिक संबल प्रदान करती है तथा कर्म में प्रवृत्त रहने के लिए आंतरिक बल, उत्साह और आशा प्रदान करती है। प्रार्थना के कारण निराशा एवं नकारात्मक विचार नष्ट होते हैं एवं सकारात्मक विचार प्रबल होते हैं। प्रार्थना मनुष्य को भाग्यवादी के बजाय कर्मयोगी बनाती है। ध्यान रहे कर्म का स्थान प्रार्थना नहीं ले सकती और प्रार्थना का स्थान कर्म नहीं ले सकता। प्रार्थना करके मनुष्य पूरे मनोयोग से कर्म करने में प्रवृत्त होता है।

प्रार्थना का शाब्दिक अर्थ है विशेष अनुग्रह की चाह। प्रार्थना के समय व्यक्ति अपने इष्टदेव के समक्ष जब आर्तनाद करता है तो व्यक्ति का मन निर्मल होता है। नित्य की जाने वाली प्रार्थना से हमारा मस्तिष्क स्वच्छ विचारों को धारण कर स्वस्थ बनता है तथा हमारे मनोविकार नष्ट होते हैं। वास्तव में प्रार्थना हमें विनम्र और विनयी बनाती है। प्रार्थना अपने मन-मस्तिष्क को एकाग्र करने का अभ्यास है। सच्ची भावना से की गई प्रार्थना एवं निष्ठापूर्वक किया गया कर्म सफल होता है।

महात्मागाँधी कहते थे प्रार्थना कर्म का निचोड़ है। यह तो आत्मा की पुकार है। यह आत्मशुद्धि का आह्वान है। यदि मनुष्य के व्यक्तित्व का आभूषण शान्ति, विनम्रता और सहनशीलता है तो उसका मूल प्रार्थना में छिपा है। प्रार्थना एवं कर्म ईश्वर का कर्म मानने की स्वीकारोक्ति है। इससे कर्ता के मन में अहंकार नहीं आ पाता। विभिन्न धर्मों की पूजा विधियाँ भले ही अलग हों, किन्तु प्रार्थना के अन्तःस्वर एक ही होते हैं। विश्व के जितने भी महान व्यक्ति हुए हैं सभी ने कहीं न कहीं ईश्वर से प्रार्थना द्वारा आंतरिक बल प्राप्त किया है। प्रार्थना ईश्वर एवं मानव के प्रति एकत्व का माध्यम है।

प्रार्थना सभी धर्मों में होती है। हिन्दू गीता पढ़ता है, मुसलमान कुरान, बौद्ध

धम्मपद पढ़ता है, जैन आगम, सिक्ख गुरुग्रंथ साहब पढ़ता है, ईसाई बाइबिल। प्रार्थना भावात्मक चेतना का एहसास है। इसे हम जाति, धर्म, सम्प्रदाय, देश, भाषा की सीमाओं में नहीं बांध सकते। प्रार्थना में भौतिक सुख पाने की कामना नहीं है, पाप को छिपाने का प्रयत्न नहीं है तथा धार्मिक होने का आडम्बर नहीं है। ऐसा चाहने वाले या करने वाले न तो प्रार्थना के मर्म को समझते हैं और न साध्य तक पहुँच पाते हैं। प्रार्थना कहीं भी हो सकती है। उसके लिये पूजागृह, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च आवश्यक नहीं। सच्ची प्रार्थना के लिये तन और मन का एकीकरण जरूरी है। उस प्रार्थना को स्वीकृति नहीं मिलती कि तन मंदिर में हो और मन संसार में भटकता रहे। प्रार्थना के लिये नास्तिक और आस्तिक होने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपने को नास्तिक मानने वाले लोग भी प्रार्थना करते देखे गये हैं। प्रार्थना के लिये छाप, तिलक, भगवा वस्त्र, चोटी, दाढ़ी आदि बंधनों की आवश्यकता नहीं है। प्रार्थना तो आत्मदर्शन की स्वाभाविक साधना है। स्वयं से स्वयं के साक्षात्कार की एक प्रक्रिया है।

एक सन्त से किसी ने पूछा कि 'महाराज! मेरी वर्षों की प्रार्थना निष्फल क्यों हुई? भगवान मुझसे इतने रूठे क्यों हैं?' सन्त हंसे और कहने लगे, 'पुत्र, कल मैं बगीचे में आ गया था, वहाँ कुछ दूसरे भी युवक थे। उसमें से एक को प्यास लगी थी, उसने बाल्टी कुयें में डाली, कुंआ गहरा था, बाल्टी खींचने में भारी श्रम करना पड़ा लेकिन जब बाल्टी लौटी तो खाली थी। उस युवक के सभी साथी हंसने लगे। बस, वह कहने भर को बाल्टी थी, उसमें छेद ही छेद थे। बाल्टी कुंए में गई, पानी भी भरा, पर सब बह गया। बस प्रार्थी के मन की यही दशा है। इस छेद वाले मन से कितनी ही साधना करो, पर छेदों के कारण सफलता नहीं मिलती। इससे कितनी ही प्रार्थना करो, पर तृप्ति नहीं मिलती। तृप्ति चाहिये तो पहले मन के छेदों को मिटाओ। अपने दोषों दुर्गुणों को दूर करो। पहले संयम, तब प्रार्थना, फिर सिद्धि। भगवान कभी भी किसी से रूठे नहीं रहते। कुंआ तो सदापानी देने के लिए तैयार है। उसकी ओर से कभी इन्कार नहीं। केवल अपने पात्र के छिद्र को बन्द करो, याने अपने दोष एवं दुर्गुणों को दूर करो।

◆

उपवास

जर्मनी में जब स्वामी जी प्रवचन कर रहे थे तो जिज्ञासुओं ने पूछा- भारत की स्त्रियां वर्ष भर में कई उपवास करती हैं और वहां के साधु महात्मा उपवासों द्वारा आत्मदर्शन का मार्ग बतलाते हैं। क्या आप इस विषय पर कुछ प्रकाश डालेंगे?

इतना कहकर प्रश्नकर्ता बैठ गए। लहसुनबादशाह ने जर्मन भाषा में कहना प्रारंभ किया- 'मेरे मित्रों! आज रविवार का दिन है और मैं संध्या को आपकी बड़ी जनता के सामने एक महत्वपूर्ण विषय पर अत्यन्त उपयोगी बातें सुनाने वाला हूं। इस समय की आई हुई यह जनता और उसकी उत्सुकता इस बात को प्रकट करती है कि आप भारतवर्ष में कितनी दिलचस्पी रखते हैं। आपके अच्छे अच्छे लेखकों द्वारा उस पुनीत देश की कीर्ति का गायन हुआ है, आपके दार्शनिकों ने वहां ब्रह्मज्ञान से प्रेरणा पाई है और आपके बड़े बड़े भाषा शास्त्री संस्कृत भाषा के गुणों का बखान करते हुए नहीं थकते। साधारण चेतना, जिसे अंग्रेजी में 'कांशस स्टेट' कहते हैं, दूसरी है चेतनतर अवस्था जिसे अंग्रेजी में 'सब कांशस् स्टेट' कहते हैं, तीसरी है मानसिक चेतनतम अवस्था, जिसे अंग्रेजी में 'सुपर कांशस् स्टेट' कहा जाता है। भारतीय विद्वान इस तथ्य का भली प्रकार अनुभव कर चुके थे कि मन के झुकाव के ऊपर ही प्राकृतिक और आत्मिक जगत का अनुभव चेतन जीव को होता है। उसकी वह चैतन्य शक्ति उत्तरोत्तर कैसे घट बढ़ सकती है इस साइंस का पता बिना उपवासों के लग नहीं सकता। किसी भी मुर्दा शरीर को लेकर यदि हम उसका विश्लेषण करें तो हमें सिवाय अस्थि, मांसमंजमय पिंजर के दूसरी कोई मनोविज्ञान की चीज उससे नहीं मिल सकती। वह है प्रकृति की बनी हुई एक मशीन जिसमें कुदरत ने अपने प्रत्येक नियम को घटाने के लिए पुर्जे एकत्र कर दिए हैं।

चीरफाड़ करने वाला डाक्टर अपने शस्त्रों की सहायता से उसके पुर्जों को ही देख सकता है और उसकी बनावट को ही समझ सकता है किन्तु हमें जो जानना है इस जड़ शरीर की अद्भुत शक्ति को, जिसे पाकर यह हाड़मांस का पुतला विश्व के बड़े से बड़े विद्वान को चकित कर देता है। उसे कैसे जाना जाए? यही समस्या है।

योरोप के इस वर्तमान साइंस से पहले भी इस पृथ्वी पर ऐसे अन्वेषण हुए हैं जिन्होंने जीते जागते मनुष्य को पकड़ कर उसके दैनिक जीवन का अध्ययन करते हुए उसकी चैतन्य शक्ति के अनुसंधान का प्रयत्न किया था। उस समय शारीरिक भौतिक विद्या को वह दर्जा प्राप्त नहीं हुआ था जो इस समय है, इस पर भी उन्होंने कोई कोर कसर नहीं उठा रखी। पर सब निष्फल! वे उसको पकड़ नहीं सके। उसके शरीर को त्याग देने के समय भी उन्होंने उसमें नवचेतना का प्रवेश कराना चाहा, किन्तु वह प्रयोग भी व्यर्थ गया। जब विज्ञान अपने यौवनकाल में आया तो उसने प्रकृति के बनाए हुए इस पुतले के हृदय को टटोला। उसे पता लगा कि इसमें भी पंप की तरह आगमन और निष्क्रमण पर जीवन मरण के बहुमूल्य घंटे व्यतीत होते है। वे उस पंप का बड़ी सावधानी से परीक्षण करते थे तो उन्हें पता लगा कि शरीर का त्याग करने वाली चेतना जब इस पुतले को छोड़ जाती है तो पंप में पड़ा हुआ रक्त काला पड़ जाता है। उन्होंने यह सोचा कि यदि हम काले रक्त को निकाल करके ताजे निरोग रक्त का संचार इसमें कर सकें तो शायद वह चेतना इसे छोड़कर न जाए– उन्होंने ऐसा ही किया। उन्होंने विस्मित होकर देखा कि यह प्राकृतिक मशीन उनके कृत्रिम ढंग का उपहास करती है और कुछ समय तक हिलहिला कर फिर बंद हो जाती है– उन्हें इस चेतना का पता न लग सका।

इसके विपरीत भारत के अरण्यों में रहने वाले उन दार्शनिक विद्वानों ने इस तथ्य को जानने के लिए अपना नवीनतम और स्वाभाविक मार्ग अपनाया। उन्होंने समझ लिया कि उस चेतना का पता लगाने के लिए दूसरों पर प्रयोग करने के बजाय वह प्रयोग अपने ऊपर ही करना पड़ेगा। इसीलिए उन्होंने तप का मार्ग पकड़ा और अपने ही शरीर के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से संघर्ष करने के लिए खड़े हो गये। प्रकृति की यह मशीन भोजन के द्वारा किस प्रकार लालन पालन पाती है, पहले इस रहस्य को जाना। फिर इसका भोजन बंद कर उपवास किया, जिससे यह पता लग जाए कि इससे मशीन में किस प्रकार परिवर्तन होता है– शारीरिक बल का परिवर्तन ही नहीं, बल्कि शारीरिक चेतना का घटाव बढ़ाव किस मात्रा में होता है, इसे जानने की उत्सुकता उन्हें बहुत अधिक थी। शरीर के विषय में निर्बलता और सबलता का संबंध तो आसानी से जाना जा सकता था, किंतु सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतनता के दर्जे को समझना कोई आसान बात नहीं थी। इसीलिए उन्होंने उपवासों की एक विशेष विद्या ढूँढ़ निकाली, जिसके द्वारा वे आत्म निरीक्षण करने लगे। उसी को उन्होंने आगे चलकर तपस्या का नाम दिया और उसी के अनुसार मानव की कीमत कूतने लगे। जितने दर्जे तक किसी ने उस तपस्या को किया था, उतने दर्जे का ही वह आध्यात्मिक नेता माना जाता था और उसी से उसके सत्य ज्ञान की माप की जाती थी।

अब आप समझ गये होंगे कि भारतीय विद्वानों ने जिस समय उपवासों द्वारा आत्मशुद्धि के मार्ग का पता लगाया तो उन्होंने एक गोली से कई निशाने मार दिए। पहला निशाना तो शरीर शुद्धि का हुआ अर्थात् बीमारियों पर विजय प्राप्त करना। दूसरा निशाना उनका लगा उस महान समस्या के अंतस्थल पर जो बड़े बड़े मनोवैज्ञानिकों को अंधेरे में रखे हुए थी। अर्थात् उन्होंने चेतनता के केन्द्र मन का पता लगाया। किस प्रकार यह मन इन्द्रियों की सहायता से बाहर जगत को देखता है और किस प्रकार वही मन कछुए की तरह अपनी शक्तियों को सिकोड़कर अंतर्मुखी वृत्ति कर लेता है। उनकी अभिरुचि अतिरिक्त जगत की ओर विशेष तौर पर थी इसी कारण उन्होंने शरीर को प्राकृतिक जगत से हटाने का उपकरण प्रारंभ किया और यहीं से अध्यात्मवाद का ज्ञान प्रारंभ होता है और उसका यह शुभ प्रारंभ उस विद्या को जानने से ही हुआ था। उपवास किए बिना मानवीय भावनाओं का विश्लेषण कदापि नहीं किया जा सकता और उन्हीं के बल पर अनासक्तियोग की नींव रखी जा सकती है, अन्यथा पदार्थों का भोग करने वाला व्यक्ति प्राकृतिक और आत्मिक जगत् के भेदों को कदापि नहीं पकड़ सकता, उसे पता ही नहीं लग सकता कि कहां पर जाकर प्राकृतिक संस्कार अपना प्रभाव खत्म करते हैं, किस सीमा पर जाकर आत्मिक संस्कारों की अनुभूति होने लगती है। ये बातें व्याख्यानों द्वारा कदापि समझी नहीं जा सकतीं। यह तो अनुभव की ही वस्तु है।

♦

सन्त-साधु-संन्यासी

हिन्दू धर्म में सन्त समाज के लोगों के लिये अलग अलग नामकरण किया गया है। संन्यासी, स्वामीजी, साधु, मुनि, संत, विदेह, वैरागी, विरक्त आदि। क्या इन सभी नामकरणों का एक ही अर्थ है या इनमें भी अर्थ-भेद है? हम नीचे सभी शब्दों के अर्थभेद को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

संन्यासी - हमारे यहां संन्यासी उसे कहा जाता है जिसने सभी प्रकार के मोह और आसक्ति का त्याग करके गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया है। संन्यासी होने की प्रक्रिया बड़ी कठिन है। कोई संन्यासी ही दीक्षा देगा। दण्डी स्वामी केवल ब्राह्मण हो सकता है। आत्म श्राद्ध, जीवित श्राद्ध तथा पिण्ड दान करके ही संन्यासी होते हैं। ऐसे संन्यासियों का मरने पर पुनः पिण्डदान नहीं होता, केवल जल समाधि होती है। उनका 'दण्ड' प्राण-स्वरूप होता है और दण्ड हमेशा उनके साथ रहता है।

अनेक प्रकार के संन्यासी जैसे त्रिदण्डी स्वामी आदि होते हैं लेकिन इनकी व्याख्या करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। संन्यास का शब्द विन्यास किया जाय तो सद्-न्यास होता है। हमारे यहां न्यास माने ट्रस्ट होता है। ट्रस्ट में सम्पत्ति के केवल सदुपयोग का अधिकार ट्रस्टी को होता है। उसका दुरुपयोग करने का नहीं। जैसे बैंक के मैनेजर के पास बैंक में करोड़ों अरबों रुपया रहता है। वह मैनेजर उसका केवल सदुपयोग कर सकता है। दुरुपयोग करते ही अपराधी हो जायगा। ठीक इसी प्रकार संन्यासी को भी अपने शरीर में स्थित सभी इन्द्रियों के सदुपयोग का अधिकार है। अगर संन्यासी होकर इन्द्रियों का दुरुपयोग करता है तो अपराधी हो जायगा। सत् (परमेश्वर) को ज्ञान द्वारा अन्तःकरण में धारण करके सभी अन्य असत् वस्तुओं का त्याग ही संन्यास है।

संन्यासी को ही स्वामीजी भी कहा जाता है। स्वामी होने के लिये संन्यासी होना आवश्यक है। चक्रवर्ती सम्राट को भी स्वामी नहीं कहा जाता। तो स्वामी किस चीज का स्वामी है। स्वामी अपनी सभी इन्द्रियों, मन और बुद्धि का स्वामी है। सामान्य आदमी अपनी इन्द्रियों का गुलाम होता है लेकिन स्वामी तो अपनी

इन्द्रियों का मालिक होता है। अतः उसे स्वामीजी कहा जाता है। स्वामी एवं संन्यासी शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। दोनों शब्दों का निहितार्थ एक ही है।

साधु :- उसे कहा जाता है जिसकी साधना सध गई होती है या जो निरन्तर साधना में रत रहते हैं। साधु किसी व्यक्ति विशेष या किसी सम्प्रदाय विशेष का नाम नहीं होता। परोपकारी वृत्ति वाला सदाचारी व्यक्ति साधु की श्रेणी में आ जाता है। बहुत से वैरागी वृत्ति के गृहस्थ भी साधु कहे जाते हैं। साधु की कोई निश्चित पोशाक नहीं होती। साधु त्याग वृत्ति का परिचायक है।

मुनि :- मुनि सत् तत्व का सतत मनन करने वाले उस व्यक्ति को कहते हैं जिसकी अत्यन्त उत्कृष्ट साधना सध चुकी हो । मुनि को त्रिकालदर्शी भी कहा जाता है। धर्म के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचे हुये व्यक्ति जैसे वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि मुनि आदि ऐसे हैं जो सिद्ध हो चुके हैं। त्रिकालदर्शी होने के कारण बिना बताये आपके मन की बात जान लेते हैं। साधना की उत्कृष्ट अवस्था से अलंकृत व्यक्ति ही मुनि कहलाने का अधिकारी है। गृहस्थ आदमी भी मुनि हो सकते हैं।

संत :- हमारे यहां सन्त उसे कहा गया जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया हो। संत बिना पढ़े भी महाज्ञानी हो जाता है। संत का अपने इष्ट से सम्पर्क भंग होता ही नहीं। उसकी सारी क्रियाएँ ही ईश्वरार्पित होती हैं। संत की सारी क्रियाएँ लोक कल्याण की दृष्टि से होती हैं। मनुष्य रूप में संतत्व मानवता की वह चरम अवस्था है जिससे आगे पहुँचना संभव नहीं। संत तो नर रूप में रहकर भी देवतुल्य ही है। संत आशीर्वचन दे दे तो वह फलित होकर रहेगा। कारण अपने भक्तों की लाज तो प्रभु को रखनी ही पड़ेगी।

विदेह :- हमारे यहाँ विदेह नाम से महाराजा जनक जी प्रसिद्ध हैं। विदेह उसे कहते हैं जिसमें न तो देहाभिमान हो और न देहासक्ति हो। महाराज जनक जी के बारे में कहावत है कि उनका एक हाथ किसी स्त्री के वक्ष पर था तथा दूसरा हाथ अग्नि पर था। देहाभिमान एवं देहासक्ति से रहित होने के कारण उनको यह भान नहीं था कि दोनों हाथ कहाँ हैं। न तो वक्ष पर हाथ होने के कारण आसक्ति थी और न अग्नि पर होने के कारण कोई आपत्ति थी।

वैरागी :- उसे कहते हैं जिसका राग समाप्त हो गया हो। जिसको हम चाहते हैं उसके प्रति राग हो जाता है और जिसको नहीं चाहते उसके प्रति द्वेष हो जाता है। राग द्वेष में या तो भोगने की इच्छा होगी या भागने की। राग द्वेष को न तो भोगेंगे और न उससे भागेंगे बल्कि जाग जायेंगे तो उस जगी अवस्था को ही विराग कहते हैं। राग द्वेष जब जायेगा तो एक साथ जायेगा और इसी प्रकार जब रहेगा तो साथ रहेगा। राग द्वेष की भावना समाप्त होने पर हम वैरागी हो जाते हैं। त्याग की इस परिपक्व अवस्था का नाम वैरागी है।

विरक्त :- उसे कहते हैं जिसने रक्त सम्बन्धों को भी छोड़ दिया हो। भगवान बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद अपने पिता, पत्नी, पुत्र से मिले। अपनी पत्नी एवं पुत्र को दीक्षा दी। दीक्षा के उपरान्त वे दोनों भिक्षु संघ में शामिल हो गये लेकिन सारे बुद्ध साहित्य में उनका कहीं वर्णन नहीं आता कि यह भिक्षु भगवान बुद्ध का पुत्र है और यह भिक्षुणी भगवान बुद्ध की पत्नी है। रक्त सम्बन्धों से प्रभावित न होना अत्यन्त कठिन है। विरक्त उसे ही माना गया जिसके रक्त सम्बन्ध समाप्त हो गये हों। ऐसा विरक्त अपने पिता, माता, पुत्र, पत्नी आदि से कभी प्रभावित नहीं होगा। उनके लिये रक्त सम्बन्ध अर्थहीन हो जाते हैं।

ऋषि :- विश्व कल्याण के सही मार्ग का अनुसंधान करके जगत को उसी दिशा में प्रेरित करने वाले ज्ञानी पुरुष को ऋषि कहते हैं। ऐसे अनेक ऋषि प्रायः सभी धर्मों में हो चुके हैं।

महर्षि :- जो बुद्धि के पार पहुँचे हुये (भगवत्प्राप्त) विज्ञजन गुणों के द्वारा उस महान (परमेश्वर) का सब ओर से अवलम्बन करते हैं वे इसी कारण (महान्तम् ऋषन्ति इति महर्षयः) इस व्युत्पत्ति के अनुसार महर्षि कहलाते हैं। इनकी संख्या वायुपुराण के अनुसार १० है : भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, क्रतु, मनु, दक्ष, वशिष्ठ, पुलस्त्य। ये सब ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुये हैं और ऐश्वर्यवान हैं। चूंकि ऋषि (ब्रह्मा जी) से इन ऋषियों के रूप में स्वयं महान (परमेश्वर) ही प्रकट हुये इसलिये ये महर्षि कहलाते हैं।

देवर्षि :- जिनका देवलोक में निवास है उन्हें देवर्षि समझना चाहिए। जो देवर्षि के लक्षण इस प्रकार हैं : भूत भविष्य और वर्तमान का ज्ञान होना और सब प्रकार सत्याचरण में रत रहना। जो स्वयं अपनी इच्छा से ही संसार से सम्बद्ध हैं, जो अपनी तपस्या से विख्यात हैं, जो मन्त्रों के वक्ता हैं और जिनकी अपने ऐश्वर्य से ही सर्वत्र सब लोकों में गति है वे देवता ब्राह्मण और राजा सभी देवर्षि हैं। ये चूंकि देवताओं को अधीन रख सकते हैं इसीलिये इन्हें देवर्षि कहते हैं।

ब्रह्मर्षि :- ब्रह्मत्व प्राप्त ऋषि ब्रह्मर्षि कहे गये हैं। विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि।

राजर्षि :- राजन्य वर्ग का होते हुये भी जो ऋषि के समान ही पूर्ण ज्ञानी और सत्याचरणशील हैं उन्हें राजर्षि कहा गया है।

ज्ञानी :- ज्ञान एक बहुलार्थक शब्द है। ज्ञानी वही है जिसे सत् और असत् दोनों का सम्यक् बोध है। गीता के अनुसार 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञान मतं मम।' क्षेत्र (विकारमयी प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (पुरुष, परमेश्वर) को तत्व से जान लेना ही ज्ञान है। दोनों परिभाषायें समानार्थक ही हैं। जिससे प्राणी सम्पूर्ण शोक (मोह) को पार कर जाता है, इस भांति का ज्ञान जिसे प्राप्त है वह ज्ञानी है।

ऐसे अन्य अनेक नाम भी हो सकते हैं जिनसे साधु, सन्त, संन्यासी जैसी भावना जागृत हो। लेकिन सबके मूल में त्यागी, वैरागी, सत्यवादी, कामनारहित होना आवश्यक है। जिसमें ज़िस गुण की प्रधानता होती है उसी हिसाब से साधु, संत, संन्यासी, मुनि, वैरागी, विरक्त आदि कहे जाते हैं। हम जिसे संत कहते हैं मुसलमानों में उन्हीं को फकीर कहा जाता है। इन सभी का एक गुण प्रमुख है कि वे अपनी सारी इन्द्रियों और शक्तियों का केवल सदुपयोग करना जानते हैं। वे दुरुपयोग कर ही नहीं सकते। अगर वे दुरुपयोग करते हैं तो साधु समाज के किसी वर्ग में उन्हें स्थान नहीं मिलेगा।

♦

इन्सान और भगवान

सारी कथाओं में, सभी प्रवचनों में आपको यह सुनने को मिलेगा कि जीवन का लक्ष्य क्या है? मुक्ति एवं भगवत्प्राप्ति। दूसरी बात यह सुनने को मिलेगी कि हमारी सप्त पुरियां जैसे अयोध्या, मथुरा, काशी... ये मुक्ति प्रदान करती हैं। तीसरी बात मुक्ति मरने के बाद मिलेगी। यह भी बताया जाता है कि गंगा 'पतित पावनी' है। भगवान शंकर के पिण्ड पर हाथ फेरने से मनुष्य पाप मुक्त होता है। पाप मुक्ति को बड़ा सरल कर दिया गया। अगर हमने कुंभ स्नान कर लिया तो हमारी सात पीढ़ियाँ तर जाती हैं। याने पाप मुक्त हो जाती हैं। अन्य अनेक सरल उपाय पाप मुक्त होने के बताये गये हैं। हमें यह विचार करना है कि क्या पाप से मुक्ति या जन्म से मुक्ति इतनी सरल है? क्या मुक्ति स्थान प्रधान है कि सप्त पुरियों में मरने पर मुक्ति मिल जाती है? क्या यह भी संभव है कि अगर जीवित अवस्था में मुक्त नहीं हुआ तो मरने पर मुक्त हो पायेगा? मुक्ति के इतने सरल उपायों को सुनने से हम मुक्त होने के सही तरीके को अपनाने से वंचित हो जाते हैं।

मुक्ति उसकी होती है जो बन्धन में हो। अगर हम बंधन में नहीं हैं तो मुक्ति किसकी होगी? हम देखें कि हम बंधन में कब और कैसे होते हैं। हमारे बन्धन का कारण हमारे कर्म हैं। हम जो भी कर्म करते हैं उसका फल पाने के लिए हम बंध जाते हैं। यह कर्मफल ही हमारा बंधन है। कर्मों के फल तीन प्रकार से मिलते हैं। एक तो तत्काल, दूसरा इसी जन्म में तथा तीसरा जन्म जन्मान्तर में। लेकिन मुक्त अवस्था होती नहीं, ऐसा नहीं है। मुक्त अवस्था वह अवस्था है जब हमारे कर्म हमारे बन्धन, याने कर्मफल भोगने के हेतु नहीं बनते। याने हमारे कर्म जब अकर्म की अवस्था में पहुँच जाते हैं तो हमें कर्म करके भी कर्म फल भोगना नहीं पड़ता। यह अकर्म की अवस्था बहुत कठिन है। यह उस अवस्था का नाम है जब कर्म आपकी स्वाभाविक क्रिया हो जाए याने आप में उसके कर्तापन का भाव ही समाप्त हो जाए। जैसे हम स्वांस लेने की एवं आँखों की पलकें गिरने उठने की निरन्तर क्रिया कर रहे हैं। ये दोनों क्रियाएँ हम करते नहीं, अपने आप होती हैं।

जब क्रिया करेंगे तो उसमें हम थकेंगे लेकिन जब क्रिया अपने आप होगी याने क्रिया हमारी स्वभावगत हो जायेगी तो उस क्रिया के कर्ता हम नहीं होंगे। अतः ऐसी क्रिया के कर्ता न होने के कारण हम उसके कर्मफल के भोक्ता भी नहीं होंगे। जिस भक्त ज्ञानी या योगी की सारी क्रियाएँ ईश्वरार्पित हैं ऐसे भक्त, ज्ञानी, योगी द्वारा सारी क्रियाएँ बन्धन का कारण याने कर्मफल पाने का कारण नहीं बनती। उसने क्रिया की ही नहीं, ईश्वर उससे जैसे चाहे करायें। ऐसे भक्त, ज्ञानी, योगी में कर्तापन का भाव नहीं रहता। वह ईश्वराधीन होकर क्रिया करता है और कहता है कि जो कुछ भी हो रहा है, उसी की मर्जी के अनुसार हो रहा है। ऐसी अवस्था में होने पर याने सारी क्रियाएँ ईश्वरार्पित होने पर पुराने पाप-पुण्य बिना भोगे भस्म हो जाते हैं और नये पाप पुण्य बनते नहीं। अतः वह मुक्त हो जाता है। मुक्त याने कर्म बन्धन से मुक्ति और यह अवस्था जब भी आयेगी तो जीवित अवस्था में आयेगी। ऐसे ही व्यक्ति को जीवनमुक्त कहा जाता है। अतः मुक्ति न तो स्थान प्रधान है और न मरने पर मिलती है।

कुछ लोग मुक्ति को पलायनवाद कहते हैं। उनका मानना है कि हम क्यों मुक्त होना चाहते हैं। मुक्ति माने जन्म मरण के चक्कर से मुक्ति। हम तो बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेना चाहते हैं ताकि समाज एवं राष्ट्र सेवा हमारे द्वारा होती रहे। ऐसे लोग जन्म मरण को कष्ट नहीं मानते। वे तो मंगलमय मानते हैं।

मुक्ति पाने में सबसे महत्वपूर्ण बात है कि जब तक हमारा आचरण शुद्ध नहीं होगा याने हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि विकारों से मुक्त होकर शुद्ध नहीं हो जायेंगे तब तक मुक्त नहीं हो सकते। ये विकार ही हमारे बन्धन के कारण हैं। इन विकारों से छुटकारा पाना ही बन्धन मुक्त होना याने मुक्त होना है। इन विकारों से मुक्त होने के लिए निरन्तर अभ्यास, वैराग्य जैसी साधना की आवश्यकता है। इसलिये सबसे पहले जब तक हम शुद्ध नहीं होते, विकारों से रहित नहीं होते, तब तक मुक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। भगवत् प्राप्ति भी तभी हो सकेगी जब हम विकार मुक्त हो जाते हैं। ईश्वर को पाने के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं। वह तो हमारे अन्दर विराजमान है। हमारे विकार ही प्रभु मिलन या प्रभु दर्शन में बाधक हैं। हम जैसे जैसे विकारमुक्त होते जायेंगे, ईश्वर की अनुभूति होती जायेगी और जैसे ही विकारों से पूर्ण रूप से मुक्त हो जायेंगे तो ईश्वर को पाने का प्रयास करना नहीं पड़ेगा। वह हमें अपने आप कृपा रूप में प्राप्त हो जायेगा।

इस लेख के माध्यम से यह भी कहना चाहूँगा कि न तो गंगा स्नान से पाप कटते हैं और न भगवान शंकर की पिण्डी पर हाथ फेरने से। पाप पुण्य का बीजारोपण उसी दिन हो जाता है जिस दिन हम क्रिया करते हैं। जैसी क्रिया करेंगे

तद्नुरूप हमारा पाप पुण्य बनेगा और ऐसे पाप-पुण्य को हमें भोगना ही पड़ेगा। कर्म के विधान में एक बात और समझाने लायक है कि पाप-पुण्य अलग-अलग भोगना पड़ेगा। वह हमें अपने आप कृपा रूप में प्राप्त हो जायेगा।

हमारे यहाँ भगवान कृष्ण ने गीता में 'गहना कर्मणों गतिः' कहकर यह बताने का प्रयास किया कि कर्म की गति बड़ी गहन है। यहाँ गहन इसलिये कहा गया कि हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं लेकिन फल पाने में परतंत्र हैं। याने कौन से कर्म का फल कब, कितना और किस रूप में मिलेगा, कोई नहीं जानता। फल पाना ईश्वराधीन है।

हम भगवान को प्राप्त करने का और मुक्ति पाने का प्रयास छोड़ दें, इंसान बनने का प्रयास करें। इंसान बनने का मतलब है काम, क्रोध, लोभ, मोह माया आदि से छुटकारा पाना। राग, द्वेष से रहित होना। इन सब विकारों से जब हम रहित हो जायेंगे तो हम शुद्ध हो जायेंगे। जैसे ही हम शुद्ध होंगे तब हम कर्मों के अधीन नहीं होंगे और न कर्म फल पाने के आश्रित रहेंगे। विकारों से रहित होने पर भगवान का दर्शन पाने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ेगा, स्वतः हो जाएगा। अतः हमें पहले इन्सान बनने का प्रयास करना चाहिए और इन्सान बनने के लिए अपने दुर्गुणों से मुक्ति एवं सद्गुणों से युक्ति आवश्यक है।

◆

हमारी आयु एवं आहार-विहार

हमारी आयु के बारे में बड़ी भ्रान्तियां हैं। कोई कहता है कुछ भी करो निश्चित समय तक जीना पक्का है। लेकिन यह आलसियों एवं दुराचारियों का मंत्र है। पुरुषार्थी व्यक्ति अपने भाग्य की रेखाओं को बदलना जानता है। कर्म से भाग्य की रेखायें कैसे बदलती हैं इसको उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है।

राजा बलदेव दास बिड़ला की आयु ४५ वर्ष की ज्योतिषी ने बता दी। ४४ वर्ष की आयु में राजा साहब काशीवास के लिये काशी आ गये ताकि काशी लाभ मिल सके। काशी आने के पहले राजा साहब ने अपना कारोबार अपने सुपुत्रों के जिम्मे लगा दिया। काशी में मरने से मुक्ति मिलती है इस कामना से काशी आये ताकि मरण काशी में हो जाए। काशी में आकर रहने लगे और ४५ वर्ष बीत गया। जब ४६वें वर्ष में प्रवेश किया तो उन्होंने उसी ज्योतिषी को पुनः बुलाया जिन्होंने उनकी आयु ४५ वर्ष बताई थी। ज्योतिषी ने पुनः कुण्डली देखकर बताया कि ५४ वर्ष की आयु का एक योग और बनता है। ५४ वर्ष बीत जाने पर ५५वें वर्ष में राजा साहब प्रवेश किये तो राजा साहब ने पुनः ज्योतिषी को बुलाया और पूछा कि पंडित जी, अब हमारी कुंडली क्या बोलती है तो पंडित जी ने कहा कि अब तो मेरी समझ में नहीं आता। पंडित जी के इतना कहने पर राजा साहब ने कहा 'पंडित जी आप केवल जन्म कुंडली देखना जानते हैं, कर्म कुण्डली देखना सीखें।' शुभ कर्मों से आयु बढ़ती है और अशुभ कर्मों से आयु क्षीण होती है। राजा साहब ९६ वर्ष तक जिये और उनके सम्बन्ध में सारी भविष्यवाणियां गलत साबित हुईं। हां, यह सही है कि काशीवास के समय राजा साहब ने पूर्ण वैराग्य का जीवन जिया। दान धर्म करना उनका नित्य का अभ्यास था। दीन दुःखियों की सेवा उनका कर्तव्य था। पंडितों से धर्मशास्त्र की चर्चा उनके जीवन का उद्देश्य था। इस प्रकार काशीवास के उनके पचास वर्ष उनके वैरागी जीवन के प्रतीक थे। सत्कार्यों से आयु कैसे बढ़ती है राजा साहब इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

काशी में प्रसिद्ध वैद्य पं० ब्रजमोहन जी दीक्षित थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रथम आयुर्वेदाचार्य और स्वर्ण पदक प्राप्त थे। नाड़ी ज्ञान बहुत अच्छा था।

देश के श्रेष्ठ वैद्यों में उनकी गिनती थी। धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज केवल इन्हीं की दवा लेते थे। अन्य शंकराचार्य भी इनकी औषधि का ही सेवन करते थे। मैं इन्हें पिता तुल्य मानता था और अक्सर इनके पास बैठता था। इनकी स्मृति इतनी तेज थी कि पुरानी पुरानी बातों को बताकर हमारा ज्ञानवर्द्धन करते और हमारी शंकाओं का समाधान भी करते। एक प्रसंग में वैद्य जी ने मुझसे कहा कि एक दिन लड़का देखने में हट्टा कट्ठा ३० वर्ष का अहीर मेरे पास आया और मुझे बोला कि 'गुरु हमार नाड़ी देख'। वैद्य जी ने नाड़ी देखी और अहीर से कहा कि 'तोरे शरीर में तो कुल रोग भरल हव।' अहीर ने कहा कि 'रोग न होत तो हम आयल काहे बदे हईं' तो वैद्य जी ने पूछा कि 'तूं खाला का' तो अहीर ने दिन भर की दिनचर्या बता कर कहा कि 'रात में आधा किलो मलाई चांप के सूती ला' तो वैद्य जी ने कहा कि 'तू मलाई नहीं खाला, जहर खाला'। तो अहीर ने कहा कि 'देख वैद्य जी, तू हमें चाहे सोने का भस्म द या हीरे का, मोती का भस्त द या और कोई लेकिन हमारा मलइया बन्द मत करें' तो वैद्य जी ने कहा कि हमरे पास ऐसन कोई दवा नहीं हव कि तू मलइया खाता रहे और दवा से तोहार बीमारी छूट जाय।' तो अहीर ने कहा कि जब मलइया छूटे के हव तो शरीर ही छूट जाय कोई चिन्ता नहीं हव' तब वैद्य जी ने कहा कि 'जा सर में कफन बांध के ३० दिन और मलइया खा ल' और ठीक तीसवें दिन उस अहीर की मृत्यु हो गई। अगर वह अहीर मलाई खाना छोड़ देता और दवा करता तो निश्चित रूप से आयु बढ़ जाती और स्वस्थ जीवन जीता।

इसी प्रकार वैद्य जी के पास एक आयकर अधिकारी अपने सात वर्षीय लड़के को दिखाने आये। वैद्य जी ने बच्चे को मीठा, तला आदि खाने से मना किया तो अधिकारी ने कहा कि दीवाली आ रही है, मीठा खाये बिना लड़का मानेगा नाहीं, तो वैद्य जी ने कह दिया कि 'मानी नाहीं तो जीई नाहीं।' उस अधिकारी ने बच्चे को मीठा खाने से दूर रखा और बच्चे को मरने से बचा लिया।

ऐसे अन्य अनेक उदाहरण हैं। यह शरीर भी एक क्लिष्ट मशीन है। जैसे मशीन को समय से सफाई, तेल-पानी, मरम्मत आदि करते रहेंगे तो मशीन ठीक चलेगी और मशीन की सेवा बन्द कर देंगे तो असमय में ही मशीन धोखा दे देगी वही गति इस शरीर की भी है। मैंने स्वयं देखा है पुरानी कार को अच्छा ड्राइवर संभाल कर चला लेता है लेकिन खराब ड्राइवर नई कार को भी कबाड़ा करके रख देता है। इन सब उदाहरणों से यह निर्विवाद है कि शरीर की कोई निश्चित आयु नहीं है। शरीर की आयु इस पर निर्भर करती है हम इसे कैसे रखते हैं। हम सभी अमानत में खयानत के अपराधी हैं। हमें भगवान ने सुन्दर एवं स्वस्थ शरीर दिया। हमने इसे कुरूप और बीमार बना दिया। शरीर के लिये अनावश्यक चीजों

का सेवन करने लगे जैसे शराब, मांसाहार, पान मसाला, पान, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू, खैनी आदि। अनावश्यक भोग विलास का आनन्द लेने के कारण शरीर धीरे-धीरे जर्जर हो गया तथा पराश्रित होकर खटिया पर जीने को मजबूर कर दिया या असमय ही काल के गाल में समा गये। शुद्ध सात्विक आहार विहार तथा सार्थक चिन्तन के कारण शरीर तन मन से निरोग रहता है। जब रोग ही नहीं होगा तो असमय में मौत कैसे आयेगी। हम अपनी गलतियों से अपनी मौत को बुलाते हैं। हम अपनी गलतियों का दोष भी दूसरे में ढूंढ़ने का प्रयत्न करते हैं। अपनी गलतियों के कारण हम स्वयं हैं। विवेकपूर्ण संयम की आवश्यकता है। हम जिसको गलत मानते हैं उसके सेवन से अपने को बचाकर रखें।

मैंने कई लोगों को मौत के मुंह से निकलते देखा है। यह कब और कैसे संभव हुआ, जब उन्होंने गलत आदतों को छोड़ दिया और अच्छी आदतों को स्वीकार कर लिया। खूब जल पीयें, फलों का सेवन करें, नित्य प्रातः भ्रमण एवं योग का अभ्यास करें, अध्यात्म में रुचि रखें, पर निन्दा एवं आलोचना से परहेज करें, स्वास्थ्य के अनुकूल चीजों का ही सेवन करें तथा प्रतिकूल चीजों से अपने को दूर रखें। ऐसा नहीं कि आदमी यह नहीं जानता कि हमारे लिये अनुकूल क्या है तथा प्रतिकूल क्या है। लेकिन इन्सान की कमजोरी द्वापर के दुर्योधन की तरह ही है। दुर्योधन कहता है कि मैं धर्म को जानता हूं लेकिन उधर मेरी प्रवृत्ति नहीं है तथा मैं अधर्म को जानता हूं लेकिन उससे मेरी निवृत्ति नहीं है। महाभारत के भाष्यकार महर्षि वेदव्यास जी ने दुर्योधन के माध्यम से मानव मन की कमजोरी को बताया है। जिन लोगों ने धर्म को जान कर धर्म के रास्ते पर चलने का निश्चय कर लिया और अधर्म को जानकर उससे बचने का प्रयास कर लिया उनका जीवन ही सुखी हो पाया वरना दुर्योधन की वृत्ति उनके विनाश का कारण बनी।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निश्चित आयु लेकर हम पैदा नहीं होते। यह निर्भर करती है हमारे खान-पान, आचार-विचार एवं चिन्तन पर। अपनी गलतियों से बीमार, असहाय होकर जीना कोई नहीं चाहता लेकिन जब यह स्थिति आ जाती है तो काफी देर हो चुकी होती है और उस समय सब कुछ छोड़ कर भी स्वस्थ होने की संभावना समाप्त हो जाती है। अच्छा हो कि बुरी आदतों से प्रारम्भ से ही परहेज रखें और इस शरीर को भार स्वरूप असहाय होने से बचाकर रखें। ध्यान रहे स्वस्थ शरीर आत्मा का भवन है एवं अस्वस्थ शरीर आत्मा का कारागार है।

♦

दान : क्यों, कब और किसको

राजा बलदेव दास बिरला ४५ वर्ष की अवस्था में काशीवास कर लिये थे और ५० वर्षों तक यहां रह कर काशीलाभ (मोक्ष) प्राप्त किये। राजा साहब दान बहुत दिया करते थे तो एक दिन एक पंडित जी ने उनसे शिकायत की कि 'राजा साहब! आप दान बहुत देते हैं लेकिन न पात्र का ध्यान रखते हैं न कुपात्र का और न सुपात्र का। जिसको चाहे जितना दे देते हैं।' तो राजा साहब ने जो जवाब दिया वह ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा -'पंडित जी आपने ठीक ही कहा लेकिन दान देने का अभ्यास बना रहेगा तो कभी न कभी सुपात्र आ ही जाएगा।' राजा साहब का यह उत्तर बड़े महत्व का है एवं मननीय है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में कहा है कि "जेन केन विधि दीन्हें दान करइ कल्याण" यानी जिस विधि से भी दान दिया जाय, दान हमेशा कल्याणकारी होता है।

राष्ट्र संत श्री विनोबा भावे ने कहा था कि दान देना बोने के समान है यानी जैसे एक दाना बोते हैं तो उससे हजार दाना पैदा होता है। आज के सन्दर्भ में दान का महत्व अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। जो परमार्थी होगा उसी की दान देने की प्रवृत्ति बनी रहेगी। विनोबा जी ने दान के अनेक प्रकार प्रचलित किये जैसे भूदान, ग्रामदान, संपत्ति दान, कूपदान, श्रमदान, ज्ञान दान आदि। दान का मूल अर्थ है एक दूसरे की सहायता करना। सहायता अनेक प्रकार से हो सकती है। मेरे पास अमुक वस्तु है और दूसरे को उसकी जरूरत है, तो वह दे देना दान कहा जायगा। मैं डाक्टर हूं तो रोगियों की सेवा करूंगा और शिक्षक हूं तो ज्ञान दान दूंगा। इंजीनियर हूं तो मैं घर बना दूंगा। तालाब, पुल बना दूंगा। यह उपकार करना 'दान' की श्रेणी में आता है। इसी प्रकार धन, घर, जमीन आदि जो भी संपत्ति पास में हो वह जब दूसरों को दी जाती है तो वह भी 'दान' ही कहलाता है। दान देते समय यह समझना चाहिए कि दान करने में मेरा ही कल्याण है क्योंकि मुझ में जो धन की तृष्णा है वह उससे क्षीण होगी। भोग-वृत्ति नहीं बढ़ेगी। इसलिये दान करना आवश्यक और पवित्र कर्तव्य होना चाहिये, उपकार की भावना कत्तई नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय १७ श्लोक २०, २१ एवं २२ में दान के तीन प्रकार बता कर भगवान श्रीकृष्ण ने दान की विशद व्याख्या की है-

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे तद्दानं सात्विकं स्मृतम्।। १७।२०

जो दान बिना किसी प्रतिफल की आशा से, दान देना मेरा कर्तव्य है, यह समझकर देश, काल और पात्र का विचार करते हुये दिया जाता है वह सात्विक कहा जाता है।

केवल देना ही मेरा कर्तव्य है। इसका इस लोक में क्या फल होगा तथा परलोक में क्या फल होगा यह भाव बिल्कुल नहीं होना चाहिये। बिना किसी प्रकार के उपकार की आशा के दान देना चाहिये। जिस देश में या स्थान में जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता है यानी 'देशे काले च पात्रे च' के अनुसार बिना किसी प्रकार के उपकार की भावना से जो दान दिया जाता है वह सात्विक दान कहा गया है। अगले श्लोक में राजस दान के बारे में भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं-

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्।। १७।२२

किन्तु जो दान कष्ट पूर्वक और किसी लाभ या प्रतिफल की आशा से दिया जाता है जिसे देने में लौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति की आशा की जाती है। वह दान राजस कहा जाता है।

इसी प्रकार तामस दान के बारे में बताते हैं-

अदेश काले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमचज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्।। १७।२२

जो दान देश और काल के विपरीत अपात्र (अयोग्य व्यक्ति) को तिरस्कार पूर्वक दिया जाता है वह दान तामसी दान कहा जाता है।

संत महात्मा बताते हैं कि अन्न, जल, वस्त्र एवं औषध - इन चारों के दान में पात्र-कुपात्र आदि का विशेष विचार नहीं करना चाहिये। इनमें केवल दूसरे की आवश्यकता को ही देखना चाहिये। इसमें भी देश, काल और पात्र मिल जाय तो उत्तम बात और न मिले तो भी कोई बात नहीं। हमें तो जो भूखा है उसे अन्न देना है, जो प्यासा है उसे जल देना है, जो वस्त्रहीन है उसे वस्त्र देना है और जो रोगी है उसे दवा देनी है। इसी प्रकार कोई किसी को अनुचित रूप से भयभीत कर रहा है, दुःख दे रहा है तो उससे उसको छुड़ाना और रक्षा दान देना हमारा कर्तव्य है।

हां, कुपात्र को अन्न जल इतना नहीं देना चाहिए कि वह पुनः हिंसा आदि पापों में प्रवृत्त हो जाय। एक प्रचलित कहावत है कि 'नेकी कर दरिया में डाल' यानी दान देने वाले को भी दान देने का अहंकार नहीं होना चाहिये। इस्लाम धर्म में भी

जकात, खैरात, सबधा, फितरा इत्यादि को बड़ा पुण्य का काम माना गया है। जकात (एक विशेष प्रकार के दान) को मुसलमानों का फर्ज करार दिया है। जकात का अर्थ है जिसके पास एक नियत राशि में धन सम्पत्ति हो, वह हिसाब लगाकर ईमानदारी पूर्वक उसका चालीसवां भाग निर्धनों पर या अन्य नेकी के काम पर व्यय करें। लेकिन हदीस में यह भी उल्लेख है कि आप किसी गरीब या लाचार की मदद इस प्रकार करें जैसे वह आपका फर्ज हो। यानी दायें हाथ से दान करें तो बायें हाथ को भी पता नहीं चलना चाहिये कि दायें ने क्या दिया। मन में यह अहंकार कभी नहीं आना चाहिये कि मैंने किसी की मदद कर दी। इसलिये बदले में अल्लाह मुझे मरने पर जन्नत (स्वर्ग) देगा यह भाव उचित नहीं है। इसलिये दान करे तो किसी को दिखाकर या ढिंढोरा पीट कर नहीं, बल्कि शुद्ध मन से ही करे।

इस्लाम में अपनी प्रतिष्ठा के लिये दान पुण्य करना घोर पाप है। इस्लाम की बुनियादी शिक्षाओं में ईमान (कलमा) और नमाज के बाद जकात का स्थान है यानी जकात इस्लाम का तीसरा फर्ज है। दान करने वाले व्यक्ति का हृदय प्रसन्न एवं संतुष्ट रहता है। गरीबों को उससे प्रेम होता है और उसका भला चाहते हैं। समाज में ऐसे ही लोगों को सम्मान, प्रेम और सहानुभूति भी प्राप्त होती है।

हमारे देश के इतिहास में सबसे बड़ा दानी कर्ण को माना गया जिसके दरवाजे से याचक बिना लिये कभी वापस नहीं जाता था। कर्ण ऐसा महा दानी था जिसके पास देने को कुछ नहीं था तो भी अपने दांत में लगे स्वर्ण को ही पत्थर की चोट से निकाल कर दे डाला। किसी ने सूखी चंदन की लकड़ी मांगी और कहीं न मिलने पर अपने चंदन के दरवाजे एवं चौखट तक उखाड़ कर दे दिये।

दधीचि का, शिवि का, बलि का दान, भामाशाह का दान।

बिड़ला परिवार का दान सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि धन की तीन गति होती है। दान, भोग या नाश। यानी सबसे बढ़िया दान है। दान देने के कारण हमारा धन सुपात्र के पास पहुंच गया जिसे उसकी आवश्यकता है। अगर दान नहीं देंगे तो हम उसका भोग करें यानी आवश्यक और अनावश्यक कार्यों में खर्च। वह भी नहीं करेंगे तो उसका नाश होना निश्चित है जैसे जुये में हार जाना, चोरी हो जाना आदि। इन तीनों ही गतियों में धन अपना नहीं रह जाता लेकिन सर्वोत्तम है दान देना ताकि जिसे उसकी आवश्यकता है उसे वह प्राप्त हो जाय।

इस प्रकार इस लेख में हमने यह बताने का प्रयास किया है कि दान देना हमारा कर्तव्य कर्म है इसलिए देना है। जहां, जब एवं जिस वस्तु की आवश्यकता हो, तब दिया जाय एवं देश काल का ध्यान रखते हुये सुपात्र को दिया जाय।

◆

धर्मपिता बनाम धर्मपत्नी

हम धर्म पिता उसे कहते हैं जिनको हम पिता तुल्य मानकर पिता की तरह आदर देते हैं। इसी प्रकार धर्म माता उसे कहते हैं जिनको हम माता की तरह मान कर उनका सम्मान करते हैं। धर्म बहन को भी हम अपनी बहन की तरह मानते हैं। उनसे राखी बंधवाते हैं एवं भैयादूज पर उनके यहां जाकर भोजन भी करते हैं। चाहे धर्म पिता हों या धर्म माता या धर्म बहन, ये सभी मूल पिता, माता, बहन से भिन्न होते हैं। लेकिन धर्मपत्नी का जब सवाल आता है तो धर्म पत्नी असली पत्नी होती है। यह मूल पत्नी से भिन्न नहीं होती, यह मूल ही होती है। मैंने इस प्रश्न पर बहुत चिन्तन किया लेकिन बहुत वर्षों तक इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। लेकिन अब मिल गया जिसे आप सबकी जानकारी के लिए नीचे दे रहा हूँ।

धर्म पिता या धर्म माता या धर्म बहन को मानने के लिये आप कोई धार्मिक क्रिया नहीं करते लेकिन धर्म पत्नी को पाने के लिये जब तक आप विवाह की धार्मिक क्रिया नहीं करेंगे, सात फेरे नहीं होंगे, तब तक वह आपकी धर्म पत्नी नहीं होगी। धर्म पत्नी होने के बाद पति कोई भी धार्मिक क्रिया करता है तो पत्नी के साथ करने का विधान है इसलिये भी वह धर्म पत्नी है। फिर अगर पति धार्मिक क्रियाओं से च्युत होता है, धर्म पत्नी उसे धार्मिक क्रियाओं की ओर पुनः उन्मुख करती है। इसलिये भी वह धर्म पत्नी है। लेकिन इसमें एक गंभीर प्रश्न उठता है कि प्रेम विवाह से या कोर्ट मैरेज से या किसी अन्य विधि से (धार्मिक क्रिया से भिन्न) अगर आप विवाह सूत्र में आबद्ध होते हैं तो उसे धर्म पत्नी कहा जाय या नहीं। इसका उत्तर तो कहीं स्पष्ट नहीं मिलता लेकिन हमारे शास्त्र की मंशा के अनुरूप वह पत्नी तो हो सकती है लेकिन धर्म पत्नी नहीं हो सकती।

एक स्थिति और बनती है कि शास्त्र ने धर्म पत्नी तो कहा लेकिन पति के लिये केवल पति कहा, धर्म पति नहीं कहा। धर्म पति नाम की कोई व्यवस्था नहीं है चाहे लोक व्यवहार हो या शास्त्र हो। तो समस्या एक और है कि धर्म पत्नी तो कहा लेकिन धर्म पति क्यों नहीं कहा? इस प्रश्न पर भी गंभीर चिन्तन के उपरान्त

एक ही व्यवस्था समझ में आयी कि धर्म पत्नी केवल एक पति से आबद्ध रही है, किसी अन्य के पास नहीं जाती। इसलिये भी वह धर्म पत्नी है। जैसे ही वह पर पुरुष के पास गई वह अपना धर्म पत्नी का दर्जा खो देती है। धर्म पति क्यों नहीं कहा? कारण पुरुषों में यह कमजोरी अधिकता से पाई जाती है कि अपनी धर्म पत्नी से भिन्न महिलाओं के पास भी जाते हैं या जाने का मन रहता है। अतः शास्त्रकार ने पतियों को धर्म पति कहने से वंचित रखा।

विदेशों में विवाह एक कन्ट्रैक्ट है, हमारे देश में एक पवित्र गठबन्धन। विदेश में आपको विवाह करने की एवं तलाक लेने की पूरी छूट है। आप चाहें तो आज विवाह करें, कल ही तलाक ले लें। हमारे देश में विवाह के उपरान्त पति पत्नी आजीवन आबद्ध हो जाते हैं। पुराने समय में तो हमारे देश में पति की मृत्यु पर पत्नी सती हो जाती थी, यानी पति के मृत शरीर को अपनी गोद में लेकर स्वयं को भी अग्नि को समर्पित कर देती थी। ऐसी सती को हमारे देश ने मान्यता दी और उनको महिमा मंडित किया। बाद में इसमें जोर जबरदस्ती होने लगी। यानी कोई महिला अगर सती नहीं होना चाहती तो उसे जबरन जलाया गया। अतः सती प्रथा को कानून से अपराध घोषित कर दिया गया। हमारे देश में तो यहां तक व्यवस्था है कि विवाह के उपरान्त धर्म पत्नी के मन में भी पर-पुरुष का विचार नहीं आना चाहिये। लेकिन आजकल का खान-पान, रहन-सहन, टेलीविजन, सिनेमा तथा सरल विदेश यात्राओं ने हमारी धार्मिक मान्यताओं को इतना प्रभावित कर दिया कि अब धार्मिक विवाह भी मात्र लोकाचार हो गया यानी आपको पति पत्नी के रूप में रहने की कानून से एवं समाज से सुविधा मिल गई। हमारे देश की विवाह पद्धति हमारे ऋषियों की देन है। अतः पूर्णतया वैज्ञानिक है लेकिन समय एवं काल ने सबको इतना झकझोर दिया कि हमारी श्रद्धा और आस्था ही कमजोर या खत्म हो गई। अब तो विवाह मात्र एक कर्मकाण्ड होकर रह गया। अधिकतर आज जो पंडित विवाह कराते हैं वे भी विवाह पद्धति के विज्ञान एवं अर्थ से अनभिज्ञ हैं। अतः विवाह का पवित्र गठबन्धन भी अब ढीला पड़ने लग गया और हमारे देश में भी विवाह के उपरान्त तलाक की संख्या बढ़ गई। तलाक राष्ट्र उर्दू का है तथा डाईवोर्स शब्द अंग्रेजी का है। हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में तलाक शब्द का पर्याय नहीं होता हमारे यहाँ तलाक की शास्त्रीय व्यवस्था नहीं है। अगर तलाक लेने तक स्थिति नहीं भी पहुंची हो तो भी पति पत्नी के सम्बन्धों में प्रेम एवं माधुर्य की कमी हो गई। अगर सच पूछा जाय तो हमारे देश की विवाह पद्धति का अध्ययन करने की आवश्यकता है और उसकी वैज्ञानिकता बताने से निश्चित रूप से पति पत्नी की उसमें आस्था एवं श्रद्धा बढ़ेगी एवं जीवन में प्रेम एवं माधुर्य की वृद्धि होगी।

एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि धर्म पिता, या धर्म माता या धर्म बहन जन्मना नहीं होते जब कि केवल माता पिता या बहन जन्मना होते हैं। धर्म शब्द वहीं लगता है जब हम उन्हें माता, पिता या बहन की तरह मान लेते हैं या धार्मिक क्रिया से आबद्ध होते हैं। जन्मना पिता के रहते या दिवंगत होने के उपरान्त किसी अन्य को पिता की तरह माना तो वह हमारा धर्म पिता हो गया। लेकिन जन्मना पत्नी होती नहीं, वह धार्मिक क्रिया से ही आबद्ध होती है अतः धर्म पत्नी को मूल माना।

♦

हमें बुद्ध चाहिये - युद्ध नहीं

बुद्ध क्षत्रिय थे, राजवंशी थे, क्रान्तदर्शी थे और धर्म तथा ज्ञान को जन सामान्य तक ले जाने को उत्सुक थे।

बुद्ध के समय वैदिक संस्कृति को नोना लग गया था। धर्म और यज्ञ के नाम पर लाखों निदोष पशुओं का वध किया जाता था। अंधश्रद्धा और बहम धर्म के स्थान पर बैठ गये। ऐसे समय बुद्ध ने एक विचार क्रान्ति फैलाई और लोगों को सन्मार्ग पर मोड़ने का काम किया। बुद्ध ऐसा कर सकते थे कारण, उनकी विचार-धारा उनकी अनुभूति पर आधारित थी। बुद्ध कहते थे कि जाति के कारण कोई चंडाल या ब्राह्मण नहीं होता। कर्म से चांडाल होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।

बुद्ध की शिष्या मिगारमाता ने एक बड़े महत्व की बात कहीं "आदमी बासी अन्न खाता है। ताजा न मिले तब भले काम निभा लिया जाय, पर उसे पथ्य तो नहीं ही कहा जा सकता।" नई पीढ़ी की रट यह है कि शास्त्रों की पुरानी बातें या तो फेंक दी जायँ या फिर उन्हें नये सन्दर्भ में बिन चुनकर, चाल तथा फटक कर योग्य रूप में प्रस्तुत किया जाय। रेफरिजरेटर में से ठंडी दाल निकालते हैं तब हम उसे फिर से गरम तो करते ही हैं। हमारे पादरी, मुल्ला और महन्त तो हजारों बरस पुरानी बानगी परोसते समय इतनी सी जहमत उठाने को भी तैयार नहीं होते। आज के विश्व सन्दर्भ में बुद्ध की बातों को समझना समीचीन होगा। बुद्ध सभी देश-काल के लिये हमेशा तरोताजा हैं।

बुद्ध ने कहीं भी वेद की निन्दा नहीं की। ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। इस कारण अनेक विचारकों ने उन्हें निरीश्वरवादी कहा। ईश्वर और वेद के नाम पर जो दुराचार फैला था, उसके कारण उन्होंने बार बार मैत्री, करुणा और अहिंसा जैसी बातों पर जोर दिया और आत्मा तथा परमात्मा की मीमांसा को एक बाजू रखा। उस जमाने में आत्मा, ईश्वर, वेद के बिना धर्म की बात करना अत्यन्त कठिन था। भगवान बुद्ध ने कभी नहीं कहा कि वे भगवान के पुत्र, अवतार या पैगम्बर हैं। फिर वे स्वयं किसी धर्म की स्थापना कर रहे हैं ऐसा भी नहीं कहा। बुद्ध ने नित्य आत्मा का अभिषेक किया परन्तु

उसके सतत प्रवाह और पुनर्जन्म पर जोर दिया है। उनका निर्वाण शून्यता में परिणति नहीं है।

वैदिक वाङ्मय में स्त्रियों एवं शूद्रों को वेदाधिकार नहीं था। उन्हें तो पुराण आदि पढ़ने की ही छूट थी। बुद्ध ने स्त्रियों एवं शूद्रों को संघ में स्थान दिया। यह स्वीकार करना होगा कि स्त्री मुक्ति की सच्ची शुरुआत भगवान बुद्ध ने की थी।

उस युग में केवल ब्राह्मण ही समझ सकें और उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकें ऐसी संस्कृत भाषा के स्थान पर उन्होंने पाली जैसी सरल लोक भाषा का उपयोग किया। ज्ञान को ब्राह्मणत्व की कैद से छुड़ा कर एकदम अन्तिम छोर के आदमी तक ले जाने का यह प्रयत्न अत्यन्त क्रांतिकारी था।

बौद्ध विचारधारा में निर्वाण जीवन-साधना की पूर्णाहुति है। अस्तित्व की सार्थकता का अन्तिम चरण है और परम ध्येय है। बोधिसत्व उसे कहते हैं जो सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति चाहता है, जिसके दिल में जीव मात्र के प्रति करुणा के भाव का प्रादुर्भाव हो जाता है। हिन्दू जीवन दर्शन में निर्वाण का अर्थ है मोक्ष या मुक्ति। जैन दर्शन में भी निर्वाण का अर्थ है जहां न दुःख है, न सुख है, न पीड़ा है, न बाधा है, न मरण है, न जन्म है, न निद्रा है, न तृष्णा है, न भूख है। बौद्ध धर्म के पाली त्रिपिटक में निर्वाण की व्याख्या दी गई है। निर्वाण को अन्तिम शुद्धि के रूप में वर्णित किया गया है। निर्वाण अहंकार मुक्त मानव की परम सुखमय अवस्था है। निर्वाण में तप द्वारा पाप क्षीण हो जाता है। जहां अहं है वहां निर्वाण नहीं होता और जहां निर्वाण है वहां अहं नहीं होता। मानव की ऊर्ध्वतम चेतना अर्थात् आध्यात्मिक अनुभूति की चरम अवस्था है निर्वाण। शब्दों के सीमित क्षेत्र में निःसीम को कैसे समाया जा सकता है। पाली त्रिपिटक में निर्वाण को 'अमृतपद' कहा है। इस अवस्था में मृत्यु मर जाती है। बुद्ध ने कहा भिक्षुओं- ध्यान दो मुझे अमृत मिला है। मैं इसका उपदेश करता हूं। बोधि प्राप्त होने के बाद तथागत का पहला उद्गार था "अमृत के द्वार खुल गये हैं"। बुद्ध विचार धारा की विशेषता "प्रत्येक जीव अन्त में निर्वाण प्राप्त करेगा" ऐसी श्रद्धा में निहित है। यहां किसी भेद भाव को स्थान नहीं है। यहां किसी का कुछ भी बाद के लिये बाकी नहीं है। बोधिसत्व चांडाल भी हो सकता है।

प्रत्येक मानव में विद्यमान चेतना का जहां समादर है, स्वीकार है, वहां बुद्ध और उनके द्वारा प्रबोधित धर्म और उनके मार्ग पर चलने के लिये मंथन करते संघ की शरण में जाना किसे अच्छा नहीं लगेगा। निर्वाण प्राप्ति भले ही दूर हो बोधिसत्व बनना हमारे हाथ में है। ध्येय कितना ही दूर हो परन्तु उस दिशा में चलना हमारे वश में है। मार्ग दर्शन कराने वाला समूचा मार्ग बता सकता है यह सही है पर चलना तो स्वयं को ही होगा। तथागत ने मार्ग बताया है पर कदम

बढ़ाने का काम तो हमें ही करना है। बौद्ध धर्म में एक कहावत है मृत्यु का कारण रोग नहीं बल्कि जन्म है। मृत्यु माने जीवन के दूसरे स्वरूप का प्रवेश द्वार। बाद की यात्रा आदमी के संचित कर्मों के परिणाम पर अवलम्बित है।

उस जमाने में आदमी शास्त्र, पुरोहित, देव और विधना का गुलाम बन गया था। बुद्ध ने इस धार्मिक गुलामी पर प्रहार किया और मुक्ति का मार्ग बताया। ईश्वर के प्रति लाचारी भी आदमी को गुलाम बनाये यह उन्हें मान्य न था। इसी से उन्होंने कहा "मेरा कर्म ही मेरी जाति है और मेरा कर्म ही मेरा शरणालय है" और इस कर्म की शुद्धि का आधार सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प आदि है। ईश्वर की झकझक में पड़े बिना भी मुक्ति मिल सकती है और उसके वास्ते कर्मशुद्धि ही एक उपाय है, यह बात उस युग में क्रान्तिकारी थी। पाप और पुण्य को बुद्ध ने कर्म के साथ नहीं जोड़ा। कर्म का नियम कहता है कि जहां आघात होगा वहां प्रत्याघात भी होगा ही और जहां कारण है वहां परिणाम भी होगा ही। कर्म का परिणाम हमारे ध्यान में न आये इससे कोई यह नहीं कह सकता कि परिणाम नहीं होता। बौद्ध विचारधारा तो इस सृष्टि को ही कर्म के नियम की अभिव्यक्ति के रूप में देखती है।

बुद्ध आज के युग की भूख है। आज अनेक को बुद्ध के प्रति आदर भाव आता है क्योंकि आज के युग की जो आवश्यकता है उसे बुद्ध पूरा करते हैं। आज विश्व को करुणा की आवश्यकता है। बुद्ध के करुणा की बुनियाद अद्वैत है। विविध रूपों में व्यक्त होता जीवन मूलतः एक और अविभाज्य है। जीवन की बुनियादी एकता के बोध से करुणा पैदा होती है। जीवन के अन्य स्वरूपों का तादात्म्य बुद्ध की करुणा की गंगोत्री है। करुणा पराये पर नहीं की जा सकती। वह तो समभाव है, एकत्व की अनुभूति है। हमारे समाज में गरीबों के प्रति दया व्यक्त करने वालों की दया और बुद्ध की करुणा में बुनियादी एवं गुणात्मक भेद है। हमारे दया भाव में अहंकार है, पुण्य प्राप्त करने की आकांक्षा है, लोक में प्रतिष्ठा बढ़े ऐसी अभिलाषा है और जो दयनीय हैं उन पर उपकार करने का भाव है। करुणा सहज स्वभावगत है और संवेदना का प्रकटीकरण है। करुणा का लगाव जीव मात्र के प्रति होता है। वास्तविक शान्ति की पूर्व शर्त है करुणा।

बौद्ध विचारधारा की खूबी यह है कि अपनी जीवन साधना के लिये साधक (बोधिसत्व) गुरु या भगवान को आधार न बनाकर अपने पुरुषार्थ को आधार बनाता है। इसके लिये किसी की कृपा की जरूरत नहीं है।

बुद्ध की खूबी यह है कि नास्तिक, अज्ञेयवादी और आस्तिक तीनों उनके विचारों की ओर आकर्षित होते हैं। बुद्ध ने भगवान की, आत्मा की, वेद की या गुरु की बात कहीं नहीं की है और इसी कारण उन्हें नास्तिक करार दिया गया।

परम तत्व या अन्तिम वास्तविकता पर उन्होंने जो बल दिया उसके कारण हिन्दू विचारधारा में भी वे आदर के पात्र माने गये और वह भी यहां तक कि नौवें अवतार के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया गया।

दुःख का विश्लेषण करने वाली बौद्ध विचारधारा निराशावादी नहीं है तथा पलायनवादी भी नहीं है। उसकी खण्डन में रुचि नहीं है। वह एक विचार सरणि है, अध्यात्म का विज्ञान है, धर्म है और जीवन मार्ग है जो तर्कगम्य है। हिन्दू धर्म ने पेड़, नदी, पहाड़, जानवर को पवित्र माना, पुस्तक को भी पवित्र माना पर मानव में पवित्रता का आरोपण नहीं हुआ। अस्पृश्यता इसका दुःखद उदाहरण है। बौद्ध धर्म में अस्पृश्यता का कोई स्थान नहीं है।

बुद्ध ने कहा कि ''पशुओं को मार कर अग्नि होम करने से स्वर्ग जाया जा सकता हो तो यजमान अपने पिता आदि को मारकर स्वर्ग क्यों न जाय। गोमेध यज्ञ में गाय और बैल हजारों की संख्या में मारे जाते थे। बुद्ध ने कहा था कि गाय और बैल ही सभी गृहस्थों के पोषक हैं। अस्तु उन्हें माता पिता के समान मानना चाहिये। बुद्ध जीव हत्या के खिलाफ थे। उनका मानना था कि प्रत्येक जीव जन्तु प्रकृति की योजना में संतुलन की दृष्टि से कोई न कोई भूमिका निभाता है।

भगवान बुद्ध ने अनेक अपमान और अवरोध झेलकर भी वर्ण भेद को स्वीकार नहीं किया। सभी वर्ण के लोगों को उनके संघ में स्थान मिला। बुद्ध की करुणा सूक्ष्म, व्यापक और निरपवाद प्रतीत होती है। भेदभाव का उसमें स्थान नहीं है। करुणा से छलछलाती ऐसी आंखें संसार को बार बार नहीं मिलतीं। युद्ध से बचने का एकमात्र रास्ता है बुद्ध के विचारों को जीवन में अपनाना।

♦

साधक, सिद्ध सुजान

मैंने विद्वानों से पूछा कि रामायण की निम्न चौपाई–

जथा सुअंजन अँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान।।

में जब साधक के बाद सिद्ध हो गया तो सुजान शब्द देने की आवश्यकता क्यों पड़ी? वार्ता के दौरान समझ में आया कि सिद्ध व्यक्ति सुजान नहीं होगा तो अपनी सिद्धियों का दुरुपयोग कर सकता है। सिद्धियों का दुरुपयोग न करे अतः सुजान होना आवश्यक है। उदाहरण दिया गया कि रावण सिद्ध था लेकिन सुजान न होने के कारण अपनी सिद्धियों का दुरुपयोग कर बैठा। हम आगे यहां यह चर्चा करेंगे कि रावण कौन था, किस किस प्रकार की साधना एवं तपस्या से कौन कौन सी सिद्धियां प्राप्त कर ली थीं और उसके बाद भी वह अपनी लंका के पतन एवं संहार का कारण बना तथा अपनी भी जान भगवान राम के हाथों गंवा बैठा। रावण ने सुजानता की कमी के कारण अपनी ऐसी स्थिति बना ली कि उसका कोई नाम लेवा नहीं रह गया तथा कोई अपने बच्चों का नाम भी रावण नहीं रखता।

महा तेजस्वी पुलस्त्य ऋषि की धर्म भार्या से विश्रवा का जन्म हुआ। इस परम पुनीत ऋषि कुल में विश्रवा की दूसरी पत्नी कैकसी से रावण, कुंभकर्ण, विभीषण नाम के तीन पुत्र एवं सूर्पणखा नाम की एक पुत्री का जन्म हुआ। रावण अपने पिता गुरु से वेद–वेदांग सहित सभी शास्त्रों का अध्ययन करके निष्णात विद्वान हुआ और महापंडित की उपाधि से महिमा मंडित हुआ। उसने सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के लिये ब्रह्मा एवं शिव की कठिन तपस्या की। ब्रह्मा से उसने अमर और अजेय होने का वरदान प्राप्त कर लिया–

हम काहू के मरहिं न मारें। वानर मनुज जाति दुइ बारें।
एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तोहिं वर दीन्हा।। रा०

अमरता का वर प्राप्त हो जाने पर वह अपने घर लौट आया और सुन्दरी मन्दोदरी से उसका विवाह हो गया।

मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुन्दरी नारि ललामा।
सोइ मय दीन्हि रावनहिं आनी। जातुधानपति होइहिं जानी।। रा०

पुनः भगवान शिव की तुष्टि के लिये कठोर तपस्या करने लगा और अपने शिरों की बार बार बलि देकर उन्हें भी प्रसन्न कर लिया।

शिर सरोज निज करनि उतारी। पूजे अमित बार त्रिपुरारी। रा०

स्वयं उसने अंगद से कहा था-

जान उमापति जासु सुराई। पूजेउं जेहि सिर सुमन चढ़ाई। रा०
सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि निज सीस।
हुते अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस।। रा०

भगवान शिव प्रगट हो गये और उसे समस्त ऋद्धि, सिद्धियों के साथ अपरिमित बल और पराक्रम का वरदान दे दिये। उनसे ही अपरमित बल पाकर वह पहले उन्हीं के निवास स्थान कैलाश को उखाड़ने का प्रयत्न करने लगा। शिवमहिम्न स्त्रोत में पुष्पदन्त कहते हैं- हे त्रिपुरारि! आपकी सेवा से ही रावण की भुजाओं में शक्ति प्राप्त हुई थी। अभिमान से वह अपना भुजबल आपके निवास स्थान कैलाश के उठाने में तौलने लगा। पर आपने जो पैर के अंगूठे की नोक से जरा सा दबा दिया तो उस रावण की स्थिति पाताल में भी दुर्बल हो गई। प्रायः यह निश्चित है कि नीच व्यक्ति समृद्धि को पाकर मोह में फंस जाता है (कृतघ्न हो जाता है)

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजबलं
बलात्कैलासेऽपित्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठ शिरसि,
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः।।

इसके बाद से उसका अत्याचार बढ़ता ही गया। उसने सुरम्य लंका को अपनी राजधानी बना ली-

तिन्हते अधिक रम्य अति वंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका।
सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहां रावन रजधानी।।

अत्याचार की दूसरी कड़ी में उसने अपने ही बड़े भाई विश्रवानन्दन कुबेर पर चढ़ाई कर दी और उन्हें पराजित करके उनका पुष्पक विमान छीन लाया।

एक बार कुबेर पंह धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा।

इस भांति उसकी हिंसा और दमन की प्रवृत्ति बढ़ती ही गई-

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर सापवश भयेउ सकल अघरूप।।

उसकी अनीति के साथ ही राक्षस कुल और उसका अत्याचार बढ़ने लगा-

बरनि न जाइ अनीति घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति।।

इसके बाद वह स्वयं विश्वविजय हेतु निकल पड़ा, पर सभी लोग भय से उससे दूर भाग खड़े हुए-

रन मदमत्त फिरइ जग धावा।
प्रतिभट खोजत कतहुं न पावा।।
रवि शशि पवन वरुन धनधारी।
अगिनि काल जम सब अधिकारी।।
किन्नर सिद्ध मनुज नर नागा।
हठि सबहीं के पन्थहिं लागा।
ब्रह्म सृष्टि जहं लगि तनुधारी।
दसमुख बसवर्ती नर नारी।।
भुजबल विश्व वस्य करि राखेउ कोउ न सुतंत्र।
मण्डलीक मनि रावन राज करइ निज तंत्र।।

और बल पूर्वक उनको जीत कर स्वयं उनकी कुमारियों का उपभोग करने लगा।

देव यच्छ गंधर्व नर किन्नर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि।।

इस भांति अमित पराक्रमी रावण परमोत्तम ऋषिकुल में जन्म लेकर और महामंडित होकर भी अति अहंकारवश महान अत्याचारी हो गया। विश्व ब्रह्माण्ड में उससे मुकाबला करने वाला कोई नहीं रह गया। उसका अत्याचार विश्व व्यापी हो गया। काल उसके अधीन हो चुका था। इसी हेतु पृथ्वी से अधर्म और अत्याचार मिटाने हेतु रावण को मारने के लिये अविनाशी पुरुष भगवान राम को पृथ्वी पर नर रूप में आना पड़ा।

कालान्तर में जब श्री रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सती सीता के साथ पिता की आज्ञा से बनवास में थे, उसने अहंकारवश राम की प्रभुता को ललकारते हुये सती सीता का अपहरण कर लिया और उन्हें ले जाकर लंका में सुरक्षित रख दिया। सीता की खोज में गये हुए हनुमान जब लंका पहुंचे और वहां विकल सीता को देखा तो रावण के दरबार में जाकर उसे सीता को वापस राम के पास भेज देने हेतु बहुत समझाये और अपना परिचय देते हुये बोले-

जाके बल लवलेस ते जितेउ चराचर झारि।
तासु दूत मैं जेहि कर हरि आनेहु प्रिय नारि।।

और उसे सत्य समझाने और कल्याण का मार्ग सुझाने का भी यत्न किये-

सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य सम्भूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः।। वा॰रा॰सु॰का॰

समस्त लोकों को तथा सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को मार डालने और उसे पुनः जीवित कर देने में भी महायशस्वी श्रीराम समर्थ हैं।

जाके डरअति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।।
तासों बैर कबहुं नहिं कीजे। मोरे कहे जानकी दीजे।।
राम चरण पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम करहू।।
संकर सहस विष्णु अज तोहीं। राखि न सकहिं राम कर द्रोही।।

पर रावण मदान्धता में उनकी बात को अनसुनी करके अपनी ही प्रशंसा करने लगा। वहां से लौट कर हनुमान भगवान राम से जब रावण के इस कुकृत्य का समाचार सुनाये तो सहायकों के साथ राम ने लंका के लिये प्रस्थान किया। परन्तु वहां जाकर भी उन्होंने सहसा उस पर आक्रमण न करके उसको समझाने के लिये अंगद को भेजा। अंगद ने भी अपने पिता बालि का सम्बन्ध रावण से बता कर समझाने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु वह न माना–

उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती। सिव विरंचि पूजेहु बहु भांती।।
पायेहु बर कीन्हेउ सब काजा। जीतेउ लोकपाल जम राजा।।
नृप अभिमान मोह वस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदम्बा।।
सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई।।
जो खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सकि राखि न तोही।।

इसके पूर्व विभीषण ने भी सीता को राम के पास वापस भेजने हेतु बहुत समझाया था–

तात राम नहिं नर, भूपाला।
भुवनेश्वर कालहुं कर काला।
तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहं अहित न होइ तुम्हार।।

मुनि पुलस्त्य ने भी रावण के पास यही संदेश भेजा था, जैसा विभीषण ने रावण से कहा–

मुनि पुलस्त्य निज सिस्य सन कहि पठई यहि बात।
तुरत सो मैं प्रभुसन कही पाइ सुअवसर तात।।

युद्ध के पूर्व मन्दोदरी ने भी समझाने का पूरा प्रयत्न किया था–

कंत राम विरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ उर धरहू।

परन्तु किसी की बात अहंकार ग्रस्त मदहोश रावण नहीं माना। युद्ध प्रारम्भ हुआ और सम्पूर्ण राक्षस कुल के साथ वह मारा गया।

अध्यात्म में रावण को अहंकार का प्रतिरूप कहा गया है। अहंकार की सत्ता दुर्जेय है। अहंकार से मोहग्रस्त हुआ प्राणी महापंडित होने पर भी विवेक खो देता है, सद्विचार उसमें आ ही नहीं पाते और जानते हुये भी अनजान हो जाता है। साधना से सिद्धि प्राप्त करके भी जो सुजान नहीं है, उसको सत्य का दर्शन नहीं हो पाता। इससे वह सुमार्ग त्याग कर कुमार्गगामी बन जाता है, उसका सम्पूर्ण ज्ञान अज्ञान में और सारी विद्या अविद्या में परिणत हो जाती है। इसलिये प्राणी को साधक और सिद्ध होने के साथ सुजान भी होना चाहिये। रावण साधक था। साधना से सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि भी उसे प्राप्त थी पर सुजान नहीं था। इसी से कुमार्गगामी भी हुआ और अन्त में मारा गया।

सभी को इस प्रसंग से शिक्षा लेनी चाहिये। पांडित्य बिना विवेक के निष्फल है।

विद्या विनु विवेक उपजाये।
वादि किये श्रम बिनु फल पाये।

सम्पूर्ण ऐश्वर्य साधना (प्रयत्न) से प्राप्त होते हैं पर उनकी रक्षा और अपना कल्याण सद्बुद्धि और विवेक से ही सम्भव है।

◆

हमारे देश की गुरु-परम्परा

हमारे देश में दो प्रकार के गुरु होते हैं। एक तो शिक्षा गुरु जो हमें शब्द- ज्ञान कराते हैं। इस शिक्षा से हम दर्जा एक से लेकर उच्चतम शिक्षा पीएच०डी० डि०लिट्० तक प्राप्त करते हैं। यह शिक्षा हमें लिखना तथा पढ़ना सिखा देती है। अगर कक्षा में वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है तो हम बोलना भी सीख जाते हैं। दूसरे होते हैं दीक्षा गुरु यानी कान फूंक कर जो मंत्र देते हैं। दीक्षा गुरु से हमें मिलता क्या है? दीक्षा गुरु हमें संस्कारित करते हैं। ये संस्कार ही हमारे जीवन के आधार बनते हैं। शिक्षा गुरु से पढ़ाई खत्म होने के बाद सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। प्रत्येक कक्षा के शिक्षा गुरु भी अलग अलग होते हैं। इस प्रकार शिक्षा गुरु जहां अनेक होते हैं वहीं दीक्षा गुरु एक ही होते हैं। दीक्षा गुरु के सम्पर्क में हम आजीवन रहते हैं। हम मार्गदर्शन एवं समस्याओं का समाधान अपने दीक्षा गुरु से पाते हैं। जैसे शिक्षा गुरु की शिक्षा शिष्य के काम आती है वैसे दीक्षा गुरु की साधना एवं सिद्धि यों तो लोक कल्याण के लिए होती है लेकिन उसका अधिकतम लाभ दीक्षित शिष्य को ही मिलता है। हमारा जीवन केवल शिक्षित होगा और संस्कारित नहीं होगा यानी दीक्षित नहीं होगा तो हम वैसे बनेंगे जैसे रावण था। रावण महापंडित था, शास्त्रों का महान ज्ञाता था, अति बलशाली था लेकिन वह संस्कारित नहीं था जिसका नतीजा हुआ कि उसके अहंकार ने उसका तो नाश किया ही, पूरी लंका का नाश कर दिया। रावण अगर संस्कारित होता तो उसकी यह दुर्गति नहीं होती। रावण का कोई नाम लेने वाला भी नहीं रह गया। कोई अपने बच्चे का नाम भी रावण नहीं रखता कारण, रावण में संस्कार का अभाव था। हमारे यहां लोक प्रचलित एक कहावत है कि पिता द्वारा बच्चे को क्या देना चाहिए तो संस्कार देना चाहिये। अगर धन नहीं है और संस्कार है तो धन कमा लेगा और धन है, संस्कार नहीं है तो पूरा धन गंवा बैठेगा। अतः जीवन का संस्कारित होना अति आवश्यक है और संस्कारित होने के लिए दीक्षा गुरु का होना आवश्यक है।

हमारे देश में गुरु परम्परा के लिये चार प्रकार के शब्द प्रयोग में लाये जाते

हैं। पहला शिक्षक, दूसरा अध्यापक, तीसरा आचार्य एवं चौथा गुरु। क्या चारों शब्दों यानी शिक्षक, अध्यापक, आचार्य एवं गुरु का अर्थ एक ही है या भिन्न भिन्न? चारों के अर्थ सर्वथा भिन्न भिन्न हैं और समझने लायक हैं। शिक्षक वे हैं जो शिक्षा लेकर शिक्षा देते हैं। अध्यापक उन्हें कहते हैं जो शिक्षा लेकर अध्ययन करके अध्यापन करते हैं। आचार्य तो शिक्षा भी लेंगे, अध्ययन करके अध्यापन भी करेंगे लेकिन आचरण में उतार कर करेंगे तो उन्हें हम आचार्य कहेंगे। आचार्य किसी को पान, बीड़ी, सिगरेट या तम्बाकू छोड़ने को कहेगा तो पहले स्वयं छोड़ेगा तभी छात्र से छोड़ने की बात कहेगा और छात्र पर असर भी तभी पड़ेगा। वरना आचार्य की कही बातें भी बेअसर होंगी। हमारे यहां गुरु का अर्थ भी समझने लायक है। गुरु वह है जो शिक्षक की तरह शिक्षा लेकर शिक्षा देगा, अध्ययन करके अध्यापन करेगा, आचरण में उतार कर कहेगा लेकिन जो अपने शिष्य की गरिमा को ऊपर उठावे वह सच्चा गुरु। गुरु चाहेगा कि मेरा शिष्य मेरे से आगे बढ़ जाय और मैं शिष्य से पराजित हो जाऊं। हर पिता चाहता है कि उसका पुत्र उससे आगे जाय और वह मेरे से अधिक योग्य हो। इस प्रकार हमने देखा कि गुरु परम्परा के चार शब्दों के अर्थ भी भिन्न-भिन्न हैं।

हमारे देश में आषाढ़ पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा भी कहा जाता है। इस तिथि को प्रत्येक शिष्य अपने गुरु का पूजन करके आशीर्वाद प्राप्त करता है। गुरु का सान्निध्य प्राप्त करता है। गुरु के उपदेश एवं आदेश से अपने जीवन को संवारता है। आषाढ़ पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा कहने का विशेष अर्थ है। इसी दिन विश्वगुरु भगवान वेदव्यास जी का जन्म दिवस है। व्यास उन्हें कहते हैं जो विस्तार करते हैं। वेदव्यास जी ने हमारे धर्मग्रन्थों की विस्तार से रचना की जैसे महाभारत, अठारहों पुराण तथा श्रीमद्भागवत। वेदव्यास जी द्वारा रचित ये ग्रन्थ हमारे हिन्दू धर्म के आधार ग्रन्थ हैं अतः व्यासजी के जन्म दिन को भी गुरु पूर्णिमा दिवस के रूप में हम मनाते चले आ रहे हैं।

गुरु शब्द का अर्थ है 'गु' नाम अन्धकार का है और 'रु' नाम प्रकाश का है। इसलिये जो अज्ञानरूपी अन्धकार को मिटा दे वह गुरु होता है। गुरु के विषय में एक दोहा बड़ा प्रसिद्ध है-

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय।।

इस एक दोहे के बड़े गहरे अर्थ हैं। गुरु वह है जो गोविन्द को बता दे। अगर गोविन्द को बताया नहीं और स्वयं गुरु बन गये तो उनके गुरु बनने में संदेह है। असली गुरु वह होता है जिसके मन में चेले के कल्याण की इच्छा हो और चेला वह होता है जिसमें गुरु के प्रति भक्ति हो। अगर गुरु पहुंचा हुआ हो और शिष्य

सच्चे हृदय से आज्ञा पालन करने वाला हो तो शिष्य का उद्धार होने में संदेह नहीं। एक उदाहरण से इसे यों समझा जा सकता है कि अगर पारस के स्पर्श से लोहा सोना नहीं बना तो वह असली पारस नहीं अथवा लोहा असली लोहा नहीं है अथवा दोनों के बीच में कोई आड़ है जिसके कारण पारस एवं लोहे का स्पर्श नहीं हो पा रहा है। इसी तरह अगर शिष्य को तत्वज्ञान नहीं हुआ तो गुरु तत्व ज्ञान प्राप्त नहीं है अथवा दोनों के बीच कोई आड़ (कपट भाव) है।

स्वामी दत्तात्रेय जी ने अपने जीवन में २४ गुरु बनाये। जिससे भी हम शिक्षा लें या गुण ग्रहण करें व्यापक अर्थ में वे हमारे गुरु हैं। चौबीस गुरुओं में पहला गुरु है पृथ्वी जिससे क्षमाशीलता सीखी। दूसरा गुरु है वायु जिससे निर्लिप्तता का गुण ग्रहण किया। तीसरा है आकाश। आकाश में बादल आते हैं, बिजली कड़कती है लेकिन थोड़ी देर में पुनः यथावत् हो जाता है। यानी संकट की घड़ी भयरहित होकर बिताना ही आकाश का गुण है। चौथा जल। जैसे जल अपने मैले को दूर कर देता है उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने मन के मैल को दूर कर देना चाहिये। पांचवां है चन्द्रमा। चन्द्रमा कृष्ण पक्ष या शुक्ल पक्ष में घटता बढ़ता नहीं केवल सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की गति के कारण घटता बढ़ता दीखता है। साधक भी चन्द्रमा के समान एक सा स्थिर भाव में रहकर साधना करे। छठा है सूर्य। सूर्यदेव अपनी प्रखर किरणों से पृथ्वी से जल ग्रहण करते हैं और पुनः बादलों के माध्यम से पृथ्वी पर बरसा देते हैं। अपने पास कुछ भी नहीं रखते। संग्रह का परित्याग करना महानता का परिचायक है। सातवां है समुद्र। समुद्र में तरंगे उठती हैं, नदियों का जल आता है, गर्मियों में जलाशय सूख जाते हैं लेकिन समुद्र प्रत्येक परिस्थिति में अपनी गंभीरता नहीं छोड़ता। समुद्र की तरह यथावत् रहना चाहिये। इसी प्रकार अग्नि, कबूतर अजगर, पतिंगा, भौंरा मधुमक्खी, मधु निकालने वाला, हरिन, मछली, पिंगला (एक वेश्या), कुरर पक्षी, कुमारी कन्या, तीर निर्माता, सांप, मकड़ी, भृंगी कीड़ा भी उनके गुरु थे यानी प्रत्येक से स्वामी दत्तात्रेय ने कुछ न कुछ सीखा। अतः सभी चौबीस उनके गुरु हो गये।

अगर हमारी दृष्टि अहंकारमुक्त हो तो प्रत्येक परिस्थिति से हम कुछ न कुछ ग्रहण कर सकते हैं।

आजकल 'गुरु' बनकर ठगने की प्रवृत्ति भी जोरों पर है। ऐसे गुरुओं से सावधान रहने की जरूरत है। जो गोविन्द से तो मिलाता नहीं, कोरी बातें ही करता है वह गुरु नहीं होता। ऐसे गुरु की महिमा नकली एवं केवल दूसरों को ठगने के लिये होती है।

क्या मनुष्य जीवन में गुरु का होना आवश्यक है? भगवान बुद्ध ने अपने प्रधान शिष्य आनन्द से कहा कि 'आनन्द, तुझे जो कुछ प्राप्त होगा तेरे प्रयास एवं

प्रयत्नों से ही प्राप्त होगा। मेरी कृपा एवं आशीर्वाद से कुछ भी नहीं मिलेगा। मैं तो केवल रास्ता दिखा दूंगा, चलना तो मुझे ही पड़ेगा।' अतः यह निर्विवाद है कि गुरु बनाने से कल्याण नहीं होता, प्रत्युत् गुरु की बात मानने से कल्याण होता है। गुरु वही कहता है जो शास्त्रों में लिखा है। अतः आप गुरु की बात मानें या शास्त्र की बात, लाभ तो मानने में तथा उस रास्ते पर चलने में ही है। बिना गुरु के भी कल्याण संभव है तथा गुरु करने से भी कल्याण होना निश्चित नहीं है।

हमारे सिख समुदाय में सारी व्यवस्था गुरु आश्रित है। उनके उपासना स्थल भी गुरु द्वारा कहलाते हैं। उनका धर्मग्रंथ भी गुरुग्रंथ कहलाता है। गुरु द्वारा कही गई वाणी भी गुरुवाणी कहलाती है। उनके इष्ट उनके गुरु ही होते हैं जैसे गुरु नानकदेव, गुरु गोविन्द सिंह आदि आदि। इस प्रकार गुरु महिमा सबसे अधिक सिख समुदाय में देखने को मिलती है।

एक और प्रचलित कहावत है कि गुरु कीजे जान के, पानी पीजे छान के तो गुरु को जानने का उपाय क्या है? केवल गुरु के चमत्कार, पहनावा, ब्रह्मज्ञान से प्रभावित न हों। धर्म आचरण में पलता है तथा सेवा से व्यापक होता है। गुरु के ज्ञान ने उसके जीवन पथ को कितना आलोकित किया, उसका कर्म उसके आचरण में कितना उतरा यह देखना आवश्यक है। पैसे के लालच में चेला बनाने बनाने वालों से सावधान रहने की आवश्यकता है। गुरु बनाने के बाद चेले के जीवन में कोई शुभ परिवर्तन नहीं आया तो गुरु बनाने का कोई अर्थ नहीं। गुरु वे हैं जो अपनी साधना, सिद्धियों और ज्ञान को शिष्य को संवारने में लगा दें।

◆

शास्त्रों के विचित्र प्रसंग

हम अपने हिन्दू शास्त्रों में कई ऐसे विचित्र प्रसंग देखते हैं जिनका आशय और शास्त्रकार का लिखने का मन्तव्य समझ में नहीं आता। आज का मनुष्य प्रत्येक घटना का मन्तव्य समझना चाहता है। प्रत्येक धार्मिक आख्यान का वैज्ञानिक कारण समझना चाहता है। अब पढ़े लिखे लोग धार्मिक आख्यानों को मानते तो हैं लेकिन उनका तात्विक अर्थ भी समझना चाहते हैं। उदाहरण के तौर पर रावण के दस सिर होना, भगवान विष्णु का शेष नाग की शैय्या पर सोना, गणपति को हाथी का सिर काट कर लगाना तथा उनके चार हाथ होना, मां दुर्गा को अठारह भुजा होना तथा प्रत्येक भुजा में अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य उपकरण को प्रतिष्ठापित करना, सूर्य से कुन्ती को कर्ण का होना, भगवान राम के जमाने में जानवरों का बोलना, भगवान राम द्वारा बन्दरों एवं अन्य जानवरों की संगठित सेना तैयार करना, समुद्र पर नल नील के स्पर्श से पत्थरों का तैरना, ऐसे पुष्पक विमान से यात्रा करना जिसको चाहे जितना छोटा कर लें या चाहे जितना बड़ा कर लें। अहिल्या अगर पत्थर की हो गई तो भगवान राम के स्पर्श से उसका जीवंत होना जबकि मार्ग में भगवान राम ने अन्य अनेक पत्थरों को स्पर्श किया होगा। मां सीता का भूमि से, मां लक्ष्मी का समुद्र से तथा मां पार्वती का पर्वत से पैदा होना, छः माह के कृष्ण का राक्षसी पूतना का वध करना, साधारण व्यक्ति ने भी अगर श्राप या वरदान दिया तो उसका चरितार्थ होना, पारस पत्थर होता नहीं फिर भी यह बताना कि लोहा अगर स्पर्श करे तो सोना हो जाय। सर्प को मणि नहीं होती फिर भी सर्प मणि का वर्णन करना कि वह स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित होती है। नल नील का समुद्र पर पुल बनाना, नल नील अपने बचपन में बड़े उपद्रवी बालक थे। एक ऋषि के आश्रम के समीप ही इनका निवास था। ऋषि पूजन के लिये जो पत्थर की मूर्तियां या चौकी वगैरह रखते थे उन्हें वे पानी में फेंक देते थे और वे डूब जाते थे निकाले न जा सकते थे, ऋषि ने उन्हें श्राप दे दियां कि अब से जो पत्थर जल में इनके द्वारा फेंका जाय वह तैरता रहे डूबे नहीं ऐसी कथा प्रसिद्ध है परन्तु सत्य यह है कि नल नील उस काल के इंजीनियर थे और पुल बनाने के

काम में विशेषज्ञता रखते थे, बड़े कौशल से इन्होंने समुद्र पर पुल का निर्माण किया।

प्रत्येक समय में शास्त्रकार के कहने का ढंग अलग अलग होता है। कर्ण को सूर्यपुत्र बता दिया तो वह अवश्य सूर्य की तरह तेजस्वी रहा होगा। रावण को दस सिर क्यों दे दिया? रावण महापंडित था। कहते हैं दशों दिशाओं में जितना ज्ञान था वह अकेले रावण के पास था। चूंकि विद्वत्ता एवं पंडिताई सिर में होती है अतः उसको दस शिर का वर्णित कर दिया। दस शिर इसलिये दिया कि दशों दिशाओं का ज्ञान उसके पास था। मां दुर्गा आपको अनेक भुजाओं वाली मिलेंगी। कारण मां दुर्गा शक्ति की प्रतीक हैं। शक्ति भुजाओं में होती है अतः मां दुर्गा को अनेक भुजाओं वाली चित्रित कर दिया और उन भुजाओं में कई कई अस्त्र-शस्त्र धारण करा दिया। हमारे गणपति महाराज को हाथी का सिर एवं चार भुजाधारी बना दिया। उनको दूर्वा एवं मोदक (लड्डू) प्रिय है ऐसा भी वर्णन आता है। हमारे गणपति की प्रथम पूजा इसलिये होती है कि वे विघ्नहर्ता हैं। जो कार्य प्रारम्भ करें वह निर्विघ्न समाप्त हो जाए यह कामना रहती है। हमारा विघ्न हरण कौन कर सकता है? जो स्वयं बलशाली हो। हाथी से बढ़कर बलशाली कोई प्राणी नहीं है। अतः प्रतीक स्वरूप हाथी का सिर गणपति को दे दिया। गणपति और भी दो गुणों के कारण पूज्य हैं। एक बुद्धि विवेक के प्रदाता तथा दूसरे ऋद्धि-सिद्धि के दाता। हाथी सबसे अधिक ताकतवर होते हुए भी सबसे अधिक बुद्धिमान जानवर हैं। प्राणि विशेषज्ञ बताते हैं कि हाथी कभी अपनी प्रणय लीला किसी के सामने नहीं करता। कोई उसे प्रणय लीला के समय देख ले तथा हाथी को पता चल जाय कि उसे वह देख रहा है तो हाथी क्रुद्ध हो जायगा। अन्य जानवरों को यह विवेक नहीं कि प्रणय लीला किस समय करनी चाहिये लेकिन हाथी को यह विवेक है। अतः गणपति को हाथी का सिर देकर शास्त्रकार यह संदेश देना चाहते हैं कि आप भी अपनी प्रणयलीला बुद्धि विवेक से करें। जिसका प्रणय लीला पर नियंत्रण हो जायगा उसका बुद्धि विवेक ठीक रहेगा यह शास्त्रकार की मनसा रही होगी। जब गणपति विघ्नहर्ता हो गये, बुद्धि विवेक के प्रदाता हो गये तो ऋद्धि सिद्धि तो अपने आप हमारे पास आ जायगी। ऋद्धि सिद्धि नाम की दो पत्नियां भी गणपति को थीं ऐसा वर्णन मिलता है यानी उनके अधीन थीं। गणपति को चार भुजाधारी इसलिये भी दर्शाया गया है कि वे वीरता के प्रतीक हैं। वीरता के लिये शक्ति चाहिये। शक्ति भुजाओं में होती है अतः चार भुजाधारी के रूप में गणपति को चित्रित कर दिया। गणपति को मोदक एवं दूर्वा साथ-साथ प्रिय हैं कारण मोदक कोई नुकसान न करें यानी उन्हें चीनी की बीमारी न हो जाय अतः दूर्वा उन्हें मोदक की बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करेगी।

हमारे यहां अहिल्या का भगवान राम के चरण स्पर्श के उपरान्त जीवंत होना बताया गया है। अहिल्या पत्थर की थी लेकिन भगवान के चरण स्पर्श से जीवंत हो उठी। भगवान राम ने तो कितने ही पत्थरों को चरण स्पर्श कराया होगा लेकिन और कोई जीवंत नहीं हुआ। कारण क्या? अहिल्या गौतम ऋषि की पत्नी थी। अहिल्या अतीव सुन्दर थी। इन्द्र उस पर मोहित हो गये थे। गौतम ऋषि प्रातः चार बजे मुर्गे की बांग सुनकर गंगा स्नान को प्रत्येक दिन जाते थे। एक दिन इन्द्र ने प्रातः तीन बजे ही मुर्गे का रूप धारण कर बांग लगा दी। गौतम ऋषि ने समझा कि मुर्गे ने बांग लगा दिया। अतः चार बज गये। चल पड़े गंगा स्नान को। इधर अहिल्या को अकेली पाकर इन्द्र ने ऋषि गौतम का वेश धारण कर अहिल्या से सहवास कर लिया। उधर जब गौतम ऋषि गंगा जी पहुंचे तो मां गंगा ने कहा कि ऋषिवर! आज इतने प्रातः! ऋषि ने कहा, नहीं चार बजे हैं तो मां गंगा ने कहा कि अभी तो तीन ही बजे हैं। ऋषि गौतम वापस आने लगे। ऋषि गौतम के वापस आने की आहट पाकर इन्द्र भागे। गौतम के आने पर अहिल्या को आभास हुआ कि उसने तो पर-पुरुष से सम्पर्क कर लिया तथा उसका सतीत्व भंग हो गया। सतीत्व भंग के महान कष्ट के कारण वह पथरा गई यानी संज्ञा शून्य हो गई। भगवान राम जब आये हैं तो उन्होंने अहिल्या को समझाया कि अरे अहिल्या तेरी क्या गलती है? गलती तो इन्द्र ने की है। तूने तो जब भी सहवास किया ऋषि गौतम समझ कर ही किया। गलती तो इन्द्र की थी कि वह कपट वेश धारण करके तेरे पास आया। तू क्यों प्रायश्चित्त कर रही है? भगवान राम का इतना समझाना था कि अहिल्या की संज्ञा शून्यता समाप्त हो गई तथा उसने अपने स्वरूप को पुनः प्राप्त कर लिया। यही कारण है कि भगवान ने अनेक पत्थरों का चरण स्पर्श किया होगा लेकिन कोई जीवंत नहीं हुआ।

समुद्र मंथन से लक्ष्मी का आगमन दिखाया गया है। समुद्र मंथन से क्या मिलेगा? दूध-दही मथेंगे तो मक्खन मिलेगा लेकिन पानी रूपी समुद्र मथेंगे तो क्या मिलेगा? यहां समुद्र मंथन यानी परिश्रम। जब तक परिश्रम करते रहेंगे लक्ष्मी का निर्माण होता रहेगा। कहते हैं आलस्य ही गरीबी है एवं परिश्रम ही पूंजी है। इसी प्रकार मां सीता का प्रादुर्भाव भूमि से दिखाया गया है। वर्णन आता है कि विदेह राजा जनक एवं उनकी पत्नी सुनयना जब हल चला रही थी तो भूमि से मां सीता का प्राकट्य हुआ। जब हल चलाने वाले विदेह होंगे, विदेह यानी देहाभिमान तथा देहासक्ति से सर्वथा रहित और दूसरी तरफ सुनयना यानी जिसके नयन भी पवित्र हों। कहते हैं पाप सबसे पहले नेत्रों से प्रवेश करता है। जिसके नयन भी पवित्र हों तो पाप प्रवेश कहां से करेगा? यानी श्रम में हल चलाते समय एक तरफ ऐसा व्यक्ति हो जिसे न देहाभिमान हो और न देहासक्ति हो और दूसरी तरफ

सुन्दर नयन वाली सुनयना हो तो ऐसी सम्पन्नता वाली सुन्दर सीता का प्राकट्य होना स्वाभाविक है। यही स्वतः पूर्ण ब्रह्म की अर्धांगिनी होने का सौभाग्य प्राप्त करती है।

जिस पर्वत पर आदि ब्रह्म भगवान शिव का निवास हो वह पर्वत कितना भाग्यशाली एवं पुण्यवान हो जायगा। अतः ऐसे पर्वत की पुत्री ही भगवान शिव की अर्धांगिनी के रूप में चित्रित की गई है। पार्वती ने भगवान शिव को पाने के लिये कितनी कठिन तपस्या की। यानी शिव जो हमेशा समाधि में रहते हैं उन्होंने पत्थरों को भी जीवंत कर दिया तथा उसे अपनी अर्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया और स्वयं अर्धनारीश्वर कहलाये।

भगवान राम के जमाने में सभी जानवर बोलते हैं चाहे गिद्ध हो या रीछ, भालू हो या बन्दर। भगवान जब प्रकट होते हैं तो प्रकृति की परम चेतना अवतरित होती है। जीव मात्र के कल्याण की कामना रहती है। भगवान के जमाने में उनके सारे सहायक एवं सैनिक जानवर ही हैं। जीव जगत के इन जानवरों को जितनी प्रतिष्ठा भगवान राम ने दी उतना अन्यत्र वर्णन नहीं मिलता। इन जानवरों की सेवा ने ही रावण की संगठित दानवीय सेवा का मुकाबला किया। यह दुष्कर कार्य तो प्रभु राम के सान्निध्य में ही संभव हो सकता है। अन्यत्र प्रसंग भी नहीं आता।

भगवान कृष्ण ने राक्षसी पूतना का वध उस समय किया जब उनकी उम्र मात्र छः माह थी। भगवान कृष्ण स्वयं साक्षात् परमब्रह्म हैं। उनके लिए कौन सा कार्य कठिन है? भगवान राम एवं कृष्ण के जीवन में बहुत से प्रसंग ऐसे आते हैं जो मानवीय दृष्टि से संभव नहीं अतः हम उन प्रसंगों को भगवान की लीला मानकर स्वीकार करते हैं।

हमारे शास्त्रों में पारस पत्थर का वर्णन आता है। पारस पत्थर की विशेषता है कि लोहा का स्पर्श करने पर सोना हो जायेगा। लोहा तामस का प्रतीक एवं सोना सात्विक का प्रतीक। ऐसा पारस पत्थर होता नहीं जो लोहे के स्पर्श से उसे सोना बना दे। लेकिन ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके सम्पर्क में तामसी वृत्ति का व्यक्ति जायगा तो सात्विक होकर आयगा। अंगुलिमाल घोर तामसी था लेकिन भगवान बुद्ध के सम्पर्क में आने पर पूर्ण सात्विक हो गया और वह बौद्ध-भिक्षु बन गया। ऐसे व्यक्ति ही पारस पत्थर सदृश होते हैं। सर्प को मणि होती नहीं, फिर भी वर्णन आता है। सर्पमणि की विशेषता है कि वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होती है। हमारे यहां ऐसी महान आत्माएं हुई हैं जो स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित हैं। कबीर, रैदास आदि महान आत्माएं थीं। उन्होंने अपना ज्ञान स्वयं पाया न कि वेद, गीता या रामायण द्वारा। इनकी आत्माएं सर्पमणि के सदृश स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित थीं।

हंस भी होता नहीं जो नीर क्षीर को अलग अलग कर दे। ऐसे ज्ञानी जरूर होते हैं जिनके पास आप अपनी समस्याएं लेकर जायं, वे सारी उलझनें दूर कर देंगे। ऐसे व्यक्ति हंस की तरह विवेकी होते हैं। यही कारण है कि व्यक्तियों में ऐसे व्यक्तियों को परमहंस कहा जाता है। स्वामी रामकृष्ण को लोगों ने परमहंस की उपाधि से विभूषित कर रखा था। इनके पास लोग अपनी समस्याएं लेकर जाते थे और वे उन समस्याओं को तुरन्त सुलझा देते थे।

इस प्रकार मैंने प्रयास किया है कि शास्त्रों के विचित्र प्रसंगों का निहितार्थ प्रकट करूं। अगर मेरे विचारों से आप सहमत न हों तो कृपया मुझे क्षमा करेंगे।

♦

शंका समाधान

अक्सर बहुत सी शास्त्रीय व्यवस्थायें या प्रचलित मान्यताओं के विषय में लोग पूछ बैठते हैं, उनका कारण बताना एक बार मुश्किल दिखता है लेकिन जो समाधान समझ में उचित लगा उसे नीचे दिया जा रहा है।

एक बार मैं दिल्ली जा रहा था। साथ में एक भारतीय थे जो पिछले २८ वर्षों से अमेरिका में पढ़ा रहे थे। उस समय टेलीविजन पर चोपड़ा साहब की महाभारत की कथा दिखाई जा रही थी। उनका प्रश्न था कि सूर्य से कुन्ती को कर्ण का पैदा होना बताया गया है क्या यह बायोलोजिकली संभव है? हम लोग सभी मौन हो गये। कारण इसको गलत बताते हैं तो शास्त्र की मर्यादा भंग होती है और सही बताते हैं तो यह कैसे संभव प्रतीत होता है बताना पड़ेगा। मैंने कहा कि समय समय पर शास्त्रकार के कहने का ढंग अलग अलग होता है। शास्त्रकार को जब बताना था कि कर्ण सूर्य की तरह तेजस्वी था तो उसे सूर्यपुत्र बता दिया गया। इस तर्क के समर्थन में बताना पड़ा कि रावण के भी दस सिर थे, मां दुर्गा भी २४-२४ हाथ वाली होती हैं तो क्या रावण का दस सिर का होना एवं मां दुर्गा को चौबीस हाथ होना संभव है। कारण रावण महा पंडित थ। कहते हैं दशों दिशाओं में जितना ज्ञान था वह अकेले रावण के मस्तिष्क में था। अतः उसे दस सिर वाला बताया गया। इसी प्रकार मां दुर्गा शक्ति की प्रतीक हैं। शक्ति बाजुओं में होती है। अतः बाजुओं को अनेकों दिखा दिया गया। इस प्रकार उस अमेरिकन भारतीय की जिज्ञासा शान्त हो सकी एवं शास्त्र की मर्यादा भी सुरक्षित रह सकी।

हम लोग वर यात्रा में जा रहे थे, किसी ने पूछा कि वर-यात्रा में वर पीछे रहता है तथा बाराती आगे रहते हैं लेकिन शव-यात्रा में शव आगे रहता है और शवयात्री पीछे ऐसा क्यों? वर यात्रा में वर पीछे रहता है कारण वह गृहस्थी के नये जीवन में प्रवेश कर रहा है। उसे यह एहसास कराया जाता है कि गृहस्थ जीवन में कभी कोई परेशानी आये तो अपने बड़े बुजुर्गों को हमेशा अपने आगे रखना यानी उनसे सलाह मशविरा कर लेना। लेकिन शव यात्रा में शव इसलिये आगे रहता है कि पीछे के शव यात्रियों को यह एहसास होता रहे कि मेरी भी

अन्तिम गति यही होने वाली है। अतः जीवन में जो भी करना है उसे कर लेना चाहिये।

चिता पर रखने के पहले शव को गंगा में स्नान कराया जाता है एवं जलने के बाद राख को गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता है, ऐसा क्यों? गंगा में स्नान कराने का तात्पर्य है 'वह मां गंगा से प्रार्थना करता है कि हे मां गंगे, तू पतित पावनी है, मैंने जीवन में बहुत से पाप किये हैं, यह मेरी अन्तिम यात्रा है अब तो मुझे क्षमा करके पावन कर देना।' जलने के उपरान्त राख को गंगा में प्रवाहित इसलिये करते हैं कि उस व्यक्ति की आत्मा परमात्मा में विलीन हो गई। जैसे व्यष्टि समष्टि में मिल जाता है मेरी राख भी सरिता के माध्यम से सागर तक पहुंच जाए।

किसी ने पूछा कि सीताराम में मां सीता भगवान राम की पत्नी हैं, उमा शंकर में मां उमा भगवान शंकर की पत्नी हैं लेकिन राधा कृष्ण में राधा तो भगवान कृष्ण की पत्नी नहीं हैं। भगवान कृष्ण की आठ पत्नियां हैं रुक्मिणी, सत्यभामा आदि तो पत्नियों की जगह भगवान कृष्ण ने अपने साथ राधा का नाम क्यों जोड़ा? जवाब में कहा गया कि भगवान कृष्ण की आठों पत्नियों ने विरोध किया था तो भगवान कृष्ण ने कहा कि आप आठों मिलकर तय कर लें कि किस एक का नाम मैं अपने साथ जोडूं। आठों पत्नियों में एक राय नहीं बनी। अतः राधाकृष्ण का नाम रह गया। कहते हैं राधा भगवान कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है।

किसी ने पूछा कि धर्म पिता या धर्म माता असली नहीं होती। हम जिनको पिता माता मान लेते हैं उन्हें धर्म पिता या धर्म माता कहते हैं। लेकिन धर्मपत्नी तो असली पत्नी होती हैं, ऐसा क्यों? जवाब में बताया गया कि धर्म पिता या धर्म माता किसी धार्मिक क्रिया से नहीं होते। हम जिनको माता-पिता तुल्य मान लेते हैं वे ही धर्म पिता या धर्म माता होते हैं। लेकिन पत्नी तो विवाह की धार्मिक क्रिया के उपरान्त ही पत्नी होती है। अतः धर्मपत्नी कहते हैं। फिर विवाह के उपरान्त सारे धर्म कर्म पति पत्नी साथ साथ करते हैं। अतः धर्मपत्नी है। इतना ही नहीं, अगर विवाहोपरान्त पति धार्मिक क्रियाओं से विरत रहता है तो धर्मपत्नी का काम है कि पति को धार्मिक क्रियाओं की ओर उन्मुख करे।

साकेत धाम में भगवान राम का दरबार लगा था, सभी देवी देवता वहां उपस्थित थे। किसी देवता ने पूछा कि 'अतुलित बल धामं कौन हैं' तो दूसरे देवता ने कहा कि चूंकि पृथ्वी ने सभी का भार उठा रखा है अतः पृथ्वी ही अतुलित बलधामं हैं। इतने में शेषनाग प्रकट हो गये और कहने लगे कि पृथ्वी का भार तो मैंने उठा रखा है, अतः अतुलित बल धाम मैं हूं। तो इतने में भगवान

शंकर बोल उठे कि हे शेषनाग, तू किसके गले का आभूषण है। चूंकि तू मेरे गले का आभूषण है अतः मैं अतुलित बल धामं हूं। इतने में भगवान शंकर का नन्दी बोल उठा कि भगवन आपको एवं मां पार्वती को अपनी पीठ पर बैठाकर कौन विचरण करता है। अतः मैं अतुलित बल धामं हूं। इतने में रावण बोल उठा जब भगवान शंकर एवं मां पार्वती नन्दी पर विराजमान थे एवं कैलाश पर्वत पर निवास कर रहे थे तो उस कैलाश को मैंने उठा लिया था। अतः मैं ही अतुलित बल धामं हूं। इतने में भगवान राम बोले कि रावण, तेरा वध किसने किया था, मैंने किया था। अतः अतुलित बल धामं मैं हूं। इतने में बजरंग बली हनुमान जी महाराज बोल उठे कि भगवन आपको एवं लक्ष्मण को अपने कंधे पर बैठाकर रिष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मिलाने कौन ले गया था। चूंकि मैंने आप दोनों भाइयों को अपने कंधे पर उठाया था अतः अतुलित बल धामं मैं हूं। और कहते भी हनुमान जी महाराज को ही अतुलित बल धामं हैं।

हमारे शास्त्र कहते हैं गाय में तैंतीस करोड़ देवता का वास होता है। अगर किसी पंडित से पूछिये कि ३३ करोड़ नहीं, ३३ सौ देवताओं की लिस्ट हमें दे दो तो नहीं दे सकेंगे। तो फिर तैंतीस करोड़ देवताओं के वास का क्या अर्थ है? उस समय देश की तैंतीस करोड़ की आबादी रही होगी और सभी गाय के दूध का सेवन करते थे। यानी गाय के दूध के आश्रित थे। अतः गाय में तैंतीस करोड़ देवताओं का निवास कह दिया गया। देवता इसलिये कहा गया कि गाय जैसा परोपकारी जीव आज तक विश्व में पैदा ही नहीं हुआ। गाय क्या खाती है? भूसा खाती है जब कि गेहूं चावल हम खाते हैं। गाय खली खाती है जबकि तेल हम खाते हैं। गाय चोकर खाती है जबकि आटा हम खाते हैं। यानी जो चीजें मनुष्य सेवन नहीं करता उन्हीं का सेवन करके गाय हमें अमृत सरीखा दूध देती है। गाय का गोबर, गोमूत्र आदि भी अति उपयोगी एवं पवित्र माने गये हैं। गाय के मरने पर गाय का खुर, चमड़ा, सींग आदि सभी चीजें काम में आती है। इतना परोपकारी जीव होने के कारण ही उसमें तैंतीस करोड़ देवता का वास बताया गया।

अहिल्या पत्थर की हो गई थी, भगवान राम के चरण स्पर्श से जीवित हो उठी। प्रश्न हुआ कि केवल यही शिला जीवित क्यों हो गई जबकि भगवान राम के चरण का स्पर्श तो अनेकों शिलाखण्डों ने किया होगा। कहते हैं अहिल्या महर्षि गौतम की पत्नी थी। अतीव सुन्दरी थी। इन्द्र अहिल्या पर मोहित हो गया। गौतम ऋषि मुर्गे की बांग सुनकर प्रातः ४ बजे गंगा स्नान को जाते थे। इन्द्र ने मुर्गे का कपट रूप धारण करके तीन बजे बांग लगा दी। महर्षि गौतम गंगा स्नान को चल दिये। गंगा पहुंचने पर मां गंगा ने कहा कि महात्मा आज तो तीन ही बजे चले आये। तो महात्मा ने कहा कि नहीं, अन्य दिनों की भांति मुर्गे की बांग सुनकर चार

बजे आया हूं। तो मां ने कहा नहीं अभी केवल तीन बजे हैं तो महर्षि गौतम वापस चले। उधर इन्द्र महर्षि का कपट रूप धारण कर अहिल्या के पास पहुंच गये और उनसे सहवास कर लिया। ऋषि गौतम को वापस आता देख इन्द्र भागे तो अहिल्या को बोध हुआ कि आज तो उसका पतिव्रत धर्म भंग हो गया। पतिव्रत धर्म भंग होने के कारण अहिल्या संज्ञा शून्य हो गई और कहते हैं पथरा गई। भगवान राम जब आये हैं और अहिल्या को संज्ञा शून्य देखा तो समझाया कि तूने तो इन्द्र के साथ सहवास पति समझ कर किया। अतः गलती तेरी नहीं, इन्द्र की है। तू क्यों पथरा रही है। भगवान राम के इतना कहते ही अहिल्या की संज्ञा शून्यता समाप्त हो गई और वह अपने पूर्ववर्ती रूप को प्राप्त हो गई।

लक्ष्मण रेखा क्या है यह मर्यादा की रेखा है। जब भी मर्यादा का उल्लंघन होगा, अपहरण होकर रहेगा।

सूर्पनखा का नाक कटना क्या है। कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ हम बिस्तर होना चाहे और वह पुरुष इनकार कर दे तो यह स्त्री का सबसे ज्यादा अपमान है। नाक कटना तो अपमान का प्रतीक है कारण सूर्पनखा राम एवं लक्ष्मण के साथ हम बिस्तर होना चाहती थी और दोनों ने ही इन्कार कर दिया था।

किसी ने पूछा कि दीपावली में घर साफ सुथरा करते हैं एवं पूरी रोशनी से प्रकाशित करते हैं लेकिन लक्ष्मी की सवारी उल्लू है और उल्लू को प्रकाश में दिखाई नहीं देता। अतः लक्ष्मी आयेंगी कैसे? दरअसल हम कमल के आसन पर विराजमान लक्ष्मी का आह्वान करते हैं। हमारे यहां कोई मंत्री या राज्यपाल आवें तो हम जैसे घर को साफ सुथरा करते हैं एवं प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार जब धन की अधिष्ठात्री देवी मां लक्ष्मी आ रही हैं तो घर को साफ सुथरा एवं प्रकाशित रंखना सर्वथा उचित है।

इसी प्रकार अन्य अनेक शंका समाधान हैं। उन्हें दूसरे लेख में देने का प्रयास करूंगा।

♦

हिन्दुओं एवं मुसलमानों के लोकाचार में भिन्नता

प्रत्येक धर्म के दो स्वरूप होते हैं। एक सनातन स्वरूप जो समय के हिसाब से नहीं बदलता। प्रायः सभी धर्मों का सनातन स्वरूप एक ही होता है। जैसे प्रत्येक धर्म मानता है कि सत्य बोलना चाहिये, झूठ नहीं बोलना चाहिये। परस्त्री गमन नहीं करना चाहिये। चोरी, डकैती नहीं करना चाहिये आदि, आदि। लेकिन प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय के लोकाचारों में भिन्नता देखने को मिलेगी। इस लेख में हम हिन्दुओं एवं मुसलमानों के लोकाचारों में भिन्नता के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे। प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय सच्चाई चाहता है। हिन्दू धर्म को मानने वाला सच्चा हिन्दू बने तथा मुस्लिम धर्म को मानने वाला सच्चा मुसलमान बने। लोकाचार में विपरीत मान्यताओं के बावजूद भी प्रत्येक धर्म का अनुयायी अपने गन्तव्य तक पहुंचने में समर्थ होता है।

हिन्दू तवे पर रोटी सेंकता है तो तवे का केन्द्र बिन्दु थोड़ा नीचे धंसा रहता है लेकिन मुसलमान के तवे का केन्द्र बिन्दु रोटी सेंकते समय ऊपर की ओर उठा रहता है। हिन्दू धर्म में प्रातः पूर्व की ओर मुंह करके पूजा या उपासना करने का विधान है, लेकिन मुसलमान पश्चिम की ओर मुंह करके अपनी नमाज अदा करता है। कारण उनका काबा पश्चिम में स्थित है। हिन्दू जब पूजा, प्रार्थना या उपासना करेगा तो आगे पलथी मारकर बैठेगा लेकिन मुसलमान अपनी नमाज पैर पीछे की ओर मोड़ कर अदा करेगा। हिन्दू जब भी पूजा करेगा तो अपने धोती की लांग पीछे खोंस कर ही करेगा। लुंगी की शक्ल में बिना लांग लगाये पूजा करना वर्जित है। लेकिन मुसलमान लुंगी पहनता है, उसमें लांग लगाने का विधान नहीं है और उसी लुंगी को पहनकर ही अपनी नमाज अदा करता है।

हिन्दुओं में दाढ़ी मुड़ाने की एवं मूंछ रखने की प्रथा है। मूंछ को शान का प्रतीक माना जाता है लेकिन मुसलमान अपनी मूंछ मुड़ाता है एवं दाढ़ी रखता है। हिन्दू अपनी चोटी को अपने सिर के पिछले भाग में रखता है लेकिन मुसलमानों में चोटी रखने की प्रथा नहीं है। हाँ, यह जरूर देखने को मिलता है कि मुसलमान लाल गोल टोपी पहनते हैं और उस गोल लाल टोपी में ऊपर में काले रंग का

चोटीनुमा झब्बा लटकता है। हिन्दुओं में यज्ञोपवीत धारण करने की प्रथा है जबकि मुसलमान कोई यज्ञोपवीत धारण नहीं करता। मुसलमानों में बचपन में ही पुरुष वर्ग के लिए लिंग के ऊपरी आवरण को थोड़ा काट दिया जाता है। हिन्दुओं में ऐसी कोई प्रथा नहीं है। हिन्दुओं में लाल रंग की ओढ़नी ओढ़ने की प्रथा है। हिन्दू महिलायें काला या हरे रंग की ओढ़नी ओढ़कर कोई शुभ कार्य नहीं कर सकती। काला एवं हरा रंग अशुभ माना जाता है। लेकिन मुस्लिम औरतें काला या हरा बुरका पहनकर शुभ कार्य करती हैं। अगर मुस्लिम महिला बुरका धारण नहीं करती तो इसे मुस्लिम धर्म के विपरीत माना जाता है।

मुसलमानों का पवित्र ग्रंथ कुरआन है और हिन्दुओं का पवित्र ग्रंथ वेद-पुराण है। हिन्दू नागरी लिपि में लिखता है बांयें से दाहिने जबकि मुसलमान उर्दू लिपि में लिखेगा दाहिने से बायें। हिन्दुओं के मन्दिरों में देवताओं की मूर्तियां होती हैं जबकि मुसलमानों के मस्जिदों में कोई मूर्ति नहीं होती। हिन्दू अपने इष्ट को मन्दिरों में स्थापित कर पूजा एवं प्रार्थना से प्रसन्न करने का प्रयास करता है वहीं मुसलमान मस्जिदों में जाकर अपने इष्ट का ध्यान करते हैं।

मुसलमान अपनी टोपी के बीच का हिस्सा धंसा कर पहनता है लेकिन हिन्दुओं में टोपी के बीच के हिस्से को धंसाकर पहनने का रिवाज नहीं है। मुसलमानों में गोल टोपी भी पहनने का रिवाज है जबकि हिन्दुओं को गोल टोपी पहनते हुए प्रायः नहीं देखा जाता। हिन्दुओं में पगड़ी या साफा जो काफी लम्बे कपड़े का होता है, पहनते देखा जायगा लेकिन मुसलमानों में पगड़ी या साफा पहनने का रिवाज नहीं है।

हिन्दू धर्म को सनातन धर्म कहा जाता है यानी उसका प्रारम्भ कब से हुआ कोई नहीं जानता लेकिन मुस्लिम धर्म का प्रारम्भ हजरत मुहम्मद पैगम्बर साहब के जन्म से प्रारम्भ होता है जिसको आज से लगभग चौदह सौ वर्ष हो गये। उनके जन्म से हिजरी सम्वत चलने की प्रथा है। हिन्दुओं का प्रत्येक तीसरे वर्ष एक अधिक मास होता है। उस अधिक मास के कारण वह वर्ष की कमी पूरी करता है। मुसलमानों का महीना प्रायः २९ या ३० दिनों का होता है। उसकी कमी से उनका पर्व प्रत्येक वर्ष लगभग १० दिन पीछे होता रहता है। हिन्दुओं का वर्ष सौरमण्डल के सूर्य की चाल पर आधारित है जबकि मुसलमानों का वर्ष चन्द्रमा की चाल पर आधारित है। हिन्दू जहां अपने को सूर्योपासक मानते हैं वहीं मुसलमान चन्द्रमा को पूज्य मानते हैं। दूज के चांद के बाद ही तीज को ईद आती है।

हिन्दुओं में एक पत्नी से विवाह करने का विधान है। एक से अधिक पत्नी रखना अपराध माना जाता है। लेकिन मुस्लिम धर्म चार पत्नी रखने की छूट देता है। हिन्दुओं के विवाह में गोत्र तक का परहेज किया जाता है यानी सगोत्र विवाह

नहीं होता लेकिन मुसलमानों में केवल एक ही मां का दूध पीने वाले तथा एक ही पिता होने पर आपस में बच्चों में शादी नहीं होती। हिन्दू धर्म में तलाक की कोई व्यवस्था नहीं है। एक पत्नी के साथ विवाह करने पर उसे आजीवन सहधर्मिणी बनाकर रखना आवश्यक है लेकिन मुसलमानों में तीन बार तलाक तलाक कहने पर तलाक मान्य हो जाता है। हिन्दू औरतें शादी होने के बाद सिन्दूर अवश्य लगाती हैं। यह उसके सुहाग यानी शादीशुदा होने का प्रतीक है उसका सिन्दूर तभी मिटता है जब उसका पति मर जाता है। लेकिन मुस्लिम औरतों में सिन्दूर लगाने की कोई प्रथा नहीं है। हिन्दू महिला को देखकर कहा जा सकता है कि वह शादीशुदा है या नहीं, जबकि मुस्लिम महिला को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह शादी शुदा है। हिन्दू महिला अपने हाथों में चूड़ियां पहनती हैं। मुस्लिम महिला भी चूड़ी पहनतीं है। हिन्दू महिला अपने चेहरे के मध्य भाग में नाक के ऊपर बिन्दी लगाती हैं जबकि मुस्लिम महिला किसी बिन्दी का प्रयोग नहीं करती। हिन्दुओं में महिलाएं ओढ़ना ओढ़ती हैं लेकिन मुस्लिम महिलायें बुरका पहनती हैं।

हिन्दुओं में मुर्दे को जलाया जाता है। हिन्दुओं की मान्यता है कि पंचतत्व का यह शरीर पंचतत्व में जलाने के बाद विलीन हो जाता है। मुसलमानों में मुर्दे को कब्रगाह में गाड़ दिया जाता है। हिन्दुओं में मृत्यु होने पर परिवार में पुरुषों के मुण्डन कराने का विधान है जबकि मुसलमानों में मुण्डन कराने का कभी भी कोई विधान नहीं है। हिन्दुओं में अर्थी बांस की बनती है जबकि मुसलमान मुर्दे को खटिया पर ले जाते हैं। हिन्दुओं में मुर्दे को ले जाते वक्त सभी लोग 'राम नाम सत्य है' का उच्चारण करते हैं जबकि मुसलमान शान्तिपूर्वक मुर्दे को ले जाते हैं।

हिन्दुओं में विवाह बिना लग्न का नहीं होता। सप्तपदी पढ़ी जाती है। मंत्रोच्चार के बीच अग्नि को साक्षी मानकर विवाह किया जाता है। विवाह को पवित्र गठबन्धन माना जाता है। लेकिन मुसलमानों में लग्न नाम की कोई व्यवस्था नहीं है। मुसलमान जब चाहे विवाह कर सक्ता है। हिन्दुओं में कुण्डली (जन्मपत्री) देखकर विवाह करने की प्रथा है लेकिन मुसलमानों में कुण्डली मिलाने की कोई प्रथा नहीं है। हिन्दू प्रायः मांसाहार को उचित नहीं मानता। मांसाहार को अधार्मिक माना जाता है। मांसाहार इसलिए वर्जित है कि जीव हत्या होती है जबकि मुसलमानों में मांसाहार को धर्मोचित माना जाता है। इसी से बकरीद में बकरी की या ऊंट की कुर्बानी कर घर भर के लोगों के खाने का विधान है।

मुसलमान जब एक माह का रोजा रखता है तो दिन में न तो कोई चीज खाता है और न कोई चीज पीता है। कहते हैं अपने मुंह के थूंक को भी अन्दर नहीं ले जा सकता। परन्तु रात में मांस वगैरह खाने को सही माना गया है। हिन्दुओं

में किसी व्रत में पानी पीने की कोई मना ही नहीं है। व्रत में पानी पीना अच्छा बताया जाता है।

प्रत्येक मुसलमान की इच्छा होती है कि अपने सबसे पवित्र स्थान काबा की यात्रा वह जरूर करे। उसे हज यात्रा भी कहते हैं जो अरब देश में स्थित है। हज करने के उपरान्त मुसलमान अपने को हाजी साहब कहलाने में गर्व का अनुभव करता है। मुसलमान हज करने के उपरान्त दाढ़ी नहीं मुड़ाता। उसकी शक्ल से ही पता चल जाता है कि ये हाजी साहब हैं। सभी हिन्दुओं का कोई एक उपासना स्थल नहीं जहां सभी हिन्दू जाना चाहते हैं। मुसलमान अपने को हाजी कहलाने लगता है लेकिन हिन्दुओं में किसी स्थान विशेष की यात्रा के बाद उसके नाम के साथ कोई उपनाम नहीं जुड़ता।

हिन्दुओं में मरने के उपरान्त पिण्डदान एवं श्राद्ध करने की व्यवस्था है जबकि मुसलमानों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

इसी प्रकार की अन्य अनेक असमानताएं एवं विभिन्नतायें हैं। कई कई मान्यतायें तो एकदम विपरीत हैं फिर भी दोनों धर्मों के मानने वाले अपने गन्तव्य तक पहुंच सकते हैं। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि लोकाचार धर्म नहीं है। हमारे एक सम्प्रदाय का लोकाचार अच्छा है तथा दूसरे का बुरा है यह भी मानना उचित नहीं है। सच्चा हिन्दू जो पायेगा, सच्चा मुसलमान भी उसी को प्राप्त होगा। इस लेख का मन्तव्य है कि प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय के लोग अपने धर्म एवं सम्प्रदाय का अनुसरण करें। अपना अच्छा एवं दूसरों का बुरा बताने का प्रयास न करें। यों तो सभी धर्म सम्प्रदायों में अच्छे बुरे लोग मिलेंगे। 'सर्वधर्म समभाव' की तरह हम सभी धर्मावलम्बियों को सभी धर्मों का समान रूप से आदर करना चाहिये।

♦

क्या रावण खत्म हो गया

भगवान राम का अवतरण त्रेता युग के अन्तिम चरण में हुआ। शास्त्रानुसार भगवान राम को हुए नौ लाख वर्ष हो गये। भगवान राम के समय के तीन नाम इतने बदनाम हो गये कि तब से लेकर अब तक अपने बच्चों का नामकरण उन तीनों नामों से कोई नहीं करता। वे तीन नाम हैं – रावण, कैकेयी तथा मंथरा। मैं यहां केवल रावण के सम्बन्ध में चर्चा करूंगा।

रावण ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ था। वह विश्रवा का पुत्र तथा पुलस्त्य का नाती था। रावण के तीन भाई थे, कुंभकर्ण, विभीषण तथा विमाता से कुबेर। रावण के इन भाइयों में चरित्र भेद सर्वाधिक है। कुंभकर्ण छः महीने सोता था। इसकी खुराक भी पूरी थी, ताकत भी अत्यधिक थी। चूंकि कुंभकर्ण छः महीने सोता था, अतः पूज्य श्री मोरारी बापू ने बताया कि रावण की लंका सोने की नहीं, सोने वालों की थी। ठीक इसके विपरीत भगवान राम के भाई लक्ष्मण वनवास काल में चौदह वर्ष तक सोये ही नहीं। जहां भगवान राम सोते थे उसी के आसपास वीर आसन में बैठ कर लक्ष्मण पहरा देते थे एवं दिन में साथ रहते और साथ यात्रा करते। रावण का दूसरे नम्बर का भाई विभीषण था। विभीषण पूरी तरह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। पूरी लंका में केवल विभीषण का ही मकान था जिसमें हनुमान जी महाराज ने 'राम नाम अंकित गृह देखा।' जिस दिन रावण ने विभीषण को लात मारकर देश निकाला दे दिया और विभीषण भगवान राम की शरण में चला गया उसी दिन रावण का पतन अवश्यंभावी हो गया। राम ने लंका पर चढ़ाई की। लंका विजय के उपरान्त लंका का राज विभीषण को दे दिया। पहले भी भगवान राम ने बाली को मार कर बाली का राज्य सुग्रीव को दे दिया था। रावण के तीसरे भाई कुबेर के बारे में कहा जाता है कि वह तो धनपति था। कहावत भी है कि इसके पास तो 'कुबेर' का खजाना है। रावण ने अपने बड़े भाई का पुष्पक विमान छीन लिया था और उसी विमान पर सीता जी का हरण कर भारत से लंका ले गया था। लंका विजय के उपरान्त उसी पुष्पक विमान से भगवान राम लंका से अयोध्या वापस लौटे। उस पुष्पक विमान में खूबी थी कि

आवश्यकतानुसार छोटा-बड़ा हो जाता था और कम-ज्यादा सवारी भी बैठा लेता था।

रावण महा विद्वान् था। उसके दस सिर थे यानी दसों दिशाओं में जितना ज्ञान था वह अकेले रावण के मस्तिष्क में था। वह महाबली और महा तपस्वी था। अपनी घोर तपस्या से उसने भगवान शंकर को प्रसन्न करने हेतु अपने सिर को काट कर भगवान शंकर को अर्पण किया था और उसके इस त्याग से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उसे अनेक वरदान दिये थे। इन वरदानों को पाकर रावण उन्मत्त हो गया। महाविद्वान्, महाबली एवं महातपस्वी होकर भी उसने अहंकारवश महा भूल कर दी। रावण की इस भूल पर तुलसीदास की वह चौपाई बरबस याद आती है कि मनुष्य को साधक, सिद्ध एवं सुजान होना चाहिये। जब साधक से सिद्ध हो गया तो सुजान होने की आवश्यकता क्यों पड़ी? सुजान होना इसलिए आवश्यक है कि बिना सुजान हुये अपनी सिद्धियों का दुरुपयोग कर बैठेगा। ठीक रावण ने यही गलती की। यानी अपनी सिद्धियों का दुरुपयोग कर बैठा। पहले तो उसे ज्ञान था कि वह किस महाप्रभु की पत्नी का हरण करने जा रहा है। सीता के पास से राम एवं लक्ष्मण को अलग करने के लिये मारीच को सोने का कपटी मृग बनाया। सोने के मृग को पाने के लिये सीता ने राम को भेजा और राम का हालचाल लेने सीता ने लक्ष्मण को भेजा। लक्ष्मण जाना नहीं चाहते थे लेकिन सीता के उलाहनापूर्ण वचनों को सुनकर लक्ष्मण को जाना पड़ा। लक्ष्मण गये तो लक्ष्मण रेखा खींच कर गये, कारण उस क्षेत्र में राक्षसों के आने का डर था। लक्ष्मण रेखा को पार कर जाना किसी राक्षस के लिये संभव नहीं था। लेकिन रावण रूपी कपटी साधु को भिक्षा देने के लिये जैसे ही सीता ने लक्ष्मण रेखा के बाहर पांव किया कि उनका अपहरण हो गया और रावण उन्हें रथ पर बैठाकर लंका ले गया। सीता ने विलाप किया और लंका में सीता को अशोक वाटिका में रावण ने छोड़ दिया। सीता को रिझाने के लिये रावण ने कितने कितने प्रयास किये लेकिन 'एक बार विलोकु मम ओरा' भी संभव न हो सका। रावण ने सारी सिद्धियों के बावजूद 'सुजान' न होने के कारण यह महा भयंकर भूल कर दी और इसके परिणामस्वरूप स्वयं के साथ सारी लंका का विनाश करा लिया।

विजयादशमी यानी आश्विन शुक्ल दशमी को राम की रावण पर विजय होती है ऐसा कहा जाता है। तब से लेकर आज तक हम विजयादशमी के दिन रावण का पुतला जलाकर रावण का वध मनाते हैं। उस समय से लेकर आज भी हमें किसी का विरोध करना होता है तो उसका पुतला जला कर विरोध प्रकट करते हैं।

रावण का अपराध था सीताहरण। उसने सीता को रिझाने की पूरी कोशिश की। अपनी शक्ति का भय दिखाया। अपने साम्राज्य की महारानी बनने का

लालच दिया लेकिन रावण सीता को राजी करने में सफल नहीं हुआ। रावण ने सीता का हरण करने के उपरान्त कभी पुनः उनका स्पर्श नहीं किया। फिर भी तब से अब तक रावण का पुतला प्रत्येक वर्ष जलाया जा रहा है लेकिन अब क्या हो रहा है? पहले स्त्री से प्रेम करेंगे, उसको भोगेंगे और फिर उसी का वध कर देंगे। वध करने वाले लोग नेता होकर समाज में विचरण भी कर रहे हैं और समाज की प्रतिष्ठा भी पा रहे हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि 'घर घर लंका जन जन रावण इतने राम कहां से लाऊं।' हमारे देश में न तो कोई नेता अपराध स्वीकार करता है और न हमारे नेता को न्यायालय सजा दे पाता है। 'कानून सबके लिए समान है' वाली उक्ति सही नहीं है। नेता अपने प्रभाव, ताकत, धनबल आदि से सबूत नष्ट कर देता है, गवाहों को डरा धमका कर फोड़ लेता है और नतीजा यह होता है कि न्यायालय से छूट जाता है। इसी प्रकार गुण्डे, बदमाश, अपराधी भी छूट जाते हैं और नतीजा आपके सामने है।

कहते हैं जब रावण के पुतले को आग लगाई जा रही थी, रावण बोल उठा 'हमको आग क्यों लगा रहे हो?' तो आग लगाने वाले ने कहा कि तुमने पराई स्त्री को बुरी निगाह से देखा है, अतः तुम्हें आग लगाई जा रही है।' तो रावण ने पुनः चुनौती भरे स्वर में कहा कि 'है कोई माई का लाल, जिसने पराई स्त्री को बुरी निगाह से न देखा हो, आये सामने और मुझे आग लगा दे।' कोई नहीं मिला और रावण बिना जले रह जायगा, यह संकट आ गया तो एक युक्ति पंडितों ने निकाली कि किसी जन्मजात अंधे को ले जाओ और उसके द्वारा रावण के पुतले को आग लगवा दो' यानी जिसके आंख होगी ही नहीं, वह पराई स्त्री को बुरी निगाह से देखेगा कैसे?

कहने का तात्पर्य यह कि रावण को इतने वर्षों से जलाते आ रहे हैं। अब तक रावण को यानी रावणत्व को जल कर राख हो जाना चाहिये था। लेकिन हो रहा है उल्टा। रावणत्व बढ़ ही नहीं रहा है, उसने और भी भयंकर एवं वीभत्स रूप ले लिया। उस समय रावण अकेला था, अब तो रावण एवं रावणत्व को खोजना नहीं पड़ेगा। भेष धारण करेंगे संन्यासी का लेकिन महिला के साथ बलात्कार करने से परहेज नहीं। स्वर्ग की सीढ़ी का रास्ता दिखाकर धन का अपहरण करने की कला में सिद्धहस्त हैं।

हम प्रत्येक वर्ष कागज का रावण जलाते हैं। कारण वह कुछ बिगाड़ नहीं सकता। अगर रावण साक्षात् होता तो उसे जलाने की हिम्मत किसमें होती? केवल राम में। हमने राम पैदा करने की कोशिश नहीं की। अपने अन्दर के रामत्व को प्रकट नहीं होने दिया। नतीजा क्या हुआ कि रावण के जिन्दा होने के कारण रावणत्व बढ़ता चला गया और राम के विस्मरण के कारण रामत्व का लोप होता

चला गया। विवेकानन्द जी ने ठीक कहा कि अन्धकार को मिटाना है तो अन्धकार से लड़ो मत, प्रकाश को ले आओ, अन्धकार तो अपने आप समाप्त हो जाएगा। ठीक इसी प्रकार रावणत्व को मारने के लिये रावण से मत लड़ो, रामत्व को लाओ, रावणत्व अपने आप मर जाएगा। हमने गलत दिशा पकड़ ली रावण को जलाने की। रावण को मिटाने का काम वहीं कर सकता है जिसमें रामत्व है।

हम श्रीमद्भागवत के सप्ताह पारायण के लिये श्री भागवत की पोथी को किसी मंदिर से अपने सिर पर उठाकर कथा स्थल तक ले गये और कथा के अन्त में पुनः सिर पर रखकर उसी मन्दिर तक वापस ले आये। नतीजा उस श्रीमद्भागवत के उपदेशों को अपने चरित्र में उतारने से वंचित रह गये। हमने मुर्दों को नमन किया, मूर्तियों की पूजा प्रार्थना की लेकिन सदेह मानव के लिये अपशब्दों का प्रयोग किया। हमने गाय की पूजा कर एवं उसकी पूंछ पकड़ कर वैतरणी पार होने की कामना की लेकिन गाय की सेवा नहीं की। इन्हीं गलत मान्यताओं के कारण गोशालायें अपने सेवा कार्य नहीं कर पा रही हैं। इसी प्रकार मंदिरों में भीड़ मिलेगी और चवन्नी चढ़ाकर याचना करने वाले मिल जायेंगे लेकिन सेवा मन्दिर रूपी अस्पताल में सेवा करने वाले नहीं मिलेंगे। हमें यह बताया ही नहीं गया कि सेवा ही पूजा है। जो सेवा नहीं करता उसकी पूजा भी भगवान स्वीकार नहीं करते। आज बताने की जरूरत है कि मानव सेवा ही माधव सेवा है। आप प्यासे को जल पिला दें, यह भगवान शंकर का जलाभिषेक हो जायगा। अगर आप कल्याण कार्य कर रहे हैं तो यह भगवान शंकर की अप्रत्यक्ष पूजा ही है क्योंकि शंकर कल्याण के देवता हैं।

अतः रावण को खत्म करने के लिये राम बनना पड़ेगा। गौशालाओं को सेवा कार्य में प्रवृत्त करने के लिए गोसेवा को गोपूजा मानना पड़ेगा। मानव सेवा को माधव पूजा मानना पड़ेगा। जब तक यह नहीं होगा, रावणत्व कभी मरेगा नहीं, बल्कि और फैलता जायगा।

♦

धनुर्धर अर्जुन

कुरुवंश में धृतराष्ट्र एवं पाण्डु दो भाई हुए। धृतराष्ट्र बड़े थे लेकिन जन्मान्ध थे। पाण्डु छोटे थे लेकिन श्राप के कारण अपनी दोनों पत्नियों कुंती एवं माद्री के साथ संभोग नहीं कर सकते थे। कुंती वसुदेव की बहन और राजा कुंतिभोज की पुत्री थी। राजकुमारी रहते हुए उसने दुर्वासा मुनि की तब बड़ी सेवा की थी जब वे उसके पिता के अतिथि थे। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उसे एक मंत्र आशीर्वाद-स्वरूप दिया। इस मंत्र के द्वारा वह किसी भी देवता का आवाहन कर उससे पुत्र प्राप्ति कर सकती थी। अतः कुंती के तीन पुत्र युधिष्ठिर भवगान यम से, भीम वायु देवता से और अर्जुन इन्द्र से पैदा हुए। कुंती ने अपना मंत्र माद्री को भी दे दिया और उसके भी दो पुत्र नकुल और सहदेव अन्य देवताओं से उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने सौ पुत्रों को जन्म दिया।

गुरु दोणाचार्य ने पाण्डु एवं धृतराष्ट्र के पुत्रों को शस्त्र विद्या खासकर धनुर्विद्या में पारंगत किया। गुरु द्रोणाचार्य का धुनर्विद्या में सर्वश्रेष्ठ शिष्य अर्जुन हुआ। गुरु द्रोणाचार्य को एक बार राजा द्रुपद ने अपमानित किया था यद्यपि पहले दोनों मित्र थे। द्रोणाचार्य ने उससे बदला लेने का निश्चय किया। अपनी दक्षिणा (शिक्षा शुल्क) के रूप में उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि वे द्रुपद को पकड़ कर ले आयें। अर्जुन एवं भीम ने यह काम कर दिया। द्रोणाचार्य ने वैसा ही अपमानजनक व्यवहार द्रुपद के साथ किया जैसे द्रुपद ने उनके साथ किया था। द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने प्रतिज्ञा की कि वह द्रोणाचार्य का वध करेगा।

द्रुपद के यज्ञ करने से उसका पुत्र एवं पुत्री द्रौपदी यज्ञ कुण्ड से निकले थे। कृष्ण द्रुपद के पारिवारिक मित्र थे। अतः उन्होंने सलाह दी कि द्रुपद अपनी कन्या का विवाह अर्जुन से करे। पाण्डवों के वनवास के अंतिम चरण में द्रुपद ने घोषणा की कि उनकी कन्या उस व्यक्ति से विवाह करेगी जो घूमती मछली की आँख का निशाना साध सकेगा। कृष्ण जानते थे कि केवल अर्जुन ही ऐसा कर सकेंगे। द्रुपद ने स्वयंवर का आयोजन किया और कृष्ण ने अर्जुन को सलाह दी कि स्वयंवर में भाग ले। अर्जुन ने मछली की आँख को भेदा और उसे द्रौपदी पत्नी के रूप में

प्राप्त हो गई। पाण्डव अपनी माता के पास वापस लौटे जो उस समय भोजन तैयार कर रही थी। उन्होंने हमेशा की तरह बिना देखे कहा कि जो भी प्राप्त हुआ है उसे पाँचों भाई आपस में बांट लें। अब्र द्रौपदी पाँचों की पत्नी हो गई।

कृष्ण के लिये अर्जुन सर्वाधिक प्रिय थे। भागवतकार ने अर्जुन एवं कृष्ण को नर-नारायण की संज्ञा दी है। कृष्ण की क्रांतिकारी योजना में अर्जुन को महत्वपूर्ण पात्र की भूमिकाएं निभानी थीं। कृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से करा दिया। अब कृष्ण अर्जुन के मित्र, परामर्शदाता, सहायक एवं साले भी हो गये। महाभारत युद्ध में दुर्योधन ने कृष्ण से उनकी यादव सेना मांगी लेकिन अर्जुन तो कृष्ण को चाहते थे। अतः कृष्ण ने अर्जुन का साथ दिया।

अर्जुन ने देश, दुनिया एवं मानव जाति का कितना बड़ा उपकार किया। महाभारत युद्ध में अपने स्वजनों को देखकर अपना गाण्डीव एक कोने में रख दिया और मोहग्रस्त हो गया। युद्ध नहीं करूँगा उसके लिये कितने-कितने तर्क अर्जुन ने दिये। अगर अर्जुन को मोह न होता और उसमें जिज्ञासु भाव न होता तो युद्धभूमि में भगवद्गीता का जन्म न होता। भगवद्गीता ऐसा अनुपम एवं अलौकिक ग्रंथ है जो भले ही बावन सौ वर्ष पहले युद्धभूमि में कहा गया हो लेकिन उसके वचन सर्वकालिक हैं, सर्वजनीन हैं एवं सर्वदेशीय हैं। उसका सम्बन्ध किसी देश, काल, जाति से नहीं है। वह तो मनुष्य मात्र के कल्याण के कल्याण का ग्रंथ है जो महाभारत युद्ध के समय जितना ही आज भी प्रासंगिक है। कारण उसने अर्जुन का का मोह नष्ट किया और फिर अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो गया। वह आज भी प्रासंगिक है तथा अनन्त काल तक प्रासंगिक रहेगा। मानव जाति पर अर्जुन का कितना बड़ा उपकार है इसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

अर्जुन भगवान कृष्ण के अत्यन्त प्रिय पात्र थे। अर्जुन कितना बड़ा चरित्रवान था उसको केवल नीचे के एक उदाहरण से समझा जा सकता है। यह उदाहरण आज के बालकों को पढ़ाया जाना अति आवश्यक है। कारण चरित्र संकट को दूर करने के लिये ऐसे उदाहरणों का पाठ्यक्रमों में समावेश होना चाहिये।

महाभारत युद्ध के पूर्व की घटना है। शंकर को संतुष्ट कर अस्त्र प्राप्त करने के लिए अर्जुन इन्द्रकील पर तप कर रहे थे। तपस्या में उन्हें सफलता मिली। संतुष्ट हुए शंकर ने आशीष और अस्त्र दोनों प्रदान किया अर्जुन को। अन्त में इन्द्र के आमंत्रण पर इन्द्रकील पर्वत से, अर्जुन अमवती के लिये प्रस्थान किये। पर्वत पर तपस्या की बेला में इन्द्र ने अर्जुन की सुरक्षा का प्रबन्ध किया था। अतः उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अर्जुन अपना कर्तव्य समझते थे। इन्द्र ने इस तरुण अतिथि पुत्र को उत्साह से अपनी सुधर्मा सभा में सम्मानित किया। उसके स्वागत में नृत्य-गीत आदि का आयोजन किया गया। इन्द्र ने अर्जुन को अपने सिंहासन के

अर्ध भाग में बैठाकर स्नेह की धारा से नहला कर उन्हें निहाल कर दिया। अर्जुन विनम्रता की मूर्ति बने इन्द्र की बगल में बैठे थे। उनका शरीर तप के तेज से दमक रहा था। उनके अंग-अंग से अंगड़ाई लेती हुई तरुणाई की आभा प्रस्फुटित हो रही थी। श्याम वर्ण, सुगठित शरीर ब्रह्मचर्य की महिमा से मण्डित था। पीठ पर अग्नि-प्रदत्त दो अक्षय्य तूणीर और वाम स्कन्ध पर गाण्डीव धुनष लटक रहा था। वीरासन से बैठे अर्जुन को देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वीर रस शरीर धारण कर बैठा हो- 'मनहु वीर रस धरे शरीरा।' देव-मण्डली के उपस्थित सदस्यों से अर्जुन का परिचय कराया गया। इसी क्रम में देवसुन्दरी उर्वशी का अर्जुन से सामना हुआ। एक तरफ अक्षय्य सौन्दर्य का भंडार था तो दूसरी ओर अथाह बल का सागर। यह वही उर्वशी थी जिसने कभी देवों को भी विस्मय में डालने वाले सौन्दर्य और विक्रम की खान पुरूरवा को भी अपने मदोन्मत्त यौवन एवं शरीर-लावण्य का क्रीत दास बना लिया था। अर्जुन ने कुछ देर तक उर्वशी को देखा, ध्यान से निहारा। अब तक उर्वशी अर्जुन पर अपना सब कुछ न्योछावर कर चुकी थी। वह उन्हें देखते ही विकल हो गई थी उनके तारुण्य का उपभोग करने के लिये। इन्द्र ने इस दृश्य को देखा। उन्होंने सोचा- 'देवसुन्दरी के सौन्दर्य ने अर्जुन के मन को मोह लिया है।' वे अपने अतिथि पुत्र के मनोरथ को पूरा करना चाहते थे। फलतः उन्होंने गन्धर्वराज चित्रसेन को बुलाकर एकान्त में निर्देश दिया- 'अर्जुन जब यामिनी-शयन के लिये अपने कक्ष में जाएँ तो देवकामिनी उर्वशी को भरपूर अलंकृत कर उनके पास भेज दिया जाए।' चित्रसेन ने देवराज के आदेश को शिरोधार्य किया। देवसुन्दरी ने इसे अपना अहोभाग्य माना।

रात्रि के दस बजे थे। सभी आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो अर्जुन शयन की तैयारी में थे। इसी समय उर्वशी अर्जुन के शयन-कक्ष में प्रवेश करती है। रात्रि की बेला। नीरव एकान्त। स्वर्ग-रत्न उर्वशी और भरत-कुल-भूषण नर-रत्न अर्जुन आमने-सामने। अद्‌भुत दृश्य था। अर्जुन इस परिस्थिति के लिये तैयार न थे। अप्रत्याशित, सर्वथा अप्रत्याशित। वे हड़बड़ा कर पलंग पर उठ बैठे। उर्वशी ने अर्जुन से कहा- 'अर्जुन, मैं आपके सौन्दर्य, माधुर्य एवं शौर्य आदि गुणों से आकृष्ट होकर यहाँ इस मधु-यामिनी को सरस बनाने आई हूँ। सम्प्रति आपकी बाहुओं में समा जाने के लिए अनंग मुझे परवश बना रहा है।' उर्वशी सोच रही थी- मेरे प्रस्ताव पर अर्जुन प्रसन्न हो उछल पड़ेंगे। किन्तु उत्तर में लज्जा से गड़े हुए, दोनों हाथों से कान मूंद कर अर्जुन ने कहा- ''सौभाग्यशालिनि, भामिनि, मेरी दृष्टि में तुम गुरु-पत्नियों के समान पूज्या हो। सुश्रोणि, मेरे लिये महाभागा कुंती और शची के समान तुम भी हो। विलासिनि, पुरुवंश की जननी होने के कारण मैंने तुम्हें पूज्य-भाव से इन्द्र सभा में निर्निमेष नयनों से निहारा था। देवि,

मेरी दृष्टि में कामभाव का लेशमात्र भी न था। तुम मेरे लिये अत्यन्त आदरणीया और पूर्वजों की जननी हो। अतः -

हे सुन्दरिशिरोमणि, मैं आपके चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्रार्थना कर रहा हूँ आप यहाँ से चली जाएं। आप मेरी मां के समान पूज्य हैं और मैं आप के द्वारा अबोध बालक की भाँति, रक्षा का पात्र हूँ।

उर्वशी अर्जुन के इस अप्रत्याशित उत्तर को सुनने के लिए तैयार न थी। वह सोचती थी कि मेरे सौन्दर्य लावण्य की आंधी में जब चिरकाल तक अखण्ड तपस्या करने वाले बड़े-बड़े ऋषि और महाबलशाली अखण्ड भूमंडल के एक छत्र अधिपति पुरूरवा एक क्षण भी न ठहर सके, स्थिर न रह सके तो इस तरुण की क्या बिसात जो मुझे स्वीकार न करे। किन्तु अर्जुन के विनम्र, धर्म से भरे हुए, दृढ़ उत्तर को सुनकर सन्न रह गई देवसुन्दरी उर्वशी। उसने अपने को संभालते हुए कहा- "वीर, हम अप्सराएं हैं। हमारा किसी के साथ विवाह नहीं होता, गठबन्धन नहीं होता। हम स्वतंत्र है, बन्धन-विहीन हैं। अतः मुझे गुरुजनों की गुरुतर गद्दी पर बैठाना उचित नहीं है। आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं काम-विह्वल हो रही हूँ। अतः आप मेरा त्याग कर अधर्म के भागीदार न बनें। मेरा दुःख दूर करना आपका कर्तव्य है।" किन्तु अर्जुन पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

इस पर क्रुद्ध होकर उर्वशी ने एक बार फिर अर्जुन को ललकारा- 'तरुण-तपस्वी, एक बार फिर सोच लो, समझ लो। यह तुम क्या कर रहे हो? अज्ञानतावश तुम कण्ठ में लटकते हुए बहुमूल्य हार को निकाल कर फेंकने जा रहे हो।'

उर्वशी की बात को सधैर्य सविनय अर्जुन ने सुना। वे तृण भर भी विचलित नहीं हुए अपने निर्णय और विचार से। हाथ जोड़े सिर झुकाए हुए उन्होंने बार-बार प्रार्थना की उर्वशी से वहाँ से चले जाने की। इस पर अप्सरा अप्रसन्न हो उठीं। उसने कुपित हो निरपराध निष्कलुष अर्जुन को शाप दिया- 'अर्जुन, जाओ, तुम्हें स्त्रियों में नर्तक होकर रहना पड़ेगा और सम्मान-रहित होकर नपुंसक की भाँति विचरण करना पड़ेगा'।

तमतमाई हुई उर्वशी शाप देकर झमाझम चली गई। अर्जुन का मन दुःखित हो उठा। तलवार की धार पर चलना है सत्पथ का अनुवर्तन। धन्य हो अर्जुन! यदि आज का तरुण-वर्ग तेरी छाया का भी स्पर्श कर सके तो यह धरती स्वर्ग बन जाए।

सम्पूर्ण महाभारत में अर्जुन का चरित्र सर्वोपरि एवं अनुकरणीय है। अर्जुन सबका प्रिय पात्र था। गुरु द्रोणाचार्य का सबसे प्रिय शिष्य था। भगवान कृष्ण का अर्जुन भक्त, सखा, प्रेमी एवं बहनोई था। माता कुंती का सभी पुत्रों में अर्जुन पर विशेष आशीर्वाद था। कैसे नहीं होता! पत्नी द्रौपदी को स्वयंवर में स्वयं जीतकर

लाया लेकिन माता कुंती के बिना देखे कहने पर उसका सभी भाइयों की पत्नी होना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

महाभारत का युद्ध हो रहा था। एक ओर अर्जुन थे, जिनके सारथी थे श्रीकृष्ण। दूसरी ओर थे कर्ण और उनका सारथी शल्य। कृष्ण ने कर्ण के सारथी से कहा– 'तुम हमारे विरुद्ध जमकर लड़ना पर मेरी एक बात मानना।' जब भी कर्ण प्रहार करे तब कहना – यह भी कोई प्रहार होता है, तुम प्रहार करना जानते ही नहीं, बस इन वाक्यों को दोहराते रहना। सारथी शल्य ने कृष्ण की बात स्वीकार कर ली। युद्ध आरंभ हुआ। कर्ण के प्रत्येक प्रहार पर शल्य कहता – यह भी कोई प्रहार है? तुम प्रहार करना जानते ही नहीं। उधर, अर्जुन के प्रत्येक प्रहार पर कृष्ण कहते – 'वाह, कैसा प्रहार है। वाह! क्या निशाना साधा है। प्रत्येक बार कर्ण हतोत्साहित होता। इससे कर्ण का बल क्षीण होता गया। उसकी शक्ति टूट गई और वह शक्तिहीन हो गया। अर्जुन की शक्ति बढ़ती गई और पाण्डव पहले से अधिक शक्तिशाली हो गए। इसलिए प्रोत्साहन मन के लिए अमृत है, जबकि हतोत्साहित मन पराजय की पहली सीढ़ी है।

श्रीकृष्ण ने जब शिशुपाल का वध किया तो अर्जुन ने आश्चर्य से पूछा, 'जैसे आज निमिष मात्र में ही आपने इस दुष्ट को मृत्युदंड का पात्र मान लिया, वैसे आप पहले भी इसे मार सकते थे। यह तो सदैव आपका अपमान करता आया था।'

श्रीकृष्ण ने आत्मस्थ गाम्भीर्य के साथ उत्तर दिया, 'धनंजय, मैं तुम्हारा प्रश्न समझता हूँ। आज की तरह कभी भी मैं उसका संहार कर सकता था, किन्तु मेरे सम्मुख सदैव एक प्रश्न रहा है कि क्या बल का धर्म सदैव दंड देना ही है, क्षमा या सहन करना नहीं है? क्षमा तो बलवान ही कर सकता है, दुर्बल क्या क्षमा करेगा? सहन भी वही करेगा, जिसके पास सहनशक्ति होगी। अशक्त क्या सहन करेगा? अब तक मैं अपनी इन्हीं शक्तियों की परीक्षा ले रहा था। अपनी ही थाह ले रहा था कि मुझमें जो शक्ति है, वह कितनी मेरी है, क्योंकि शक्ति उतनी ही हमारी होती है, जिस पर हमारा, हमारे संकल्प का अंकुश रह सकता है।'

अर्जुन की महानता पर तो पूरा ग्रंथ तैयार हो सकता है। सात सौ श्लोकों की श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के अंतिम पाँच श्लोकों में संजय ने महाराज धृतराष्ट्र से कहा है– 'हे राजन्, मैंने श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अद्भुत रहस्ययुक्त और रोमांचकारी संवाद को सुना। श्री व्यास जी की कृपा से दिव्य दृष्टि द्वारा मैंने इस परम रहस्ययुक्त गोपनीय योग को साक्षात् कहते हुये स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान से सुना है। इस कल्याणकारक अद्भुत संवाद को पुनः पुनः स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित होता हूँ। हे राजन्, विशेष

क्या कहूँ, जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री विजय विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।'

भगवान श्रीकृष्ण एवं अर्जुन में कैसी अभिन्नता थी, इसके सम्बन्ध में श्रीकृष्ण स्वयं बोले- 'धर्मराज, आप बिल्कुल चिंता न करें। आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं। आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये शरीर का माँस भी काटकर दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग कर सकते हैं। अर्जुन ने मेरे सामने भीष्म को मारने की प्रतिज्ञा की थी, उसकी मुझे हर तरह से रक्षा करनी है। दैत्य एवं दानवों के साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जाएं तो अर्जुन उन्हें परास्त कर सकते हैं, फिर भीष्म की तो बात ही क्या है।'

पूर्णावतार भगवान कृष्ण जिस अर्जुन के सख हों, उसके लिये फिर कौन सा काम असम्भव है? अर्जुन की अनन्यता, वीरता एवं दिव्य चरित्र का पाठ आज के पाठ्यक्रम में रखा जाय तो निश्चित रूप से हमारे नौजवान भाइयों में भक्ति, वीरता एवं दिव्य चरित्र का बीजारोपण होगा।

◆

मां गंगा का दर्द

शास्त्र कहते हैं मां गंगा भगवान शंकर के जटाजूट से निकली। शास्त्र यह भी बताते हैं कि भगवान विष्णु के चरणों से निकली। शास्त्रों में यह भी वर्णन आता है कि महापराक्रमी भीष्म गंगा पुत्र थे। हम देखते हैं कि मां गंगा हिमालय में गोमुख से निकली। हरिद्वार-कानपुर-इलाहाबाद-वाराणसी-पटना- भागलपुर होते हुए गंगासागर में जाकर बंगाल की खाड़ी वाले सागर में विलीन हो गई। गंगा की यह सम्पूर्ण यात्रा २५५० किलोमीटर की है। हमारे देश की सम्पूर्ण सभ्यता एवं संस्कृति का विकास मां गंगा के किनारे हुआ। हरिद्वार के ऊपर गंगा के तट पर हिमालय की गोद में हमारे ऋषि मुनियों ने अत्यन्त कठिन साधना तपस्या की है। आज भी हरिद्वार के ऊपर का क्षेत्र ऋषि मुनियों की साधना स्थली है। वह सम्पूर्ण क्षेत्र आराधना एवं साधना के कारण पावन एवं पवित्र है। उस क्षेत्र में जाने पर पावनता एवं पवित्रता का बोध होता है। आप थोड़ा भाव से अनुभव करने का प्रयास करें तो आपकी तामसी वृत्तियों में कमी आयेगी एवं सात्विक वृत्तियों में वृद्धि होगी। उस क्षेत्र के वायुमंडल में साधना एवं आराधना की पवित्रता का बोध आपको स्वतः होगा।

गंगा जल में कीड़े नहीं पड़ते थे ऐसा तो मेरा भी अनुभव है। कितने ही संत महात्मा, गृहस्थ आदि आजीवन केवल गंगाजल का ही पान करते हैं तथा गंगा जल में ही स्नान करते हैं। मां गंगा को पतित पावनी मानते हैं और उसमें गोता लगाने का अवसर मिले तो अपने को पुण्यात्मा समझते हैं। मरने के समय भी गंगा जल मुंह में देने का विधान है ताकि कष्टमुक्त मौत मिले तथा मरणोपरान्त 'मोक्ष' सुनिश्चित हो जाय। मुर्दे को चिता पर रखने के पहले भी गंगा स्नान कराया जाता है और कामना की जाती है कि हे पतित पावनी गंगे! तू इस अपावन शरीर को भी पावन कर दे। इसने बहुत पाप किये हैं इसकी यह अन्तिम यात्रा है, अतः इसे भी पापमुक्त कर दे। चिता पर जलने के उपरान्त राख को भी गंगा में प्रवाहित करते हैं और कामना करते हैं कि मेरी राख सरिता के माध्यम से सागर तक पहुंच जाय। जैसे आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है तथा व्यष्टि समष्टि में समा जाता है।

भगवान शंकर पर गंगा जल की धारा निरन्तर प्रवाहित की जाती है। कारण वह भगवान शंकर की जटाजूट से ही तो निकली है। ऐसी पावन गंगा जो लाखों करोड़ों हिन्दुओं की श्रद्धा और आस्था का केन्द्र है वह दूषित कैसे हो गई? किसने उसे प्रदूषित किया? और क्या वह प्रदूषणमुक्त हो सकती है? अगर हो सकती है तो कैसे होगी तथा कौन करेगा? मुझे शास्त्र की एक उक्ति याद आती है कि "धर्मो रक्षति रक्षितः" यानी हम धर्म की रक्षा करें तो धर्म हमारी रक्षा करेगा। ठीक इसी प्रकार हम गंगा को प्रदूषणमुक्त करें तो गंगा हमें आज भी पावन करती रहेगी। गंगा को प्रदूषणमुक्त करें कैसे? सर्वप्रथम गंगा में आदि से अन्त तक यानी गोमुख से गंगा सागर तक गन्दे नाले गंगा में गिरना रोक दें। गंगा में पानी की न तो मात्रा बढ़ी न प्रवाह बढ़ा लेकिन आबादी तथा उद्योग काफी संख्या में बढ़ गये। नतीजा हुआ कि आबादी एवं उद्योग के गंदे जल ने गंगा को प्रदूषित कर दिया। आज का विज्ञान इतना विकसित हो गया कि गंदे पानी को गंगा में गिरने से रोका जा सकता है तथा उस गंदे पानी का खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। यह खाद भी खेतों के लिए अत्यधिक उपयोगी होगी तथा रासायनिक खादों पर हमारी निर्भरता घटेगी। यों भी रासायनिक खादों की मात्रा कम करना सभी दृष्टियों से लाभप्रद है नहीं तो उनके लगातार उपयोग से खेत ऊसर हो जायेंगे। अतः ऊसर होने से बचाने के लिए जैविक खाद का प्रयोग अति आवश्यक है।

१४ जून १९८६ को तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने वाराणसी में गंगा को निर्मल करने हेतु गंगा कार्य योजना का शुभारम्भ किया था। अब तक गंगा को निर्मल करने के लिए लगभग १००० करोड़ रुपये से अधिक खर्च हो चुके लेकिन गंदे नाले उसी तरह आज भी गंगा में गिर रहे हैं। कारण हमारे चरित्र में ईमानदारी की कमी है। हम गंगा को निर्मल करने की योजना के पैसों का भी दुरुपयोग कर लेते हैं। हम नहीं हिचकते कि इस तरह के पैसों का दुरुपयोग सर्वथा निन्दनीय एवं पाप है। जब तक जन चेतना जागृत नहीं होगी, तब तक यह कार्य पूरा होना कठिन है। हर व्यक्ति को संकल्पित होना होगा कि हम गंगा को निर्मल रखेंगे, कोई गंदा पदार्थ गंगा में नहीं डालेंगे। घाटों की सफाई करने वाले भी गंदगी को गंगा में डालने के बजाय अन्यत्र फेंके। बाढ़ के बाद घाटों पर जमा मिट्टी को भी गंगा में प्रवाहित न करें नहीं तो यह मिट्टी गंगा की तलहटी में जमा होकर जल स्तर को छिछला बना देगी। भविष्य में गंगा में एक और गंभीर समस्या उठने वाली है। वह है गंगा में जल की कमी। इलाहाबाद में यमुना जी के मिलने से तो गंगा में थोड़ा पानी दिखाई पड़ता है लेकिन इलाहाबाद के पहले कानपुर आदि में पानी की मात्रा काफी कम हो गई और गंगा एक नाला बनकर रह गई। गंगा में जब पानी ही नहीं रहेगा तो प्रदूषण किसका होगा साथ ही जैसे जैसे गंगा में पानी की मात्रा

कम होती जाएगी, प्रदूषण और बढ़ेगा ही। अतः गंगा में जल की मात्रा बढ़ाना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि हरिद्वार के पास गंगा के जल को, नहरों के रूप में दूसरी दिशा में ले जाते हुए यह व्यवस्था की जाय कि गंगा जल का ५० प्रतिशत हिस्सा सप्ताह में कम से कम दो बार, कानपुर की ओर छोड़ा जाय।

गंगा को प्रदूषणमुक्त कराने के लिये जो भी राशि व्यय की गई है उसमें पारदर्शिता नहीं है। जनता को नहीं मालूम कि कितने काम में कितना पैसा लगा और जो काम हुए उसकी गारण्टी क्या है और क्या सारे उपकरण ठीक काम कर रहे हैं? अगर खराब पड़े हैं तो क्यों और उसके लिए कौन जिम्मेदार है तथा अपनी क्षमता से अगर कम काम कर रहे हैं तो इसके लिए दोषी कौन है? जनता के पैसे के खर्च में पारदर्शिता रहेगी तो दुरुपयोग नहीं होगा। जनता स्वयं उसकी निगरानी रखेगी।

गंगोत्री के गंगा जल से रामेश्वरम् में अभिषेक किया जाता है जो उत्तर दक्षिण की एकता क़ा प्रतीक है। जो चीज जितनी धार्मिक है वह उतनी ही उपयोगी है। गीता, गंगा, गाय, गायत्री आदि अति पवित्र हैं अतः अति उपयोगी हैं। कहते हैं एक बार बादशाह अकबर ने पूछा था कि अति पवित्र जल किस नदी का है तो बताया गया 'यमुना' का तो पुनः पूछा कि गंगा का, तो बताया गया कि गंगा का जल तो अमृत है। हम गंगा में गंदे नाले तथा कारखानों के प्रवाह को तो रोकें ही, साथ ही फूलों का गिरना, मुर्दों को बहाना भी रोकें चाहे आदमी के हों या जानवर के। गंगा चूंकि हमारी संपूर्ण आस्था एवं श्रद्धा से जुड़ी है अतः उसे पवित्र रखना हमारा परम कर्तव्य है। आज भी देश विदेश से आने वाले हिन्दू मौका मिलते ही गंगा स्नान जरूर करते हैं। हम मां गंगा की पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं, गंगा जल का आचमन करते हैं। यह हमारा नैतिक दायित्व है, कारण गंगा के कितने उपकार हैं हमारे ऊपर। अतः पूजा आरती एक प्रकार से आभार प्रदर्शन है।

हर हिन्दू को संकल्पित होना होगा कि गंगा हमारे लिए संजीवनी है। इसको पवित्र एवं प्रदूषण मुक्त रखना हमारा नैतिक दायित्व है। प्रदूषण मुक्त करने में जो भी राशि व्यय होती है उसका पूरा सदुपयोग हो और सारे खर्चे में पारदर्शिता हो तो काफी सीमा तक हमें सफलता मिल सकती है।

◆

गंगा : गौरवमय अतीत एवं वर्तमान

गंगा जल में तुलसी दल छोड़कर मन्दिरों में जब चरणामृत दिया जाता है तो पुजारी एक मंत्र पढ़ते हैं। वह है "अकाल मृत्यु हरणं, सर्व व्याधि विनाशनं, विष्णु पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते"। यानी यह चरणामृत आपकी अकाल मृत्यु का हरण करेगा, आपकी सभी बीमारियों का नाश करेगा, विष्णु के चरणों से निकले गंगा-जल को पीने से आपका पुनर्जन्म नहीं होगा यानी मोक्ष हो जायेगा। हमारे शास्त्रों के अनुसार हिन्दू की अन्तिम अभिलाषा यही रहती है कि हमारा मोक्ष हो जाय यानी यह गंगा जल इतना पावन एवं पवित्र जल है कि इसका आचमन भी आपको मोक्ष प्रदान करेगा।

शास्त्र के अनुसार राजा भगीरथ की घोर तपस्या के कारण ही गंगा का अवतरण पृथ्वी पर हो सका। गंगा ने अवतरण के पहले भगीरथ से कहा कि 'वत्स, जिस समय मैं स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरूं, मेरा वेग सहन करने वाला कोई होना चाहिए, नहीं तो मैं रसातल में चली जाऊंगी।' भगीरथ ने भगवान शंकर को अपनी घोर तपस्या से प्रसन्न कर लिया ताकि गंगा अवतरण के वेग को वे रोक सकें। भगवान शंकर ने सावधान होकर स्वर्ग से गिरती हुई गंगा को अपने सर पर धारण कर लिया। भगवान शंकर की जटा से जो धारा प्रवाहित हुई वह गंगा हो गई। इसके बाद भगीरथ त्रिभुवन पावनी गंगा को वहां ले गये जहां उनके पितरों के शरीर राख के ढेर बने पड़े थे। भगीरथ के वायु वेग वाले रथ के पीछे दौड़ती हुई गंगा ने सागर के संगम पर पहुंच कर सगर के जले हुए पुत्रों को अपने जल में डुबो दिया और स्वयं सागर में मिलकर शान्त हो गई। उसी गंगा एवं सागर के संगम स्थान का नाम गंगा सागर पड़ा। गंगा के परम पावन जल का स्पर्श कर सगर के जले हुये वे सभी पुत्र स्वर्ग में चले गये। प्राचीन काल में हमारी सभ्यता संस्कृति गंगा के किनारे विकसित हुई। हमारे संत महात्माओं ने अपना तप एवं साधना भी गंगा तट के आसपास किया। संतों के तप एवं साधना ने पावन गंगा को और भी पावन कर दिया। गंगा की महिमा आज भी हिन्दू समाज में उसी प्रकार मान्य है। गंगा जल में स्नान, पान से मुक्ति की कामना की जाती है। कितना पावन एवं

पवित्र करती है यह पतित पावनी गंगा। प्रत्येक हिन्दू अपने को गंगा में स्नान के उपरान्त धन्य मानता था क्योंकि वह उसे पावनता प्रदान करती थी। यह तो गंगा के गौरवमय अतीत की बात हुई।

लेकिन आज गंगा का वर्तमान स्वरूप क्या हो गया! गंगा जल के आचमन में भी पहले वाला आकर्षण एवं पवित्रता का बोध समाप्त हो गया। क्यों? कारण हमने ही गंगा को प्रदूषित कर दिया। यह प्रदूषित कैसे हो गई? हमने जगह जगह गंगा जल को अन्यत्र ले गये, नतीजा हुआ कि गंगा में जल की मात्रा कम होती चली गई। आज गंगा में यमुना जल न मिले तो गर्मी में एक नाला मात्र रह जायगी। अतः सबसे पहले इसे प्रदूषण से बचाने के लिये जल की मात्रा बढ़ाना अति आवश्यक है। दूसरे हमने गंगा किनारे उद्योग स्थापित किये और उद्योग का गंदा जल भी गंगा में प्रवाहित किया। इस उद्योग के गंदे जल के कारण गंगा जल इतना प्रदूषित हो गया कि गंगा जल में रहने वाले कछुये भी मरने लगे। ये कछुये ही मुरदे खाकर गंगा को शुद्ध रखने में सहायक होते थे। गंगा कार्य योजना के तहत कछुये गंगा में छोड़े गये लेकिन उनकी संख्या अपर्याप्त थी। देश के बड़े बड़े शहर गंगा किनारे विकसित हुये जैसे हरिद्वार, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना आदि। इन शहरों की आबादी काफी बढ़ी और आबादी बढ़ने के कारण शहरों का मल मूत्र एवं गंदा जल भी गंगा में गिरा और इस मल मूत्र ने भी गंगा का प्रदूषण बढ़ाया। आज भी हिन्दुओं में मान्यता है कि मुर्दों को लकड़ी में ही जलाया जाय। बिजली घरों में जलाना नहीं चाहते। गरीबी के कारण अधजली लाश भी गंगा में प्रवाहित कर दी जाती है। आबादी बढ़ने के कारण मरने वालों की भी संख्या बढ़ी। अतः अधजली लाशों की संख्या भी बढ़ी। लाश के साथ साथ राख, कोयला आदि भी गंगा में प्रवाहित कर दिये जाते हैं और इसने भी प्रदूषण बढ़ाया। लाखों लोग आज भी गंगा में स्नान करते हैं। वे पूजन सामग्री फूल पत्ते भी गंगा में डाल देते हैं और इस कारण भी गंगा प्रदूषित हो गई। हम घाटों की सफाई करते हैं और बटोरा हुआ कूड़ा भी गंगा में ही डाल देते हैं जिसे अन्यत्र फेंका जाना चाहिये। गंगा में बाढ़ के बाद घाट किनारे जो मिट्टी जमा होती है उसे भी गंगा में बहा देते हैं जिसके कारण गंगा दिन प्रतिदिन छिछली होती जा रही है। अतः बाढ़ की मिट्टी को भी गंगा में प्रवाहित न करके उसे भी बाहर फेंकना चाहिये। गंगा के बढ़ते प्रदूषण को देखते हुए तथा गंगा को शुद्ध बनाये रखने की भावना ने तत्कालीन प्रधामंत्री श्री राजीव गांधी को प्रभावित किया और राजीव गांधी ने पहल करते हुए १९८५ में घोषणा की थी "गंगा भारत की प्रतीक है, लेकिन यह भारत की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में एक है। हम गंगा की पवित्रता को फिर से कायम करेंगे।" उपर्युक्त घोषणा के एक माह के अन्दर ही गंगा प्राधिकरण का

गठन हुआ और गंगा को प्रदूषण मुक्त करने हेतु अब तक लगभग १००० करोड़ रुपये खर्च किये गये। लेकिन न तो १००० करोड़ की धनराशि का सही उपयोग हुआ और न जो यन्त्र एवं उपकरण लगाये गये उनका रख-रखाव ही ठीक से हो पाया। ये उपकरण जब काम नहीं करेंगे तो प्रदूषण कैसे कम होगा या रुकेगा? हमारे प्रदूषण रोकने का संयंत्र खुद प्रदूषण फैला रहा है। मल जल शोधक संयंत्र का परिणाम उल्टा साबित हो रहा है। १९८७ में एक प्राइवेट संस्था द्वारा किये गये सर्वे में बीमार लोगों की संख्या ५-६ प्रतिशत थी जो लगभग १४ वर्षों बाद बढ़कर ७० प्रतिशत तक पहुंच गई। प्रदूषित पेय जल के चलते अब भारी संख्या में लोग बीमार हो रहे हैं जिनमें से कई की मृत्यु भी हो चुकी है। अगर संयंत्र से होने वाले प्रदूषण को तत्काल रोका नहीं गया तो वह दिन दूर नहीं जब प्रदूषण की समस्या भयंकर चुनौती बनकर हमारे सामने आयेगी।

अगर हमने गंगा के मलिन वर्तमान को पवित्र करने का सार्थक प्रयास नहीं किया तो गंगा के भविष्य का संकटमय होना निश्चित है। सरस्वती की 'ज्ञान धारा' की तरह कहीं गंगा की 'मोक्ष धारा' भी लुप्त न हो जाए। क्या हम अपनी इस पहचान को यूं ही लुप्त हो जाने देंगे? क्या हम भगीरथ के तप को, विष्णु की करुणा को, ब्रह्मा के व्रत को और शिव के कल्याण को यों ही मिट जाने देंगे? यह प्रश्न निराधार या काल्पनिक नहीं है। यह केवल भावुक मन की वेदना नहीं है। यह यथार्थ है, सत्य है, अनुभूत है और अवश्यम्भावी है कि यदि हम नहीं चेते, उठे और जागे तो यह होगा ही। इसे त्रिदेव भी नहीं रोक पायेंगे और भगीरथ भी नहीं बचा पायेंगे। हमारी यह सांस्कृतिक थाती और विरासत नष्ट हो जायगी। वह दिन दूर नहीं जब टेहरी बांध के बाद या उसके आगे गंगा कही जाने वाली नदी में वर्षा का पानी तो होगा लेकिन गंगा जल नहीं होगा। उस जल में गंगा का अमृतत्व नहीं होगा जो गंगा की विशेषता है। ऋषिकेश से गंगासागर तक गंगा नहीं केवल गंदा नाला होगा, जल नहीं केवल बदबूदार प्रदूषित जहर होगा। इकतालीस वर्ग किलो मीटर क्षेत्र में बनाया जा रहा यह बांध युग युग से चले आ रहे गंगा के पुण्य प्रवाह को वहीं अवरुद्ध कर देगा। गंगा जल या गंगा माता इस बांध की बंधक बन जायेगी तो हम भारत के लोग भी स्वतंत्र नहीं रहेंगे, हम भी किसी न किसी देश के बंधक या गुलाम होंगे। कुछ बुद्धिजीवी और अर्थशास्त्री यह आरोप भी लगायेंगे कि गंगा के संदर्भ में उक्त विचार विकास विरोधी, प्रगति विरोधी और प्रतिगामी हैं। गंगा की धारा को अवरुद्ध करके बांध नहीं बनायेंगे तो बिजली कैसे बनेगी? बिजली नहीं होगी तो उद्योग धन्धे कैसे चलेंगे? आर्थिक विकास कहां से होगा? गंगा से नहर नहीं निकाली जायगी तो खेती कैसे होगी? भारतवासी भूखे और भिखारी हो जायेंगे। ऐसे तर्क देने वालों को हमारी 'गंगा परम्परा' पसन्द नहीं

है। भूख और भावना के बीच यह संघर्ष, यह आधुनिक आर्थिक युद्ध बहुत ही गहरा और बहुत ही गम्भीर दुष्परिणामों वाला होगा। कुछ ताकतें यूनान, मिश्र और रोम की तरह भारत की भी हस्ती, मस्ती और पहचान मिटा देने पर आमादा हैं। भारत का नाम तो रहे लेकिन भारतीय परम्परा और भारतीय प्रज्ञा का लोप हो जाय। यदि देशवासियों को उनके पुरुषार्थ, उनकी राष्ट्रीय अभीप्सा और वर्तमान तथा भावी आकांक्षा की प्रज्ञा भूमि पर स्थित नहीं किया जायगा तो प्रत्येक विकास कार्य विकार एवं विनाश का ही कारण बनेगा।

सम्पूर्ण संसार में आर्थिक दादागिरी करने और सामरिक आतंक फैलाने वाला अमेरिका अपने यहां भारत के टेहरी के जैसा विशाल बांध क्यों नहीं बनाता? क्या अमेरिका में बिजली एवं सिंचाई के लिये पानी की कमी है? अपने जल संसाधनों का उपयोग करने में अमेरिका बहुत ही सतर्क एवं संवेदनशील है। रूस, फ्रांस, जर्मनी आदि ने भी टेहरी बांध जैसा बांध इसलिये नहीं बनाया कि उनमें विकास एवं विनाश की समझ है। भारत केवल कृषि प्रधान देश ही नहीं, अध्यात्मप्रधान देश भी है। हमारे अर्थशास्त्रियों ने इसका समाधान प्रस्तुत किया है कि हमें केवल आकाश के बादलों का दास न रहना पड़े। लेकिन अगर हमारी आध्यात्मिक पहचान एवं परम्परा को खोकर यह समाधान हमारे देशवासियों को दिया गया तो देशवासियों को न तो रास आयेगा और न इसका औचित्य है।

हम भारतवासियों को यह सत्य और तथ्य स्मरण रखना चाहिये कि कृषि एवं ऋषि ही भारत के मूल आधार हैं। किसान एवं संत ही हमारी सम्पूर्ण समृद्धि का पथ प्रशस्त करते रहे हैं। हमारे प्रिय देश और हमारी पूज्य भारत माता की पहचान पुण्य सलिला गंगा माता को मलीन होने से बचाना अनिवार्य है। भविष्य में गंगा पर आने वाले इस संकट से मां गंगा को बचाना ही देश को बचाना होगा।

♦

गंगा अवतरण एवं गोमुख

गंगा अवतरण के बारे में हमारे देश में कई मान्यताएं हैं। एक तो कहते हैं गोमुख से निकली, दूसरी है कि राजा भगीरथ के प्रयास से आई। तीसरी इसे जान्हवी भी कहते हैं। चौथी भगवान विष्णु के चरणों से निकली। एक मान्यता है कि ब्रह्मा जी के कमण्डल में थी एवं सबसे प्रचलित है कि भगवान शंकर के जटाजूट से निकली। मैं अभी हाल में गंगोत्री एवं गोमुख यात्रा पर गया था। वहां का दृश्य देखा और गंगा की महिमा एवं अवतरण के बारे में पढ़ा तथा विद्वानों से सुना। जो जानकारी मिली उसे आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं।

गोमुख- हरिद्वार से गंगोत्री ३७६ किलोमीटर दूर है। रास्ता ठीक है एवं गंगोत्री तक सीधे बस, कार आदि जाती है। उत्तराखण्ड के चार प्रसिद्ध धामों में केदारनाथ, बद्रीनाथ, यमुनोत्री एवं गंगोत्री हैं। गंगोत्री उसे इसलिये कहते हैं कि यहां गंगा उत्तर वाहिनी है। हमारे शास्त्रानुसार गंगा तो गोमुख से निकली तथा गंगोत्री से प्रवाहित होकर ऋषिकेश, हरिद्वार होते हुए आगे कानपुर, वाराणसी, पटना, भागलपुर होकर गंगासागर (बंगाल) में सागर से मिली। गंगोत्री से गोमुख की दूरी १८ किलोमीटर तक है। १७ किलोमीटर तक घोड़े जाते हैं। बाकी एक किलोमीटर पैदल मार्ग है। यह १८ किलोमीटर का मार्ग अत्यन्त उबड़-खाबड़, उतार चढ़ाव भरा, संकरा एवं एक तरफ पहाड़ तथा दूसरी तरफ खाई वाला है। इस मार्ग में पैदल, घोड़े या डांडी से ही जाया जा सकता है। राते में हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों के दर्शन होते हैं। पहाड़ों पर ऐसा लगता है, जैसे किसी ने चांदी की चादर बिछा दी हो। रास्ते में बर्फ के कई ग्लोशियर दिखाई पड़ते हैं तथा २-३ ग्लोशियर पर से चलना भी पड़ता है। पहाड़ नंगे भी हैं तथा चीड़, देवदार तथा भोजपत्र के पेड़ों से आच्छादित भी हैं। प्रकृति की अत्यन्त मनोहारी अनुपम छटा देखनी हो तो गंगोत्री धाम एवं गोमुख के दर्शन अवश्य करें। गंगोत्री में ठहरने की काफी सुन्दर व्यवस्था है। अतः कोई भी जाकर ठहर सकता है। केवल अक्टूबर से अप्रैल छोड़कर, कारण जाड़े में बर्फ जमी रहती है। हम समझते थे कि गोमुख का आकार गाय के मुख का आकार होगा लेकिन वास्तव में कहीं भी

गाय के मुख का आकार नहीं है। यह बर्फ के ग्लोशियर का गुम्बदाकार आकार है जहां पहाड़ों से पृथ्वी पर पहली बार मां गंगा देखने को मिलती हैं। गोमुख का आकार मौसम के अनुसार बदलता रहता है। अतः कोई निश्चित आकार नहीं रहता। लेकिन बर्फ के ग्लोशियर के कारण पहाड़ों के बीच से निकलना निश्चित है। स्थान का धार्मिक महत्व जो भी हो लेकिन प्रकृति की अनुपम लीला आपको प्रसन्नता प्रदान करेगी यह निश्चित है। आप प्रकृति से सान्निध्य स्थापित करें तो प्रकृति की छटाओं का आनन्द ले सकेंगे। गोमुख का नामकरण साभिप्राय है। 'गो' का अर्थ पृथ्वी भी होता है याने मनुष्य को अपने नेत्रों से पहली बार पृथ्वी पर जहाँ गंगा आते दिखलाई देती है, उस स्थान को 'गोमुख' कहते हैं।

भागीरथी – राजा भगीरथ द्वारा प्रयत्न करके लाये जाने के कारण गंगा का नाम भागीरथी हुआ। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गंगा को दुर्भेद्य पर्वतों से निकाल कर समतल में लाने का कार्य आध्यात्मिक न होकर एक महान अभियान्त्रिक और तकनीकी काम था। ऐसी मान्यता है कि भगीरथ दुनिया के प्रथम सिविल इंजीनियर हुये जिन्होंने दुर्गम एवं दुर्भेद्य पहाड़ों से गंगा को निकाला। भगीरथ का यह प्रयास प्रत्यक्ष देखना हो तो गंगोत्री एवं गोमुख की यात्रा करें। कैसे कैसे पहाड़ों को काट कर गंगा को प्रवाहित किया गया। वास्तव में अद्भुत इंजीनियरिंग एवं तकनीकी कार्य है। गंगा के अवतरण से सगर के साठ हजार पुत्रों का तारन हो गया से तात्पर्य है कि साठ हजार कर्मचारियों के सहयोग से ही पहाड़ों को काट कर गंगा मैदान में आई। जब गंगा मैदान में आ गई तो कर्मचारियों की आवयश्कता नहीं रह गई। अतः वे सेवामुक्त हो गये। आज भी राजा भगीरथ के अथक एवं अनवरत प्रयास को हमलोग बोलचाल की भाषा में कहते हैं कि इस काम को करने के लिये भगीरथ प्रयास करना पड़ेगा। यह सच है कि भगीरथ के अथक प्रयासों के कारण ही गंगा सर्व साधारण को सुलभ हो सकी।

जाह्नवी – जब गंगा को राजा भगीरथ पृथ्वी पर लाये तो उसका प्रवाह भगीरथ के पीछे पीछे चला। वेग के कारण मार्ग में जन्हु ऋषि का आश्रम बह गया। ऋषि कुपित हो गये और सारी नदी का आचमन कर गये। तब फिर भगीरथ की प्रार्थना पर जब मुनि प्रसन्न हुये तो गंगा को उन्होंने अपनी जंघा से प्रकट किया। तब गंगा भगीरथ से जाह्नवी कहलाई।

भगवान विष्णु के चरणों से गंगा निकली – भगवान विष्णु के चरण कमल से प्रकट होने के कारण ही गंगा को 'विष्णुपदी' नाम से जाना जाता है। जब मंदिरों में चरणामृत दिया जाता है तो एक प्रसिद्ध श्लोक का उच्चारण किया जाता है– 'अकाल मृत्यु हरणं सर्व व्याधि विनाशनं, विष्णु पादोदकं पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते।'

ब्रह्मा के कमण्डल से निकली गंगा – शास्त्रों में लम्बा प्रसंग है। उस प्रसंग को उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। ब्रह्मा ने गंगा के जल रूप को अपने कमण्डल में रख लिया।

शंकर के जटा से निकली गंगा – भगवान शंकर का वास कैलाश पर है। कैलाश पर्वत हिमालय पर्वत की एक चोटी है। हिमालय की पर्वत श्रृंखला से निकली गंगा को शंकर की जटाजूट से निकालने का तात्पर्य भिन्न है। हमारे तीन आदिदेव हैं–ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश। ब्रह्मा हमारी सृष्टि के उत्पादनकर्ता हैं, विष्णु पालनकर्ता एवं महेश संहारकर्ता हैं। हमारे शास्त्रकारों ने गंगा को ब्रह्मा के कमण्डल से, विष्णु के चरण से एवं शंकर की जटा से निकलता दिखाया याने तीनों आदि सर्वोच्च देवताओं की पावनता एवं पवित्रता का वास हमारी गंगा में है।

पहाड़ों से दहाड़ कर निकलती है, पत्थरों से रगड़ कर बहती है तथा जूटाजूट सम पेड़ पौधों के बीच से प्रवाहित होती हुई गंगा हमें पावनता एवं पवित्रता प्रदान करती है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी गंगा जल में कीड़े नहीं पड़ते। अन्य सभी जलों से भिन्नता के कारण ही गंगा जल को जल न कह करके 'अमृत' कहा गया है। 'आईने अकबरी' में लिखा है कि अकबर गंगा जल को अमृत मानते थे। गंगा जल उनका श्रद्धेय था। कट्टर मुसलमान शासक औरंगजेब का काम भी गंगा जल के बिना नहीं चलता था। औरंगजेब जब सफर पर जाता था तो गंगा जल ऊटों पर साथ साथ जाता था।

गंगा की महिमा पर जितना लिखा जाय थोड़ा है। शव को चिता पर लेटाने के पहले गंगा स्नान कराया जाता है कारण वह मां गंगा से प्रार्थना करता है कि पतित पावनी गंगे! मैंने जीवन में बड़े पाप किये हैं, यह मेरी अन्तिम यात्रा है अब तो मुझे पावन कर दे।' हमारी मान्यता है कि मरणासन्न व्यक्ति को गंगा जल की एक बूंद पिला देने से मुक्ति निश्चित है।

आज हमारी गंगा का दर्द क्या है? ऐसी पावन गंगा को हमने इतना प्रदूषित कर दिया कि आज स्नान करने से एवं जल पीने से परहेज करने लगे। गंगा के किनारे बसे सारे शहरों का मलमूत्र आज भी गंगा में प्रवाहित हो रहा है। सारे उद्योगों का गंदा पानी भी गंगा में प्रवाहित हो रहा है। जगह जगह गंगा को सिंचाई हेतु काम में लाया जा रहा हे जिसके कारण गंगा का जल इतना कम हो गया है कि कहीं कहीं गंगा छोटे नाले के रूप में ही दिखाई देती है। हमारा कर्तव्य है कि हम गंगा को प्रदूषण मुक्त करें ताकि गंगा हमें पावनता प्रदान करती रहे। संस्कृत में एक कहावत है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' याने आप धर्म की रक्षा करें, धर्म आपकी रक्षा करेगा। प्रकृति ने हमें गंगा को पवित्र रूप में दिया। यह विश्व में भारत को प्रकृति की अनुपम देन है। हमारा परम पावन कर्तव्य है कि गंगा की

पावनता सुरक्षित रहे। मां गंगा का दर्द यही है कि मेरी पावनता मानव ने नष्ट की है, अतः जब तक मुझे मेरी पावनता पुनः प्राप्त नहीं होगी, मेरा दर्द दूर नहीं होगा। हमारे देश की सारी सभ्यता एवं संस्कृति का विकास गंगा के किनारे बसे शहरों में हुआ। अतः गंगा की पवित्रता को सुरक्षित रखना हमारा नैतिक दायित्व है। हमारे ऋषियों ने भी अपनी तपस्या एवं साधना गंगा के किनारे के पहाड़ों पर की है। अतः हम संकल्पित हो जायं कि गंगा की पवित्रता को कम या नष्ट नहीं होने देंगे। गंगा, हमारे देश की पहचान है। प्रत्येक हिन्दू अपने को भाग्यवान समझता है अगर उसने गंगा का दर्शन कर लिया, गंगा में स्नान कर लिया या गंगाजल का आचमन कर लिया। ऐसी पावन गंगा को प्रदुषित एवं जल की मात्रा कम होने से बचाना ही हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता है।

♦

गाय का महत्व

भारत एवं भारत के पड़ोसी देश (जो कभी भारत के अभिन्न अंग थे) को छोड़ कर विश्व के अन्य सभी देशों में केवल गाय पाई जाती है। भारत एवं पड़ोसी देशों में गाय के साथ भैंस भी पाली जाती है। गुणवत्ता की दृष्टि से गाय का दूध अधिक गुणकारी होता है। कहावत है कि भैंस का दूध पीने वाला मोटी बुद्धि का हो जाता है। भैंस के दूध में मलाई अधिक होती है अतः पहलवान भैंस के दूध का सेवन अधिक करते हैं। विभिन्न देशों में वहां की जलवायु के हिसाब से गायों के नाम एवं शक्ल में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है। भिन्न भिन्न प्रजाति की गायों के दूध में चर्बी की मात्रा में भी थोड़ी भिन्नता पाई जाती है। भारत एवं विश्व में बसे हिन्दू भारतीयों में ही गाय को पूजा जाता है। अन्य देशों में गाय की सेवा होती है। भारत की गाय का औसत दूध बहुत कम है जबकि विश्व में सर्वाधिक दूध डेनमार्क एवं हालेण्ड की गायों का है। हालेण्ड एवं डेनमार्क में ६० किलो प्रतिदिन गाय दूध देती है। यह भी वहां बताया गया कि ३० किलो प्रतिदिन से कम दूध देने वाली गाय को वध के लिये 'स्लाटर हाउस' में भेज दिया जाता है।

गोपाष्टमी–हमारे देश में गोपाष्टमी तिथि का अति महत्व है। यह दीपावली के ठीक आठवें दिन कार्तिक शुक्ल ८ को पड़ती है। इसी गोपाष्टमी के दिन भगवान कृष्ण ने गोचारन प्रारम्भ किया था। यह भी विद्वानों ने बताया कि भगवान कृष्ण की आह्लादनी शक्ति राधा से भेंट भी गोचारण के समय ही हुई थी। भगवान कृष्ण का प्राकट्य द्वापर युग के अन्तिम चरण में आज से लगभग ५१०० वर्ष पूर्व हुआ था। तभी से गोपाष्टमी तिथि महत्वपूर्ण हो गई। हमारे देशवासी गोपाष्टमी में गायों की विधिवत पूजा करते हैं। गोशाला में जाकर गाय की आरती उतारते हैं, चन्दन रोली चावल गाय को लगाते हैं। थोड़ी जलेबी एवं थोड़ा घास गाय को खिलाते हैं एवं उसकी पूंछ पकड़ कर वैतरणी पार करने की कामना करते हैं। हमारे देश का विधान है कि जो चीज जितनी उपयोगी है वह उतनी ही धार्मिक है। गीता, गंगा, गाय, गायत्री, गोविन्द आदि अति उपयोगी हैं अतः अति धार्मिक हैं। हम मां का दूध तो एक दो साल पीते हैं जबकि गाय का दूध आजीवन पीते

हैं। यही कारण है कि हमारे देश ने पेड़, पत्थर, जानवर, पक्षी, जलचर आदि में भी उपयोगिता की दृष्टि से धार्मिकता प्रदान कर दी। हमारे यहां कहते हैं गाय में तैंतीस करोड़ देवताओं का वास है। घर घर में गाय के पालने का महत्व है। जैसे परिवार का आदमी बूढ़ा एवं उपयोगी न होने पर भी आजीवन पाला जाता है उसी प्रकार गाय भी जब दूध देना बन्द कर देती है तो गोवध का निषेध है। हमारे देश के सभी सन्त, महात्मा एवं महान लोगों ने एक स्वर से गोवध का विरोध किया है। वे तो देश में व्याप्त चोरी, कामचोरी, भ्रष्टाचार, अधर्म, अन्याय आदि पापों को भी गोवध का फल बताते हैं। यदि हमारा देश गोवध को पूर्ण रूप से बन्द कर दे तो देश में सदाचार एवं खुशहाली बढ़ेगी ऐसा महान लोगों का निश्चित मत है।

गाय की उपयोगिता केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं है। अगर गाय को 'गोधन' के रूप में देखें, परोपकारी जीवन के रूप में देखें, आर्थिक दृष्टि से देखें, व्यवहारिक दृष्टि से देखें तो गाय ही एक ऐसा जानवर है जो हर दृष्टि से सर्वोपरि है। इतना उपयोगी तो मानव शरीर भी नहीं है।

गोधन– पुराने जमाने में राजा महाराजाओं एवं आम जनता के यहां जितनी अधिक संख्या में गाय एवं गोवंश होता था वह उतना ही अधिक धनी माना जाता था। उस समय रुपये पैसे सोना चांदी तो था नहीं, अतः गोधन भी एक प्रकार का बहुमूल्य धन था। राजा महाराजा अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर दहेज में गोधन देते थे। किसी अन्य पर भी राजा महाराजा जब मेहरबान होते थे तो उन्हें गोधन देकर प्रसन्न करते थे। राजा महाराजाओं के समय में गोशालाओं की स्थापना का प्रचलन हो गया था। ये गोशालायें दूध का उत्पादन कर आम जनता के दूध की आवश्यकता पूरी करती थी। जो गायें दूध देना बन्द कर देती थीं उनका पालन करती थीं। बूढ़ी, बीमार, अपंग गायों का भी गोशाला आश्रय स्थल था। गोशालाओं का प्रचलन आज भी चल रहा है। देश की कुछ गोशालाएं तो बहुत अच्छा गोसेवा का कार्य कर रही है। नस्ल सुधार, गोबर एवं गोमूत्र से औषधि निर्माण, शुद्ध गाय का घी, छांछ, मक्खन उपलब्ध करा रही है। यह भी सही है कि सेवा धर्म में कमी के कारण बहुतेरी गोशालाएं अपने गोसेवा के कार्य को पूरा नहीं कर पा रही हैं।

परोपकारी– परोपकारी उसे कहा जाता है जो समाज से लेता कम है एवं समाज को देता ज्यादा है। गाय के जैसा परोपकारी जीव तो विश्व में आज तक पैदा ही नहीं हुआ। हम आटा खाते हैं, चोकर गाय को देते हैं; हम तेल खाते हैं, खली गाय को देते हैं; हम चावल एवं गेहूं खाते हैं उसका भूसा गाय को देते हैं; हम दाल खाते हैं उसका छिलका एवं चूनी गाय को खिलाते हैं यानी हम जिन चीजों का सेवन नहीं करते उसका सेवन करके गाय हमें अमृत सरीखा दूध देती

है। विष्ठा एवं मूत्र जीव जगत में सभी का अपवित्र माना जाता है लेकिन गाय के गोबर का लेपन अगर पूजा स्थल में कर दिया जाय वह भूमि पूजन करने योग्य हो जाती है। गोमूत्र से औषधियों का निर्माण होता है। गोबर एवं गोमूत्र खेतों के लिये खाद का काम करते हैं। गोमूत्र से पेस्टिसाईड बनाई जाती है ताकि फसल में कीड़े मकोड़े न लगें। गाय एवं गोवंश का कितना कितना परोपकार हैं उसकी गणना की जाय तो एक पुस्तक तैयार हो जायगी।

आर्थिक पक्ष – अगर गाय न होती तो बैल नहीं होते और बैलों के अभाव में न तो खेती हो पाती और न माल ढोये जाते। इस प्रकार गोवंश हमारे देश के अर्थ तंत्र से सीधे सीधे जुड़ा है। गाय ढाई वर्ष में बच्चा दे देती हैं। गाय के बच्चा पैदा होते ही थोड़ी देर में चलने लगता है। गाय के बच्चे जब खेलते हैं एवं दौड़ लगाते हैं तो उस स्थान पर वृन्दावन उतर जाता है। गाय जब तक दूध देती है तब तक तो हर दृष्टि से लाभकारी है। दूध पीने के काम आता है। गाय के दूध की मिठाइयां, छेना, खोवा, छाछ, मक्खन, मलाई, रबड़ी, दही आदि का सेवन तो हम नित्य करते हैं। गाय के बछड़े खेती एवं माल ढुलाई के काम आते हैं। इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो०जे०ई० वोगडे ने इस प्राचीन भारतीय विश्वास को वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर दिया कि गाय के ताजे गोबर से टी०बी० और मलेरिया के कीटाणु मर जाते हैं। परमाणु विकिरण से बचाने में गाय का गोबर ही जापानियों के लिये सहायक सिद्ध हुआ। रासायनिक खादों से ऊसर होते खेतों की उर्वरा शक्ति को पुनः जागृत करने के लिये गोबर की खाद ही एकमात्र उपाय है। गाय जब दूध देना बन्द कर देती है तो भी उसका गोबर एवं गोमूत्र भी आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है। गोमाता चलता फिरता चिकित्सालय है। उसमें औषधियों का भंडार है। गोमूत्र चिकित्सा पद्धति से अनेकों साध्य असाध्य रोगों का इलाज किया जा रहा है। कैंसर के इलाज में गोमूत्र के सेवन का लाभ सर्वविदित है। कमी केवल एक बात की है कि शोध के अभाव में गोबर गोमूत्र के सेवन का लाभ वैज्ञानिक जगत को हम नहीं बता पा रहे हैं। मैंने विश्व के अनेक देशों में स्वयं देखा है कि रासायनिक खाद के प्रयोग से जो अनाज एवं सब्जी पैदा की जाती है उसके मुकाबले गोबर की खाद से जो फसल एवं सब्जी पैदा की जाती है उसकी कीमत कम से कम ड्योढ़ी है कारण ऐसे अनाज एवं सब्जी का सेवन निरापद है। गोबर की गैस से खाना बनाते हैं एवं बल्ब जलाते हैं। गोबर के उपले खाना बनाने के काम आते हैं। आज गोबर गैस का भरपूर उत्पादन बिजली खर्च में कमी लायेगा और बिजली संयंत्र बैठाने में जो अधिक खर्च होता है उसकी बचत होगी। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार पंचामृत एवं पंचगव्य अत्यधिक उपयोगी है। गोवंश आयोग का मानना है कि गाय आर्थिक दृष्टि से अब भी लाभप्रद है। गोबर एवं

गोमूत्र के उचित उपयोग करने के बाद गाय आर्थिक दृष्टि से मजबूत हो जाती है। गाय मरने पर भी हमें चमड़ा, सींग, खुर आदि दे जाती है जो मूल्यवान हैं।

गाय के बारे में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की दृष्टि अनुपम है। उन्होंने कहा कि गाय उपकारी है, उपयोगी है और उसकी रक्षा का अर्थ सामान्य जीव रक्षा नहीं, जीवन रक्षा, जीविका रक्षा तथा जगत रक्षा है। वह बचेगी तो मनुष्य बचेगा और वह नष्ट हो गई तो उसके साथ साथ हम यानी हमारी सभ्यता और अहिंसा प्रधान संस्कृति भी नष्ट हो जायगी। गांधी गाय में मानव सभ्यता के विकास की उच्चतम स्वीकृति देखते हैं क्योंकि वह 'समस्त मानवेतर' जगत का प्रतीक है जिसके साथ मनुष्य मैत्री की शर्त में बंधा हुआ है। गांधी जी विशिष्ट अर्थ में कहते हैं कि 'गोरक्षा का उपदेश संसार के लिये हिन्दू धर्म का एक उपहार है।' एक विद्वान कहते हैं गोरक्षा मानव एवं पशु के बीच भाईचारा है। यह एक दिव्य उदात्त भावना है जिसे धीरज भरे यत्न एवं तपस्या से निरन्तर बढ़ाते जाना है।

इस प्रकार आप देखते हैं कि हमारे लिये गाय अति उपयोगी होने के कारण ही अति धार्मिक है। गाय की बाछी गाय बनेगी, बाछा बैल तथा सांड़ बनेगा। बैलगाड़ी या हल चलायेगा। गोमूत्र औषधि है, इसके छिड़काव से फल एवं सब्जी को कीड़ों से बचाया जा सकता है। गोबर खाद है, गोबर गैस से बिजली, प्रकाश एवं रसोई बनाई जा सकती है। पंचगव्य में इसका उपयोग औषध का काम करता है। उपले जलाने के काम आते हैं। गाय का दूध तो अनुपम है ही। इससे दही, मट्ठा, घी एवं पंचगव्य तथा पंचामृत बनाया जाता है। गाय मरने पर चमड़ा तथा मांस देती है एवं इसकी हड्डी, सींग तथा खुर खाद के काम आते हैं। इस प्रकार गाय हमारे अर्थतंत्र से जुड़ी है। पहले किसी राजा के धन का आकलन 'गोधन' से होत था। हमारे इस अमूल्य गोधन को सुरक्षित रखने के लिये गोरक्षा आवश्यक है एवं गोवध का पूर्णतः निषेध करना भी परम हितकारी है।

◆

गाय एवं गोवंश

जिस देश में गाय की पूजा होती है वहां गाय में औसत दूध २-३ लीटर प्रति गाय प्रतिदिन होता है। लेकिन जिस देश में यानी हालैण्ड, डेनमार्क में गायों की सेवा होती है वहां की गायें ६० लीटर प्रतिदिन दूध देती हैं। तीस लीटर से कम दूध देने पर गायें उनके लिये आर्थिक दृष्टि से नुकसानदेह हो जाती हैं। अतः उनका वध कर दिया जाता है।

हमने गाय में तैंतीस करोड़ देवता का वास बताया। गोपाष्टमी के दिन गाय की पूजा करने का विधान किया। गोपाष्टमी के दिन गोप्रेमी भक्त पूजा की थाली में रोली, चावल, माला, फूल, धूपबत्ती, घास एवं जलेबी लेकर जाते हैं, गोशाला में गाय को रोली चावल लगाते हैं, माला, फूल चढ़ाते हैं, आरती उतारते हैं, धूपबत्ती दिखाते हैं, फिर जलेबी एवं घास खिलाकर उसकी पूंछ पकड़ कर अपने मस्तक पर लगाते हैं और उम्मीद करते हैं गाय उनको भव सागर से पार उतार देगी। हमारी धार्मिक मान्यताओं ने हमें गो-पूजा की ओर उन्मुख किया लेकिन गो सेवा से विमुख कर दिया। जैसे संन्यासी द्वारा गेरुआ वस्त्र पहनने पर लोग उन्हें सेवा नहीं करने देते। गांधी जी ने उनके आश्रम में रहने हेतु आये संन्यासी को गेरुआ वस्त्र धारण करने से मना कर दिया। कारण यह वस्त्र हमें सेवा कार्य से विमुख करता है। उसी प्रकार हमारी गाय के प्रति धार्मिक भावना ने हमें गाय की सेवा से विमुख कर दिया।

आज देश में ३५०० गोशालाएं हैं। मुश्किल से ४०० गोशालाएं अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर पाती हैं। बाकी की गोशालाओं के पास भी अपार सम्पदा है लेकिन गोसेवा करने के लिये कार्यकर्ता नहीं हैं। मन्दिरों में अपार भीड़ है, धक्का खाकर भी मन्दिर जायेंगे लेकिन अस्पताल रूपी सेवा मन्दिर में सेवा करने का समय नहीं है। गाय की पूंछ पकड़ कर वैतरणी पार होना चाहेंगे लेकिन गाय की सेवा करने के लिये समय नहीं। गंगा को पतित पावनी कहने वाले लोग ही उसको गन्दा करते हैं। शहर के तमाम गंदे नाले गंगा में बहाते हैं लेकिन उस समय उन्हें इस जिम्मेदारी का बोध नहीं होता कि गंगा पतित पावनी तभी तक है जब

तक हम उसे स्वच्छ और पवित्र रख पाते हैं। हमारा शास्त्र वचन है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' यानी जो धर्म की रक्षा करेगा, धर्म उसी की रक्षा करेगा। ठीक इसी प्रकार जब गंगा को पवित्र रखा जायगा तभी गंगा हमें पावन करेगी। यही उक्ति गाय पर भी लागू होती है कि जो गाय की सेवा करेगा, यानी समय से खुराक देगा, बीमार होने पर उसकी चिकित्सा करायेगा तथा बूढ़ी एवं ठूंठ होने पर जो गाय को गलियों एवं सड़कों पर नहीं छोड़ देगा, गाय भी उसे भरपूर दूध देगी। गायों के लिये हरा चारा सर्वोत्तम है। वह भी ऐसा मैदान मिले जहां वे स्वयं चर सकें। मैंने हालैण्ड में देखा कि गायों के लिये बड़े बड़े चरागाह हैं जहां गायें दिन भर चरती रहती हैं। उनको खुराक भी दलिया आदि दिया जाता है ताकि वे पूरा दूध दे सकें।

गायों को हम सड़कों पर लावारिस घूमते देखते हैं। प्लास्टिक की थैलियां खा लेती हैं। हास्पिटल के पास की गंदी रूईयां भी अपना भोजन बना लेती हैं। नतीजा दूध तो कम होता ही है, ऐसा दूध भी नुकसानदेह होगा तथा रोग पैदा करेगा। ऐसी गाय की भी अचानक मौत हो जायगी। ऐसी गायों का जब चमड़ा निकाला गया तो उसके पेट में प्लास्टिक की थैलियां मिलीं और वे ही उसकी अकाल मृत्यु का कारण बनीं। मैंने सड़कों पर गायों को जख्मी हालत में देखा, उनके पैर के खुर खराब हो गये और गायें लंगड़ा कर चल रही हैं लेकिन कोई उनकी देखभाल एवं सेवा सुश्रुषा करने वाला नहीं। इस छद्म पूजा में सुधार लाने की जरूरत है। हमारे धर्माचार्यों को यह बताना पड़ेगा कि सेवा ही पूजा है। जो सेवा नहीं करेगा उसकी पूजा भी स्वीकार नहीं होगी।

किसी मिट्टी की दीवाल में गोबर का लेप कर देने से रेडियोएक्टिव किरणें भी उसमें प्रवेश नहीं कर पाती। गोमूत्र से आज कल कितनी कितनी औषधियां बनाई जाती हैं। कैंसर जैसे घातक रोग में भी गोमूत्र फायदा करता है। अन्य कई बीमारियों में भी यह लाभप्रद है। परम पूज्य आशाराम बापू तो गोमूत्र का शोधन कर उसका विक्रय करते हैं और जिन लोगों ने उसका सेवन किया वे उसका फायदा भी बताते हैं। इन्दौर में तथा अन्य नगरों में भी गो मूत्र से अनेकानेक औषधियां बनाई जाती हैं और उनका उपयोग निश्चित लाभ करता है। गाय का दूध तो अत्यन्त गुणकारी है ही, गाय का मक्खन, घी, छांछ, मलाई, खोआ आदि सभी उपयोगी हैं। इस प्रकार गाय तो प्रकृति का अनूठा वरदान है।

गाय जब दूध देना बन्द कर देती है तब भी उसका गोबर एवं गोमूत्र इतनी कमाई करा देता है कि गाय का भरण पोषण तो आजीवन आराम से हो सकता है। गाय के मरने पर भी उसका चमड़ा, हड्डी, सींग, खुर आदि सभी उपयोगी हैं एवं उसकी भी कीमत अच्छी मिलती है। इस प्रकार गाय सभी दृष्टि से उपयोगी है।

हिन्दू धर्म में जो वस्तु जितनी उपयोगी है वह उतनी ही धार्मिक है। गाय अत्यन्त उपयोगी है, अतः अत्यन्त धार्मिक है। हमारे देश में गोशालाओं का निर्माण पांच मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया गया–

१–गो दूध का उत्पादन अधिक से अधिक हो,

२–बूढ़ी एवं अपंग गायों की सेवा हो,

३–हरे चारे का उत्पादन हो तथा गायों को चरागाह में चरने की सुविधा हो,

४–नस्ल सुधार हो,

५–गोवध के लिये जाती गायों को रखने की क्षमता विकसित हो।

गाय के अन्य उपयोग हैं। जैसे गाय के गोबर से जैविक खाद बनाया जाय तथा गोमूत्र से औषधियों का निर्माण किया जाय। हमें गोभक्तों की जगह गो–सेवक चाहिये जो सामाजिक कार्यकर्ता की तरह गोसेवा कर सकें।

गाय का दूध अत्यन्त गुणकारी है। भैंस के दूध में घी की मात्रा अधिक होती है लेकिन भैंस के दूध के घी का उपयोग करने वाले की बुद्धि भी मोटी हो जाती है। भैंस में चंचलता–चपलता नहीं होती उसी प्रकार भैंस का दूध सेवन करने वाला बलिष्ट भले ही हो जाए लेकिन चतुर एवं बुद्धिमान नहीं हो सकता। भैंस केवल भारत या आसपास के देशों में ही पाई जाती है। दुनिया के अन्य विकसित देशों में कहीं भी भैंस का नामो निशान नहीं है। वहां केवल गाय का दूध ही उपलब्ध है, यह भी एक कारण है कि भारतवासी न तो नोबुल प्राइज ले पाते हैं जिसके लिये बुद्धि चाहिए और न ओलम्पिक में जीत पाते हैं जिसके लिए बुद्धि के साथ चपलता चाहिये।

हमारे धर्माचार्यों की समाज पर पकड़ है। उन्हें गंभीरता से सोचना होगा कि गोभक्तों को गोसेवक कैसे बनाया जाए। गायों की सुरक्षा ठीक से हो सकेगी, गोशालाएं अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सकेंगी तो गोरक्षा तो अपने आप हो जायेगी। कारण, कोई अपनी ठूंठ गायों को गोशाला में देना चाहे और गोशालायें लेने में सक्षम नहीं हैं तो वह सड़क पर छोड़ने या कसाई के हाथ बेचने के लिये मजबूर होगा।

एक जमाने में गोवंश ही किसी राजा का गोधन था। जिस राजा के पास जितना अधिक गोवंश होता था वह राजा उतना ही धनी माना जाता था।

गायों के नस्ल सुधार पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता। सड़कों पर किसी भी छोटे सांड़ से गायों का गर्भाधान होते दिखाई देता है ऐसे में उसका बच्चा छोटा भी होगा तथा उसकी नस्ल भी खराब हो जायगी। नस्ल सुधार के लिये गायों का गर्भाधान अच्छे सांड़ से ही कराने की सुविधा होनी चाहिए। अगर हम नस्ल सुधार पर ध्यान देंगे तो उसी गाय से दूध का उत्पादन कई गुना बढ़ जायगा।

गायों को शहरों की जगह पास के किसी कामधेनु नगर में बसा देना चाहिए ताकि गोवंश को अच्छा वातावरण मिले और उसका गोबर एवं गोमूत्र काम आ सके। शहरों में यातायात की सुविधा बढ़ सके। गायों को हरा चारा भी सुलभ हो सके। कामधेनु नगर में तो संतुलित पशु आहार का निर्माण करके गोवंश को देने की सुविधा रहेगी। गोवंश प्लास्टिक के थैले एवं अस्पताल की रूई खाने से बचेगा। यानी सब प्रकार से कामधेनु नगर बसाकर गायों को उसमें स्थानान्तरित करना गाय एवं गोवंश के लिये श्रेयस्कर होगा। विदेशों में गोवंश को किसी भी शहर में विचरण करते नहीं देख सकते। अगर हमने नस्ल सुधार कर गोदूध का उत्पादन बढ़ा लिया तो निश्चित रूप से गोवंश को रखना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद होगा। कामधेनु नगर में नस्ल सुधार की पूरी संभावना रहेगी। गायों को रोगी होने से बचाया जा सकेगा। कारण कामधेनु नगर में तो चिकित्सा सुविधा आराम से प्रदान की जा सकती है।

गोभक्तों को गोवंश के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा तभी गायों की सुरक्षा बढ़ सकेगी एवं गोवध में कमी आयेगी और यही गायों की वास्तविक और सर्वांगीण पूजा है।

◆

गोबर कितना उपयोगी

कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार गोबर का आयात करना चाहती थी तो मैंने पूछा कि क्यों? तो बताया गया कि रासायनिक खादों के लगातार उपयोग से खेतों के ऊसर होने की संभावना है अतः खेतों के उपजाऊ बने रहने के लिये गोबर का खेतों में उपयोग अति आवश्यक है। आयात करने के पहले यह देखना उचित होगा कि देश में उत्पादित गोबर के उपयोग की क्या व्यवस्था है। देश में उत्पादित गोबर को हम पूरा का पूरा सही ढंग से उपयोग कर पा रहे हैं या नहीं। अगर नहीं कर पा रहे हैं तो उसकी उपयोगिता बढ़ाना हमारी प्रथम वरीयता होनी चाहिये।

अपने देश के गोबर को हम जलाते हैं 'गोइठा' बनाकर। क्या हम उसे खाद के काम में नहीं ले सकते? हम आज भी रासायनिक खाद का आयात करते हैं। हम अपने ही साधनों पर ज्यादा निर्भर रहें तथा आयात पर निर्भरता कम करें। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिये।

गोबर कितना उपयोगी है यह सभी जानते हैं। यह खेत में खाद का काम करता है। हम इससे बिजली पैदा कर सकते हैं। गोबर गैस भी खाना पकाने के काम आती है। आयुर्वेद में पंचगव्य बनाने में भी गोबर का उपयोग होता है। जलाने के लिये 'गोइठा' बनाया जाता है। रक्षा बन्धन पर्व के समय प्रातः जब गंगा के तट पर यज्ञोपवीत पूजन होता है तो गोबर को पूरे शरीर में लगाकर स्नान करने का विधान है। पूजन करते समय जमीन में गोबर का लेपन कर दिया जाता है ताकि भूमि पवित्र हो जाय। गोबर को छोड़कर कोई बिष्ठा पवित्र नहीं मानी जाती बल्कि विष्ठा से घृणा करते हैं। विज्ञान कहता है कि मिट्टी की दीवाल में गोबर का लेपन करने से रेडियो एक्टिव किरणें भी पार नहीं हो सकती यानी किरणों के लिये प्रतिरोधक है। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से उपयोग हैं लेकिन हम केवल प्रमुख उपयोगों की ही चर्चा करेंगे।

खाद– सदियों से गोबर एक अच्छी खाद मानी जाती है। गोबर के उपयोग से खेत के कभी भी ऊसर होने की संभावना नहीं रहती। सड़ी गोबर की खाद, गमले, बाग बगीचे के लिये आवश्यक है कारण पेड़ पौधों की सही ढंग से

बढ़ोत्तरी में यह अत्यन्त सहायक है। गोबर का खाद के रूप में उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है। अब कृषि विज्ञानी भूमि की दीर्घकालीन उर्वरता की प्राप्ति के लिये रासायनिक खादों की अपेक्षा गोबर से निर्मित कार्बनिक खादों अथवा अन्य सुरक्षित विकल्पों को ही आधार मानने को विवश हैं। इंडियन सोसायटी आफ स्वायल साइंस की फसलों की उपज पर जैविक कार्बनिक खादों के प्रभाव से सम्बद्ध रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि १०-१५ टन कार्बनिक खादों के प्रयोग से धान, गेहूं, मक्का, सोयाबीन एवं तोरिया की उपज में क्रमशः १२.६, १६.२ २१.८ ३० एवं २.६ क्विंटल प्रति हेक्टेयर की वृद्धि हुई। एक टन कार्बनिक खाद में न केवल नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की उचित मात्रा उपलब्ध है बल्कि इनमें अन्य तत्व जैसे कैल्शियम १.२ से ३.७ किलोग्राम, मैग्निशियम .८ से २.९ किलोग्राम, गंधक .५ से ३.१ किलोग्राम, लोहा ४० से १३० ग्राम, तांबा ५ से १५ ग्राम उपलब्ध है जो किसी न किसी रूप में फसल उत्पादन बढ़ाने में सहायक होते हैं। ऐसे उपयोगी गोबर का कृषि के बजाय अन्य कार्यों में उपयोग होना एक दुखद सत्य है। आज देश में उपलब्ध गोबर का ६० प्रतिशत भाग जलाने के काम आता है। केवल ४० प्रतिशत ही कृषि कार्यों में उपयोग होता है। हमारे देश में उपलब्ध गोबर का अधिकाधिक उपयोग कृषि कार्यों में हो इसके लिये जन चेतना जागृत करने की आवश्यकता है। विदेशों में दो प्रकार की सब्जी तथा अनाज उपलब्ध है। एक जैविक खाद के उपयोग से उत्पादित तथा दूसरा रासायनिक खाद के उपयोग से उत्पादित। जैविक खाद से उत्पादित सब्जी एवं अनाज की कीमत डेढ़ गुना अधिक है कारण स्वाद एवं गुणवत्ता की दृष्टि से जैविक खाद से उत्पादित सब्जी या अनाज ज्यादा अच्छे हैं। यों भी रासायनिक खाद एवं रासायनिक पेस्टिसाइड के लगातार उपयोग ने भोजन सामग्री को दूषित ही किया है।

गोबर का अन्य उपयोग मात्रा की दृष्टि से नगण्य है जैसे पंचगव्य या भूमि लेपन आदि। लेकिन जलाने के रूप में इसका उपयोग अत्यधिक है। हम गोबर का अधिकाधिक उपयोग कृषि कार्यों में खाद के रूप में लें तो रासायनिक खादों का आयात घटेगा। बहुमूल्य विदेशी मुद्रा बचेगी। हमारी अपनी ही उत्पादित वस्तु मूल्यवान हो जायगी। हम बिजली एवं गोबर गैस का उत्पादन कर गोबर की कम्पोस्ट खाद बना सकते हैं। हमारे पास उपलब्ध चीजों की कीमत हम पहचानें। गोबर सभी दृष्टि से उपयोगी है। हम इसका भरपूर उपयोग करें तथा इसको जला कर नष्ट होने से बचावें।

◆

गाय का आर्थिक पहलू

हमारे देश की पहचान गाय एवं गोवंश है। गाय हमारे धर्म, अर्थ एवं स्वास्थ्य से सीधे सीधे जुड़ी है। गाय एवं गोवंश हमारा राष्ट्रीय पशुधन है। अगर गाय न होती तो बैल न होते और बैलों के अभाव में न तो खेती हो पाती और न माल ढोये जाते। इस प्रकार गोवंश हमारे देश के अर्थतंत्र से सीधे सीधे जुड़ा है।

गाय के धार्मिक पहलू पर अनेक चर्चाएं हो चुकी हैं। गाय में तैंतीस करोड़ देवताओं का वास बताया गया। गाय के गोबर में लक्ष्मी का वास भी बताया गया। गाय की पूंछ पकड़ कर बैतरनी पार होने का विधान भी लोग बताते हैं। हमारे शास्त्रों के अनुसार गाय अति धार्मिक है। लेकिन गाय हमारा गोधन भी है तथा गाय हमारे अर्थतंत्र से पूरी तरह जुड़ी है – इसकी चर्चा कम होती है।

स्वतंत्रता के पूर्व ग्रामीण समाज के हर घर में गाय पाली जाती थी। गाय हमारी कृषि व्यवस्था की मूल आधार थी। शहरों में भी बहुधा घरों में गाय पाली जाती थी। गाय का दूध पीया जाता है तथा गाय के गोबर से उपले बनाये जाते हैं। गाय के बछड़े खेतीबारी के काम आते हैं तथा फसलों को बैलगाड़ी से ढोकर मंडी तक ले जाने का कार्य करते हैं। आजादी के बाद एक दशक तक देश में ५० प्रतिशत माल की ढुलाई का काम बैलगाड़ियों द्वारा ही होता था। गांवों में यांत्रिक खेती के विस्तार के कारण बैलों की जरूरत कम होती गई। बैलगाड़ी तथा हल बैल का आंशिक रूप से स्थान ट्रैक्टर ट्राली ने ले लिया।

देश में बूचड़खानों की संख्या बढ़ी और बीमार, बूढ़ी व बांझ गायों तथा बैलों को उनके चमड़े व मांस के निर्यात के लिए काटा जाने लगा। इस सम्बन्ध में यह तर्क दिया जाने लगा कि देश को ऐसे पशुओं का क्या लाभ? पिछले एक दशक से इस सोच में सुधारात्मक परिवर्तन आया है। कारण गोवंश के विनाश से मानव संस्कृति के विनाश का खतरा दिखाई देने लगा है।

विदेशी वैज्ञानिकों ने मान लिया है कि गाय का दूध पौष्टिक ही नहीं, बल्कि एक औषधि भी है। गोमूत्र कैंसर तथा अन्य अनेक रोगों का अवरोधक एवं उपचारक है। इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो॰ जे॰ई॰ वोगड़े ने इस प्राचीन भारतीय

विश्वास को वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर दिया है कि गाय के ताजे गोबर से टी०बी० और मलेरिया के कीटाणु मर जाते हैं। परमाणु विकिरण से बचाने में गाय का गोबर ही जापानियों के लिये सहायक सिद्ध हुआ। गाय का गोबर पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को निरन्तर बढ़ाता रहता है। रासायनिक खादों से ऊसर होते खेतों की उर्वरा शक्ति को पुनः जागृत करने के लिये गोबर की खाद ही एकमात्र उपाय है। गाय जीवित अवस्था या मृत होने के बाद भी मानव को कुछ न कुछ देती ही है।

गोमाता चलता फिरता चिकित्सालय है। उसमें औषधियों का भंडार है। गोमूत्र चिकित्सा पद्धति से अनेकों साध्य असाध्य रोगों का इलाज किया जा रहा है। गोमूत्र चिकित्सा एवं अनुसन्धान केन्द्र, इन्दौर में पिछले ३-४ वर्षों के अनुसन्धान से यह निष्कर्ष निकला है कि गोमूत्र के प्रयोग से एड्स, अजीर्ण, दस्त, एसिडिटी, मिर्गी, चक्कर आना, कैन्सर, पाइल्स, प्रोस्टेट, डायबिटीज, कब्जीयत, अल्सर, गैसेस, एनिमिया, एक्जीमा, रफलीन वृद्धि, बहुमूत्र, मुख रोग, लीवर, ब्लड प्रेशर, कर्ण रोग, कृमि, कफ, दंत रोग, दाद, धातु क्षीणता, नेत्र रोग, जुकाम, किडनी, त्वचा रोग, माइग्रेन, सिरदर्द, अस्थमा आदि को दूर किया जा सकता है। जिन मरीजों का इलाज किया गया उनमें अधिकांश चमत्कारिक रूप से लाभान्वित हुये।

आज विश्व में रासायनिक खाद के प्रयोग से जो अनाज तथा सब्जी पैदा की जाती है उसके मुकाबले गोबर की खाद से जो फसल या सब्जी पैदा की जाती है उसकी कीमत कम से कम ड्यौढ़ी है। कारण गोबर की खाद के प्रयोग से उत्पादित अनाज या सब्जी आदि निरापद एवं अधिक उपयोगी प्रमाणित हुये हैं।

हमारे देश में गोबर का महत्व हम अति प्राचीन काल से जानते हैं। जैसे भूमि पूजन के वक्त लेपन, पंचगव्य से शरीर की शुद्धि, उपली बनाकर जलाना। आज गोबर से गैस बनाई जाती है और उस गैस से खाना बनाया जाता है एवं गैस जलाई जाती है। आज गोबर गैस का भरपूर उत्पादन किया जाय तो बिजली खर्च में अप्रत्याशित बचत होगी।

भारत में श्वेत क्रान्ति के उपरान्त दूध उत्पादन बढ़ा है। आज जरूरत इस बात की है कि हम देश में दूध से विभिन्न प्रकार के फ्लेवर वाले पेय, आइसक्रीम, दही, पनीर तथा अन्य पदार्थों के निर्माण और मार्केटिंग की ओर ध्यान दें। स्वास्थ्य के लिये हानिकारक शीतल पेयों के स्थान पर दूध को बढ़ावा दें।

चिकित्साशास्त्र के अनुसार 'पंचगव्य' एवं पंचामृत अत्यधिक उपयोगी हैं। हर प्रकार के प्रायश्चित्त में शुद्धि के लिये पंचगव्य व धार्मिक कृत्यों में पंचामृत का प्रयोग होता है। पंचगव्य में गाय का दूध, दही, गोमूत्र, गोबर का रस (गाय के गोबर को कपड़े में छान लेना चाहिये), गाय का घी। पंचगव्य को बनाने की विधि और मात्रा आयुर्वेद की पुस्तकों में उपलब्ध है। इसके नियमित सेवन से

शरीर में व्याप्त मंद विष का प्रभाव, विषैली औषधियों के सेवन से गिरता हुआ स्वास्थ्य तथा लम्बी बीमारी से शरीर में संचित विषों का प्रभाव निश्चित रूप से नष्ट होता है व मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्ण रूप से ठीक हो जाता है।

पंचामृत में गाय का दूध, दही, चीनी, शहद तथा गाय का घी है। इसकी मात्रा भी आयुर्वेदिक ग्रन्थों में लिखी है। यह पंचामृत नियम पूर्वक सेवन करने से लो या हाई ब्लड प्रेशर नहीं होता, न हृदय के रोग होते हैं। पाचन शक्ति ठीक रहती है। स्नायुदौर्बल्य तथा स्नायु सम्बन्धी अन्य रोग नहीं होते। इसमें संक्रामक रोगों से रक्षा करने की भी अद्‌भुत क्षमता है। शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाकर यह मनुष्य को स्वस्थ रखने में पूर्ण सक्षम है।

गाय का दूध – हम अपनी माता का दूध तो एक वर्ष पीते हैं लेकिन सारी जिंदगी गाय के दूध का सेवन करते हैं। गोदूध नियमित सेवन करने वालों को वृद्धावस्था के कष्ट नहीं होते। गाय के दूध से बना दही, मट्ठा, घी आदि भी अत्यन्त उपयोगी हैं।

गोवंश आयोग का मानना है कि गाय आर्थिक दृष्टि से अब भी सुदृढ़ है। आयोग का विशेष तर्क यह है कि गोमूत्र एवं गोबर के उचित उपयोग करने के बाद गाय की आर्थिक स्थिति मजबूत हो जाती है। गोमूत्र एवं गोबर से दवा अथवा उत्तम श्रेणी की खाद बनाई जाती है। इस हेतु गाय आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त लाभप्रद है।

देश के आर्थिक क्षेत्र के विशिष्ट विद्वान श्री भरत झुनझुनवाला अपने एक लेख में लिखते हैं "मेरी ७५ वर्षीया मां हृदय रोग से पीड़ित थीं। उनका हृदय इतना कमजोर था कि बाई पास सर्जरी भी नहीं हो सकती थी। उन्होंने गोमूत्र का कैप्सूल लेना प्रारम्भ किया। पिछले एक वर्ष से वे स्वस्थ हैं। मेरे श्वसुर गले में कैंसर से पीड़ित थे। उनकी रेडियेशन थिरैपी हुई थी। उसके बाद उन्हें अनेक प्रकार की परेशानियां होने लगीं जैसे सिरदर्द, खांसी आदि। गोमूत्र के कैप्सूल से उन्हें भी बहुत आराम हुआ। किसी के चमड़ी में दाग थे जो गोमूत्र से ठीक हो गये। किसी को दौरे पड़ते थे जो बन्द हो गये।" इस प्रकार गोमूत्र के लाभ अनेक हैं। इस लेख के लेखक की पुत्रवधू का कैंसर भी ठीक हो गया जब कि डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। आज गोमूत्र से लाभ की जानकारी हमारे एलोपैथी के चिकित्सकों को नहीं है। गोमूत्र पर शोध होना चाहिये तथा डाक्टरों को उसके लाभ के विज्ञान की जानकारी होनी चाहिये। ऐसा संभव होगा तो ही गोमूत्र का लाभ जन जन तक पहुंच पायेगा।

◆

लक्ष्मीपूजा का पर्व दीपावली

हमारे देश में चार वर्ण हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। चारों वर्णों के चार त्योहार मुख्य रूप से मान लिये गये। ब्राह्मण के लिए रक्षा बन्धन, क्षत्रिय के लिये दशहरा, वैश्य के लिये दीपावली तथा शूद्र के लिये होली।

हर पर्व का एक हेतु होता है। रक्षा बन्धन में ब्राह्मण (यज्ञोपवीत धारण करने वाले) श्रावणी करते हैं। यह श्रावण मास की पूर्णिमा को होता है। प्रायः ब्राह्मण गंगा किनारे श्रावणी पूजन में शरीर एवं मन को शुद्ध करके भक्तों, शिष्यों आदि को कलाई में सूत्र बांध कर रक्षित करते हैं। इसी पर्व में बहन भी अपने भाई को सूत्र बांध कर उसके दीर्घायु होने की कामना करती है।

दशहरा के दिन रावण पर भगवान राम की विजय माना है। राम एवं रावण में घनघोर युद्ध होता है। यह दिन शौर्य एवं विजय का प्रतीक है। इसी दिन अधर्म पर धर्म एवं अन्याय पर न्याय की विजय होती है। क्षत्रिय शौर्य के प्रतीक हैं। इसलिये इसे मुख्य रूप से क्षत्रियों का त्योहार मान लिया गया।

दीपावली को मुख्य रूप से वैश्यों का त्योहार माना जाता है। इस पर्व में मां लक्ष्मी का आगमन होता है। यह देश कृषि प्रधान देश है। धान हमारी प्रमुख फसल है और दीपावली के समय ही धान कट कर खेतों से खलिहान में आता है। उस समय रुपये पैसे तो थे नहीं। बार्टर प्रथा थी जिसमें वस्तु से वस्तु का विनिमय हुआ करता था। यानी हमने धान दिया तो बदले में कपड़ा या अन्य वस्तु खरीदे। कार्तिक मास की अमावस्या को घनघोर रात्रि कहा जाता है। इसी दिन मां लक्ष्मी के आगमन की प्रतीक्षा की जाती है। लक्ष्मी गणेश का पूजन किया जाता है।

इसी प्रकार होली को प्रमुख रूप से शूद्रों का त्योहार माना जाता है लेकिन सभी त्योहारों में सभी भाग लेते हैं। इस त्योहार में रंग, अबीर, गुलाल का जम कर उपयोग किया जाता है। इस रंगीन त्योहार में बड़े छोटे का भेद समाप्त हो जाता है। सभी प्रसन्नतापूर्वक गले मिलते हैं।

हमारे देश में त्योहारों की परम्परा का हेतु है, प्रसन्नता व्यक्त करना। आपस में, परिवार एवं समाज में सभी का मिलना जुलना। मिठाइयों द्वारा सभी का

मुंह मीठा करना। गले मिल कर अभी तक के पहले के भेद भाव मिटाना। छोटे द्वारा बड़ों के चरण छूकर आशीर्वाद लेना। प्रसन्नता व्यक्त करने के लिये प्रीति सम्मेलन करना जिसमें समाज, परिवार एवं आसपास के सभी लोग प्रेम से मिलते हैं।

दीपावली के बारे में प्रचलित है कि भगवान राम इसी दिन रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या पहुंचते हैं। उनके आगमन के उपलक्ष्य में अयोध्यावासियों ने दीप जलाकर, मिठाइयां खिलाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

हम दीपावली पर गणेश-लक्ष्मी-पूजन करके मां लक्ष्मी का आवाहन करते हैं। गणपति ऋद्धि, सिद्धि के दाता हैं, बुद्धि विवेक के प्रदाता हैं एवं विघ्नहर्ता हैं। अतः गणपति का पूजन करके यह कामना की जाती है कि वे हमारा विघ्न हरण करेंगे, हमें बुद्धि विवेक प्रदान करते हुए ऋद्धि, सिद्धि से सम्पन्न करते रहेंगे। इसे प्रकाश पर्व भी कहा जाता है। यह पर्व वेद की उस वाणी को चरितार्थ करता है जिसमें कहा गया है कि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' यानी हमारी यात्रा अन्धकार से प्रकाश की ओर हो। हमारे यहां अज्ञान को अन्धकार एवं ज्ञान को प्रकाश माना गया है यानी यह यात्रा अज्ञान से ज्ञान की ओर की यात्रा है।

अध्यात्म जगत के श्रेष्ठ महापुरुष भाई हनुमान प्रसाद जी पोद्दार (सम्पादक 'कल्याण') कहते हैं कि मां लक्ष्मी भगवान विष्णु की भार्या हैं। वे भगवान विष्णु का पैर दबाती हैं। अगर मां लक्ष्मी को बुलाना है तो नारायण के रूप में भगवान विष्णु को बुलाने का प्रयास करें। मां लक्ष्मी तो अपने आप आ जायगी। नारायण को बुलाने का तात्पर्य है अपने में नारायणत्व ले आवें। नारायणत्व कैसे आता है एवं मां लक्ष्मी का आगमन कैसे होता है इस सम्बन्ध में कथानक है कि एक बार रुक्मिणी जी ने लक्ष्मी से पूछा, 'हे देवी आप किस जगह और कैसे लोगों के पास रहती हैं?' लक्ष्मी कहती हैं 'जो मनुष्य मितभाषी, कार्यकुशल, क्रोधहीन, भक्त, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उदार हैं उनके पास मेरा निवास होता है। सदाचारी, धर्मज्ञ, बड़े बूढ़ों की सेवा में तत्पर, पुण्यात्मा, क्षमाशील और बुद्धिमान मनुष्यों के पास मैं सदा रहती हूं। जो स्त्रियां पति की सेवा करती हैं, जो देवताओं और ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखती हैं, मैं उनके पास सदा निवास करती हूं। जिस घर में सदा होम होता रहे, गो ब्राह्मण की सेवा होती रहे उस घर को मैं कभी नहीं छोड़ती।' इन सारे गुणों का आना ही नारायणत्व का आना है। लक्ष्मी बताती हैं कि जो आलसी, क्रोधी, कृपण, व्यसनी, अपव्ययी, कटुवचन बोलने वाले और अहंकारी होते हैं उनके अधिक प्रयास करने पर भी मैं वहां ज्यादा दिन नहीं रहती।

महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णन मिलता है कि एक बार दैत्यराज बलि ने उच्छिष्ट भक्षण कर ब्राह्मणों का विरोध किया तब लक्ष्मी ने उसी क्षण बलि का

घर छोड़ दिया। लक्ष्मी ने कहा – चोरी, अपवित्रता, व्यसन एवं कलह से मैं घृणा करती हूं। इसलिये मैं बलि का त्याग कर रही हूं।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि लक्ष्मी का प्रादुर्भाव समुद्र मंथन से हुआ। प्रश्न उठता है कि समुद्र मंथन से यानी पानी के मंथन से कुछ मिलने वाला नहीं चाहे वर्षों तक मंथन करते रहें। समुद्र मंथन का निहितार्थ कर्म में प्रवृत्त रहने से है। कहा गया कि दही मंथन से तो मक्खन आ जाने पर मंथन (प्रयास) बन्द हो जायेगा। इसी प्रकार अरणि मंथन से अग्नि का प्राकट्य हो जाने पर मंथन बन्द हो जाता है। समुद्र मंथन इसलिये कहा गया कि प्रयास निरन्तर चलता रहे। इस अर्थ की पुष्टि अन्य शास्त्र वचन से होती है 'उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी' यानी उद्यमी पुरुष लक्ष्मी को प्राप्त होता है। उद्योग माने श्रम। समुद्र मंथन रूपी श्रम जब तक करते रहेंगे, लक्ष्मी का निर्माण होता रहेगा। यह व्यवहार जगत का भी सत्य है। कारण उपलब्धि क्रिया प्रधान है, कृपा प्रधान नहीं। जब तक हमारे द्वारा क्रिया, प्रयास, प्रयत्न होता रहेगा, उपलब्धि होती रहेगी। उपलब्धि का प्राप्त होना ही धन के आगमन का प्रतीक है।

किसी ने कहा कि दीपावली का नाम बदल कर बल्वावली कर देना चाहिये। कारण आजकल दीपों की जगह बल्व से दीपावली मनाने लग गये। भले ही हम बल्व से दीपावली मनाने लग गये लेकिन उसका नाम तो दीपावली ही रहेगा, कारण एक दीपक से हजारों दीपक जलाने के उपरान्त भी मूल दीपक जलता ही रहेगा। यह काम बल्व नहीं कर सकता। एक बल्व दूसरे बल्व को प्रकाशित नहीं कर सकता इसलिए इसका नाम तो दीपावली ही उपयुक्त है। भले ही हम दीपक के बजाय बल्व से दीपावली मनाते हों।

लक्ष्मी की सवारी उल्लू है। उल्लू को प्रकाश में दिखाई नहीं देता। हम दीपावली में मां लक्ष्मी का आवाहन करते हैं जो हमारे धन की अधिष्ठात्री देवी हैं, घरों की पूरी सफाई होती है एवं पूरा घर प्रकाशित किया जाता है। प्रश्न उठता है कि जब उल्लू को प्रकाश में दिखाई नहीं देता तो प्रकाशित घर में मां लक्ष्मी का आगमन कैसे होगा? तो क्या हमें घर को अन्धकार में रखना चाहिए? इसके उत्तर में कहा गया कि हम जिस लक्ष्मी का आवाहन करते हैं वे कमल के आसन पर विराजमान कमलासना हैं। जब हमारे घर में कोई बड़ा नेता आता है तो हम घर की पूरी सफाई करते हैं और घर को प्रकाशित करते हैं। तो आज जब धन की अधिष्ठात्री मां लक्ष्मी खुद आ रही हैं तो घर की सफाई और घर को प्रकाशित करना सर्वथा उपयुक्त है।

दीपावली बरसात के बाद जाड़े के प्रारम्भ में आती है और होली गरमी के प्रारम्भ में आती है। इन दोनों त्योहारों में लक्ष्मी का आगमन धान और गेहूं के रूप

में होता है। दीपावली के समय खेतों से धान कट कर आता है एवं होली के समय खेतों से गेहूं कट कर आती है। धान और गेहूं का कट कर आना ही लक्ष्मी का आना है। इसलिए हम उस लक्ष्मी के आगमन पर त्योहार मनाकर अपनी खुशियां प्रकट करते हैं।

दीपावली का इसलिए भी विशेष महत्व है कि दीपावली केवल एक दिन का नहीं बल्कि यह पांच दिनों का त्योहार है। धनतेरस से प्रारम्भ होकर यह त्योहार भइया दूज तक मनाया जाता है। धनतेरस के दिन भगवान धन्वन्तरि का प्राकट्य अमृत कलश लेकर होता है। वह अमृत कलश भगवान धन्वन्तरि द्वारा प्रणीत आयुर्वेद शास्त्र है जो विश्व का प्रथम चिकित्सा शास्त्र है। धन्वन्तरि जयन्ती के दिन ही मां लक्ष्मी का प्राकट्य समुद्र मंथन से हुआ। चतुर्दशी के दिन को नरक चतुर्दशी कहते हैं जिस दिन भगवान कृष्ण ने नरकासुर का वध करके १६१०० कन्याओं को नरकासुर की कैद से मुक्त कराया था। अमावस्या को गणेश, लक्ष्मी का पूजन कर हम लक्ष्मी का आवाहन करते हैं। प्रथमा के दिन गोवर्धन पूजा होती है। गोवर्धन पूजा हमारे पहाड़ों के पूजन का प्रतीक है और दूज के दिन को हम भइया दूज के रूप में मनाते हैं। इस दिन बहन अपने भाई को टीका लगा कर एवं रक्षा बांध कर उनके दीर्घजीवी होने की कामना करती है। सभी त्योहार एक दिन का होता है लेकिन दीपावली का त्योहार पांच दिनों का समुच्चय है।

कार्तिक मास यों भी महत्व का है। कारण दीपावली के छठें दिन षष्ठी पर्व बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इस पर्व में महिलाएं व्रत रखकर अनुष्ठान करती हैं और अर्घ्य देकर भगवान सूर्य की आराधना करती हैं। दो दिन बाद अष्टमी के दिन गोपाष्टमी मनाई जाती है। कहते हैं इसी दिन से भगवान कृष्ण ने गोचारण प्रारम्भ किया था। तीन दिन बाद एकादशी को देवोत्थान एकादशी कहते हैं और देवोत्थान एकादशी के बाद ही विवाह आदि शुभ कार्य होने लगते हैं।

यों तो सभी त्योहारों का अपना अपना महत्व है लेकिन दीपावली देश में ही नहीं, विदेशों में भी सोत्साह मनाई जाती है। गुलामी के समय भी मुगल बादशाह दीपावली उत्साहपूर्वक मनाते थे और अंग्रेजों के समय भी दीपावली के कार्यक्रम में अंग्रेज भाग लेते थे। यह पर्व लक्ष्मी के आगमन का प्रतीक है और लक्ष्मी जब आयेगी तो सुख, समृद्धि लेकर आयेगी। कारण हम लक्ष्मी पूजन के साथ गणेश पूजन भी करते हैं ताकि हमारा बुद्धि और विवेक भी बना रहे और लक्ष्मी अनर्थकारी न हो जाए। यह पर्व भेदभाव मिटाता है, सबका मुंह मीठा करता है और गले मिलकर सारा शिकवा-शिकायत दूर करता है। ऐसा होने पर सुख और समृद्धि का आना स्वाभाविक है।

♦

होली : रंग-भंग एवं तरंग का महापर्व

होली में हम गले कब मिलते हैं? होलिका दहन के पश्चात्। होलिका दहन क्या है? अपने विकारों को जला डालो। जब शरीर में विकार नहीं रहेंगे तब गले मिलने का मन करेगा। हम विकार को जलाते हैं प्रतीक रूप में यानी हमारे सारे भेद-भाव जब मिट गये तो हम अबीर-गुलाल लगाकर गले मिलते हैं। हमारे त्योहारों का यही संदेश है। यों पौराणिक आख्यान में आता है कि हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकश्यप दो भाई थे। हिरण्याक्ष प्रतापी राजा था लेकिन उसके अत्याचारों के कारण वाराह अवतार द्वारा उसका वध हो गया। हिरण्याक्ष के वध से हिरण्यकश्यप अत्यन्त दुःखी हुआ और अपने राज्य में सभी प्रकार के धार्मिक कार्यों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया तथा कोई भी भगवान का नाम न ले सके, ऐसी घोषणा कर दी। हिरण्यकश्यप का पुत्र प्रहलाद भगवान का भक्त था। अतः निरन्तर भगवान का नामोच्चारण करता। प्रहलाद को भी ऐसा करने के लिए मना किया गया लेकिन प्रहलाद को भगवान पर पूरा भरोसा था। अतः उसने भगवान का नामोच्चारण बन्द नहीं किया। प्रहलाद को सभी प्रकार से यातना दी गई। पहाड़ से गिराया गया, आदि, आदि लेकिन प्रहलाद को समझाने के सारे प्रयास जब व्यर्थ हो गये तो हिरण्यकश्यप की बहन 'होलिका' ने कहा कि उसे अग्नि में नहीं जलने का वरदान है, अतः वह प्रहलाद को गोद में लेकर अग्नि में बैठ जायगी, प्रहलाद जल जायेगा किंतु वह सुरक्षित रहेगी। होलिका अग्नि में लेकर प्रहलाद को बैठती है। प्रहलाद जलने से बच जाता है और होलिका स्वयं जल जाती है। होली का त्योहार भक्तराज प्रहलाद की अग्नि परीक्षा है। यह घटना सतयुग की है और तब से अब तक प्रत्येक वर्ष हम प्रतीक रूप में होलिका दहन करते चले आये हैं। इस पौराणिक आख्यान का सन्देश है कि भगवान का भक्त कितना भी प्रताड़ित किया जाय, वह न तो विचलित होता है और न नष्ट होता है। भक्ति सच्ची होनी चाहिए और अन्त में अधर्म पर धर्म की एवं असत्य पर सत्य की विजय होती है।

होली का त्योहार वसन्तोत्सव भी है। कहते हैं इस समय फलों का राजा आम भी पूरी तरह बौराया रहता है। अतः इस वसन्तोत्सव में इंसान का बौरा

जाना स्वाभाविक है। होली में भंग की तरंग में गाली का प्रयोग खुलकर करते हैं और अन्दर की गंदगी बाहर निकाल देते हैं। खुशी में रंग बिरंगा होना तथा खुशी के त्योहार में एक दूसरे के गले मिलने की परम्परा है।

हमारे त्योहार समता मूलक हैं। इसमें बड़े-छोटे, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब का भेद समाप्त हो जाता है और सभी वर्ग के लोग मिलजुल कर इस हंसी खुशी के त्योहार को मनाते हैं। हमारे त्योहार हमारे समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करते हैं। हमारे त्योहार भेदभाव समाप्त करने में भी सहायक होते हैं। जब दो इन्सान गले मिले तो उस समय तक के सारे भेद स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

हमारे देश में अगर त्योहारों की परम्परा समाप्त हो जाय तो आप कल्पना करें देश एवं देशवासियों की दशा क्या होगी! हम यह भूल जायेंगे कि असत्य पर सत्य की एवं अधर्म पर धर्म की विजय संभव है। हम प्रसन्न होना भी भूल जायेंगे। अतः हमारी जिन्दादिली समाप्त हो जायेगी। हमारी जिन्दादिली ही हमारे जीवन में हंसी खुशी का संचार करती है। अगर त्योहार न हो तो एकता, भाई-चारा भी समाप्त हो जायगा। हमारे ऊंच-नीच आदि के भेद भी इन्हीं त्योहारों के कारण समाप्त होते हैं। त्योहारों में हमें पैसे खर्च करने पड़ते हैं। अतः उसे पैदा करने की प्रेरणा भी इन्हीं त्योहारों के कारण मिलती है। त्योहार हमें सरस बनाते हैं ताकि अपनी हंसी खुशी को मिल बांट कर आनन्द ले सकें।

हमारे त्योहार हमारी परम्परा के जीवंत होने के प्रतीक हैं। आज देश के अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग त्योहारों को प्रमुखता से मनाया जाता है। बंगाल में दुर्गा पूजा को विशेष रूप से मनाया जाता है तो महाराष्ट्र में गणेश पूजन को उसी धूमधाम से।

हिन्दुओं में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र चार वर्ण हैं और इन वर्णों के विशेष त्योहार क्रमशः रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली एवं होली है। हम त्योहारों को त्योहार के ढंग से मनायें। प्रत्येक त्योहार हमारे में प्रेम, भाईचारे तथा एकता की भावना बढ़ाये और सारे भेदभाव समाप्त करे। हमारा जीवन सच्चाई पर आधारित हो और बनावटीपन समाप्त हो। हमारा सार्वजनिक जीवन एवं एकान्त जीवन समान रूप से पवित्र हो जाय। हम जब तक स्वयं पवित्र नहीं होंगे, देश को भी पवित्र नहीं कर पायेंगे। हमारे समाज की सारी बुराइयों के मूल में हमारी गलत जीवन शैली है। हमारे जीवन में एकरूपता आ जाय, हमारा अन्तःकरण पवित्र हो जाय- यही हमारे प्रत्येक त्योहार का संदेश है।

दीपावली अक्टूबर-नवम्बर माह में होती है, जब गर्मी अपने ढाल पर होती है और जाड़े का प्रारम्भ होता है। भारत की मुख्य फसल धान है उस समय धान खेतों से कटकर खलिहानों में आता है। अतः लक्ष्मी के आगमन का प्रतीक है।

होली गर्मी के प्रारंभ एवं जाड़े के अंत में फरवरी–मार्च में पड़ती है। होली की मुख्य फसल गेहूं है। हमारे देश की मुख्य फसल दो ही है और उनका आगमन हमारे आनन्द का प्रतीक है। दीपावली अमावस्या को होती है और होली पूर्णिमा को। दीपावली पूजन रात्रि में और होली का रंग अबीर गुलाल दिन में खेला जाता है।

होली का त्योहार हमारे में सहजता, सरलता एवं सरसता का संचार करता है। जीवन में जब सरस अवस्थाओं का अवतरण हो जाय तो हमारी मस्ती एवं आनन्द को कौन अवरुद्ध कर सकता है? बस, केवल होली को जम के खेलो। सभी को प्रेम से गले लगाओ।

◆

देश के विकास में राजस्थानी समाज का योगदान

सही मायने में हमारा औद्योगिक आधार जितना ही मजबूत और विस्तृत होगा उतनी ही हमारी आर्थिक विकास की गति तीव्र होगी। यह सच है कि भारत की आजादी के समय देश में सुई तक का उत्पादन नहीं होता था। लेकिन आज हम न केवल हवाई जहाज का निर्माण करते हैं बल्कि अंतरिक्ष में उपग्रह भी भेज रहे हैं। परमाणु घरों में बिजली बन रही है। यह इस बात का प्रमाण है कि हमारी तकनीकी काफी विकसित हो चुकी है।

हमारे देश में न तो प्रतिभा की कमी है और न संसाधनों की। भारी जनसंख्या के कारण काम करने वालों की भी कमी नहीं है। अगर आवश्यकता है तो केवल राष्ट्रीयता की भावना की, हर देशवासी राष्ट्र के प्रति समर्पित हो जाए तो हम दावे से कह सकते हैं कि दुनिया के किसी देश से कम समृद्ध नहीं रहेंगे। देश में बेरोजगारी दूर करनी है तो उद्योग तथा व्यापार को बढ़ावा देना होगा। उद्योगपतियों को सम्मान की निगाह से देखना होगा न कि मुनाफाखोर या काला बाजारिया की निगाह से।

यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि देश का आधा उद्योग व्यापार राजस्थान-वासियों द्वारा नियंत्रित तथा संचालित होता है। आज राजस्थान के लोग केवल देश में नहीं, अपितु दुनिया के लगभग तमाम देशों में फैलकर उद्योग व्यापार में रत हैं। उद्योग व्यापार से सम्पन्नता लाने का श्रेय अगर राजस्थानवासियों को मिला तो उसका कारण उनकी त्याग, कर्मठता तथा अपने देश के प्रति समर्पण की भावना है। सारा राजस्थान मरुस्थल है जहां जिन्दा रहने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। प्रकृति ने राजस्थान को प्राकृतिक संसाधनों से वंचित रखा। जिंदा रहने के लिए संघर्ष की प्रवृत्ति ने उन्हें उद्यमी बना दिया और शास्त्र वचन है कि उद्यमी व्यक्ति ही लक्ष्मी को प्राप्त होता है। राजस्थानी समाज ने आज हर प्रकार का उद्योग तथा व्यापार कर रखा है। मेहनत, लगन और कर्मठता ही उसका गुण है जो उसे उद्योग व्यापार में सफल बनाता है।

राजस्थानी समाज का योगदान केवल उद्योग व्यापार तक ही सीमित नहीं

है। देश की कोई विधा बाकी नहीं है जिसे इस समाज ने सम्मान पूर्वक सुशोभित नहीं किया हो। कहते हैं कि राजनीति में राममनोहर लोहिया जैसे चिंतक और अर्थशास्त्र का ज्ञाता शताब्दियों में पैदा होता है। राजनैतिक कारणों से भले ही लोहिया जी का मूल्यांकन कम हो लेकिन निष्पक्ष इतिहासकार द्वारा ही उनका सही मूल्यांकन होगा। धार्मिक क्षेत्र में भी जयदयाल जी गोयनका एवं भाईजी हनुमान प्रसाद पोद्दार का योगदान सदा देश स्मरण करेगा। अगर गीता प्रेस न होती तो शास्त्रों के सही प्रकाशन कम से कम मूल्य पर देशवासियों को उपलब्ध न होते। हम अपनी धार्मिक विरासत को पहचानने से वंचित रह जाते। पत्रकारिता के क्षेत्र में रामनाथ गोयनका जी का कोई मुकाबला नहीं है। उनकी पत्रकारिता की अपनी शैली है तथा उन्होंने जिस निर्भीकता का परिचय दिया वह दुनिया के पत्रकारिता जगत में बेमिसाल है।

भगवान बुद्ध की साधना पद्धति विपश्यना को पुनर्जीवित करने वाले श्री सत्यनारायण जी गोयनका से कौन अपरिचित है। विपश्यना पद्धति लुप्तप्राय: हो गयी थी। उसे दुनिया के नक्शे पर विराजमान करना श्री सत्यनारायण जी के लगन एवं कर्मठता के कारण ही संभव हो सका। न्याय के क्षेत्र में श्री नंदलाल जी ऊटवालिया सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचे। विमल जालान विश्व बैंक में थे। उन्हें श्रीमती इंदिरा गांधी स्वदेश लायीं और वे देश के प्रमुख आर्थिक सलाहकार के पद पर सुशोभित हुए। आज वे हमारे रिजर्व बैंक के गवर्नर हैं। साहित्य तथा राजनीति के क्षेत्र में सेठ श्री गोविंद दास जी के योगदान को कोई भुला नहीं सकता। अब तो प्रशासनिक, वकालत और चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, कला एवं संगीत, उड्डयन, सेना के तीनों अंगों में राजस्थानी समाज का योगदान इतना अधिक है कि उसका वर्णन करना कठिन है।

देश विदेश में उद्योग के क्षेत्र में बिड़ला परिवार आज भी सर्वोच्च शिखर पर है। कहते हैं एक परिवार द्वारा विभिन्न प्रकार के औद्योगिक इकाइयों का संचालन दुनिया में एक अकेली मिसाल है। बिड़ला परिवार का योगदान केवल औद्योगिक क्षेत्र तक सीमित कहना उचित नहीं होगा। देश के हर क्षेत्र में धर्मशालाएं, मंदिर, अस्पताल, विद्यालय, शोध संस्थान आदि इस परिवार की अमर कृति है। देश में कोई ऐसा महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिलेगा जहां बिड़ला परिवार की समाज सेवा का स्मृति चिन्ह विद्यमान न हो।

राजस्थानी समाज नौकरी में कम एवं उद्योग व्यापार स्थापित करने में ज्यादा विश्वास करता है। अगर नौकरी करता है तो समाज में ही नौकरी करने की प्रवृत्ति अधिक है। राजस्थानी समाज त्याग, तपस्या, कर्मठता एवं ईमानदारी का प्रतीक हो गया है।

अन्त में इतना ही कहना चाहूंगा कि उद्योग व्यापार से जुड़े लोगों को पूरा सम्मान मिलना चाहिए। कारण जितना ही उद्योग व्यापार बढ़ेगा उतनी ही गरीबी एवं बेरोजगारी दूर होगी। हर राजस्थानी भारतीय पहले है। अतः देश के हित में अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सजग है। विदेशों में जहां भी सम्पन्नता ज्यादा है, बेरोजगारी एवं गरीबी नहीं है। वहां उद्योग एवं व्यापार से जुड़े लोगों को सरकार एवं समाज में अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है ताकि वह अपनी पूरी क्षमता से देश के उत्थान में योगदान कर सकें।

राजस्थान का अतीत भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महाराणा प्रताप की वीरता दुनिया के इतिहास में बेमिसाल है। कहते हैं महाराणा प्रताप जीवन में दो अवसरों पर अश्रुपूरित हो गये- एक जब उनका साथी चेतक एक टांग कट जाने के कारण मरणासन्न था, दूसरा अपने परिवार को लेकर जंगलों की खाक छान रहे महाराणा प्रताप घास की रोटी खाने को विवश हुए। घास की रोटी जब महाराणा के बच्चे को दी गयी और उसे विलाव छीन कर ले गया तो बच्चा जोरों से चिल्लाया और उसकी चिल्लाहट सुनकर महाराणा पसीज गये और एक बार उनके मन में आया कि सम्राट अकबर की पराधीनता स्वीकार कर ली होती तो आज यह दिन देखने को न मिलता। लेकिन तुरंत ही महाराणा का पौरुष जागा और अधिक ताकत से लोहा लेने का निश्चय किया। सात फुट डेढ़ इंच लम्बे महाराणा प्रताप केवल सत्तावन वर्ष की आयु में जीवन समाप्त कर बैठे। मीरा की भक्ति एवं समर्पण की मिसाल अन्यत्र मिलना मुश्किल है। चित्तौड़गढ़ पर जब संकट के बादल थे तो मीरा को बुलाने के लिए द्वारिका भेजा गया। मीरा तो गिरिधर की दीवानी हो चुकी थी। मीरा गिरधर को छोड़ वापस नहीं जाना चाहती थी। अतः द्वारिकाधीश में मीरा सशरीर समा गयीं। रानी पद्मिनी का जौहर भी बेमिसाल है। आतताई मुसलमानों के हाथों में जाने के पहले अपने शरीर को अग्नि में समर्पित कर देना भी सबके लिए सम्भव नहीं है। सारा राजस्थान दान, वीरता, लगन, कर्मठता, भक्ति आदि की गाथाओं से भरपूर है। देश के विकास में राजस्थानी समाज का योगदान सर्वोपरि है, इसमें कोई दो राय नहीं।

♦

अग्रवाल समाज और गोत्र व्यवस्था

मानव समाज की प्रारम्भिक अवस्था पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मानव समुदाय के सभी लोग प्रायः जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न कार्यों में लगे रहे। इसमें सभी मूल आवश्यकताओं में आहार ही सर्वप्रथम रहा।

सामुदायिक जीवन के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सभी लोग जीवन की मूल आवश्यकता आहार प्राप्ति के प्रयत्नों में जुटे रहते थे। कालान्तर में वैचारिक क्रान्ति हुई और समाज में संगठन और विकास के हेतु इसका चार वर्णों में विभाजन हुआ। जैसे जैसे सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ होती गई, आर्य जनता में सामाजिक कार्य विभाजन ने एक स्थायी रूप लेना प्रारम्भ कर दिया और वैसे भी विशिष्टीकरण के लाभों की समीक्षा करते हुए लोगों का स्थायी रूप से एक एक पेशे में रहना लाभदायक प्रतीत हुआ। वैश्यों का मुख्य कार्य समाज हेतु धनोपार्जन करना हो गया। धनोपार्जन करने वालों का समाज में एक विशेष स्थान बन गया और समाज को स्थिर और स्वस्थ रखने के लिए यह समाज भारतीय मानव समाज के लिए रीढ़ बन गया। आगे चलकर समाज में इसे अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और समृद्ध सेठ, महाजन जैसे विशिष्ट नामों से जाना जाने लगा।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था वर्ण पर ही आधारित हुई। कालान्तर में वर्णों का भी विभाजन अपने पेशे के अनुरूप जाति विशेष में होने लगा। इस विकास प्रक्रिया में सामाजिक नियन्त्रण के रूप में वर्ण का महत्व घटता चला गया तथा जाति का बढ़ता गया। जाति एक विशेष पहचान बन गई और यह उसके जन्म से निर्धारित होने लगी। जन्म के आधार पर एक अदृश्य सूत्र में बंधकर एक विशिष्ट समुदाय बनने लगा जो इसी प्रकार से बने हुए अन्य समुदायों से भिन्न हुआ। आचार-विचार, देश-काल और अन्य परिस्थितियों के कारण इन जातियों का भी विभाजन उपजातियों में हुआ। यही कारण है कि भारत में आज अनगिनत जातियां पाई जाती हैं।

उपजातियां कुछ तो कौटुम्बिक नामों से, कुछ व्यापारिक नामों से, कुछ नगर-स्थान के नामों से, कुछ पदों के नाम से और कुछ देशों के नामों के अनुसार बनती गईं।

अग्रवाल जाति भी एक स्थान विशेष अग्रोहा से सम्बन्धित रही। कालान्तर में अपने पूर्व पुरुष के नाम पर बसाये गये इस स्थान विशेष के नाम से 'अग्रवाल' कहलाई।

आगे चलकर आचार और रक्त की शुद्धता के अनुसार इसमें भी बीसा, दस्सा और पंजा करके वर्ग विभाजन हुआ जिसे समाज की स्वीकृति भी मिल गई।

जैसा कि भारतीय प्राचीन ग्रन्थों से जाना जाता है, गोत्र मूल रूप से एक ब्राह्मण संस्था है किन्तु इसे अन्य उच्च वर्गों ने भी कालान्तर में अंगीकार कर लिया। धर्म शास्त्रों और आधुनिक विश्लेषण के आधार पर 'गोत्र' की उपयोगिता उत्तम सन्तान और विशिष्ट आचरणशील मानव समाज की संरचना करने के हेतु भी मान्य हुई।

गोत्र व्यवस्था वंश, विद्या और यज्ञादि को निमित्त बनाकर स्वीकृत हुई। जिसमें ब्राह्मणों में प्रायः वंशानुक्रम किंचित् आचार्यानुक्रम से, क्षत्रियों में आचार्यानुक्रम और पुरोहितानुक्रम (यज्ञादि कार्य करने वाले) से तथा वैश्य वर्ग में भी क्षत्रियोचित अनुक्रम से परन्तु बाद में केवल पौरोहितानुक्रम से सर्वमान्य हुई।

प्राचीन प्राप्त लेखों के अनुसार और अग्रवाल समाज की वर्तमान मान्यता के अनुसार अग्रवाल समाज के पूर्व महापुरुष महाराज अग्रसेन एक प्रतापी राजा और सामाजिक संगठन के अद्वितीय कारक पुरुष हुए। किंवदन्ती के अनुसार उनकी अठारह नाग कन्या पत्नियां थीं जिनसे अठारह प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। तथाकथित लेखों के अनुसार महाराज अग्रसेन ने अपने राज्य के अठारह जनपद में प्रत्येक पुत्र को पृथक पृथक इनका शासक नियुक्त किया। परन्तु इनका राज्य गणराज्य था जिसमें प्रत्येक जनपद का मुख्य सामाजिक प्रतिनिधि उस वर्ग का वृद्ध और सर्वश्रेष्ठ पुरुष होता था। इस भांति अठारह प्रतिनिधि राज्य सभा के सभासद हुआ करते थे।

इन मुख्य प्रतिनिधियों के अपने याज्ञिक आचार्य होते थे। जनपद के प्रतिनिधि और जनपद का सम्पूर्ण अग्रवाल समाज अपनी अलग पहचान हेतु अपने अपने याज्ञिक आचार्यों के नाम पर एक विशेष गोत्र से जाना जाने लगा।

ऐसा भी कहा जाता है कि महाराज अग्रसेन ने अठारह महायज्ञ किये। उस समय भारत में यज्ञ का बड़ा महत्व था और विकसित समाज के लिए इसे करना आवश्यक और जनहितकारी माना जाता था। इन पृथक यज्ञों में पृथक जनपद के समाज के मुख्य प्रतिनिधि और अन्य विशिष्ट लोगों के साथ महाराज अग्रसेन ने पृथक-पृथक यज्ञ किया और जिस यज्ञ में जो आचार्य पुरोहित हुए उनके नाम पर उस (व्यक्तिगत) समाज का गोत्र हुआ। वही गोत्र नाम उस पृथक समाज के

वंशजों के साथ जुट गया। इस भाँति अग्रवाल समाज के कुल अठारह गोत्र बने जो समाज में अब भी मान्य हैं।

गोत्रों के पृथक होने से समाज में रक्त की दूरी बढ़ती गई और अपने से अन्य गोत्रों में विवाह होने लगा जिससे स्वस्थ और मेधावी संतानें उत्पन्न हुई जिससे समाज का अधिक विकास हुआ।

यह बतलाना उचित होगा कि इस संदर्भ में जिन महर्षियों का नाम आता है वे स्वयं ही वहां उपस्थित रहे हों ऐसा सर्वथा संभव नहीं है क्योंकि इनमें से बहुत से महर्षियों का ऐतिहासिक जीवन काल महाराज अग्रसेन से बहुत पहले का है। इन गोत्र प्रवर्तक महर्षियों के वंशज प्रायः अपने पूर्व आदि पुरुष के नाम से ही जाने जाते थे, विभिन्न ग्रन्थों में ऐसा पर्याप्त प्रमाण भी प्राप्त है।

अग्रोहा (अग्र) के तथाकथित समाज के वंशज (अग्रवाल) व्यापार करने हेतु दूर दूर जाया करते थे और विशेष सुविधा मिलने पर ये वहीं अपना स्थायी निवास बना लिये। इस तरह से अग्रोहा से निकट के प्रान्त मारवाड़ में जो जा बसे वे अपने को मारवाड़ी अग्रवाल कहने लगे और उनके वंशज वहां से बाहर जाकर रहने अथवा बसने पर भी अपने को मारवाड़ी अग्रवाल ही कहते हैं जो संपूर्ण अग्रवाल समाज को भी मान्य है। इस भाँति स्थानभेद, आचार भेद और व्यवसाय भेद के कारण अग्रवालों में अनेक उपजातियां बन गईं। जैसे स्थान भेद से मारवाड़ी, गुजराती, देशवाली, मथुरिया, बरनवाल, महेमिया, मागधी, मानवीय, पर्वतीय आदि। इसी भाँति आचार भेद से बीसा, दस्सा, पंजा, गिन्दोडिया, कदीमी, राजवंशी, बहतरिया और अग्रहरी आते हैं। धर्म भेद से भी अग्रवाल समाज मुख्यतया दो धाराओं में विभक्त हो गया–वैष्णव और जैन पर इनमें सभी आपसी सम्बन्ध विवाहादि होते हैं। इसलिए इसे विभक्त नहीं भी कहा जा सकता।

जिन महर्षियों के नाम पर जो गोत्र जाने जाते हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

गोत्र प्रवर्तक ऋषि	प्रचलित गोत्र
१–और्व (उरु)	ऐरण
२–कश्यप	कुच्छल
३–कौशिक	कंसल
४–गर्ग	गर्ग
५–गोभिल	गोयल
६–गौडाचार्य (गौतम)	गोयल (गंगल)
७–जैमिनि	जिंदल
८–वाशिष्ठ	विंदल

९-तोड्य	तिंगल
१०- तैत्तरीय (शाखा)	तायल
११-धौम्य	धारण
१२-नागेन्द्र (नागार्जुन)	नांगल
१३-वात्स्यायन	वंशल
१४-माण्डक	मंगल
१५-मुद्गलायन	मधुकुल (ढिंगल)
१६-मैत्रेय	मित्तल
१७-शांडिल्य	सिंहल
१८-भारद्वाज	भंदल

इस भांति अग्रवाल समाज में उक्त १८ गोत्र हुए जिसे अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन से पूर्ण मान्यता प्राप्त है। जैसे अन्य हिन्दू सवर्णों में गोत्रान्तर में ही विवाह होना आवश्यक माना जाता है वैसे ही अग्रवाल समाज भी अपने गोत्रों के अतिरिक्त अन्य गोत्रों में ही शादी सम्बन्ध करना उचित मानता है जो धार्मिक और वैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

◆

आजादी के बाद का भारत

हमारे देश को आजाद हुए इतने साल हो गये। आजादी के समय हमारे नेताओं ने क्या क्या वादा किया था और वे कितने वादे पूरे कर सके इसका मूल्यांकन हमारे राष्ट्रीय त्योहार के अवसर पर होना चाहिये। देशवासियों को आश्वस्त किया गया था न गरीबी रहेगी, न बेरोजगारी रहेगी और न कोई अशिक्षित रहेगा। हर गांव तक बिजली एवं सड़क पहुंचेगी ताकि देश के प्रत्येक गांव को विकास का अवसर मिले। गांव गांव में ग्रामोद्योग का जाल बिछाया जायगा और गांव के संसाधनों का उपयोग भरपूर किया जायगा। प्रत्येक देशवासी को रोटी, कपड़ा और मकान की सुविधा प्रदान की जायगी। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होगी। आजादी के समय हमारे देश के पास विदेशी मुद्रा का आधिक्य था। कितने कितने सब्जबाग दिखाये गये थे। जैसे हम भगवान राम कृष्ण का जन्मदिन मनाते हैं तो उनके गुणों की चर्चा करते हैं और अपने दुर्गुणों को दूर करके अपने अन्दर सद्गुणों को स्थापित करने का प्रयास करते हैं। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री आदि के जन्मदिन को भी सभाएं करते हैं, उनके स्मरण से अपने अन्दर उनके गुणों का समावेश करना चाहते हैं। इसी प्रकार आजादी के दिन भी हमें अपना मूल्यांकन करना चाहिये कि आजादी के बाद हमने क्या पाया, क्या खोया। हमें कितने कितने आश्वासन हमारे कर्णधार नेताओं द्वारा दिये गये और उनकी वर्तमान में क्या स्थिति है।

हम निराशावादी नहीं हैं। हमने उद्योग, व्यापार, विज्ञान, अन्न उत्पादन आदि में यानी सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है लेकिन सारी उपलब्धियों के बावजूद हमारी स्थिति क्या है? हम आर्थिक रूप से गुलाम होते जा रहे हैं। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के नाम पर हमने विदेशी वस्तुओं के आयात के लिये मुक्त रूप से दरवाजे खोल दिये हैं जो मात्रात्मक प्रतिबन्ध था उसे भी हटा दिया। अभी भी हम अपने देशवासियों की यह मानसिकता नहीं बदल पाये कि हम उन विदेशी वस्तुओं का प्रयोग नहीं करेंगे जो हमारे देश में उत्पादित नहीं होती हैं। हम अभी भी विदेशी वस्तुओं को देशी उत्पादों से अच्छा समझते हैं। जो इलाज हमारे

देश में हो सकता है उसके लिये भी विदेशों में इलाज कराकर हम कैसी राष्ट्रभक्ति का परिचय देते हैं। हमने उदारीकरण एवं वैश्वीकरण हेतु विदेशी वस्तुओं के मुक्त आयात के लिये दरवाजे तो खोल दिये लेकिन हमने यह नहीं सोचा कि 'घी' में बड़ी ताकत है लेकिन उसको सेवन करने वाला इतना मजबूत हो कि उसे पचा सके। कमजोर एवं बीमार के लिये घी नुकसानदेह हो जायगा। ठीक इसी प्रकार मुक्त आयात ने हमारी स्थिति बदतर कर दी है। हमारे उद्योग धन्धे चौपट होते जा रहे हैं। हमारा देश विदेशी वस्तुओं की मंडी होता जा रहा है। हमारी उद्यमिता समाप्त हो रही है। कारण हमने उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के पहले अपने देशवासियों को मजबूत नहीं किया। हम उद्योगों को सड़क नहीं दे पाये, बिजली की हालत किसी से छिपी नहीं है, अगर बिजली नहीं दे पायेंगे तो प्रत्येक उद्योग को अपना जेनरेटर लगाना पड़ेगा और इस कारण उत्पाद महंगा होगा। हमारी बिजली भी पांच रुपया यूनिट पड़ती है जबकि चीन जैसे विशाल देश में भी बिजली की रेट उद्योगों के लिए दो रुपये प्रति यूनिट है। बिजली निरन्तर मिलती है। कभी बिजली उत्पादन में समस्या नहीं रहती। उद्योग को निर्बाध गति से बिजली मिलती है। भले ही सामान्य जनता को कम दें। वहां के उद्योगों को जेनरेटर लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जेनरेटर नहीं लगाने के कितने लाभ हैं। पहला इसकी लागत पूंजी की बचत होती है। हमारा देश पेट्रोलियम उत्पादों को आयात करता है। जेनरेटर नहीं चलेंगे तो डीजल की बचत होगी और इस प्रकार हम आयात कम करके अपनी बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत करेंगे। अगर जेनरेटर नहीं चलेंगे तो प्रदूषण भी नहीं होगा। इस प्रकार हमारे पर्यावरण के अशुद्ध होने की समस्या भी कम हो जायगी। विदेशों में उद्योगों को चार प्रतिशत सालाना ब्याज पर पूंजी मिलती है लेकिन हमारे देश में १४ से १८ प्रतिशत से कम में पूजी नहीं मिलती। हम अपने देशवासियों में आज तक राष्ट्र प्रेम नाम की भावना को स्थापित नहीं कर सके। आज सबसे अधिक हमारे देशवासी राष्ट्रीय सम्पत्ति की तोड़फोड़, नुकसान एवं चोरी करते हैं। ऐसा करते हुये उनमें यह भावना कतई नहीं आती कि राष्ट्रीय सम्पत्ति भी तो आखिर हमारी ही सम्पत्ति है। अगर भय न हो तो टैक्स की चोरी करने में भी लोग नहीं हिचकते। अगर हम अपने देश में राष्ट्रीय भावना भर पाते तो आज देश की स्थिति कुछ अलग ही होती। हम कर्मयोग की बात करते हैं, यानी निरन्तर कर्म करते रहने का संकल्प लेते हैं। लेकिन पक्के कामचोर हैं। ऐसी परिस्थितियों के लिये कौन जिम्मेदार है। हम विदेशी उत्पादों के सामने कैसे टिक पायेंगे? नतीजा होगा कि उद्योग धन्धे बीमार एवं बन्द होते जायेंगे। हमारी उद्यमिता का सर्वनाश हो जायगा। हमारे देश की क्या हालत होगी, हम कल्पना भी नहीं कर सकते। स्थिति भ्यावह होती जा रही है।

ऐसी स्थिति कब है जबकि हमारे देश में प्रकृति ने विश्व के किसी भी देश के मुकाबले सबसे अधिक प्राकृतिक सम्पदा दे रखी है। हमारे पास प्रकृति प्रदत्त अनुकूल सभी मौसम हैं जैसे अन्य देशों में जाड़ा ज्यादा है या बरसात ज्यादा है या जल का अभाव है या सूर्य का प्रकाश भी बराबर नहीं मिलता। हमारे देश को ये सभी सुविधाएं छप्पर फाड़ कर मिली हुई हैं। खनिज सम्पदा हमारे पास भरपूर है, कोयला, लोहा, चूना, आदि आदि। वन सम्पदा भी इतनी है कि किसी अन्य देश के मुकाबले किस्में हमारे पास सर्वाधिक हैं। श्रम सम्पदा तो इतनी है कि उसका हम उपयोग ही नहीं कर पा रहे हैं। बौद्धिक सम्पदा का आलम यह है कि हमारे ही देशवासी जो विदेशों में रह रहे हैं उनको तो 'नोबेल पुरस्कार' मिला लेकिन आजादी के बाद हमारे किसी देशवासी को एक भी नोबेल पुरस्कार नहीं मिला जो हमारे देश में रहता हो। विदेशों में बसे डाक्टर, इंजीनियर, व्यवसायी भी काफी तरक्की पर हैं और हमारे देश का नाम रोशन कर रहे हैं लेकिन हम अपने देश में अपनी ही बौद्धिक सम्पदा का दोहन नहीं कर पा रहे हैं। उन्हें आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता। जो देश आचार्यों एवं अवतारों का देश हो वहां गरीबी भुखमरी एवं अशिक्षा इतनी अधिक है कि एक तिहाई आबादी भूखी नंगी सोती है। जो भूखा नंगा होगा उसे मकान की सुविधा कैसे मिल सकती है।

इन सब प्रश्नों के हल के लिये हमें पूरा मंथन करने की जरूरत है। विदेश में स्वामी विवेकानन्द जी जब भारत के गौरवशाली अतीत का बखान कर रहे थे तो एक श्रोता ने पूछ लिया कि जिस देश का अतीत इतना गौरवशाली हो वह नौ सौ वर्षों से गुलाम कैसे है? तो स्वामी जी ने कहा कि हम जानते तो हैं लेकिन अपने जीवन में अपनाते नहीं। लाभ तो अपनाने से मिलेगा। हमारे यहां ज्यादातर लोगों के दोहरे चरित्र हैं यानी देखने में कुछ है लेकिन वास्तविकता कुछ और है।

◆

अब देशभक्त कौन है?

हमारा देश जब गुलाम था तो देशभक्त उसे कहा जाता था जो देश को गुलामी की जंजीर से मुक्त करा दे। सभी आजादी के दीवाने देशभक्त थे। वे सभी क्रान्तिकारी देशभक्त थे जैसे चन्द्रशेखर आजाद, वीर सावरकर, खुदीराम बोस, सुभाष चन्द्र बोस आदि जिन्होंने देश को आजाद कराने के लिए अन्याय का प्रतिकार किया, जुल्म करने वाले अंग्रेजों का विरोध या वध किया। जिन लोगों ने संघर्ष का बिगुल बजाया और हंसते हंसते फांसी के फंदे पर झूल गये सभी देशभक्त थे। लेकिन देश के १५ अगस्त १९४७ को आजाद होने के बाद देशभक्त कौन है इसकी परिभाषा कहीं देखने या पढ़ने को नहीं मिली। आज देशभक्त और देशभक्ति को परिभाषित करने का समय आ गया है। आज देश की क्या स्थिति है? १९४७ में हमने राजनैतिक आजादी पाई लेकिन आज आजादी के इतने सालों बाद हम आर्थिक गुलामी में जकड़ते जा रहे हैं। आज हमारे देश का बच्चा, बूढ़ा सभी देशी-विदेशी कर्ज से कर्जदार हैं। हमारा कर्जा दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा है। मजे की बात यह है कि ज्यों ज्यों हमारे देश पर कर्जा बढ़ता जा रहा है त्यों त्यों हमारे यहां गरीबों एवं बेरोजगारों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। आज हमारा देश इस स्थिति में पहुंच गया है कि ब्याज देने के लिए भी हमें कर्जा लेना पड़ता है। एक बार तो हमारे देश की यह स्थिति हो गई थी कि कर्जा लेने के लिये भी सोना गिरवी रखना पड़ा था। ऐसी स्थिति अगर बनी रहेगी, हमारे देश का कर्जा अगर बढ़ता जायगा तो हम कहां पहुंचेंगे! आर्थिक दृष्टि से हम गुलाम हैं और यह आर्थिक गुलामी हमें राजनैतिक गुलामी की ओर ले जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। इस देश का इतिहास साक्षी है। जिस देश में दूध दही की नदियां बहती हों, जो देश सोने की चिड़िया हो, यही देश कभी इतना समृद्ध था कि विश्वगुरु कहलाता था वह मुसलमानों का सात सौ वर्षों तक एवं अंग्रेजों का दो सौ वर्षों तक गुलाम कैसे हो गया! इस देश में मुसलमान लुटेरे बनकर आये और अंग्रेज व्यापारी बनकर आये और वे हमारे शासक हो गये। हमारे देश में कौन सी कमजोरी थी जिसने हमें गुलाम बनाया? क्या आज की कमजोरी हमें पूर्व का

स्मरण नहीं कराती? अतः हे देशवासियों! आप लोग सावधान हो जाइये। अपनी कमजोरी और कमी को हमें दूर करने के लिये स्वयं सन्नद्ध होना पड़ेगा और अपनी कमर कसनी पड़ेगी। अगर समय रहते हम ऐसा नहीं करेंगे तो इतिहास की पुनरावृत्ति होने में समय नहीं लगेगा।

मैंने उपरोक्त कथन से केवल समस्या खड़ी करने का प्रयास नहीं किया है। हमें इसका समाधान भी खोजना पड़ेगा। आज का देशभक्त उसको मानना पड़ेगा जो हमें आर्थिक गुलामी से मुक्त कराये। सारे विश्व में जो भी विकसित देश हैं वे आर्थिक दृष्टि से मजबूत एवं सुसम्पन्न हैं। ऐसे ही देशों को कर्जा देकर आर्थिक दृष्टि से गुलाम बनाते हैं। हमें देखना है कि वे विकसित देश कैसे आर्थिक दृष्टि से मजबूत एवं सुसम्पन्न हुये। आप सभी विकसित एवं सुसम्पन्न देशों पर चाहे अमेरिका हो या जापान, जर्मनी हो या फ्रांस दृष्टिपात करें तो एक ही कारण सुसम्पन्नता का मिलेगा और वह है तीव्र गति से औद्योगीकरण। उन देशों के उद्योगीकरण का आलम यह है कि विदेशों से कच्चा माल मंगाकर अपने देश में उसकी प्रोसेसिंग करके पक्के माल को उसी देश में निर्यात करें तो भी कच्चे माल के निर्यातक देश उसे झेल नहीं पायेंगे यानी उस देश के उस वस्तु के उत्पादक उद्योग बन्द हो जायेंगे। उदाहरण के तौर पर हमारे देश में कच्चा लोहा होता है। हमारे देश में कोयला होता है। जापान हमारे देश से कच्चा लोहा एवं कोयला मंगाकर अपने देश में लोहे का निर्माण करके अगर हमारे देश में निर्यात कर दे तो हमारे देश के सभी स्टील प्लान्ट बन्द हो जायेंगे। ऐसा क्यों? कारण हमारे देश में कार्य संस्कृति का अभाव है। गुणवत्ता के प्रति हम सचेत एवं सचेष्ट नहीं हैं तथा सरकारी कानून भी साधक न होकर बाधक हैं। हमारे देश की वर्तमान में प्रमुख समस्याएं हैं गरीबी, बेरोजगारी तथा अशिक्षा। इन समस्याओं से जो हमें मुक्ति दिलावे वही सबसे बड़ा देशभक्त माना जाय। केवल भाषणबाजी करने वाला जब तक देशभक्त माना जायगा तब तक देश में न तो खुशहाली बढ़ेगी और न हमारा कर्जा घटेगा। मैं राजनीतिज्ञों से पूछना चाहता हूं कि चुनाव जीतने पर तो उनको अपने क्षेत्र की जनता की सेवा करनी पड़ती है लेकिन हारने के बाद भी वे क्यों लखनऊ या अपने अपने प्रदेश की राजधानी या दिल्ली का चक्कर काटते रहते हैं। क्यों वे किसी निगम या कमीशन में आना चाहते हैं, क्यों वे राजदूत या राज्यपाल होना चाहते हैं? क्यों वे राज्यसभा या विधान परिषद में जाना चाहते हैं? क्यों नहीं वे प्रयास करते कि अपने क्षेत्र में नये उद्योग स्थापित हों, जो स्थापित हो गये हैं वे पूरी क्षमता से उत्पादन करें, कोई भी उद्योग किसी भी कारण से बन्द नहीं होने पावे। पढ़े लिखे क्लर्कों को पैदा करना बन्द करें। दर्जा आठ या दस तक पढ़ाकर उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाय ताकि वे

तत्काल काम पा सकें और पढ़े लिखे बेकारों की संख्या और अधिक न बढ़ सके। राजमिस्त्री, बढ़ई, लोहार, बिजली मिस्त्री, रेडियो, टी०वी० मैकेनिक, धोबी जो इस्त्री करना सीख ले, ड्राइवर आदि को रोजगार तत्काल मिल जाते हैं। ये लोग पैसा भी अच्छा कमा लेते हैं। एक पीएच०डी० लड़का १५०० माहवार की नौकरी खोजता है जबकि राजमिस्त्री, लोहार, बढ़ई आदि १५० रुपये रोज कमा लेते हैं। पीएच०डी० पास लड़के को १५०० माहवार की नौकरी भी कठिनाई से मिलती है। अतः ज्यादा पढ़ाने से और क्लर्कों की संख्या बढ़ाने से लाभ क्या? आज सबसे दुःखदायी स्थिति उन देहाती और गांव वालों की है जिनके लड़कों ने अगर बी०ए० पास कर लिया तो अपने हाथ से अपना काम करने में अपनी बेइज्जती समझते हैं। अपने घर जाकर घर की खेती का काम या ट्रैक्टर चलाने में अपना अपमान महसूस करते हैं। इस प्रवृत्ति को तथा ऐसी पढ़ाई को जारी रखने से लाभ क्या? हमारे राजनैतिक बन्धु अगर इस दिशा में सोचें और प्रवृत्त हो जाएं तो सचमुच देश का भला हो जाए और हमारे विकास की गति समृद्धिमूलक हो जायगी। हम सही माने में समृद्धिशील कब होंगे, जब हम कर्जा देशी या विदेशी कोई भी लेना देना बन्द करें, कर्ज का बोझ प्रति वर्ष कम करते जायें। हमारा निर्यात बढ़े तथा आयात घटे। अपने देश की आवश्यकता की पूर्ति हम अपने देश में उत्पादित माल से करें न कि आयात से। यह तभी संभव होगा जब सारे देश में उद्योगों का जाल बिछेगा। उद्यमी को, भले ही वह पांच आदमियों को ही नौकरी देता है, उसे देशभक्त मानें। उद्यमियों को पूरा सम्मान दें तथा देश की बदहाली से बचाने में तथा खुशहाली बढ़ाने में उनके योगदान का समुचित मूल्यांकन करें। ऐसे लोगों को सबसे पहले तथा सबसे अधिक राजकीय सम्मान दें। इन उद्यमियों को जमाखोर, मुनाफाखोर, कालाबाजारी आदि विशेषणों से अलंकृत करना एकदम बन्द करें। यों तो आजकल बन्द या कम हो गया है कारण अब अपनी आय से अधिक पैसा राजनीतिज्ञों, अधिकारियों, कलाकारों, खिलाड़ियों आदि के पास मिलने लगा है। एक बात और मैं बहुत ईमानदारी से पूछना चाहता हूं कि हमारी सरकार ने जिनको भी राजकीय सम्मानों से विभूषित किया है चाहे वे भारतरत्न हों, या पद्मविभूषण, पद्मभूषण हों या पद्मश्री, सभी पूर्ण रूप से ईमानदार हैं? क्या उनके पास कालाधन नहीं है? क्या वे अपनी आय पर पूरी तरह आयकर देते हैं? शायद कुछ को छोड़कर बाकी का उत्तर नकारात्मक मिलेगा। ऐसी स्थिति में उद्यमियों का सम्मान करना पूरी तरह से न्यायोचित है। आज तक इस देश ने केवल एक भारतरत्न पैदा किया जो उद्योग के क्षेत्र में रत था और वह था जे०आर०डी० टाटा। निःसन्देह जे०आर०डी० टाटा को भारतरत्न देकर हमारे देश ने उनका सम्मान नहीं बढ़ाया बल्कि भारतरत्न का सम्मान बढ़ाया।

लेकिन देश में बहुतेरे ऐसे लोग हैं जिन्होंने उद्योग क्षेत्र में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश का मान बढ़ाया है। हजारों लाखों लोगों को रोजगार दिया है। कई आनुषंगिक उद्योग स्थापित कराये हैं। देश को करोड़ों अरबों का राजस्व दिया है जिससे हमारी सरकार चलती है। ऐसे गणमान्य लोगों की अनदेखी करना भी हमारे देश के औद्योगीकरण में बाधक है। यही हमारे देश का दुर्भाग्य है।

उद्यमी को स्वार्थी की संज्ञा देना अपराध है। अगर उद्यमी स्वार्थी है तो कौन स्वार्थी नहीं है? समाजसेवी प्रमाण पत्र चाहता है, राजनेता सत्ता चाहता है, प्रशासनिक अधिकारी बंगला, वेतन एवं सुविधाएं चाहता है। अतः स्वार्थी सब होते हुये भी स्वार्थ में कितना निःस्वार्थ छिपा है यह हमें देखना होगा। रोजगार देने वाला व्यक्ति अपने स्वार्थ से ही सही, अन्यान्य व्यक्तियों के स्वार्थ की पूर्ति करता है तो सबसे बड़ा निःस्वार्थी है। अब देशभक्ति का अर्थ है देश की आर्थिक उन्नति। निःसंदेह वह भी देशभक्त है जो सीमा पर देश की सुरक्षा कर रहा है। कम्यूनिस्टों ने लाल झण्डा लगाकर मजदूरों की भलाई के नाम पर हड़ताल और तालाबन्दी कराई। नतीजा हुआ कि देश उद्योगीकरण में पिछड़ गया। उदाहरण के तौर पर कलकत्ता को लें जो एशिया का सबसे बड़ा उद्योग व्यापार का केन्द्र था लेकिन लाल झण्डा सरकार आने के बाद हड़ताल, तालाबन्दी प्रारम्भ हुई और आज अपने ही देश में एकदम पिछड़ गया। कलकत्ता का आदमी काम नहीं करना चाहता। कोई उद्यमी वहां नया उद्योग स्थापित नहीं करना चाहता।

हमारा देश गर्व से अपना सिर तभी उठा सकता है जब हम उद्योग चलाने तथा सही तरीके से मुनाफा कमाने को देशभक्ति का पर्याय मानें। सरकारी कर्मचारी जिनको वेतन भी चाहिए, रिश्वत भी चाहिए तथा काम भी कम करे इनको हम देशभक्त मानना बन्द करें बल्कि ऐसे लोग देशद्रोही हैं। देशभक्त वह है जो अपने पैसे को जोखिम में डालकर उद्योग खड़ा करता है। देशभक्त वह है जो रात दिन मेहनत करके उस उद्योग को विशाल आकार प्रदान करता है। हमें यह मानकर चलना पड़ेगा कि हर नया कारखाना देश को एक तोप से ज्यादा शक्ति सम्पन्न करता है। हर उद्योग को चलाने वाला देश के लिये मर मिटने वाले जवान के बराबर कार्य करता है। हर उत्पादन बढ़ाने वाले को देशभक्त कहिये और इस काम में टांग अड़ाने वाले को देशद्रोही कहिये। अगर हम ऐसा कर सकें तो निःसन्देह हम आर्थिक गुलामी से मुक्त होंगे और एक सशक्त एवं सुसम्पन्न राष्ट्र के रूप में उभर कर सामने आयेंगे।

◆

लोकतंत्र का दर्द

१९४७ में जब हमारा देश स्वतंत्र हुआ तो हमने लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनाई। इस व्यवस्था की आधारशिला थी जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिये शासन व्यवस्था। इस व्यवस्था को देश के लिये सर्वोत्तम समझा गया। आज हमारा देश दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है भी। हमें आजाद हुये छह दशक पूरे हो गये लेकिन जिन मूलभूत समस्याओं को दूर करने के लिये हमारे नेताओं ने हमें आश्वासन दिया था और आज भी बराबर दे रहे हैं तो क्या उन मूलभूत समस्याओं से हमें छुटकारा मिला या समस्यायें जस की तस हैं अथवा ज्यों ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया की तर्ज पर समस्यायें बढ़ती गईं? हमने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का वचन दिया था। हमने हर हाथ को काम देने का वादा किया था। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित करने का वादा किया था। हर व्यक्ति को रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति हो सके, इसका संकल्प लिया था। गांव गांव में बिजली जायेगी। घर-घर को पानी देने का वादा किया था। घर घर को सड़क एवं रेल यातायात से जोड़कर सुविधा सुलभ कराने का निश्चय किया था। गांव गांव में कुटीर एवं लघु उद्योग की स्थापना करने का संकल्प किया था ताकि गांवों की आबादी का पलायन शहरों की तरफ न हो और प्रत्येक गांव के संसाधन, प्रतिभा, श्रम शक्ति एवं बौद्धिक शक्ति का उपयोग गांव के विकास में ही। प्रत्येक पार्टी के घोषणापत्रों को पढ़ें तो करीब करीब एक ही तरह के वादे मिलेंगे। अगर पार्टी के नाम का ऊपर वाला कागज फाड़ दिया जाय तो कोई बता नहीं सकता कि कौन सा घोषणा पत्र किस पार्टी का है। कारण प्रत्येक घोषणा हर पार्टी के घोषणा पत्र में आगे पीछे मिल जायगी।

आजादी के समय देश में ऐसे नेता थे जिन्होंने महान त्याग करके देश सेवा का व्रत लिया था। आजादी के बाद सत्ता से सेवा करने का संकल्प था। कई नेता तो ऐसे थे जिन्होंने सेवा तो आजादी के पहले एवं बाद में की लेकिन कभी सत्ता को सेवा का माध्यम नहीं बनाया। कभी सत्ता सुख नहीं भोगा। आजादी के समय हमारी आबादी भी ३२ करोड़ थी। अब लोकतंत्र का दर्द क्या है? इसका दर्द यही

है कि आजादी के समय तथा तुरंत बाद हमारे नेताओं ने क्या क्या वादे किये थे और वे उसमें से कितनों को पूरा कर पाये? ज्यों ज्यों हमारे लोकतंत्र की उम्र बढ़ती गई तो क्या हमारी समस्यायें बढ़ीं या घटीं? अगर हमारी समस्याएं बढ़ी हैं तो लोकतंत्र का यही दर्द है कि मैं क्या था और आपने मेरा क्या कर दिया! हमारा लोकतंत्र कहता है कि माना कि उद्योग धंधे बढ़े। जहां सुई का भी उत्पादन नहीं होता था वहां अब हवाई जहाज एवं राकेट का उत्पादन होने लग गया। लेकिन किस कीमत पर? विदेशी निवेश और कर्ज के बल पर आपने लोकतंत्र का चरित्र क्या कर दिया! चारों ओर ऊपर से नीचे तक व्याप्त भ्रष्टाचार अब शिष्टाचार बन गया। लोकतंत्र ने ईमानदारी की परिभाषा बदल दी। अब पैसा लेकर जो काम कर दे वह ईमानदार माना जाने लगा। कथनी करनी में तालमेल नहीं है। प्रधानमंत्री से लेकर छोटे मंत्री तक द्वारा शिलान्यास पर निर्माण कार्य कभी पूरा नहीं होता। यहां तक कि प्रधानमंत्री के शिलान्यास के पत्थर भी गायब हो जाते हैं। निर्माण कार्य की समय सीमा कभी पूरी नहीं होती और खर्च का बजट भी कितना बढ़ जायगा इसका ब्योरा देना भी मुश्किल है यानी कई कई गुना ज्यादा हो जाता है। पहले उद्यमियों एवं व्यापारियों को जमाखोर-मुनाफाखोर-कालाबाजारी आदि से बदनाम किया जाता था लेकिन राजनीतिज्ञों-अधिकारियों-खिलाड़ियों के अकूत भंडार एवं भयंकर घोटाले जब सामने आने लगे तो आजकल केवल उद्यमियों एवं व्यापारियों को बदनाम करने की भाषा बदल गई। जब राजनीतिज्ञों एवं अधिकारियों की ही बिरादरी बड़े बड़े घोटालों में रंगे हाथ पकड़ी जाने लगी तो अब दूसरों को कैसे बदनाम करें! अब तो ईमानदार नेता-अधिकारी या व्यापारी बड़ा बेवकूफ समझा जाने लगा। अब तो बहती गंगा में जो भी अपना हाथ साफ कर ले वही बुद्धिमान है। राजनीति भी सिद्धान्त की न होकर सुविधा की हो गई। कौन सी पार्टी या कौन सा राजनेता किस पार्टी से निकल कर किस पार्टी में जाकर मिल गया कोई नहीं जानता, कारण जहां सबसे अधिक सुविधा मिलेगी, वहीं उनका गंतव्य होगा। आजादी के पहले हमारे नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का वादा किया था। सारे देश में सबसे अधिक आबादी हिन्दी भाषा ही बोलती है। लोकतंत्र में जब बहुमत का शासन चलता है तो यही मापदंड हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा अपनाने में क्यों नहीं अपनाया जाता? राजनेताओं ने उत्तर एवं दक्षिण के राज्यों को हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रश्न पर एक दूसरे के विरोध में खड़ा कर दिया। अब भाषा का मसला इतना उलझा दिया गया कि निकट भविष्य में तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलेगा इसकी संभावना प्रतीत नहीं होती।

हमारी राजनीतिक पार्टियों ने भी अपने अपने वोट बैंक बाँट लिये। भाजपा हिन्दू कार्ड खेल रही है तो बसपा-दलित, समाजवादी पार्टी-यादव एवं मुसलमान

कार्ड, कम्युनिस्ट पार्टी-मजदूर कार्ड तथा कांग्रेस सभी का मिला जुला। कुछ पार्टियां मुसलमानों को अपना वोट बैंक बनाने के लिये उनको हिन्दुओं के विरोध में खड़ा कर दे रही हैं, नतीजा हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई का बन्धन अब सौहार्दपूर्ण नहीं रह गया।

लोकतंत्र की बुनियाद गलत आधार पर खड़ी हो गई। चुनाव में खोखले वादे तथा निश्चित राशि से कई कई गुना अधिक खर्च। आज किसी पार्टी को वोट देने के लिए उससे कोई नहीं पूछता कि पूर्व में उसने जो वादे किये थे उसमें से कितने पूरे हुये। सवाल है कि पूछेगा कौन? दूसरी पार्टी पूछे तो उसका भी वही हाल! स्वयं शीशे के घर में रहने वाला दूसरे पर पत्थर कैसे मारेगा? वोटरों को आकर्षित करने के लिये कोई बिजली में छूट दे रहा है तो कोई नशाबंदी करने का वादा करता है। लेकिन जब ऐसी पार्टियां जो खोखला वादा करती हैं स्वयं शासन में आती है तो आर्थिक आवश्यकताएं उन्हें अपने निश्चय को बदलने हेतु विवश कर देती हैं। ठीक इसी प्रकार चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित राशि से अधिक राशि के खर्च को सीमा के अन्दर का खर्च साबित करने के लिये कितने कितने गलत हिसाब बनाये एवं पेश किये जाते हैं यह सभी जानते हैं। चुनाव आयोग एवं सरकार भी इस समस्या से अवगत है। लेकिन जब तक कोई रंगे हाथ नहीं पकड़ा जाता, कोई स्वीकार नहीं करता कि मैंने निर्धारित राशि से अधिक खर्च किया है। ऐसा व्यक्ति जब जीत कर विधायक-सांसद-मंत्री बनेगा तो उसकी पहली प्राथमिकता होगी कि जो खर्च किया है उसको वसूलो एवं आगे के चुनाव के लिये खर्च का इन्तजाम करो। अगर पार्टी का नेता है तो उसे अपनी पार्टी को विजयी बनाने के लिये पार्टी स्तर पर अपने उम्मीदवारों का कुछ खर्च वहन करना ही पड़ता है। ऐसे नेता जब संसद या विधान भवन में जायेंगे तो हमारे संसद एवं विधान भवन का चरित्र कैसा होगा?

पहले संसद एवं विधान भवन में जाने वाला व्यक्ति योग्यतम देशभक्त होता था। उसका देश की सेवा करने का संकल्प होता था। देशसेवा के बदले कुछ अपेक्षा नहीं करता था। जनता एवं समाज ही उसका भरण पोषण करता था या उसके परिवार के अन्य लोग यह काम करते थे। लेकिन अब सांसदों एवं विधायकों की योग्यता पर प्रश्न चिन्ह लग गया। संसद एवं विधान भवन में जब किसी विषय पर गहन चर्चा चल रही हो तो उन्हें सुनने एवं चर्चा में भाग लेने की फुर्सत नहीं है। केवल हाथ उठाने या अपनी पार्टी का संख्याबल बढ़ाने हेतु अन्दर पहुंच जाते हैं। अब विरोध जताने का तरीका भी बदल गया। अगर कोई पार्टी के हित में चर्चा नहीं है तो हल्ला गुल्ला, मारपीट, गाली-गलौज अब एक सामान्य प्रक्रिया हो गई जिसे आराम से दूरदर्शन पर देखा जा सकता है। इस प्रकार संसद

एवं विधान सभा का योग्यतम होने का चरित्र भी बदल गया और क्या हो गया उसे कहने की जरूरत नहीं।

हमारे देश के समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं भी चोरी-डकैती-छिनैती- बलात्कार आदि के समाचार को प्रमुखता से एवं चटपटा बनाकर छापते हैं। सत्संग एवं ज्ञान की बातों को संक्षेप से तथा अप्रमुख स्थान पर छापेंगे। इसका नतीजा होता है कि समाज-प्रदेश तथा देश में नैतिकता का लोप होता जा रहा है। अब तो चोरी करने का प्रायश्चित्त भी नहीं करते। सरकारी चोरी को चोरी मानते ही नहीं। अगर बिना टिकट के रेल यात्रा सम्पन्न हो गई तो बड़े गुमान से कहते हैं कि मैंने आज इतने का रेलवे को चूना लगाया। अब आयकर, विक्री कर, उत्पादन कर या सीमा शुल्क की चोरी को ज्यादे गंभीरता से नहीं लेते जैसे चोरी करना हमारी नियति हो गई हो और इस भयंकर अपराध को भी सहजता से लेते हैं। कहीं किसी में अपराधबोध होता ही नहीं जब तक कि रंगे हाथ पकड़ा न जाय।

मैच फिक्सिंग का आरोप सभी भारतीय खिलाड़ियों ने निराधार बताया। लेकिन आयकर छापे में पाई गई अकूत सम्पत्ति कहां से आई, इसका ब्योरा देने को कोई खिलाड़ी तैयार नहीं। अगर देना भी पड़ेगा तो उतना ही देंगे जितने में फसावड़े से बचा जा सके। हमारे देश का नेता पकड़े जाने के बाद भी स्वीकार नहीं करेगा कि हमने चोरी से रकम कमाई है। कानूनी लड़ाई उच्चतम न्यायालय तक लड़ते लड़ते वर्षों लग जायेंगे। इसी बीच वही व्यक्ति चुनाव में खड़ा होगा तथा जनता उसे जिता भी देगी और अब वह अपराधी कहेगा कि जनता की अदालत से जीत कर मैं आरोप मुक्त हो गया। पुनः पद पर आकर अपने को बचाने का भरपूर प्रयास करेगा तथा समय बीतते बीतते जनता भूल जायगी तथा वह स्वयं भी निर्दोष हो जायगा। अपने देश की न्याय व्यवस्था इतनी खर्चीली तथा समय साध्य है कि समय से न्याय मिलता ही नहीं। विलम्बित न्याय प्रक्रिया ने इस देश में इतनी अनगिनत समस्याएं पैदा की हैं कि देश को समस्या मुक्त होना भी असंभव प्रतीत होने लगा है। विलम्बित न्याय के कारण लोग कानून को अपने हाथ में लेने लगते हैं। नतीजा अपराध की संख्या और बढ़ती जाती है।

इस लोकतंत्र के कितने कितने दोष गिनाऊं? पूरा ग्रन्थ कई खण्डों में तैयार हो जायगा। अब समस्या का समाधान निकलेगा कैसे? यह हमारे देशवासियों की इच्छाशक्ति पर निर्भर है। सभी राजनीतिक पार्टियां अपने राजनीतिक मतभेद भुलाकर राष्ट्रहित में राष्ट्रीय सरकार का गठन करें। ऐसी सरकार कम से कम १० वर्षों के लिय पदासीन हो और पूरे कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का संकल्प ले तो देश की सारी समस्याएं सुलझ सकती है।

मैंने दुनिया के कई देशों की यात्रा की है। भारतीयों की बुद्धि अन्य देशवासियों के मुकाबले तीव्र है। यह आचार्यों एवं अवतारों का देश है। इस देश में महानतम लोगों ने जैसे बुद्ध, महावीर, गांधी, तिलक, सुभाष, पटेल, डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद आदि ने जन्म लिया। प्राकृतिक सम्पदायें भी इस देश के पास अन्य देशों के मुकाबले सर्वाधिक है। श्रम शक्ति भी विशालतम है। जिस देश के पास श्रम-सम्पदा, बौद्धिक सम्पदा, वन सम्पदा एवं खनिज सम्पदा का अकूत भंडार हो वह देश क्या नहीं कर सकता! हमारे देश पर सूर्य भगवान की जितनी कृपा है उतनी कृपा बहुत कम देशों पर है। सभी प्रकार के मौसम यहां आते जाते हैं। इतनी सम्पदाओं का यह देश क्या नही कर सकता!

हम देशवासियों ने अपने लोकतंत्र का दर्द बढ़ाया है तो इस दर्द को मिटायेगा कौन? हमें ही संकल्पित होना पड़ेगा। हम अपनी ऊर्जा को एक दूसरे के विरोध में खर्च कर रहे हैं।अब उसे देशहित में लगाने का संकल्प लेना होगा। एक बार अगर इस देश की गाड़ी विकास पथ पर अग्रसर हो गई तो हम गरीबी, बेरोजगारी तथा अशिक्षा को दूर करके ही दम लेंगे। हम अपने कर्जों से मुक्त हो सकेंगे और अपनी सम्पदा को दुनिया में बेच कर विदेशी मुद्रा भी अर्जन कर सकेंगे। किसी जमाने में जो देश विश्वगुरु था, सोने की चिड़िया कहा जाता था तथा जिस देश में दूध-दही की नदियां बहती थी, वह पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त होकर ही लोकतंत्र के दर्द को दूर कर सकेगा।

◆

भ्रष्टाचार की गंगोत्री

भ्रष्टाचार एक नदी है जो दिल्ली से निकली है। कोई प्यासा न रह जाय इसलिये सारे देश में फैली है। गंगोत्री से गंगा निकली है। गंगोत्री ही गन्दी होगी तो गंगा कैसे शुद्ध और पवित्र हो सकती है? भ्रष्टाचार की बात बहुत होती है। स्वयं जो भ्रष्ट हैं वे भी भ्रष्टाचार दूर करने की बात करते हैं। चाहे राजनीतिज्ञ हों या धर्माचार्य, इस बीमारी से कितने लोग अछूते हैं? पहले ईमानदार आदमी की कद्र होती थी और उसको सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। जो कोई गलती कर बैठता था वह प्रायश्चित्त करने की सोचता था। हमारे यहां प्रायश्चित्त उसे कहते हैं कि पुनः गलती न करे और किये हुये के लिये पश्चाताप रूप धर्मकृत्य करे। अब तो ईमानदार आदमी को पागल तथा बेवकूफ कहा जाता है। उसे सलाह दी जाती है कि समय की मांग है 'तू भी बहती गंगा में हाथ धो ले।' भ्रष्टाचार को परमात्म-तत्व की तरह पवित्र बताया जाता है। कहा जाता है कि जैसे परमात्मा सर्वव्यापी है, अदृश्य है, सर्वशक्तिमान है उसी तरह भ्रष्टाचार भी अदृश्य है, सर्वशक्तिमान है एवं सर्वव्यापी है। हमारे देशवासी गलत काम को भी शास्त्र से सही ठहराने की कोशिश करते हैं। अधिक चाय पीने वाले को जब राय दी गई कि चाय हानिकारक है तो उसने जवाब दिया कि यह चाय नहीं संजीवनी बूटी है। लक्ष्मण को जब वाण लगी तो हनमान जी महाराज आसाम से जो पहाड़ उठाकर लाये थे, वह चाय बगान के ही थे। सुषेण वैद्य ने जब लक्ष्मण जी को चाय बनाकर पिलाई तो लक्ष्मण मस्त होकर खड़े हो गये। भांग पीने वाले को जब कहा गया कि तुम अभी भी भांग पीते हो तो उसने कहा कि भैयाजी, अभी आप भांग के महात्म्य को नहीं जानते। इसीलिये ऐसा कह रहे हैं, सुनें- 'गंग भंग दुइ बहन हैं, रहत सदा शिव संग, मुर्दा तारण गंग है जिन्दा तारण भंग', सियावर रामचन्द्र की जय। उसने बता दिया कि भांग, गंगा से भी ज्यादा पवित्र है, गंगा मुर्दे को तारती है, भांग तो जिन्दा व्यक्ति को तार देती है। शराब पीने वाले को जब कहा कि अब भी शराब पीते हो, तो कहता है कि भैया जी, यह शराब नहीं 'सोमरस' है। पुराने जमाने में हमारे देवता भी सोमरस का सेवन करते थे। अगर शराब सोमरस नहीं है तो आप बतायें

सोमरस क्या है? इसी प्रकार रंडीबाजी करने वाले ने भी कह दिया कि पहले मंदिरों में भी देवदासियों की प्रथा थी। देवदासियों की प्रथा अगर पवित्र थी तो इसमें क्या बुराई है! हम जब गलत को सही साबित करने के लिए इस तरह के तर्कों का आधार लेते हैं तो गलती सुधार का सवाल ही नहीं। आदमी तो सुधरे तब जब गलत को गलत स्वीकार करे। हमारे आचार्यगण भी कहते हैं कि गलती को गलती स्वीकार करना ही सुधार का प्रथम लक्षण है।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि हमारे में बुनियादी गलतियां घुस गई हैं। नतीजा यह होता है कि आगे उन गलतियों का ही विकास एवं विस्तार होता है।

हमारे देश ने एक व्यवस्था दी कि श्रेष्ठजन जैसा आचरण करेंगे, साधारण आदमी उसी का अनुसरण करेगा। आज हमारे देश में प्रधानमंत्री मुख्यमंत्री से लेकर नीचे तक भ्रष्टाचार में लिप्त पकड़े गये। पैसा देकर सांसदों को अपने पक्ष में करना, भूमि घोटाला हो या चारा घोटाला, सभी छूट जायेंगे। जिन मंत्री महोदय के घर करोड़ों रुपया नगद बरामद हुआ, वे छूट गये और निर्दोष हो गये। जनता भी इन लोगों को पुनः चुनाव में जिता देती है और ताल ठोक कर वे पुनः शासन में आ जाते हैं। गाय बैल को जहां मोटर साइकिल पर ढोया गया, स्वीकृत राशि से अधिक खर्च किया गया, लगातार कई वर्षों से घोटाला चल रहा हो और घोटाले में लिप्त रहे हों, वह भी अपने को निर्दोष साबित करने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसा क्यों? कारण भ्रष्टाचार की गंगोत्री हमारी न्याय व्यवस्था तथा न्यायालय है। हमारे सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जब शपथ लेते हैं तो कहते हैं कि 'देरी से न्याय मिलना, न्याय नहीं मिलने के बराबर है'। लेकिन होता उल्टा है कि उन्हीं न्यायाधीश महोदय के कार्यकाल में केसों की संख्या बढ़ जाती है। आज सारे देश के न्यायालयों में करोड़ों की संख्या में मुकदमे लम्बित हैं। एक मुकदमे को केवल नीचे की पहली अदालत से निर्णय कराने में दस-बीस साल लग जाते हैं तो कल्पना करिये कि सर्वोच्च न्यायालय तक जाने में कितने श्रम-समय एवं पैसे लगते होंगे। आज न तो राजनीतिज्ञों में यह इच्छा शक्ति है कि न्याय देने में शीघ्रता करनी है और न ही न्यायाधीशों में। न्यायाधीशों के पद खाली पड़े रहते हैं लम्बे लम्बे समय तक। कोई पूछे कि आखिर इसके लिये कौन जिम्मेदार है? चाहे कानून मंत्रालय हो या कोई और व्यवस्था। इस पर सख्ती से कार्यवाही होनी चाहिये कि नीचे से ऊपर तक का कोई भी न्यायाधीश का पद रिक्त नहीं रहे।

सभी न्यायालयों में मात्र ६ से ८ घंटे काम होता है। अगर न्यायालयों को दो पाली में कर दिया जाय तो केसों के निस्तारण की संख्या आसानी से दूनी हो जायेगी। कुछ न्यायाधीश लम्बी छुट्टी पर जाते हैं तो पद को रिक्त रखने के

बजाय किसी की नियुक्ति कर दी जाय ताकि न्याय प्रक्रिया लम्बित न हो। हमारे देश में अगर न्याय सस्ता तथा समय सीमा के अन्दर मिल जाय तो भ्रष्टाचार में निश्चित रूप से कमी आयेगी। आज न्याय में विलम्ब का ही कारण है कि शीघ्र बदला चुकाने के लिये गलत तथा अपराधी प्रवृत्ति के लोगों का सहारा लेना पड़ता है। यही है भ्रष्टाचार की गंगोत्री यानी जिस व्यवस्था में भ्रष्टाचार पलता है। उसको जब तक ठीक नहीं करेंगे, भ्रष्टाचार कभी दूर नहीं होगा। चाहे हमारे प्रधानमंत्री तक के लोग भ्रष्टाचार दूर करने का कितना ही आश्वासन क्यों न दें।

हमारी चुनाव व्यवस्था भी भ्रष्टाचार की गंगोत्री है। चुनाव में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपरम्पार पैसा खर्च करना, चुनाव आयोग को खर्च का गलत विवरण देना तथा बाहुबलियों और अपराधी लोगों का सहयोग लेना ही भ्रष्टाचार को जन्म देता है। जब आदमी सीमा से अधिक पैसा खर्च करके चुनाव लड़ेगा तो क्या चुनाव जीतकर भ्रष्ट आचरण से पैसा कमाना छोड़ देगा? जिन गलत और अपराधी प्रवृत्ति के लोगों के सहयोग से जीत कर जायेगा तो उनकी बात माननी ही पड़ेगी तथा उनको गलत ढंग से लाभ कराना ही पड़ेगा। अतः हमारी चुनाव व्यवस्था भी भ्रष्टाचार की गंगोत्री है।

हमारे नेता भ्रष्टाचार को मिटाने की जितनी बात कहते हैं, भ्रष्टाचार उतना ही बढ़ता जाता है। किसी ने पूछा कि भ्रष्टाचार कहां है तो बताया गया कि सारे शरीर में जख्म लगी है, दर्द कहां से उठा क्या बताऊं? यानी कहां नहीं है भ्रष्टाचार। हमारे न्याय के मन्दिर यानी न्यायालय भी इससे अछूते नहीं हैं। अब तो सही काम कराने के लिये भी बिना दक्षिणा दिये काम नहीं होगा। हमारे प्रधानमंत्री द्वारा भी अनेक अवसरों पर भ्रष्टाचार की चर्चा की गई लेकिन इस संदर्भ में जो मूल प्रश्न है वह अभी भी अनुत्तरित है। मूल प्रश्न है कि आखिर भ्रष्टाचार समाप्त कैसे होगा? यदि मात्र उपदेशों या भाषणों से भ्रष्टाचार समाप्त हो सकता तथा चरित्र निर्माण हो सकता तो इस पृथ्वी से भ्रष्टाचार कब का मिट गया होता। जहां तक हमारे भारत देश की बात है इस देश की समस्त राजनीति लगभग पूरे तौर पर काले धन पर आश्रित है। यही नहीं, भारतीय राजनीति अपराधीकरण से भी बुरी तरह ग्रस्त हो चुकी है और माफिया सरगनाओं के हाथों में पहुंचती चली जा रही है। सभी अपराधी तथा माफिया अपने अपने राजनेताओं की छत्रछाया में फल फूल रहे हैं। कारण राजनेताओं का दोहरा चरित्र है। बात कहेंगे भ्रष्टाचार मिटाने की लेकिन स्वयं भ्रष्ट आचरण में लिप्त रहेंगे।

ऐसी स्थिति में हमारे देश के सामने जो भयावह प्रश्न है वह है कि यह बीमारी दूर कैसे होगी? कौन करेगा? जिनसे हम दूर करने की अपेक्षा करते हैं वे स्वयं इसमें आकंठ डूबे हुये हैं। वेश्या का गीता और रामायण पर उपदेश श्रोताओं

पर कितना प्रभावी होगा! हे गीता और रामायण पर प्रवचन करने वालों, अपने चरित्र को संभाल कर रखो।

अब तो कोई महात्मा गांधी ही पैदा होकर उच्च नैतिक चरित्र का उदाहरण पेश कर सकता है। गांधी ने ऐसी कोई बात नहीं कही जो अपने जीवन में उतार न सके। गांधी को दिवंगत हुये अभी मात्र ५२ साल ही हुये लेकिन इस देश में गांधी प्रत्येक दिन मर रहा है यानी प्रत्येक दिन हमारा भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। जितना ही भ्रष्टाचार बढ़ता जायेगा, उतना ही गांधी मरता जायगा। अब तो गांधी केवल अपने जन्म एवं मृत्यु के दिन ही याद किये जाते हैं। बाकी दिनों में गांधी कहां जीवित हैं? हमारे करेन्सी नोट पर गांधी का चित्र देकर या कार्यालयों में गांधी का चित्र लगा कर हम केवल एक औपचारिकता पूरी करते हैं। गांधी के आचरण एवं उपदेशों से किसी को कोई लेना देना नहीं है।

अभी अभी तहलका डाट काम ने भ्रष्टाचार को उजागर करके एक भूचाल पैदा कर दिया। एक ऐसी राजनीतिक पार्टी का अध्यक्ष जिसकी सरकार हो, पैसा स्वयं ले रहा है। दूसरी पार्टी की अध्यक्षा जो सरकार में शामिल है वह भी ले रही है। रक्षा से जुड़े उच्चाधिकारी भी लेन देन में शामिल हैं। तहलका डाट काम ने यह साबित कर दिया कि भ्रष्टाचार की जड़ें कितनी गहरी हैं। जिनके कंधों पर देश के शासन एवं सुरक्षा का भार है वे भी भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे हुये हैं। कैसी विडम्बना है कि हमारे देश में रंगे हाथ पकड़े जाने के बाद भी लोग अपने को पाक साफ बताते हैं।

अब तो प्रभु से यही प्रार्थना कर सकता हूं कि हे प्रभु! एक गांधी नहीं अनेकों गांधी भेजो जो समाज एवं देश के हर क्षेत्र में सच्चरित्रता का उदाहरण पेश करें तथा नैतिक आचरण अपनाने की प्रेरणा देवें या कोई देवी दुर्गा भेजो जो भ्रष्ट आचरण वालों का नाश करे ताकि बचे लोग संभल जायं। इस देश में सब कुछ है फिर भी हम विपन्न हैं, बेरोजगार हैं और हर देशवासी कर्जदार है। एक संकल्पशक्ति जागृत करने की आवश्यकता है जो इस भयंकर बीमारी से देश का उद्धार कर सके।

◆

भ्रष्टाचार एवं आतंकवाद

भ्रष्टाचार क्या है इसको सही सही परिभाषित करना बड़ा कठिन है। यों हम कह सकते हैं कि कानून की निगाह में ऊपरी पैसा लेना अपराध है और यहीं से भ्रष्टाचार पनपता है। अगर काम को अधिकारी या नेता ने समय से नहीं निपटाया तो इसका सीधा मतलब है कि उस अधिकारी या नेता की उस काम को निपटाने के लिये कुछ अपेक्षायें हैं। जब उस काम को करने के लिये उस अधिकारी को तनख्वाह और उस नेता को अधिकार मिले हुये हैं तो अलग से पाने की अपेक्षा करना ही भ्रष्टाचार है। एक विद्वान ने कहा कि निःसन्देह नियम कानून अच्छे होने चाहिये लेकिन नियम कानून ही अच्छे होकर क्या करेंगे अगर उसे लागू करने वाला ईमानदार और चरित्रवान न हो। यहां हमने चरित्रवान इसलिये जोड़ा कि किसी महिला का काम करने के लिये उसके जिस्म के साथ दुराचार करना भी भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है, भले ही उसके काम के लिये पैसा न लिया हो। हम भ्रष्टाचार को व्यवस्था में देखते हैं लेकिन उस व्यवस्था को नियंत्रित करने वालों के भ्रष्टाचार की अनदेखी करते हैं।

जब भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार हो जाए तो भ्रष्टाचार को दूर करना अत्यन्त कठिन हो जायगा। आजकल ईमानदारी की परिभाषा बदल गई है। ईमानदार वह नहीं है जो पैसा नहीं लेता। ईमानदार वह भी है जो पकड़ा नहीं जाता और कानून की निगाह में उसका जुर्म साबित नहीं हो जाता। फिर इस देश में जुर्म साबित करना भी तो अत्यन्त कठिन कार्य है कारण झगड़ों का निपटारा न्यायालयों द्वारा होने में इतना विलम्ब होता है कि बाप मुकदमा दाखिल करे तो बेटा उसका फैसला सुने। आज तक मुकदमों के समयबद्ध निपटाने की कोई कारगर योजना नहीं बनी और न यह व्यवस्था हुई किं नये मुकदमें तो कम से कम समय सीमा के अन्दर निपट जायें। आखिर विदेशों में कैसे छः माह के अन्दर दोषी सजा पा जाता है? जब हमारे सामने विभिन्न देशों की मिसाल है मुकदमों को समय से निपटाने की और हमारे देश में वह व्यवस्था लागू नहीं हो पा रही है तो निश्चित है कि हमारे नेताओं एवं अधिकारियों की इच्छाशक्ति में कमी है। सच पूछें तो

न्याय में देर भी भ्रष्टाचार के फैलने का मुख्य कारण है। अगर मुकदमें समय से निपट जायं तो व्यक्ति में नियम कानून के उल्लंघन में भय रहेगा वर्ना तो भ्रष्टाचार में लिप्त रहेगा ही।

हमारे देश के सर्वोच्च नेता और अधिकारी कितने कितने भ्रष्ट आचरण में लिप्त पाये गये लेकिन हुआ क्या? न्याय में देरी के कारण वे सारे साक्ष्यों को मिटा देते हैं चाहे मरवाकर या पैसे का लालच देकर। हमारे देश में ऐसे भ्रष्ट नेता अपने पैसे के बल पर पुनः चुनाव भी जीत जाते हैं और सर्वोच्च पदों पर आसीन हो जाते हैं। ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था को यही कहेंगे कि जब गंगोत्री ही गंदी हो जायगी तो गंगा के पवित्र रहने की संभावना क्षीण हो जायगी।

आज गांधी, नेहरू, शास्त्री सरीखे नेता कहां मिलेंगे जिनका अपना जीवन सब तरह से पवित्र था। उनके आचरण जनता के लिये अनुकरणीय थे। व्यक्ति आचरण से सीखता है न कि आपके भाषण या प्रवचन से। आज सारे नेता भाषण देने में प्रवीण हैं लेकिन उनका व्यक्तिगत जीवन दूषित है। अतः आज राजनीति 'सत्ता से सेवा' का माध्यम न होकर एक व्यवसाय हो गई है। राजनेताओं एवं अधिकारियों के पास अथाह पैसा है फिर भी देशवासियों को उपदेश देना उनका हक है।

यह तो माना कि सारी व्यवस्था ही दूषित हो गई है लेकिन यह व्यवस्था सुधरेगी कैसे? भ्रष्टाचार मिटेगा कैसे? प्रत्येक चीज ऊपर से नीचे प्रवाहित हो रही है। जब तक ऊपर का व्यक्ति सुधरेगा नहीं, तब तक नीचे वालों के सुधरने की अपेक्षा करना ही दिवा स्वप्न है। ऊपर के व्यक्ति को पहले सुधरना होगा। हमें सुविधा की राजनीति छोड़कर सिद्धान्तों की राजनीति करनी होगी। जब तक हम सिद्धान्तों के लिये सुविधाओं का त्याग नहीं करेंगे, हमारे आचरण में न तो शुचिता आयेगी और न व्यवस्था कभी सुधर पायेगी।

डॉ० सम्पूर्णानन्द जी कहा करते थे कि लेने की भी तीन व्यवस्थाएं प्रचलित हैं। जैसे जबराना, नजराना एवु शुकराना। जब लोगों ने उनसे पूछा कि इसका क्या अर्थ है तो उन्होंने बताया कि मुहँमाँगा पैसा लेंगे और काम करेंगे यह है जबराना। एक निश्चित राशि मिलने पर काम करेंगे, यह है नजराना और काम होने पर किसी ने कमोबेश देकर अपना शुक्रिया अदा कर दिया तो वह शुकराना हो गया। वे कहा करते थे कि शुकराना तो क्षम्य है कारण देने वाला भी स्वेच्छा से देता है लेकिन पहले के दोनों जबराना एवं नजराना तो अक्षम्य अपराध हैं कारण दिये बिना काम ही नहीं होगा बल्कि काम में बाधा उत्पन्न हो जायेगी। नीचे से फाइल अगर गलत ढंग से चली तो ऊपर वाले की हिम्मत नहीं कि उस फाइल में विपरीत आदेश पारित कर दे और नतीजा है कि उसे जबराना एवं नजराना देने को बाध्य

होना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि भ्रष्टाचार में जीना रहना हमारी नियति हो गई है। कोई गांधी, शास्त्री, पटेल पैदा होगा तो ही यह मिट सकता है, वरना हमें तो इसी व्यवस्था में मजबूरीवश रहना ही पड़ेगा।

आतंक क्या है? अगर इसको परिभाषित करना हो तो हम कह सकते हैं कि भय दिखाकर अपना काम कराना ही आतंकवाद है। हमारे देश में स्वर्ग और नरक की जो व्यवस्था दी गई है उसमें भी स्वर्ग माने लालच और नरक माने भय। इसी प्रकार आधुनिक समय में भ्रष्टाचार और आतंकवाद भी लालच और भय की श्रेणी में आते हैं।

स्वर्ग और नरक की, यानी लालच और भय की परिकल्पना तो प्रारम्भ में थी लेकिन बाद में भगवान बुद्ध और भगवान महावीर ने दो व्यवस्थाएं देकर एक बहुत बड़ी कमी पूरी कर दी। भगवान महावीर ने अहिंसा दी और भगवान बुद्ध ने करुणा। दूसरे के दुःख से द्रवित होना ही करुणा और अहिंसा में बिना हिंसा के हृदय परिवर्तन करना है। करुणा उसी में जागृत होगी जो दूसरे के दुःख से दुःखी होगा और अहिंसक वही हो सकेगा जिसमें नाम मात्र का भी डर नहीं होगा। अहिंसक का आत्मबल शस्त्रबल से कहीं अधिक बलवान होगा। आजकल आतंकवाद इतने जोरों पर फैला है कि अपराधियों को छोड़ने की शर्त रखी जा रही है। अपनी बात को मनवाने के लिए आतंकवादियों को प्रेरित किया जाता है ताकि नियमित व्यवस्था को वे अव्यवस्थित कर दें और अपनी बात को मनवाने के लिए प्रभावित कर दें। इस प्रकार अपना काम कराने के लिए या अपनी बात मनवाने के लिए भ्रष्टाचार और आतंकवाद में से किसी को भी न्यायसंगत एवं शास्त्रसम्मत नहीं कहा जा सकता। कुछ भ्रष्टाचारियों एवं आतंकियों को मार गिराने से भी न भ्रष्टाचार कम होता है ओर न आतंकवाद में कमी आती है। हम जितना ही इन दोनों को कम करना चाहते हैं, उतना ही अधिक ये फैलते जाते हैं और दिनों दिन व्यापक होते जाते हैं। भय और लालच से तात्कालिक लाभ भले ही हो सकते हैं लेकिन सामाजिक मूल्यों का सर्वथा अवमूल्यन हो जाता है। आतंकवाद में हत्याएं स्वच्छन्द रूप से होती हैं और जिन लोगों को पकड़ा गया तो यह देखा गया कि बहुत कम उम्र के लोग गुमराह कर दिये जाते हैं और अपनी जान हथेली पर रखकर आतंकवाद का आश्रय लेते हैं। देखते-देखते लगभग २० वर्षों के अन्दर भ्रष्टाचार एवं आतकंवाद इतना अधिक फैल गया कि अब भ्रष्टाचार तो शिष्टाचार हो गया और आतंकियों की इतनी हिम्मत हो गई कि वे अमेरिका जैसे दुदृढ़ एवं सुसम्पन्न राष्ट्र को भी अपनी चपेट में ले लिये। अमेरिका जब आतंकवाद का शिकार हुआ तो उसे समझ में आया कि आतंकवाद कितनी बुरी चीज है और निरीह प्राणियों की हत्या करना और भय का माहौल खड़ा

करना कितना बड़ा अपराध है। यों तो विश्व के सभी राष्ट्र आतंकवाद को जड़ से समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प हैं किन्तु कुछ राष्ट्र आतंकवाद को समाप्त करने के नाम पर छद्म रूप से आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। उसके पीछे उनकी दो ही राजनीति होती है। एक तो यह कि उनका उनके देश पर प्रभुत्व बढ़े और दूसरा यह कि उनकी बात मानने के लिए वह देश मजबूर हो जाए।

गांधी जी कहा करते थे कि सही लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मार्ग भी सही होना चाहिए। लेकिन भ्रष्टाचार और आतंकवाद लक्ष्य तक पहुंचने के सर्वथा गलत रास्ते हैं। भ्रष्टाचार एवं आतंकवाद किसी भी हालत में किसी भी देश की अच्छी संस्कृति नहीं हो सकते। इसका अनुसरण करना सर्वथा गलत होगा, अतः सर्वथा त्याज्य है।

◆

सुविधाभोगी राजनीति और देशहित

देश के सुचारु रूप से संचालन के लिए नियम कानून अच्छे होने चाहिए लेकिन सबसे बड़ी बात है अधिकारियों का अच्छा होना। आखिर नियम ठीक होकर भी क्या होगा, अगर उसे लागू करनेवाले ईमानदार और चरित्रवान न हों। हम भ्रष्टाचार को व्यवस्था में देख रहे हैं लेकिन उस व्यवस्था को नियंत्रित करने वालों के भ्रष्टाचार की अनदेखी कर रहे हैं।

आज हमारे देश में अगर किसी एक क्षेत्र का बोलबाला और आधिपत्य है तो केवल राजनीति एवं राजनीतिज्ञों का। राजनीति एवं राजनीतिज्ञों के सामने सब बौने हैं, चाहे वे किसी क्षेत्र के हों। जैसे धार्मिक क्षेत्र के शंकराचार्य हों या विज्ञान क्षेत्र के वैज्ञानिक, उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र के सर्वोच्च प्रतिनिधि हों या साहित्य क्षेत्र के बुद्धिजीवी। हमारे देश की परम्परा रही है कि राजनीति एवं राजनीतिज्ञों को सही एवं दुरुस्त रखने के लिए धर्माचार्यों एवं धर्मव्यवस्था का अंकुश रहा है। आज यह अंकुश न केवल ढीला हो गया, बल्कि बदनाम यानी साम्प्रदायिक हो गया है। आज एक पार्टी दूसरे को साम्प्रदायिक कहती है एवं अपने को धर्म निरपेक्ष मानती है। जिसको साम्प्रदायिक बताया जा रहा है वह इससे इनकार करती है। राजनीति दो धुरियों में बंट कर रह गयी है। साम्प्रदायिक बनाम धर्म निरपेक्ष। लेकिन आज तक राष्ट्रीय स्तर पर न तो साम्प्रदायिक और न धर्मनिरपेक्ष की परिभाषा तय हो पायी और न यह तय हो पाया कि अमुक पार्टी साम्प्रदायिक है या नहीं। साम्प्रदायिकता को विरोध का हथकण्डा बना दिया गया। वे इस बात को अच्छी तरह समझ रहे हैं कि अगर साम्प्रदायिकता की परिभाषा स्थिर हो गयी और अमुक पार्टी उनकी साम्प्रदायिक परिभाषा से अलग हो गयी तो फिर विरोध का मुद्दा क्या रहेगा। मुझे इस अवसर पर वाराणसी की एक सच्ची घटना का स्मरण हो रहा है। १९४७ के पहले की बात है। मोतीझील के राजा मोतीचन्द जी वाराणसी के सबसे बड़े रईस थे। वाराणसी में कोढ़ के रोगियों की संख्या अत्यधिक थी। ज्यादातर कोढ़ के रोगी भीख मांगने का काम करते थे। उन्होंने जर्मनी से विश्व के कोढ़ के सबसे बड़े चिकित्सक को बुलाया और उनकी

हार्दिक इच्छा थी कि वाराणसी में कोढ़ के रोगियों का इलाज करा दूं। उन्होंने सारे शहर में मुनादी पिटवा दी कि अमुक तिथि को अमुक स्थान पर कोढ़ रोगियों का निःशुल्क इलाज होगा। निश्चित तिथि पर कुछ भले सम्पन्न घर के लोग आये लेकिन भीख मांगनेवाला एक भी रोगी नहीं आया। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि क्या बात है? रोगियों (भिखारियों)को सूचना मिली या नहीं? उन्होंने पुनः जानकारी हेतु भिखमंगों के पास अपने दूत भेजे और जो जानकारी दूत ने आकर दी उससे राजा मोतीचन्द जी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दूत ने आकर बताया कि सभी कुष्ठ रोगियों ने एक स्वर से कहा कि अगर हमारा कुष्ठ रोग ठीक हो गया तो हमें भीख कौन देगा? यानी भीख मांगना उनकी नियति हो गयी। ठीक इसी प्रकार किसी दूसरी पार्टी को साम्प्रदायिक बताना हमारी नियति हो गयी। अगर साम्प्रदायिकता का मुद्दा निर्णीत हो गया तो विरोध का मुद्दा फिर कहां से लायेंगे। इस तरह की राजनीति में देशहित कितना सुरक्षित है, इसे आसानी से समझा जा सकता है।

हमारे देश की मान्यता रही है कि पद से मद बढ़ता है और है भी सही। पद पर रहनेवाले का मद न तो बढ़े इसके लिये चरित्रवान विद्वान धर्माचार्यों को दिशा निर्देश का कार्यभार दिया गया। लेकिन हमारे देश की यह पवित्र परम्परा बदनाम एवं खण्डित हो गयी। नतीजा हुआ कि राजनीति में ऐसे लोगों की बाढ़ आ गयी जो स्वयं तो अपराधी एवं बेईमान हैं लेकिन भाषण नैतिकता एवं ईमानदारी का देते हैं। मनसा वाचा कर्मणा में जब एकरूपता रहती है तभी हमारे देश ने उस व्यक्ति को महात्मा माना, लेकिन आज ऐसे व्यक्तियों का लोप हो गया। राजनीति पेशा एवं व्यवसाय हो गयी। आज जैसे व्यापारी एवं उद्योगपति कमाने के लिए व्यवसाय करते हैं ठीक उसी प्रकार राजनीति हो गयी है। नतीजा हुआ कि चुनाव में अन्धाधुन्ध पैसे खर्च किया और अगर सत्ता में पहुंच गये तो जो खर्च किया उसका कई गुना वसूल कर लिया। कहां गयी सत्ता से सेवा करने की भावना?

राजनीति में वही व्यक्ति आता था जो सेवा भावना से ओत-प्रोत होता था। अपनी सारी क्षमता देशहित में लगाता था। अपने चरित्र से देशवासियों को प्रभावित करता था। बात बहुत पुरानी नहीं है। आज भी ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिन्होंने गांधी, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आदि को देखा होगा और जिन्होंने न देखा होगा तो उनके चरित्र, त्याग, बलिदान, योग्यता एवं देशहित के लिए समर्पण की गाथाएं पढ़ी एवं सुनी होंगी। गुलाम देश ने चरित्रवान देशभक्त पैदा किये और आजाद देश ने जैसे चरित्रवान एवं देशभक्त पैदा किया उन्हें आप देख ही रहे हैं। आज सचाई एवं नैतिकता का उपदेश वे दे रहे हैं जिन्होंने न कभी सचाई एवं

नैतिकता का जीवन बिताया और न साथ वालों पर अच्छे आचरण की छाप छोड़ पाये। आज संगीनों के साये में हमारे राजनेता क्यों चल रहे हैं? कारण है आत्मबल एवं चरित्र बल का अभाव। आज सिद्धान्तों की राजनीति का लोप हो गया और उसकी जगह आ गयी सुविधा की राजनीति। ऐसे-ऐसे बेमेल गठबन्धन शासन में हैं कि उनसे देशहित की अपेक्षा करना दिवास्वप्न जैसा लग रहा है।

अगर गंगोत्री दूषित हो जाय तो गंगा के पवित्र रहने की कल्पना करना ही गलत होगा। प्रकृति का नियम है कि व्यवस्था ऊपर से नीचे की ओर चलती है। अगर शासन के सर्वोच्च शिखर पर बैठा व्यक्ति चरित्रवान, बुद्धिमान एवं ईमानदार होगा तो उसके अधीनस्थों पर उसकी छाप पड़कर रहेगी और नीचे के अधीनस्थ लोग भी तुलनात्मक दृष्टि से अधिक चरित्रवान एवं ईमानदार होंगे। आज शासन के सर्वोच्च शिखर पर बैठे व्यक्ति ही कलंकित हो गये जिसका नतीजा हुआ कि भ्रष्टाचार इतना व्यापक हो गया कि अधिकांश इससे अछूते नहीं रह सके। अन्य व्यक्ति ने भ्रष्टाचार पर तीखा कटाक्ष करते हुए कहा कि भ्रष्टाचार को कभी परमात्मा का परम तत्व है। परमात्मा है, सर्वशक्तिमान है और दृष्टान्त।' इसी प्रकार भ्रष्टाचार की बीमारी इतनी व्यापक हो गयी कि कोई इससे अछूता नहीं रह गया। एक प्रसंग और ध्यान में आ रहा है कि कोई व्यक्ति 'काबा' की तरफ पैर करके सो रहा था तो दूसरे ने उसे उलाहना दिया कि पवित्र 'काबा' (मुसलमानों का तीर्थ स्थल) की तरफ पैर करके सो रहा है तो सोये व्यक्ति ने कहा कि मेरा पैर उधर कर दो जिधर 'काबा' न होवे और उसका पैर जिस दिशा में घुमाया गया उधर ही काबा आने लग गया। इसका भी तात्पर्य यही कि जिधर देखो उधर भ्रष्टाचार। अब इसका इलाज क्या है।

हमें देश में ऐसे लोगों को शासन व्यवस्था सौंपनी होगी जो निर्दोष एवं निष्कलंक हैं। आज अगर कुछ लोग निर्दोष एवं निष्कलंक हैं तो उन्हें सिद्धान्तों से समझौता करना पड़ रहा है। नतीजा हो रहा है कि उनका चरित्र अधीनस्थ लोगों पर नैतिकता की छाप नहीं छोड़ पा रहा है। गांधीजी कहा करते थे कि साध्य पाने के लिए साधन भी पवित्र होने चाहिए। अब गांधी की बात कौन सुनता है? गांधी ठीक उसी प्रकार अप्रासंगिक होते जा रहे हैं जैसे हमारे अन्य देवतागण। हमारे देवतागण मन्दिर की चहारदीवारी में सिमटकर रह गये हैं। उनकी आरती पूजा ने हमें धार्मिक बना दिंया। हमने उनके आचरण से कुछ भी सीखना बन्द कर दिया। ठीक उसी प्रकार सभी कार्यालयों में गांधी की तस्वीर टांग दी गयी। गांधी के जन्मदिन एवं पुण्य तिथि पर राजघाट में प्रार्थना सभा आयोजित हो गयी। थोड़ी रामधुन कर ली। अखबारों में गांधी के चित्र एवं लेख छप गये। लेकिन गांधी जिन सिद्धान्तों के लिए संघर्ष करवे थे वह संघर्ष है कहां?

जिस देश के पास अपार बौद्धिक सम्पदा हो, श्रम सम्पदा हो, खनिज सम्पदा हो एवं वन सम्पदा हो वह भिखमंगा बनकर कर्ज लेकर ब्याज अदा करे इससे बढ़कर हमारे लिए शर्म की बात और क्या होगी? आज देश को एक ऐसे नेता की जरूरत है जो अपने चरित्र से देशवासियों के नाम सम्बोधन कर सके कि मेरे देशवासियों, हमें देश के तीन सबसे प्रमुख रोगों को मिटाना है और वे हैं-गरीबी, बेरोजगारी एवं अशिक्षा। गरीबी, बेरोजगारी मिटेगी उद्यम से। हमें कारखानों में तथा खेतों में पूरी ईमानदारी एवं मेहनत से काम करना होगा। न कोई हड़ताल करेगा और तालाबन्दी। खेतों में भी पूरी मेहनत एवं ईमानदारी से उपज पैदा करेंगे ताकि आयात बन्द हो जाय, निर्यात में सक्षम हो जायं। अशिक्षा को दूर करने के लिये सभी को शिक्षित करने की प्रक्रिया विकसित करनी होगी।

◆

बढ़ती जनसंख्या

हमारे धर्माचार्य बताते हैं कि मानव जीवन बड़ा दुर्लभ हैं 'बड़े भाग मानुष तन पावा'। देवगण भी मानव जीवन में आने के लिए तरसते हैं। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद कहीं मानव जीवन मिलता है। केवल मानव जीवन ही कर्मयोनि है बाकी सभी योनियां भोगयोनि है। मानव जीवन में ही दम है कि अपने कर्म-बुद्धि-विवेक-त्याग-तपस्या आदि से अपनी भाग्य की रेखायें बदल सकता है, अपने भाग्य में लिखे को मिटा सकता है तथा अपने नये भाग्य का निर्माण कर सकता है। बाकी सभी योनियां इस मानव के अधीन हैं। तो फिर ऐसे दुर्लभ मानव जीवन की श्रृंखला को हम क्यों सीमित करना चाहते हैं? यह एक गंभीर मसला है जिसे धर्माचार्यों एवं राजनीतिज्ञों को मिलकर समझना है तथा इसका समाधान निकालना है।

मैं गर्मियों में ऋषिकेश जाता हूं। वहां गीता भवन में परम सन्त स्वामी श्री रामसुख दास जी महाराज का प्रवचन निरन्तर होता है। सन्त प्रवर भ्रूण हत्या को जीव हत्या मानते हैं, अतः इसे जघन्य अपराध बताते हैं। आबादी भी घटाने की बात नहीं करते बल्कि इसे बढ़ाने की बात कहते हैं। परिवार में जब तक चार-पांच व्यक्ति न हों तो परिवार कैसे चलेगा? कौन खेती करेगा, कौन व्यवसाय करेगा, कौन घर की देखरेख करेगा, आदि आदि। स्वामी जी महाराज परम सन्त हैं परम विद्वान हैं। वे जो कहते हैं समाज एवं देश हित में कहते हैं। लेकिन बढ़ती आबादी एक गम्भीर समस्या कैसे है, कृपया इसका अवलोकन करें।

आज भी देश की बहुत बड़ी संख्या यानी लगभग ३५ करोड़ की जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन यापन कर रही है। दोनों समय भरपेट भोजन भी इतनी बड़ी संख्या को उपलब्ध नहीं है। इस संख्या में अशिक्षित, बेरोजगार एवं गरीब भी है। इस ३५ करोड़ की विशाल संख्या को क्या यों ही कष्ट भोगने दिया जाय तथा कष्ट भोगने वालों की संख्या बढ़ाने के लिये मानव जीवन को असीमित रूप से पैदा करना जारी रखा जाय? क्या उन्हें अशिक्षित, गरीब एवं बेरोजगार रहने दिया जाय? क्या उन्हें अपनी मौत स्वयं मरने दिया जाय? या

बाकी ६५ करोड़ की आबादी का यह दायित्व बनता है कि ३५ करोड़ की आबादी को गरीबी रेखा के ऊपर लाने का कोई नियोजित कार्यक्रम बनाया जाय। लेकिन यह दायित्व लेगा कौन? आजादी के इतने दिनों बाद भी देश में गरीबी, बेरोजगारी तथा अशिक्षा रहे तो यह देश पर बहुत बड़ा कलंक है। यह मिटेगा कैसे?

हमारे देश में स्वयं कुछ करने के बजाय हम दूसरे को दोषी ठहराते हैं। इस देश में सभी साधु, संन्यासी तथा बाबा लोगों की संख्या करीब एक करोड़ से ऊपर होगी। क्या ये साधु संन्यासी एवं बाबा देश से अशिक्षा दूर करने की जिम्मेदारी नहीं ले सकते। अपने अपने धर्म सम्प्रदाय के शीर्ष आचार्यगण इस समस्या पर गंभीरता से विचार करें तो आने वाले केवल पांच-दस सालों में अशिक्षा को दूर किया जा सकता है। हमने राम मन्दिर निर्माण के मसले को लेकर सभी धर्माचार्यों एवं धर्मावलम्बियों को संगठित किया। मन्दिर तो नहीं बन सका लेकिन मन्दिर के नाम पर राजनीति चालू हो गई। क्या गांवों में घरेलू उद्योग, शिल्प आदि का निर्माण करके गरीबी एवं बेरोजगारी दूर नहीं की जा सकती?

हमारी अशिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं में कमी जनसंख्या वृद्धि में सहायक हैं। जितनी अशिक्षा दूर होती जायगी तथा हम शिक्षित होते जायेंगे, हम अपने परिवार को स्वयं ही सीमित करने का प्रयास करते जायेंगे। शिक्षा से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण होगा तथा ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग की स्थापना से गरीबी एवं बेरोजगारी दूर होगी। ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना से स्थानीय संसाधन काम में आयेंगे तथा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। इस कार्य में हमारे राजनीतिज्ञों को सेवा एवं समर्पण के भाव से मार्ग निर्देशन देना होगा तथा साधन उपलब्ध कराने होंगे। हमारे उद्यमी बन्धु जो उद्योग चलाते हैं उन्हें भी एक एक गांव के सर्वांगीण विकास की जिम्मेदारी लेनी होगी।

बढ़ती आबादी की समस्या सारी दुनिया को परेशान कर रही है। लेकिन भारत जैसे विकासशील देश के लिये यह एक बड़ा संकट है। आबादी रोकने के चीन, वियतनाम और ईरान के अनुभवों से भारत सबक ले सकता है। शिक्षा और स्वास्थ्य पर ध्यान देकर आबादी की बढ़त को रोका जा सकता है। उन देशों की तरह भारत को भी यही तरीका अपनाना होगा।

देश में हुई जनगणना के आंकड़ों का इन्तजार है लेकिन हमारी आबादी एक अरब के आंकड़े को पार कर ही चुकी है। केन्द्र ने पिछले वर्ष एक राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का गठन भी कर लिया है जिसका लक्ष्य २०४५ तक भारत की जनसंख्या को स्थिर कर देने का है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के आंकड़े बताते हैं कि दुनिया की आबादी १८०४ में एक अरब, १९२७ में दो अरब, १९६० में तीन अरब, १९७४ में चार अरब, और १९८७

में पांच अरब थी जो १९९९ में बढ़कर ६ अरब हो गई। इसका मतलब हुआ कि १९६० एवं १९९९ के बीच यानी ३९ वर्षों में दुनिया की आबादी दूनी हो गई। जब हम इसके पहले की वृद्धि दरों से इसकी तुलना करते हैं तो समस्या की गंभीरता और भी उजागर हो जाती है। विश्व की जनसंख्या को एक अरब से दो अरब होने में १२३ साल लगे, दो अरब से चार अरब होने में ४७ साल लगे जबकि तीन अरब से ६ अरब होने में मात्र ३९ साल ही लगे।

दुनिया में जनसंख्या वृद्धि की दर एक सी नहीं है। विकसित देशों में जहां १९६० से १९९९ के बीच जनसंख्या की औसत वृद्धि दर १.८ फीसदी से घटकर ०.७ फीसदी हो गई वहीं विकासशील देशों में यह दर २.१ फीसदी से ऊपर पहुंच गई। अनुमान लगाया गया है कि १९९२ से २०२५ के बीच विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों की कुल आबादी में १६ गुना अधिक बढ़ोत्तरी होगी। इस संदर्भ में यहां गौरतलब है कि दुनिया की कुल आबादी का लगभग ५८ फीसदी विकासशील देशों में रहता है पर दुनिया की सकल राष्ट्रीय उत्पाद के मात्र ५ फीसदी पर ही इन देशों का नियंत्रण है। दूसरी तरफ विकसित देशों का दुनिया के सकल राष्ट्रीय उत्पाद के ७९ फीसदी पर कब्जा है जबकि वहां दुनिया की कुल आबादी का केवल १६ फीसदी ही मौजूद है। संतोष का विषय है कि पिछले वर्षों में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के प्रति जागरूकता एवं सक्रियता बढ़ी है और जनसंख्या वृद्धि दर मंद होने लगी है।

विभिन्न देशों की जनसंख्या नियंत्रण की कोशिशों से कुछ समान बातें उभर कर आती हैं। इतना तो बिलकुल साफ हो जाता है कि जनसंख्या नियंत्रण अलग-थलग या जोर जबरदस्ती का मुद्दा नहीं है। यह सामाजिक, आर्थिक विकास और रूपान्तरण का अभिन्न हिस्सा है। बेहतर स्वास्थ्य सुविधा के कारण जब शिशु मृत्युदर घटती है, नई चेतना से जब लड़का लड़की का भेद मिटता है, औरतें जब शिक्षित होती हैं और परिवार तथा समाज में उनकी स्थिति मजबूत होती है तब जन्मदर घटती है। ये सभी प्रोत्साहित करने वाले कार्यक्रम अपनाकर भारत सहित कोई देश जनसंख्या नियंत्रण की दिशा में कदम बढ़ा सकता है। इस संदर्भ में प्रो० अमर्त्य सेन के विचार हमारे लिए विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। प्रो० सेन कहते हैं कि यहां पर शिक्षा तथा जन्म दर के बीच सम्बन्ध बिल्कुल स्पष्ट हैं। शिक्षित औरतों की बार-बार बच्चों की लालन-पालन में फंसने की अनिच्छा से जन्मदर पर असर पड़ता है। शिक्षित महिलाओं के कारण केरल में जन्म दर की कमी का उदाहरण अत्यन्त उल्लेखनीय है। यह शेष भारत के लिए बहुत महत्वपूर्ण सबक है। जहां सारे भारत में जन्म दर ३.७ फीसदी है, वहीं केरल में यह १.८ फीसदी है। इस बात के भी प्रमाण हैं कि मृत्यु दर घटने से जन्म

दर में कमी आती है। मृत्यु दर ऊंची रहने पर लोग इसलिए अधिक बच्चा पैदा करते हैं ताकि कोई तो बचे। यह भी साबित हो चुका है कि महिलाओं की साक्षरता बढ़ने से मृत्यु दर घटाने में काफी मदद मिलती है।

अगर हमारे देश को तीव्र गति से विकास करना है तो उसे जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण करना ही होगा। कारण जनसंख्या बढ़े और हम उसकी देखभाल और भरण पोषण नहीं कर सकें तो यह कलंक पूरे देश पर लगता है। हम उतनी ही जनसंख्या वृद्धि करेंगे जितने का भरण-पोषण, सुरक्षा कर सकें। साथ ही उनको न बेरोजगार रहने दें, न गरीब रहने दें और न अशिक्षित रहने देंगें।

♦

प्रकट गुप्त

आपको प्रकट गुप्त (open secret) के शीर्षक से आश्चर्य होता होगा कि यह क्या बला है जो प्रकट भी है तथा गुप्त भी। लेकिन हमारे देश में ऐसा देखने को आपको मिलेगा। हमारे देश में वेश्यावृत्ति पर कानूनी तौर पर प्रतिबन्ध है लेकिन देश के प्रत्येक छोटे बड़े शहर में वेश्यावृत्ति के अड्डे मिलेंगे। ऐसा भी नहीं कि सरकार या पुलिस को इसकी जानकारी नहीं। बल्कि सरकारी कर्मचारी तथा पुलिस विभाग के लोग भी उन अड्डों पर जाते हैं और यौन लाभ उठाते हैं। यहां तक भी सुना है बाकी लोग तो पैसे देते हैं लेकिन सरकारी कर्मचारी तथा पुलिस विभाग के लोग सरकारी भय दिखाकर आनन्द भी उठाते हैं और पैसा भी नहीं देते। है न यह प्रकट भी गुप्त भी? सरकारी विभाग के अनुसार गुप्त है लेकिन है प्रकट रूप से। ऐसा कानून बनाने से क्या लाभ! इस कानून में एक मूल दोष भी है। कभी वेश्यावृत्ति के अड्डेवालों से सरकारी अधिकारी या पुलिस वालों की कहा–सुनी हो गई तो छापा डलवाकर लड़कियों एवं पुरुषों को पकड़वा देते हैं और उनकी इज्जत एवं पेशे के साथ खिलवाड़ करते हैं। क्यों नहीं किसी थानेदार या सरकारी अधिकारी को पकड़ा जाता जिनकी सहमति से ही ऐसे अड्डे चल पाते हैं। ऐसे अड्डे वाले उनको निश्चित रकम देकर ही अड्डे चला पाते हैं यह सर्वविदित है। इन अड्डों में एक दोष और भी है। सरकारी अधिकारी तथा पुलिस वाले तो निर्भय होकर ऐसे अड्डों में आनन्द लेते हैं लेकिन सामान्य जन भयभीत रहते हैं कि कहीं पकड़े न जाएं। इन अड्डों का एक दूषण और है। इन वेश्याओं के कारण भी बहुत से रोग फैलते हैं तथा जो पुरुष वहां जाते हैं वे रोगग्रस्त हो जाते हैं। अगर ऐसे अड्डों को लाइसेंस दे दिया जाय तथा सभी वेश्याओं का चिकित्सकीय परीक्षण (medical test) हर पन्द्रह दिन पर आवश्यक कर दिया जाय तो सरकार की लाइसेंस फीस से आमदनी बढ़ेगी, वेश्याओं के द्वारा रोग के प्रसार में अंकुश लगेगा तथा जो व्यक्ति भी अड्डे पर जायगा, निर्भय होकर जायगा। वेश्याओं का सरकारी अधिकारी तथा पुलिस द्वारा देह शोषण भी रुकेगा या उसमें कमी आयेगी।

इसी प्रकार आयातित माल, प्रतिबंधित माल तथा चोरी का सामान भी खुलेआम बिकता है। स्मगलिंग से आयातित माल बेचना जुर्म है लेकिन सब जगह खुलेआम मिलेगा। प्रतिबंधित माल जैसे अफीम, गांजा आदि भी खुलेआम बिकते हैं। चोरी का सामान तो सब जगह बिकता ही है। सरकार एवं पुलिस को सब कुछ मालूम है लेकिन फिर भी बिकता है। कभी कभार छापा डालकर पुलिस अपना फर्ज पूरा करती है लेकिन समस्या निर्मूल नहीं होती। यह निर्मूल तभी होगी जब सम्बन्धित थानेदार या अधिकारी इसके लिये दोषी ठहराये जायेंगे। यह भी प्रकट गुप्त ही है। या तो सरकार इसे कानून सम्मत करे या इनको बिकने ही न दे। ऐसा प्रतिबन्ध लगाने से क्या फायदा जिसको सरकार लागू न कर सके और जिस कानून का पग पग पर उल्लंघन होता रहे।

इसी प्रकार 'घूस' भी एक प्रभावशाली प्रकट गुप्त है। यह सभी जानते हैं कि सरकार में किसी स्टेज में भी कोई काम बिना घूस दिये होता ही नहीं। कुछ अपवादों को छोड़ दीजिये। जिसको जहां मौका लगता है तथा वश चलता है बिना लिये दिये कुछ होता ही नहीं। हमारे यहां एक कहावत प्रचलित है कि 'घूस लेते हुये पकड़े गये तथा घूस देकर छूट गये'। हमारे देश में घूस एवं भ्रष्टाचार में भी परमात्मा का वास बताते हैं। जैसे परमात्मा अदृश्य हैं वैसे ही यह भी अदृश्य है। परमात्मा जैसे सर्वशक्तिमान हैं वैसे ही यह भी सर्वशक्तिमान है। इसी प्रकार परमात्मा जैसे सर्वव्यापी हैं वैसे ही घूस एवं भ्रष्टाचार भी सर्वव्यापी है। अतः इसमें भी परमात्मा का परम तत्व मौजूद है। घूस पर अंकुश लगाने का कोई सार्थक प्रयास किया ही नहीं गया। काम करने की समय सीमा तय हो जाय और अगर उस समय सीमा में सम्बन्धित अधिकारी ने आदेश पारित नहीं किया तो उस काम को स्वतः स्वीकृत मान लिया जाय। अगर हम यह भी कर सके तो निश्चित रूप से भ्रष्टाचार में कमी आयेगी। आज सरकारी विभाग के काम करने की कोई समय सीमा नहीं है। अतः घूस ही एकमात्र काम कराने का तरीका है। सरकार चाहे तो प्रकट गुप्त को समाप्त तो नहीं कर सकती लेकिन प्रभावी अंकुश लगा सकती है।

चुनाव आयोग के नियम तथा उसके पालन में सभी उम्मीदवारों द्वारा गलत सूचनाएं भेजी जाती हैं, गलत खर्चे दिखाये जाते हैं। जन प्रतिनिधि जन सेवा के निमित्त जाते हैं लेकिन उनके बुनियाद में झूठी घोषणाएं रहती हैं। झूठी घोषणाएं करके जो व्यक्ति जन सेवक बनेगा वह कितनी सच्ची सेवा करेगा, कौन नहीं जानता! ये ही जन सेवक जब भ्रष्टाचार मिटाने की बात करते हैं तो हास्यास्पद लगता है। भ्रष्टाचार मिटाने की जितनी ही बातें होती हैं, भ्रष्टाचार उतना ही बढ़ता जाता है। आज भ्रष्टाचार का पैमाना कोई नापना चाहेगा तो यह असंभव प्रतीत

होता है कारण अमीन से लेकर प्रधानमंत्री तक सभी दागी हो चुके हैं। यह जानते हुये भी कि भ्रष्टाचार की जड़ें सभी जगह फैल चुकी हैं, फिर भी इसे प्रकट रूप से कोई स्वीकार नहीं करता। है न यह भी प्रकट गुप्त? इसे दूर करने के लिये ईमानदारी एवं संकल्पशक्ति की आवश्यकता है।

हमारे देश में प्रायः लोगों के दोहरे चरित्र मिलेंगे। सार्वजनिक रूप कुछ और है तथा एकान्तिक चरित्र कुछ और। हमने गेरुआ वस्त्र इसलिये धारण कर रखा है कि हमारा ऐब छिपा रहे। आये दिन गेरुये वस्त्रधारियों के काले कारनामे सामने आते हैं और हम केवल अफसोस करके रह जाते हैं। अगर हम अपने को संयम में नहीं रख सकते तो हमें गेरुआ वस्त्र धारण करने की क्या आवश्यकता है! यह भी प्रकट गुप्त ही है। देखने में लगेंगे अत्यन्त संयमी लेकिन मौका मिला तो किसी भी गलत काम को करने में हिचकेंगे नहीं। गेरुआ वस्त्र पहनना और धोखा देना आप कल्पना करें कितना बड़ा अपराध है। केवल गेरुआ वस्त्रधारी ही नहीं, प्रायः सभी में चारित्रिक दोष है। जब अमेरिका जैसे सम्पन्न देश का राष्ट्रपति भी अछूता नहीं है तो कौन बचेगा। है न यह भी प्रकट गुप्त। दोहरे चरित्र का मूल कारण है बचपन से ही चोरी छिपे गलत काम करने की प्रवृत्ति। आगे के जीवन में उसी गलत प्रवृत्ति का विस्तार हो जाता है। इस दोहरे चरित्र की रोकथाम के लिये गंभीर चिंतन की आवश्यकता है।

सभी जानते हैं कि इन्होंने भ्रष्ट आचरण से पैसा या पद पाया है। लेकिन वे तब तक स्वीकार नहीं करते जब तक अन्तिम न्यायालय (सर्वोच्च न्यायालय) से सजा न पा जांय। सर्वोच्च न्यायालय का फैसला पाने में ही दस बीस साल लग जायेंगे तब तक वह व्यक्ति चुनाव जीत कर पुनः शासक बन जाता है और हमारा भाग्य विधाता हो जाता है। वह हमेशा यही कहेगा कि मैंने गलत काम नहीं किया है, मुझे बेवजह फंसाया जा रहा है। आप स्वयं देखें यह कितना बड़ा प्रकट गुप्त है। रंगे हाथ पकड़े गये। मैं किन्हीं का नाम नहीं लूंगा। आप स्वयं जानते हैं। जेल की हवा भी खा आये। पुनः भारी बहुमत से जीत कर मुख्यमंत्री की कुर्सी पर आसीन भी हैं। ऐसे प्रकट गुप्त पर इतना ही कहना चाहूंगा जो सजा पा जाता है वही चोर, बाकी सभी तो साहूकार हैं ही।

हम अपनी गलतियों एवं कमजोरियों से बीमार पड़ते हैं फिर भी अपने भाग्य को ही दोष देते हैं। गलत बात को गलत स्वीकार करना ही सुधार का प्रथम लक्षण है। हम सुधरेंगे कब जब अपनी गलती को स्वीकार करेंगे। है न यह भी प्रकट गुप्त कि हम बीमार पड़ते हैं अपनी गलतियों से लेकिन दोष देते हैं अपने भाग्य को। यह निश्चित है कि हम अपनी बीमारी का कारण अगर अपनी गल्तियों को मान लें तो सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायगी और हमारी बीमारी में भी

कमी आती जायगी। जब हम गलती करना बन्द कर देंगे तो हम बीमार भी नहीं पड़ेंगे।

इस प्रकार मैंने प्रकट गुप्त के कुछ नमूने पेश किये हैं। उसका विस्तार अन्य क्षेत्रों में भी है लेकिन हमारा अभीष्ट सभी क्षेत्रों के विस्तार से चर्चा करने का नहीं है। इस प्रकट गुप्त की सच्चाई को स्वीकार करते हुये अगर हम सुधार ला सकें या स्वयं सुधर सकें तो इसी में देश, समाज एवं व्यक्ति का हित है।

♦

आज की नाग नथैय्या

हम प्रति वर्ष नाग नथैय्या का मेला देखते हैं। श्रीमद्भागवत में कथा आती है कि एक सौ एक फनों वाला कालिय नाग नागों के निवास स्थान रमणक द्वीप को छोड़कर यमुना जी के जल में आ गया और अपने भयंकर विष से यमुना जी के जल को विषाक्त कर दिया। यमुना जी के जल को मनुष्य या जानवर पीते तो मौत की गोद में चले जाते। ऐसी स्थिति में यमुना जी के किनारे बसे मथुरा वृन्दावन में हाहाकार मच गया। भगवान कृष्ण ने यमुना जी के जल को शुद्ध करने के लिये कालिय नाग को वापस रमणक के द्वीप भेज दिया और यमुना जी का जल केवल विषहीन ही नहीं, बल्कि अमृत के समान मधुर हो गया। भगवान कृष्ण के समय से आज तक हम प्रति वर्ष नाग नथैय्या के मेले का आयोजन करते हैं।

ठीक इसी प्रकार आज के समय हमारे देश में चारों तरफ कालिय नाग के विष वमन की तरह सैकड़ों समस्याएं हमारे वातावरण एवं हमारी संस्कृति को प्रदूषित कर रही है। हम प्रतीक्षा कर रहे हैं किसी कृष्ण की जो हमें इन समस्याओं से मुक्ति दिला दे। हमारी समस्याएं हैं जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद, आर्थिक असमानता, धार्मिक कट्टरता, हमारी एक राष्ट्रभाषा का न होना, भ्रष्टाचार, चुनाव में धनबल एवं बाहुबल का प्रयोग आदि। हमें आजाद हुए आज छह दशक से अधिक समय बीत गया। हमारी आजादी के समय हमारी आर्थिक स्थिति हर क्षेत्र में चीन के मुकाबले अच्छी थी। चीन का क्षेत्रफल हमारे देश से काफी ज्यादा है तथा आबादी भी हमसे डेढ़गुनी है। फिर भी उसने साम्यवादी देश होते हुये अपनी जनसंख्या वृद्धि पर काबू पा लिया। गरीबी एवं बेरोजगारी उसके नियंत्रण में है। चीन के आम लोग अंग्रेजी भाषा जानते भी नहीं। उसका विज्ञान आज इतना समुन्नत है कि विश्व के किसी भी देश से कम नहीं है। उसका सारा विज्ञान उसकी अपनी चीनी भाषा में है। हमारे देश की हिन्दी भाषा आज भी बहुमत की भाषा है लेकिन हमारा विज्ञान अंग्रेजी भाषा में ही मिलेगा। देश की जब अपनी भाषा होती है तो उसकी एक अपनी पहचान बनती है लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद भी अंग्रेजियत नहीं गई और आज भी अंग्रेजी

जानने वालों को हम ज्यादा सम्मान एवं आदर से देखते हैं। हम विदेशी माल को अपने स्वदेशी माल से अच्छा मानते हैं। नतीजा क्या हुआ कि राष्ट्र प्रेम देशवासियों में जितना होना चाहिये, उतना नहीं है।

हमने लोकतंत्र को अपनाया। लोकतंत्र का अर्थ है देश में एक भी व्यक्ति अभावग्रस्त न रहे। यह तभी संभव है जब सभी को रोजगार उपलब्ध हो। सक्षमता निर्भर करती है सुशिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं पर। इस दिशा में कौन सा राजनेता काम कर रहा है? हमने जबसे उदारीकरण एवं वैश्वीकरण अपनाया, हमारी गरीबी एवं बेरोजगारी बढ़ गई। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण अच्छा तब होता कि हम देश को उस लायक बना पाते। घी में बड़ी ताकत है लेकिन कमजोर आदमी को खिला दें तो उसको नुकसान करेगा। कारण वह पचा नहीं पायेगा। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण ने हमारे सामने चुनौती उपस्थित कर दी है लेकिन इस चुनौती का मुकाबला हम करेंगे कैसे? कारण हमें न तो सड़कें ठीक मिली, न बिजली लगातार मिल रही है, न बिजली की दर कम है, उद्योग सरकारी बिजली पर आश्रित नहीं रह सकता, उसे तो जेनरेटर लगाना अनिवार्य है, जेनरेटर की अपनी समस्या है, अधिक लागत, आयातित डीजल की खपत बढ़ेगी तो हमारी बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च होगी, डीजल के धुएं से प्रदूषण बढ़ेगा, हमारे जेनरेटर में भी हाई स्पीड के होने के कारण टूट फूट अधिक होती है अतः हमारे देश के उत्पादकों की उत्पादन लागत बढ़ती है। हमारे देश का श्रमिक भी कामचोर हो गया। कारण उसे अनावश्यक कानूनी सुरक्षा देकर निकम्मा बना दिया गया। उसे भय नहीं है कि काम नहीं करूंगा या कम करूंगा तो निकाल दिया जाऊंगा। अगर आपने निकालने की हिम्मत दिखा दी तो हमारे न्यायालय भी मजदूरों के प्रति संवेदनशील हैं अतः पुनः बहाली का आदेश मिल जाता है। ऐसी स्थिति में कोई भी मालिक अपने कर्मचारी से पूरी निष्ठा से काम नहीं ले सकता और यह स्थिति हमारे उत्पादन एवं उत्पादन लागत को प्रभावित करती है। मजदूर संगठन (ट्रेड यूनियन) अपनी ताकत का प्रदर्शन हड़ताल कराकर दिखाते हैं जबकि उन्हें दिखाना चाहिये उत्पादन बढ़ाकर। हमारे देश के बैंक निरंकुश हैं। बैंकों या वित्तीय संस्थाओं से पैसा लेना इतना जटिल एवं श्रम-साध्य है कि कई उद्योग तो उत्पादन के पहले ही बन्द हो जाते हैं। कारण समय से उद्योग लगाने एवं चलाने के लिये पैसा नहीं मिलता। हमारे देश में विदेशों के मुकाबले बैंक की ब्याज दर भी अधिक है। अन्य अनेक कारण हैं जिनमें सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। लेकिन हमारे आज के राजनीतिज्ञ अपने वोट बैंक को सुरक्षित रखने के लिए एकमत होते नहीं और नतीजा क्या हो रहा है कि भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। आज भी देश में ३५ प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के

नीचे जीवन जीने को मजबूर हैं। जब तक देश के प्रत्येक नौजवान को काम नहीं मिलेगा, वह देश की कानून एवं व्यवस्था के लिये हमेशा समस्या बना रहेगा।

आज सबसे खतरनाक काम हो रहा है कि हमारे वोट बैंक का बंटवारा हो गया। साम्यवादियों ने जहां मजदूरों को पकड़ा, बहुजन समाज ने दलितों को, किसी ने किसानों को पकड़ा तो किसी ने मुसलमानों को, किसी ने हिन्दुओं को पकड़ा तो किसी ने व्यापारियों, गरीबों एवं बेरोजगारों को। वोट बैंक के बंटवारे के कारण हमारे प्रदेश एवं देश की साझा सरकारें हैं और हम समझौतों से सरकार चलाने को विवश हैं। सिद्धान्त हीन गठबन्धन हमारी नियति हो गई। सुविधा की राजनीति ने सिद्धान्तों को ताख पर रख दिया। अंग्रेज विदेशी थे उन्हें भारत के भविष्य की चिन्ता नहीं थी। उन्हें सत्ता के माध्यम से इस देश का शोषण करना था। उन्होंने अपनी सत्ता कायम रखने के लिये समाज का विघटन पैदा करना जरूरी समझा। उनका मंत्र था बांटो और राज्य करो (Divide and Rule)। लेकिन आजादी के बाद हमारे नेतागण सत्ता पाने की लालच में देश को कई टुकड़ों में देख रहे हैं। प्रादेशिक भावनाएं उभारने में उन्हें संकोच नहीं होता। सत्ता के मोह ने नेताओं की जीवन दृष्टि जातिवादी, प्रदेशवादी व सम्प्रदायवादी बना दी है।

देश के नागरिकों में भारतीय दृष्टि विकसित नहीं हो पाई। हिन्दू-मुस्लिम का विरोध क्या देश को प्रगति पथ पर ले जायेगा? क्या इन दोनों समुदायों का भविष्य अलग अलग है? इन प्रश्नों का जवाब हमारे राजनेताओं को देना होगा। सर्वसाधारण हिन्दू-मुसलमानों में भाईचारा प्रचलित है। वर्तमान नेताओं के चक्कर में न आकर स्थानीय आधार पर सामान्य जनों द्वारा ही हिन्दू मुस्लिम समस्या निर्मूल हो सकती है।

आज चुनाव में कितना धन खर्च किया जाता है तथा कितना स्वीकृत है सभी जानते हैं। इतना धन आता कहां से है? काला धन काम में लाया जाता है। काले धन के बल पर जो विधान सभा या संसद में चुन कर जायेगा वह क्या काला धन कमाने से बाज आयेगा? अपने खर्च से अधिक कई गुना कमायेगा और अपने अगले चुनाव के लिये तैयार करेगा। क्या इस तरीके से कभी भ्रष्टाचार खत्म होगा? क्या इससे निरन्तर बढ़ रही विषमता घटेगी? क्या इससे बेरोजगारी का अन्त होगा। जो नेता आपसी एकता कायम नहीं रख पा रहे हैं, क्या वे सौ करोड़ लोगों में परस्पर विश्वास जगा पायेंगे?

लोकतंत्र के साथ चुनाव जुड़े हैं और चुनाव होने हैं तो धन चाहिये। इसी कुतर्क पर राजनीति चलाई जा रही है। इसमें परिवर्तन किये बिना न लोकतंत्र का जन कल्याणकारी रूप निखरेगा न अवसरवादी राजनीति का अंत होगा। राजनीति के इसी रूप ने शासन में अस्थिरता पैदा की है।

हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि विस्फोटक स्थिति में पहुंच गई है। इसे नियंत्रित करना अति आवश्यक है। जब हम किसी को सुशिक्षा एवं रोजगार नहीं दे सकते तो उसे पैदा करने का अधिकार है? जो पैदा हो गये हैं उन्हें शिक्षा एवं रोजगार देना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

हमने अब तक सारी की सारी समस्याओं का वर्णन किया है। इन समस्याओं का कोई निदान है या नहीं। क्या हम प्रतीक्षा करें कि कोई कृष्ण पैदा होगा और नाग नथैय्या करेगा या हमें अपने बीच समाधान खोजना होगा। अब एकमात्र समाधान है कि राष्ट्रीय सरकार बने। राष्ट्र विकास के सिद्धान्त स्थिर हों। सभी पार्टियां एक स्वर से एकमत होकर न्यूनतम सिद्धान्तों का पालन करें। आपसी विरोधों को भूल कर राष्ट्रहित को सर्वोपरि मान कर चलें। राष्ट्रहित में लचीला रुख अपनाना होगा। यह भी मानकर चलना होगा कि आपस में सामंजस्य स्थापित करना है।

यह देश कभी विश्व गुरु था। क्या आज हमारे ज्ञान में कमी आ गई? ज्ञान में कमी नहीं, चरित्र में कमी आई है। सिद्धान्तों को हमने स्वीकार किया लेकिन उन पर हम स्वयं नहीं चले। जिस देश में दूध दही की नदियां बहती हों वह आज गरीब हो गया एवं विदेशों से कर्ज के आधार पर जीवित है। हमारे पास सभी सम्पदाएं हैं जैसे श्रम, बौद्धिक, प्राकृतिक (खनिज, वन, जल) फिर भी गरीब हैं तो अपने गलत संस्कारों के कारण। हम कृष्ण के होने की प्रतीक्षा न करें। सभी लोग मिलजुल कर रास्ता निकालें तो कोई कारण नहीं कि हम अपने प्राचीन गौरव को नहीं प्राप्त कर सकते। उपरोक्त समस्याओं का समाधान ही आज की नाग नथैय्या है यानी विष मुक्ति है।

◆

राष्ट्रपिता बनाम राष्ट्रपति

हमारे देश में अब तक सारे इतिहास में केवल एक ही राष्ट्रपिता कहलाये और वे थे महात्मा गांधी। दूसरा राष्ट्रपिता कोई पैदा ही नहीं हुआ। राष्ट्रपिता उसे कहा गया जिसके लिये सारा देश उसका घर हो गया तथा देश की सारी आबादी उसके लिए पुत्रवत्। राष्ट्रपिता होने के बाद उसका अपना कोई परिवार नहीं होता। पिता की जिम्मेदारी होती है कि परिवार का भरण पोषण एवं सुरक्षा करे तथा परिवार के सभी सदस्यों को अपने अपने कार्य व्यवसाय में प्रवृत्त करे। पिता की एक और जिम्मेदारी होती है कि परिवार के लोग संस्कारित हों और परिवार को संस्कारित करने के लिये पिता का भी संस्कारित होना आवश्यक है। पिता के सारे गुण महात्मा गांधी जी में थे। अतः उन्हें राष्ट्रपिता कहा गया। इतिहास बताता है कि राष्ट्रपिता की उपाधि महात्मा गांधी को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस द्वारा दी गई थी। नेताजी ने उन्हें राष्ट्रपिता कहा और सारे देश ने उसे स्वीकार किया। अतः वे राष्ट्रपिता कहलाये। इस देश ने राष्ट्रपिता के रूप में ऐसे व्यक्ति को स्थान दिया जिसके टक्कर का विराट व्यक्तित्व इस देश ने आज तक पैदा ही नहीं किया। कौन है जो दूसरे के दोषों का शमन करने के लिए स्वयं प्रायश्चित्त करता है। कौन है जो मनसा, वाचा, कर्मणा एक है और यही कारण है कि उन्हें महात्मा कहा गया। महात्मा की उपाधि भी विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रदान की गई थी। कौन है जिसने परिश्रम करके रोटी खाना सिखाया। चरखा श्रम का प्रतीक था। बिना श्रम किये रोटी खाने को गांधी अपराध मानते थे। कौन है जो साधारण वेशभूषा में रहकर अपने जीवन में ही अपार सम्मान प्राप्त किया। सारे देश का भ्रमण किया। विलायत में पढ़कर भी देशी वेशभूषा अपनाई। दक्षिण अफ्रीका में अन्याय का प्रतिकार करने में कठोर यातनायें सही। अपनी दिनचर्या का पालन करने में कभी आलस्य नहीं किया। स्वाद पर नियंत्रण के लिये नीम की चटनी खाई। अंग्रेजी राज के सम्राट से मिलने लन्दन गये तो भी अपनी साधारण वेशभूषा में ही गये। गांधी नियमित प्रार्थना करते थे और धर्म तो पूरी तरह उनके आचरण में उतर चुका था। ऐसे थे हमारे राष्ट्रपिता।

हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद हुए। राष्ट्र के पिता एवं राष्ट्र के पति में श्वसुर एवं दामाद का सम्बन्ध हो गया। पिता पर जहां परिवार के भरण पोषण एवं रक्षण की जिम्मेदारी होती है, वहीं पति पर भी पत्नी के भरण पोषण एवं सुरक्षा की जिम्मेदारी होती है। क्या राष्ट्र के प्रति पिता एवं पति की जिम्मेदारी बराबर की होती है या कम ज्यादे होती है। राष्ट्र का पिता तो एक होता है जब कि पति तो कई हो सकते हैं। हमारे देश के अब तक १३ राष्ट्रपति हो चुके। हमारे देश का राष्ट्रपति उस समय तक कोई नहीं था जब तक राष्ट्रपिता जिन्दा रहे। आजादी १५ अगस्त १९४७ को मिली और हमारा राष्ट्रपिता ३० जनवरी १९४८ को परलोक गमन कर गया यानी मात्र आजादी के साढ़े पांच माह बाद। ऐसा लगता है कि राष्ट्रपिता का आविर्भाव देश को आजाद कराने के लिये हुआ था। देश आजाद हुआ और हमारे प्रथम राष्ट्रपति २६ जनवरी १९५० को पदासीन हुये। इस देश का शासन दो वर्षों तक गवर्नर जनरल द्वारा संचालित होता रहा। यानी दो वर्षों तक देश में न कोई राष्ट्रपिता था और न कोई राष्ट्रपति। राष्ट्रपति में देश का सर्वोच्च संवैधानिक अधिकार निहित है। सारी सेनाओं चाहे जल सेना हों या थल सेना या वायु सेना सबका कमान्डर इन चीफ हमारा राष्ट्रपति ही होता है। संविधान की सारी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होती हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन भी आम जनता नहीं करती। केवल प्रदेश एवं देश के निर्वाचित व्यक्ति चाहे विधायक हों या सांसद उनके द्वारा ही किया जाता है।

◆

हे कलियुग! तू द्वापर से भी महान् है

विद्वान बताते हैं कि हमारे देश ने महाभारत के बाद कोई बड़ी लड़ाई लड़ी ही नहीं। महाभारत के सामने दो विश्व युद्ध भी बौने लगते हैं। महाभारत की १८ अक्षौहिणी सेना यानी आदमी १९६८३००, घोड़े ११८०९८०, हाथी ३९९३६६० तथा रथ ३९३६६० में केवल १० आदमी बचे। ७ पाण्डव पक्ष में यानी पांचों पाण्डव, कृष्ण एवं सात्यकी तथा कौरव पक्ष में केवल ३ व्यक्ति बचे- कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा। यानी जितनी पैदल सेना उतने मिलाकर घोड़े-रथ तथा हाथी हुए। यानी प्रत्येक घोड़े-रथ-हाथी पर एक-एक सैनिक था। यह भयंकर युद्ध भगवान कृष्ण की उपस्थिति में लड़ा गया। भगवान कृष्ण गीता में स्वयं कहते हैं कि जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तो वे अवतार ग्रहण करते हैं। अवतार ग्रहण करने का हेतु होता है साधुओं की सुरक्षा, दुष्टों का नाश तथा धर्म की स्थापना।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। (अध्याय ४।७)
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। (अध्याय ४।८)

भगवान के अवतरित होने का हेतु जब समझ में आ गया तो मानना होगा कि जरूर द्वापर के उस काल खण्ड में धर्म का लोप एवं अधर्म की वृद्धि अपने चरम सीमा पर रही होगी। भगवान कलियुग में अभी तक अवतरित नहीं हुये इसका मतलब है कि उस समय के द्वापर से इस समय का कलियुग अच्छा है। अब हम द्वापर के उस कालखण्ड के धर्म अधर्म का विश्लेषण करने का प्रयास कर रहे हैं।

जुआ का व्यसन हर तरह से हानिकारक एवं पतनकारी है। जो हारता है वह तो तरह तरह की आपत्तियों में फंस ही जाता है, पर जो जीतता है वह भी उसे मुफ्त का माल समझ कर तरह तरह के दुर्व्यसनों में खर्च कर देता है। इससे उसकी आदत बिगड़ती है और बाद में अपनी कमाई को भी हानिकारक व्यसनों

में खर्च करने लग जाता है। आम आदमी ही नहीं राज परिवार के धर्मराज भी जुये के व्यसन से बचे नहीं। जुये में न केवल अपना राजपाठ हार गये, स्वयं को भी हार गये तथा अपने हारने के बाद अपनी पत्नी तक को हार गये। आप कल्पना कर सकते हैं कि द्वापर के उस कालखण्ड में जुये का प्रचलन कितना अधिक रहा होगा। इतना ही नहीं, भरी सभा में जहां महान पराक्रमी अखण्ड ब्रह्मचारी पितामह भीष्म बैठे हों उस सभा में एक वस्त्र धारण किये हुए रजस्वला द्रौपदी को केश पकड़ कर दुःशासन खींच कर ले आता है। दुर्योधन द्रौपदी को अपने जंघे पर बैठने की बात कहता है। द्रोपदी का चीर हरण करने का दुःशासन प्रयास करता है तो द्रौपदी पितामह भीष्म से प्रश्न करती है कि हारे हुए पति को क्या पत्नी को हारने का अधिकार है? पितामह भरी सभा में इतने गलत काम को स्वयं अपनी आंखों से देख रहे हैं लेकिन असहाय हैं और द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर नहीं दे पा रहे हैं। बलवान का बल अगर निर्बल की रक्षा नहीं कर सके तो उसका बल किस काम का? महान प्रतापी भीष्म चाहते तो जुआ रोक देते, द्रौपदी को भरी सभा में इस तरह केश पकड़ कर लाने को रोक सकते थे, फिर चीर हरण जैसे गलत काम को तो रोक ही सकते थे लेकिन बिल्कुल मौन। आप कल्पना करें कि अधर्म का बोलबाला कितना बढ़ गया था उस कालखण्ड में! आज भी संसद में किसी स्त्री का चीर हरण तो दूर, कोई संसद सदस्य उसका पल्ला पकड़ करके तो दिखा दे! संभव नहीं है। अतः आज की सामाजिक स्थितियां उस समय से बहुत अच्छी हैं।

आज भी नारी अगर विवाह के पहले पुत्रवती हो जाती है तो समाज उसे स्वीकार नहीं करता। उस कालखण्ड की राज परिवार की कुन्ती विवाह के पहले सूर्य से कर्ण को पैदा करती है तथा लोकलाज से उस पुत्र का त्याग कर देती है। पुत्र अपने सौभाग्य से बच जाता है तथा दानवीर कर्ण के नाम से मशहूर होता है। विवाह के पहले राजकुल की कन्या का पुत्रवती होना उस कालखण्ड के व्यभिचार को चित्रित करता है।

आदमी एक से अधिक पत्नी रखता है यह तो सुना है। लेकिन पत्नी एक दो नहीं, पांच पांच पति रखती है ऐसा कभी नहीं सुना। आप कल्पना करें कि एक पत्नी का पांच पांच पति होना क्या दर्शाता है। द्वापर के कालखण्ड की यह घटना यह दर्शाती है कि इस तरह के अनैतिक कार्य से राजपरिवार तक अछूता नहीं था। एक पत्नी ने कैसे पांच पतियों को सन्तुष्ट रखा होगा। कलियुग में जिस घटना को हम देखना तो दूर, कल्पना तक नहीं कर सकते, वह उस समय संभव हुआ करती थी। यह हमें यह आभास कराती है कि उस समय धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि कितनी रही होगी।

पाण्डवों को उनके राज्य का हिस्सा तक भाइयों ने नहीं दिया। यहां तक कि भगवान कृष्ण के सन्धि प्रस्ताव को भी अनसुना कर दिया कौरवों ने कह दिया कि हे कृष्ण ! सुई के नोंक के बराबर भी हिस्सा नहीं देंगे। कृष्ण ने कौरवों से केवल पांच गांव पाण्डवों के लिए मांगे लेकिन उसे भी नहीं माना। साक्षात् भगवान की बात भी जिस कालखण्ड में अनसुनी कर दी जाय तो महाभारत का होना अवश्यम्भावी है। आप कल्पना करिये कि भाइयों के उचित हिस्से को भी नहीं दिया गया तो उस कालखण्ड में धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि किस हद तक रही होगी।

हमारे यहां गुरु परम्परा को कहा गया है कि गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महेश्वर है। लेकिन द्वापर के उस कालखण्ड में गुरु परम्परा भी कलंकित हो गई। एकलव्य को गुरु द्रोणाचार्य ने शिष्य के रूप में इसलिए स्वीकार नहीं किया कि वह राज परिवार का नहीं था। लेकिन एकलव्य की श्रद्धा गुरु द्रोणाचार्य के प्रति थी। उसने उनकी मूर्ति बनाकर उसके सामने धनुर्विद्या का अभ्यास किया। एकलव्य की सर्वश्रेष्ठ धनुर्विद्या का ज्ञान गुरु द्रोणाचार्य को उस समय लगा जब एकलव्य ने अपने वाणों से कुत्ते का मुंह इस प्रकार बांध दिया कि उसका भौंकना बन्द हो गया परन्तु उसे कोई चोट नहीं पहुंची। इस प्रकार वाणों से भौंकना बन्द करने को देखकर गुरु द्रोणाचार्य भी आश्चर्य में पड़ गये कि यह दुर्लभ धनुर्विद्या का कमाल तो उनका श्रेष्ठतम शिष्य अर्जुन भी नहीं जानता। अर्जुन पर गुरु की कृपा थी लेकिन गुरु पर एकलव्य की श्रद्धा थी। गुरु द्रोणाचार्य निकल पड़े यह जानने के लिए कि यह धनुर्विद्या का कमाल किसने किया। उनको पता लगा कि उसी एकलव्य का कमाल है जिसको शिष्यत्व देने से उन्होंने मना कर दिया था। वे एकलव्य के पास गये और उससे गुरु दक्षिणा मांगी। गुरु द्रोणाचार्य को ऐसे शिष्य से गुरु दक्षिणा मांगने का अधिकार नहीं था, फिर भी मांग लिया। मांगा भी तो क्या मांगा, एकलव्य का अंगूठा जिसके बल पर वह इतना बड़ा धनुर्धर हो गया था। एकलव्य का शिष्यत्व देखिये कि उसने झट अपना अंगूठा गुरु दक्षिणा के रूप में देकर शिष्य की महिमा बढ़ाई। लेकिन गुरु द्रोणाचार्य ने अंगूठा मांगकर गुरु परम्परा को सारे इतिहास में कलंकित कर दिया। यह घटना भी उसी कालखण्ड की है जब धर्म का लोप एवं अधर्म की वृद्धि अपने चरम सीमा पर थी।

जिस कालखण्ड में पुत्र मोह के कारण पिता अन्धा हो जाय तो ऐसे पिता को पुत्र का अन्याय भी अन्याय प्रतीत नहीं होता। पुत्र मोह में अन्धा पिता अन्याय को अन्याय तो मानता है लेकिन अन्याय का प्रतिकार न कर सके तो धर्म की हानि एवं अधर्म की वृद्धि होना अवश्यम्भावी है। भगवान कृष्ण, संधि प्रस्ताव असफल

होने पर जब हस्तिनापुर से लौटने लगे तो धृतराष्ट्र ने स्वयं पुत्र मोह में पड़कर उन पर नियन्त्रण न रख सकने की बात कही–

यावद् बलं मे पुत्रेषु पश्यसे तज्जनार्दन।
प्रत्यक्षं ते न ते किंचित् परोक्षं शत्रुकर्शन।। (उद्योगपर्व १३१।३२)

हे जनार्दन! मोह में पड़कर मैं इतना परवश हो गया हूं कि पुत्रों पर मेरा कोई नियन्त्रण नहीं रह गया है। इसे आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

सबके मर जाने पर भगवान कृष्ण इस नरसंहार के लिये धृतराष्ट्र को ही दोषी करार देते हुये कहते हैं–

ततो न्यवृत्तमात्मानं समवेक्षस्व भारत!
राजस्त्वं ह्यविधेयात्मा दुर्योधन वशे स्थितः।।

राजन् ! आप अपनी ओर तो देखिये आपका वर्ताव पुत्र मोह में पड़कर सदा न्याय के विपरीत रहा है। राजन्! आप अपने मन को वश में न रख कर सदा दुर्योधन के अधीन रहे हैं।

इसके उत्तर में स्वयं धृतराष्ट्र ने कहा था–

एवमेतन्महाबाहो यथा बदसि माधव
पुत्रस्नेहस्तु बलवान् धैर्यान्मां समचालयत्।

महाबाहु माधव आप जैसा कह रहे हैं ठीक ऐसी ही बात है। परन्तु पुत्र के प्रबल स्नेह ने मुझे धैर्य से विचलित कर दिया है।

जब भगवान श्रीकृष्ण ने राजा धृतराष्ट्र को समझाने के लिये अक्रूर को हस्तिनापुर भेजा तो उन्होंने कहा था– 'अक्रूर जी, एक तो राजा धृतराष्ट्र अन्धे हैं और पुत्र मोह में और अन्धे दुष्ट दुर्योधन के अधीन हो गये हैं। वे अपने भाई पाण्डु के पुत्रों के साथ समान व्यवहार नहीं करते हैं। उन्हें समझाइये।'

जब अक्रूर जी के विविध प्रकार से समझाने के बाद भी राजा धृतराष्ट्र का मोह भंग नहीं हुआ तो उन्होंने स्वयं कहा था–

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान्।
तथानया न तृप्णामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम्।।२६।।
तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले।
पुत्रानुरागविषमे विद्युत् सौदामिनी यथा।।२७।।

(श्रीमद्भगवत १०।४९)

दानपते अक्रूर जी आप मेरे कल्याण की, भले की बात कर रहे हैं। जैसे मरने वाले को अमृत मिल जाय तो वह उससे तृप्त नहीं होता, वैसे मैं आपकी बातें सुनकर तृप्त नहीं हो रहा हूं। फिर भी मेरे चंचल मन में आपकी प्रिय शिक्षा तनिक भी नहीं ठहर रही है क्योंकि मेरा हृदय पुत्रों की ममता तथा मोह के कारण

अत्यन्त विषम हो गया है। जैसे स्फटिक पर्वत के शिखर पर एक बार बिजली की दमक कौंधती है और दूसरे क्षण ही अन्तर्धान हो जाती है वही दशा आपके उपदेशों की है।

उपरोक्त वृत्तान्तों से प्रमाणित होता है कि द्वापर के उस कालखण्ड में धर्म का लोप एवं अधर्म की वृद्धि ही भगवान कृष्ण के अवतरण का हेतु बनी। चूंकि कलियुग में अभी तक भगवान का अवतरण नहीं हुआ, अतः हे कलयुग! तू द्वापर से भी महान् है।

◆

हमारे जीवन की विसंगतियां

हम निर्मल एवं निर्विकार पैदा होते हैं लेकिन ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती जाती है हमारे अन्दर मल एवं विकार बढ़ता जाता है। ऐसा क्यों होता है? निश्चित रूप से हमारे विकास में कहीं न कहीं विसंगतियां हैं जिनके कारण हमारे निर्मल एवं निर्विकार मन में मल एवं विकार पैदा हो जाते हैं। जिस देश का भूतकाल इतना गौरवशाली रहा कि यह विश्वगुरु था, जिस देश में दूध, दही की नदियां बहती थी वह ८०० वर्षों तक गुलाम हो गया। गुलामी के कारणों का आज तक विश्लेषण नहीं हो पाया। आज तक पुनः गुलाम होने का पूर्ण रूप से बचाव भी नहीं किया गया। हम भले ही राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गये लेकिन आर्थिक दृष्टि से आज भी गुलाम हैं। हमारी पचपन वर्ष की आजादी भी हमें अपने पैरों पर खड़ा नहीं कर सकी। आज भी हमारी सरकार देश में या परदेश में आर्थिक मदद मांगती है। जिस देश के पास सारी सम्पदाएं हों जैसे श्रम सम्पदा, बौद्धिक सम्पदा, खनिज सम्पदा तथा वन सम्पदा, वह अगर आर्थिक दृष्टि से गुलाम हैं तो उसका कारण केवल हमारा गलत नियोजन है। ऐसी स्थिति में २०२० तक राष्ट्र को विकसित देश होना दिवा स्वप्न हो जायगा। एक बार स्वामी विवेकानन्द जी अमेरिका में भाषण दे रहे थे तथा भारत के गौरवशाली अतीत का वर्णन कर रहे थे तो एक श्रोता पूछ बैठा कि जिस देश का अतीत इतना गौरवशाली रहा हो उसका सैकड़ों वर्षों तक गुलाम होना आश्चर्यजनक है। तो स्वामी जी ने जवाब में कहा कि हमारी गुलामी का कारण यह था कि जिसको हमने जाना उसको हमने स्वयं नहीं माना और हमारे पतन का यही कारण बना। हमारे देश के अध्यात्म में इतनी गहराई एवं ऊंचाई है कि विश्व भी उसका लोहा मानता है। हमारे देश के चिकित्सक अमेरिका में नाम कमाते हैं। हमारे देश के वैज्ञानिक एवं अर्थशास्त्र के विद्वान देश के बाहर जाकर नोबुल पुरस्कार लेते हैं लेकिन हमारे देश के अन्दर पिछले ८० वर्षों में किसी को नोबुल पुरस्कार नहीं मिला। ओलम्पिक में भी हमारा प्रदर्शन निराशाजनक रहता है। छोटे छोटे देश कई-कई स्वर्ण पदक ले जाते हैं। एक एक खिलाड़ी भी कई कई स्वर्ण पदक प्राप्त कर लेते हैं लेकिन १०० करोड़ की

आबादी का यह देश केवल एक कांस्य पदक से सन्तोष करता है, वह भी एक महिला मल्लेश्वरी द्वारा।

सभी क्षेत्रों में हमारे निराशाजनक परिणामों का कारण ढूंढ़ने पर आज देखेंगे कि हम भाग्यवादी ज्यादा हो गये हैं। हमने अपने श्रम से ज्यादा संन्यास को अलंकृत एवं गौरवान्वित कर दिया। श्रम की जगह अपने को भाग्यवादी मान लिये कि हमारे भाग्य में यही लिखा था। हमें यह बताया ही नहीं गया कि आपका परिश्रम आपके भाग्य की रेखायें बदल सकता है। हमने प्राचीन को गौरवान्वित किया कि बीता हुआ सतयुग, त्रेता, द्वापर आज के कलियुग से श्रेष्ठ था। प्राचीन संतों महात्माओं की कथा हमें सुनाई जाती है लेकिन आज के संत, महात्मा, उद्योग पुरुष, वैज्ञानिक, देशभक्त की गाथाओं का कहीं जिक्र नहीं आता। कलियुग को सभी युगों से खराब बताकर हम हीन भावना के शिकार हो जाते हैं। हमारे कथावाचक की कथनी एवं करनी में अन्तर होता है। कथावाचक अपने दोषों को छुपाने के लिये गलत तर्कों का सहारा लेते हैं और यहीं से हमारे अन्दर गलत संस्कार आरोपित होने लगते हैं।

हमारी शिक्षा पद्धति भी दूषित है। बिना किसी उद्देश्य के उच्च शिक्षा देना अनावश्यक है। हमारी शिक्षा पद्धति हमें श्रम से विमुख करती है। किसान का बेटा भी बी०ए० पास करने के बाद हल बैल चलाना पसन्द नहीं करेगा। हमारे देश का इंजीनियर भी अपने हाथ में टूल्स नहीं उठायेगा। टूल्स उठाने में अपनी तौहीनी समझेगा। अधिकारी अपनी फाइल लेकर चलने में अपनी बेइज्जती समझेगा। पैदल चलना शान के खिलाफ हो जायगा। हम प्याज भी नहीं खाते यह बताकर अपने को पूर्ण रूप से धार्मिक एवं संस्कारित बताने का प्रयास करते हैं भले ही घूस खूब खाते हों। किसी महिला से नाजायज सम्बन्ध कर लिया तो भयंकर अपराधी एवं अधार्मिक हो गया लेकिन अरबों का चारा खा गये, घूस एवं भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हैं उनको गलत बताने की फुरसत नहीं है।

आज हमारे देश में यह स्थिति हो गई कि भ्रष्टाचार के कारण काम हो रहा है। आज वह अधिकारी निकम्मा एवं बेकार बताया जाता है जो घूस नहीं लेता। आज के दिन भ्रष्टाचार ही हमारा शिष्टाचार हो गया। हम काम के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं। एक बैंक के अधिकारी ने बताया कि हमें तनख्वाह बैंक में आने के लिये मिलती है। ऊपर से आमदनी होगी तो काम करेंगे। किसी का नियंत्रण नहीं है। हमारी न्याय प्रणाली भी इतनी विलम्बित है कि इसके कारण न्याय नहीं मिलता। अपराधी छूट जाते हैं। जो न्याय चाहते हैं वे निराश हो जाते हैं। ऐसे लोग शीघ्र न्याय पाने के लिये गलत तत्वों के हाथ में चले जाते हैं। नतीजा होता है कि न्याय एवं व्यवस्था की समस्याएं बढ़ती जाती हैं। हमारा पुलिस विभाग जिसके जिम्मे

आन्तरिक सुरक्षा का दायित्व है वह अपनी देखरेख में अन्याय कराता है। न्यायाधीश भी अब सन्देह के परे नहीं है। जब सारे कुयें में भांग पड़ी हो तो किसे शुद्ध जल मिलेगा? जब गंगोत्री ही प्रदूषित हो जायगी तो गंगा कैसे पवित्र रहेगी।

ये तो सभी समस्याएं हैं। मेरा काम केवल समस्याओं का परिचय बोध या पहाड़ खड़ा करना नहीं है। इन समस्याओं का निराकरण होने से ही लाभ होगा। निराकरण के मेरे सुझाव निम्न हैं-

- हमें यह पढ़ाया जाय कि काम कोई छोटा या बड़ा नहीं होता ताकि सभी प्रकार के कामों को निःसंकोच कर सकें।
- हमारी शिक्षा सोद्देश्य होनी चाहिए। हाईस्कूल या इण्टर के बाद की शिक्षा उसी व्यक्ति को दी जाय जिसके लिये उच्च शिक्षा आवश्यक हों। व्यावसायिक प्रशिक्षण ज्यादा दिया जाय ताकि रोजगार खोजने के लिये परेशान न होना पड़े तथा विभिन्न विभागों की ठोकरें न खानी पड़े।
- सरकारी नौकरी को पुरस्कार न समझा जाय। आज जिसको सरकारी नौकरी मिल गई तो उसका भाग्योदय हो गया। काम कम करना पड़ेगा, नौकरी की तनख्वाह, ऊपर की आमदनी तथा सरकारी नौकर होने का रुतबा। जिसको इतने लाभ मिलेंगे वह क्यों नहीं सरकारी नौकरी चाहेगा?
- कर्मचारियों को अपने काम के प्रति जिम्मेदार ठहराया जाय। अगर काम ठीक नहीं करता हो या वातावरण दूषित करता हो तो उसे तत्काल सेवा मुक्त कर दिया जाय। ऐसा अगर हो सकेगा तो उद्योग व्यापार बढ़ेगा, नौकरी बढ़ेगी तथा उत्पादित माल सस्ता पड़ेगा। हड़ताल तालाबन्दी की नौबत नहीं आयगी।
- जो ट्रेड यूनियन हड़ताल कराकर अपनी ताकत का प्रदर्शन करे उसे जेल भेज देना चाहिए कारण ट्रेड यूनियन का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना है न कि हड़ताल कराना।
- देश को आर्थिक दृष्टि से मजबूत बनाने का एकमात्र रास्ता उद्योगों का जाल बिछाना है। छोटे बड़े उद्योग एक दूसरे के पूरक बनाकर स्थापित होने चाहिये। अधिक से अधिक छोटे उद्योगों की स्थापना द्वारा हमारी श्रम शक्ति का पूरा उपयोग आवश्यक है।
- उद्योगपति को राष्ट्र का सबसे बड़ा देशभक्त माना जाय कारण वह राष्ट्र को राजस्व देगा, देश की गरीबी एवं बेरोजगारी दूर करेगा। उद्योगपतियों पर ही शिक्षा के प्रसार प्रचार की जिम्मेदारी दी जाय। अगर उद्योग से राजस्व नहीं प्राप्त होगा तो हम अपनी सेना का खर्च भी नहीं वहन कर सकेंगे।

- हमें बिजली निरन्तर मिले ऐसी निश्चित व्यवस्था होनी चाहिये कारण बिजली के अभाव में उत्पादन प्रभावित होता है। अगर विदेशों में बिजली नहीं जाती तो हमारे यहां बिजली क्यों जाएगी?
- हमारी न्याय प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि अधिक से अधिक छः माह में हमें न्याय मिल जाय। ऐसा विदेशों में संभव है, अतः यहां भी संभव हो सकता है। हमारे देश में करोड़ों की संख्या में मुकदमे लम्बित हैं। मुकदमों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है। इसका उपाय यह है कि न्यायालयों को दो भाग में तथा दो पाली में बांट देना चाहिये। नये मुकदमे चाहे किसी विभाग के हों, छः माह में निर्णीत हो जाएं तथा पुराने मुकदमों का भी शीघ्रता से निस्तारण हो जाय। कुछ समय के पश्चात् न्याय प्रक्रिया नियंत्रित हो जायगी।
- आज हमारा नेतृत्व भी झूठा, मक्कार, घूसखोर एवं ऐय्याश हो गया। नेतृत्व का दामन साफ सुथरा होना चाहिये। प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक चीज ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है अतः आम जनता को स्वच्छ रखने के लिये नेता का स्वच्छ होना आवश्यक है।
- हमें संन्यास से ज्यादा श्रम को महत्व देना चाहिये। कारण परिश्रम ही पूंजी है एवं आलस्य ही गरीबी है। हमें समय से काम करने की शिक्षा दी जाए। हमारे माल की क्वालिटी में कोई समझौता न हो। मिलावट से एकदम हम दूर रहें।
- हमारे देश का साधु समाज देश को शिक्षित करने का जिम्मा ले। कोई अशिक्षित न रह जाय। हमारी अशिक्षा के कारण हम अन्धविश्वासी हैं और इसी अन्धविश्वास के कारण हमारे बेईमान नेता भी राज कर रहे हैं।
- नेताओं में परिवारवाद की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना चाहिये। अपनी योग्यता एवं मेहनत से परिवार के लोग आगे बढ़ें। पिता के धन एवं प्रतिष्ठा पर मौज करने वाले पुत्र पुत्रियां निकम्मे एवं ऐय्याश हो जाते हैं।

यों तो उपाय वहुत से हो सकते हैं लेकिन इतने उपायों पर भी अमल हो सका तो देश का कल्याण निश्चित है। हम निश्चित रूप से विकसित हो जायेंगे। हम आर्थिक गुलामी से मुक्त होकर एक स्वावलम्बी राष्ट्र हो जायेंगे। हमारा 'श्रमएव जयते' का नारा सार्थक होगा। हम उपरोक्त उपायों को अपना सके तो इस देश की चतुर्दिक वृद्धि होगी और पुनः दूध दही की नदियां प्रवाहित हो जाएंगी।

◆

अर्थी एवं डोली

इस लेख के शीर्षक की विशेषता है कि अर्थी जहां सबसे अधिक दुःखद स्थिति का परिचायक है वहीं डोली सबसे अधिक सुखद स्थिति का। अर्थी में मृतक व्यक्ति अपने मृत स्थान से उस स्थान तक जाता है जहां उसका दाह संस्कार किया जाता है। लेकिन डोली में कन्या की जहां शादी होती है उस स्थान से अपने ससुराल तक जाती है। शहरों में अब डोली की प्रथा समाप्त हो गई है कारण मोटर कार में दुल्हन जाने लगी लेकिन गांव एवं देहातों में आज भी डोली में दुल्हन को जाते देखा जा सकता है। इस लेख में अर्थी एवं डोली का चित्रण करने का प्रयास किया गया है।

डोली को जहां कहार ढोते हैं वहीं अर्थी को 'यार' यानी घर परिवार के या मित्र मंडली या समाज के परिचित जन। डोली में जहां चार कहार होते हैं वहीं अर्थी भी चार कंधों पर होती है। अर्थी के चार कोने चार कंधों पर होते हैं लेकिन डोली में दो डंडों में दोनों तरफ दो दो कहार होते हैं। अर्थी जहां बांस की होती है वहीं डोली लकड़ी की। अर्थी कंधे के ऊपर होती है लेकिन डोली कंधों से नीचे लटकती रहती है। अर्थी जहां व्यक्ति की अन्तिम यात्रा है वहीं डोली गृहस्थ जीवन में प्रवेश की प्रथम यात्रा। अर्थी के फूल मातम के प्रतीक हैं लेकिन डोली के फूलों के साथ कितनी रंगीन कल्पनायें रहती हैं। अर्थी का व्यक्ति जहां लकड़ी की चिता पर लेटाया जाता है वहीं डोली की दुल्हन फूलों की सेज पर जाती है।

अर्थी के साथ 'रामनाम सत्य है' का उच्चारण करते हुये सभी लोग जाते हैं जबकि 'रामनाम सत्य है' केवल शवयात्रा का सत्य न होकर सार्वकालिक सत्य है। लेकिन यही 'रामनाम सत्य है' का उच्चारण अगर डोली ले जाते समय कर दिया जाय तो लोग मारने दौड़ेंगे। कारण उस वाक्य का उच्चारण उस समय अशुभ एवं अमंगल का प्रतीक हो गया।

अर्थी में व्यक्ति की अन्तिम यात्रा है और उसको घर–परिवार के लोग और मित्रगण ले जाते हैं। व्यक्ति के मरने से घर अधूरा हो जाता है। लेकिन डोली में दूल्हन आ रही है नया घर बसाने। मनुष्य बिना स्त्री के अधूरा है अतः उसको

पूर्णता प्रदान करने के लिये आती है। बिना इसके नव सृजन (पुत्र-पुत्री का जन्म) भी संभव नहीं लेकिन उस डोली को कँहार ढोते हैं।

अर्थी में मृतक को बांध कर एवं लेटाकर ले जाते हैं वहीं डोली में बैठ कर दुल्हन जाती है। अर्थी में जहां जाने का गम है, वहीं डोली में आने की खुशी है। अर्थी जहां अमंगल सूचक है वहीं डोली मंगल सूचक है। अर्थी जब जाती है तो रास्ते के लोग श्रद्धा से नमन करते हैं लेकिन डोली के यात्री की एक झलक पाने की अभिलाषा रहती है। अर्थी निकलने के बाद कई दिनों तक मृत आत्मा की शान्ति के लिये पूजा, पाठ, गरुड़ पुराण का पारायण आदि किये जाते हैं। लेकिन डोली में आई दुल्हन के कारण भी कई दिनों तक खुशियां मनाई जाती है। अर्थी निकलने के समय एवं बाद में परिवार एवं गांव के लोग इष्ट मित्र आदि आते हैं उसी प्रकार विवाह के समय भी सभी लोग आते हैं तथा कई कई दिनों तक खुशियां मनाई जाती हैं। अर्थी के मृतक का दाह संस्कार करने के बाद उसकी राख को गंगा में प्रवाहित किया जाता है ताकि यह राख सरिता से सागर तक पहुंच जाय। यह व्यक्ति का समष्टि में मिलने का यानी आत्मा का परमात्मा में मिलने का प्रतीक है। लेकिन डोली की दुल्हन जाती है अपने पति से मिलने को।

इस लेख के माध्यम से मैं समाज सुधारकों एवं धर्माचार्यों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि 'रामनाम सत्य है' के सत्य को केवल शव यात्रा तक सीमित कर देना कहां तक उचित है। जो सार्वकालिक सत्य है उसका उच्चारण या स्मरण केवल शव यात्रा में करने से राम नाम की सत्यता का बोध एक सीमित सत्य हो गया। इतना ही नहीं, शव यात्रा का 'रामनाम सत्य है' अगर मांगलिक आयोजनों में उच्चारित हो जाय तो अमंगल का सूचक हो जाएगा? इस असीम सत्य को असीम ही रहना चाहिए और इसके प्रयोग को व्यापक बनाया जाना चाहिए।

दूसरा संदेश है कि अन्तिम यात्रा में घर के लोग कंधा देते हैं ठीक उसी प्रकार डोली में आने वाली दुल्हन को भी थोड़ी ही दूरी तक घर के लोगों को कंधा देना चाहिये। कारण डोली आ रही है खुशियां लेकर एवं हमारे अधूरेपन को पूरा करने एवं नव सृजन के लिये।

◆

सामाजिक अपराध बनाम कानूनी अपराध

हमारे देश में मांस भक्षण को सामाजिक अपराध माना जाता है। उस व्यक्ति को समाज धार्मिक मान लेता है जो मांस अण्डा तो क्या, लहसुन प्याज तक नहीं खाता। लेकिन घूस खाने को सामाजिक अपराध नहीं मानता, भले ही वह कानूनी अपराध हो। इसी प्रकार की बहुत सी विसंगतियां हैं जिनका वर्णन हम आगे करेंगे। इन विसंगतियों के माध्यम से हम देखेंगे कि सामाजिक अपराध एवं कानूनी अपराध दो अलग अलग अपराध हो गये हैं। सामाजिक अपराध में लोक लाज एवं लोक सम्मान निहित है तथा कानूनी अपराध में 'भय' है। समाज में अपनी मर्यादा स्थापित करने के लिये अपने को धार्मिक दिखाने की मनुष्य कोशिश करता है। कभी कभी यह भी देखा गया है कि हमने गेरुआ वस्त्र इसलिए धारण कर लिया कि हमारा ऐब छिपा रहे। गेरुआ वस्त्र की आड़ में कुकर्म भी चालू है तथा समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा भी है। गेरुआ वस्त्र धारण कर उसकी मर्यादा का पालन न करना सामाजिक अपराध है तथा फौजी पोशाक धारण कर उसकी मर्यादा का पालन न करना कानूनी अपराध है। ऐसे लोगों का सार्वजनिक रूप तो पवित्र एवं धार्मिक देखने में लगता है लेकिन आन्तरिक रूप गंदा एवं कुकर्मों से भरा हुआ है। हमारी विसंगतियों का मूल कारण ही हमारा दो रूप है। सार्वजनिक रूप से हम अपने को साफ सुथरा धार्मिक दिखाने का प्रयत्न करते हैं और अन्ततः अपनी तामसिक वृत्तियों को उभड़ने से नहीं रोक पाते। प्रश्न उठता है कि अगर हमें अन्तःकरण गंदा ही रखना है तो फिर हमने गेरुआ वस्त्र क्यों धारण किया? गेरुआ वस्त्र जब भी मनुष्य धारण करता है अपनी भीतर की सद्-प्रवृत्तियों के कारण करता है। गेरुआ वस्त्र धारण अपनी गलत वृत्तियों को छिपाने के लिए होते ही गलत हो जायगा। अतः समाज में चाहे स्त्री हो या पुरुष केवल बाहरी आवरण एवं कथनी से व्यक्ति की पहचान न करें। व्यक्ति की पहचान उसके आचरण से करें। हम अगर गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं तो उस वस्त्र की जो मर्यादाएं हैं उनका पालन करना हमारा दायित्व हो जाता है। इसी प्रकार फौजी व्यक्ति का भी अगर आचरण भ्रष्ट हो जाता है तो नियमों के अनुसार उनकी वर्दी उतरवा ली जाती है।

इसी प्रकार जवानी की उम्र में किसी की पत्नी के मरने पर उसे पुनः विवाह करने के लिए सामाजिक मान्यता मिली हुई है। लेकिन किसी का पति मर जाय और पत्नी पुनर्विवाह करना चाहे तो उसे सामाजिक मान्यता नहीं मिली है। उसे कलंकित करने के लिये कितने प्रकार के शब्द वाणों को सहना पड़ता है यह विधवा ही समझ सकती है। विधुर और विधवा के पुनर्विवाह करने में सामाजिक मान्यताओं में विषमता है इसमें कानूनी बाधा नहीं है। होना यह चाहिए कि विधुर एवं विधवा को समान रूप से विवाह करने की सामाजिक मान्यता मिले। कारण हमारे यहां विवाहित जीवन को ही सम्पूर्ण जीवन की संज्ञा दी गई है। बिना विवाह के पुरुष एवं नारी अधूरे हैं। अतः उसे अर्धांग एवं अर्धांगिनी कहा है। बिना विवाह के पर-पुरुष गमन या पराई स्त्री गमन कानूनी एवं सामाजिक अपराध माना गया है।

हम गायों की पूजा करते हैं यानी उन्हें गोपाष्टमी पर जलेबी और घास थोड़ी खिला देते हैं, आरती उतारते हैं, रोली चावल पुष्प चढ़ाते हैं। हमें गोभक्त की संज्ञा दे दी जाती है लेकिन जो गौशाला का कार्य संचालन करते हैं, गोसेवा करते हैं उन्हें न तो उस श्रेणी का गोभक्त माना जाता है और न उसकी सामाजिक मान्यता गोभक्त के रूप में होती है। हमारे यहां सेवा से अधिक पूजा को धार्मिक मान लिया गया। नतीजा क्या हुआ कि हम सेवा से विमुख हो गये। आज जिस गाय में तैंतीस करोड़ देवता का वास बताया जाता है, गाय को अति धार्मिक बताया जाता है उस गाय या गौशाला की हालत इतनी दयनीय क्यों है? सारे देश में जितनी भी गौशालाएं हैं उनमें मात्र १०-१५ प्रतिशत गोशालाएं ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर पा रही हैं। बाकी सबकी हालत अत्यन्त दयनीय है। कारण गाय के पूजक तो मिल जाते हैं, सेवक नहीं मिलते। साधु संन्यासी पंडित सभी एक स्वर से गाय के धार्मिक महत्व को उजागर करते हैं लेकिन गाय की सेवा से विमुख हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी सेवा ही हमारी पूजा हो जाय। गोसेवकों को समाज में सम्मान मिले। केवल गोपूजक होना कोई महत्व नहीं रखता। हमने गोहत्या का विरोध किया लेकिन गो सेवा बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। गो-हत्या के मूल कारण को दूर करने का प्रयास ही नहीं किया। हमारी गौशालाएं जितनी ही संपुष्ट होंगी, गोहत्या उतनी ही कम होती चली जायगी। यह निर्विवाद सत्य है। ठूंठ गायों को हम किसे दें? गोशालाएं अगर ऐसी गायों का पालन करती हैं तो गो-हत्या के लिए गायें मिलेंगी ही नहीं। गौशालाओं के पांच प्रमुख उद्देश्य हैं अधिक से अधिक गो-दूध का उत्पादन करना, ठूंठ गायों की सेवा करना, उपलब्ध जमीन में हरा चारा पैदा करना, गोहत्या के लिए जाती गायों एवं गोवंश को सुरक्षा देना एवं उन्हें रखने की सुविधा प्रदान करना तथा नस्ल

सुधार करना। दूध के मामले में हमने गायों को बकरी बना दिया है। अतः अधिकाधिक दूध के लिए नस्ल सुधार आवश्यक है। ये सामाजिक विसंगतियां अगर दूर की जायँ तो एक नई चेतना का विकास होगा और गोसेवकों को गोभक्तों के मुकाबले अधिक सम्मान मिलेगा।

हमने संन्यासियों को अधिक आदर सत्कार एवं महत्व दिया लेकिन श्रमिक की उपेक्षा की। नतीजा क्या हुआ, श्रमिक के महत्व का अवमूल्यन हो गया। जहां भी श्रम के महत्व का अवमूल्यन होगा वहां उदासी आ जायगी। हमारी गुलामी का प्रमुख कारण भी यही था। आज भी हमने राजनैतिक आजादी तो प्राप्त कर ली लेकिन आर्थिक दृष्टि से गुलाम हैं कारण भारत का प्रत्येक नागरिक कम से कम ६ हजार रुपये का विदेशी कर्जदार है। हमने अपने समय को व्यर्थ गंवाया तथा श्रम से जी चुराया नतीजा आर्थिक गुलामी के रूप में आया। हम गोपूजक हैं समाज ने हमें मान्यता दी और गो सेवकों को महत्व नहीं दिया यही सामाजिक अपराध है। इसी प्रकार संन्यासियों को महत्व दिया लेकिन श्रमिकों की उपेक्षा की तो यह भी सामाजिक अपराध बन गया।

इसी प्रकार की विसंगतियां समाज में अन्यत्र भी हैं जिन्हें सुधारना आवश्यक है। जब तक हम इन्हें दूर नहीं करेंगे, तब तक न तो हमारी सेवा पूजा बन पायगी और न इन विसंगतियों से छुटकारा पा सकेंगे। सामाजिक अपराध से मुक्ति तभी मिलेगी जब हम इन विसंगतियों से अपने को दूर कर पायेंगे। कानूनी अपराध का आधार केवल भय है। हम केवल भय से नहीं सुधर सकते। नरक भी भय का प्रतीक है अतः केवल सजा हमें नहीं सुधार सकती। स्वर्ग भी लालच का प्रतीक है अतः केवल लालच भी हमें नहीं सुधार सकता। हमें अपने जीवन को भय, लालच, करुणा एवं अहिंसा के चौपाये पर खड़ा करना होगा। इस चौपाये पर खड़ा व्यक्ति ही सुधरा हुआ माना जायगा कारण सुधार की प्रक्रिया उसके अंदर से जागृत होगी भय एवं लालच से नहीं। ये चार चौपाये उसे हर वक्त अपराध बोध कराते रहेंगे चाहे वह सामाजिक अपराध हो या कानूनी। अपराध बोध ही अपराध से मुक्ति पाने का यानी सुधरने का प्रथम लक्षण है।

♦

राजनेता बनाम धर्माचार्य

आम जनता को या तो राजनेताओं की बात समझ में आती है या धर्माचार्यों की। जनता धर्माचार्यों की बात पर आज ज्यादा भरोसा करती है। कारण राजनेता अब बदनाम हो गये। राजनीति अब सिद्धान्तों की न होकर सुविधा की हो गई। राजनेताओं के बयान अपनी सुविधानुसार बदलते रहते हैं। देश को आजाद हुये आज इतने साल हो गये लेकिन इन सालों में देश की समस्याएं बढ़ीं या घटीं? आज भी इस देश की एक तिहाई आबादी यानी ३३ करोड़ जनता गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन बसर कर रही है। इतनी बड़ी आबादी के पास न दोनों समय खाने को भोजन है, न पूरा तन ढंकने को कपड़ा है और न रहने को मकान। जब रोटी कपड़ा और मकान ही नहीं है तो दवा, शिक्षा आदि अन्य मूलभूत आवश्यकताएं तो उनके लिए दुर्लभ हैं। जब देश आजाद हुआ था तो हमारे नेताओं ने लोकतंत्र इसलिए अपनाया ताकि जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन स्थापित हो। हमने ज्यों ज्यों दवा की, दर्द बढ़ता ही गया यानी हमारे लोकतंत्र की उमर ज्यों ज्यों बढ़ी, रोटी कपड़ा एवं मकान की समस्याएं भी बढ़ती गईं। यह है हमारे लोकतंत्र का कमाल!

हमारे लोकतंत्र पर आधारित शासन व्यवस्था में बहुमत का ही शासन चलता है। लेकिन हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने में इस बहुमत की अनदेखी कर दी गई। आज हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने के सारे वायदे खोखले साबित हुये। राष्ट्रभाषा बनाने के नाम पर उत्तर दक्षिण को एक दूसरे के विरोध में खड़ा कर दिया इन नेताओं ने। जिस देश की अपनी कोई राष्ट्रभाषा न हो उस देश की पहचान क्या होगी? छोटे बड़े देश अपनी ही भाषा में सारी पढ़ाई करते हैं चाहे विज्ञान हो या चिकित्सा विज्ञान हो। जापान की समूची पढ़ाई जापानी भाषा में, जर्मनी की सारी पढ़ाई जर्मनी भाषा में, फ्रांस की सारी पढ़ाई फ्रेंच भाषा में, चीन की सारी पढ़ाई अपनी चाइनीज भाषा में लेकिन भारत में समस्या बताई जाती है कि विज्ञान तथा मेडिकल की शिक्षा हिन्दी में नहीं दी जा सकती। आज भी अंग्रेजी जानने वालों को अधिक योग्य समझा जाता है। अंग्रेजी में बात करने वालों

को सम्मान दिया जाता है। इतना ही नहीं, भले ही अंग्रेजी जानने वाले २-३ प्रतिशत हों लेकिन शासन व्यवस्था में भी उन्हीं का वर्चस्व रहता है। अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई करने वाले विद्यालयों में बड़े गर्व से ऊंचे एवं सम्पन्न परिवार के बच्चे पढ़ते हैं। घर में भी बच्चों से माता पिता, भाई बहन अंग्रेजी में बात करते देखे जा सकते हैं। कहने का अर्थ यह कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा कौन कहे, जन भाषा होने में भी कमी आ रही है।

हमारे नेता चोरी घूसखोरी में रंगे हाथ पकड़े जाते हैं लेकिन जब तक अन्तिम न्यायालय से सजा नहीं होती, अपने को कसूरवार मानते ही नहीं। अपने देश की न्याय व्यवस्था का तो कहना ही क्या है! कितना समय, श्रम, पैसा लगेगा न्याय पाने में, कोई नहीं जानता। ज्यादातर मुकदमा लड़ने वालों का तो फैसला होने के पहले ही स्वर्गवास हो जाता है। विलम्बित न्याय के कारण ही बाबरी मस्जिद का मामला तिल का ताड़ हो गया। मुख्यमंत्रीगण पकड़े गये लेकिन सजा नहीं पा सके कारण न्याय पाने की अन्तिम सीढ़ी तक पहुंचने में काफी समय लगेगा। अपनी झूठी कथनी पर चुनाव भी जीत जाते हैं और फिर कहते हैं कि जनता की अदालत ही जनतंत्र में सबसे बड़ी अदालत है। अतः अपने को बेदाग साबित करने की कोशिश करते हैं। नैतिक मूल्यों का जितना अवमूल्यन इन नेताओं ने किया उतना अन्य लोगों ने नहीं किया। गेरुआ वस्त्र पहन कर व्यभिचार में लिप्त होना तथा पिस्तौल दिखाकर नारी का शोषण करना इस देश का आदर्श हो गया।

ईमानदारी की परिभाषा बदल गई। पैसा लेकर जो काम कर दे वह ईमानदार माना जाने लगा। खांटी ईमानदार बेवकूफ समझे जाने लगे। इसी प्रकार चोर वह है जो सजा पा जाए। जो सजा न पाये सभी पाक-साफ हैं। हमारे देश में हमने किसी को भी अपराध स्वीकार करते नहीं सुना। जब तक वश चलता है अपने को निरपराधी साबित करने का ही प्रयास करते हैं।

हमारे देश की आबादी इतनी तेजी से बढ़ रही है कि निकट भविष्य में हम चीन को भी मात कर देंगे। चीन ने आबादी पर नियंत्रण लगाया और उसे नियंत्रित किया। क्या हमारा देश भी उसी प्रकार इसे नियंत्रित नहीं कर सकता? इसे हर हालत में नियंत्रित करना अति आवश्यक है।

हमारे देश की आबादी नियंत्रित करने में हमारे धर्माचार्य भी बहुत बड़ी बाधा हैं। वे कहते हैं कि मानव जीवन मिलना बहुत दुर्लभ है। चौरासी लाख योनि को पार करने के बाद ही यह अमूल्य जीवन मिला है। अब इसका नियंत्रण करना ही धार्मिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना है। धर्माचार्य भ्रूण हत्या को भी पाप बताते हैं लेकिन कौन पूछे उन धर्माचार्यों से कि भूखी नंगी आबादी को खिलाने

एवं रोजगार देने के लिए उनके पास क्या योजना है। धर्म के नाम पर आबादी बढ़ाना एवं उन्हें भूखी नंगी रखना भी अपने आप में अपराध है। इस व्यावहारिक सत्य को भी धर्माचार्यों को स्वीकार करना होगा।

आज देश में अशिक्षा बहुत है। हमारे देश में कम से कम एक करोड़ साधु संन्यासी होंगे। घर छोड़कर अपनी जिम्मेदारियों से भाग खड़े हुये और साधु संन्यासी हो गये। साधु संन्यासी होने के बाद दो ही काम करते हैं। या तो मठाधीश होकर वैभव एवं विलासी जीवन बिताते हैं या फिर भीख मांगते हैं। सामाजिक दायित्वों से इनका कोई सरोकार नहीं। समाज जब इनका भरण पोषण करता है तो सामाजिक जिम्मेदारियों का भी इनको निर्वाह करना चाहिये। जैसे अगर पढ़े लिखे हैं तो अनपढ़ को पढ़ाने का काम करें। अगर शरीर से मजबूत एवं ठीक हैं तो गोशालाओं में सेवाकर काम करें। अस्पतालों की सेवा तथा व्यवस्था का भार वहन करें। मन्दिरों की हालत जीर्ण शीर्ण है उसे सुधारने की व्यवस्था करें। धर्मशालाएं तथा अन्य सेवा संस्थायें नहीं चल पा रही हैं कारण सेवा की प्रवृत्ति से काम देखने वालों का अभाव हो गया है। अगर कोई धर्माचार्य इन साधु संन्यासियों को सामाजिक दायित्वों का बोध करा दे तंथा इन्हें कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त करा दे तो यह कार्य क्रान्तिकारी नतीजा देगा तथा समाज को सुधरते देर नहीं लगेगी।

धर्माचार्य एवं साधु संन्यासी बताते हैं कि जीवन का उद्देश्य क्या है? परमात्मा की प्राप्ति। जब धर्माचार्य को ही परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई तो श्रोता को कैसे हो जायगी यह समझ के परे है। कर्तव्य कर्म को करना ही ईश्वर पूजा है, यह उपदेश देना आवश्यक है। हमने ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए आरती, पूजा, प्रसाद का सहारा लिया और यह मान लिया कि इस क्रिया से पाप कटेंगे एवं पुण्य प्राप्त होगा। ऐसे भक्तों को यह बताना आवश्यक है कि ईश्वर की बनाई यह सृष्टि भी पूजनीय है। इस जगत में अपने को सेवा कार्य एवं परोपकार में प्रवृत्त करना ही धर्म धारण करना है। कर्तव्य पालन ही धर्म धारण है यह संदेश जनता को देने की आवश्यकता है। पाप का नाश एवं पुण्य की प्राप्ति न तो गंगा स्नान से होगी और न बाबा विश्वनाथ के दर्शन पूजन से। पाप कार्य या पुण्य कर्म का फल तो दुःख सुख भोगना ही पड़ेगा, यह निर्विवाद सत्य है।

हमने सेवा को पूजा नहीं माना और हमारी पूजा ने गलत रास्ता पकड़ लिया। आरती करना, अक्षत पुष्प चढ़ाना, दक्षिणा चढ़ाना या नैवेद्य चढ़ाना आदि को ही हमने पूजा का सर्वोपरि रूप मान लिया, नतीजा यह कि हम सेवा से विमुख हो गये। हमने मान लिया कि आरती, पूजा आदि ने हमें पुण्य प्रदान कर दिया। अतः हमने सेवा की आवश्यकता नहीं समझी और हम पुण्य लाभ से वंचित हो गये।

महाकुंभ के स्नान का कितना पुण्य लाभ है कहना मुश्किल है। शास्त्रों ने इसके लाभ के विषय में बहुत कुछ लिखा है। भीड़ भी कुंभ में अपरम्पार होती है। फिर भी लाभ नहीं होता कारण केवल गंगा स्नान से लाभ मिलना असंभव है। अब यह बताने की आवश्यकता है कि कुंभ में सिद्धों एवं साधकों का समागम है अतः सिद्धों की सिद्धियां लोक कल्याण में कैसे लगें, इसकी व्यवस्था साधकों को करनी होगी। पुण्य करने के सरल तरीकों ने हमें पाप कर्म से विरत नहीं किया, अतः पाप हम करते चले गये और गंगा नहाकर अपने को निष्पाप समझते चले गये। धर्माचार्यों को बताना पड़ेगा कि पाप तो भोगना ही पड़ेगा। जीवन का उद्देश्य कर्तव्य कर्म करना है, सत्य पर आधारित जीवन अपनाना है, परोपकार में प्रवृत्त होना है। हमें गांधी का मार्ग अपनाना होगा। लक्ष्य तक पहुंचने के लिये गलत रास्ता अपनाना गांधी जी को स्वीकार्य नहीं था। आचरण में शुद्धता एवं व्यवहार में मधुरता जीवन की आवश्यकता है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि धर्म आचरण में पलता है तथा सेवा से व्यापक होता है।

एक तरफ हम बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, वह भी शुद्ध घी में, डालडा (वनस्पति घी) में नहीं। हम पेट की ज्वाला शान्त न कर सकें और अन्न घी को यज्ञ की अग्नि में भेंट चढ़ावें कहां तक उचित है! हमारा सबसे बड़ा यज्ञ होना चाहिये, भूखे को भोजन एवं बेकार को काम। हमें धार्मिक व्यवस्थाओं की प्राथमिकताओं को समय एवं काल के अनुसार बदलना होगा। आज हमारे देश का सबसे बड़ा धर्म है भूखे को भोजन, बेकार को काम एवं अशिक्षित को शिक्षित करना। एक और राष्ट्र धर्म जिसकी आज हमारे देश को सबसे अधिक आवश्यकता है, वह है उद्योगों की स्थापना तथा प्रत्येक देशवासी को उद्यमी बनाना। हमारा राष्ट्र जिस प्रकार आर्थिक गुलामी में जकड़ता जा रहा है वह देश की आर्थिक गुलामी का संकेत है। हम जब तक विदेशी कर्जे से मुक्त नहीं होंगे, हम सही मायने में अपने को आजाद कहने के हकदार नहीं है। आज हम विदेशों से कर्ज लेते हैं और गर्व से उस कर्ज को प्रचारित करते हैं, जबकि कर्जा लेना हमारे लिए शर्म की बात होनी चाहिए। आज हमारे धर्माचार्यों को हमारे देश की इन आवश्यकताओं की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता है कारण भूखे को धर्म ज्ञान बेकार है। भूखे का धर्म सबसे पहले भोजन है।

हमारे शास्त्रों ने काशी में मरने से मुक्ति मिल जाती है ऐसा बताकर इस महान उपलब्धि को इतना सरल बना दिया। मुक्ति को आचरण शुद्धि से नहीं जोड़ा गया। राग-द्वेष, तृष्णा से रहित जीवन ही मुक्त जीवन है ऐसा नहीं बताया गया। नतीजा हुआ कि काशी में कौन सा कुकर्म नहीं होता? काशीवासी जानता है कि काशी में कुछ भी कुकर्म करो, अन्त में मुक्ति तो मिलनी ही है। यह

शास्त्रीय व्यवस्था नहीं हो सकती। केवल काशी में मरना मुक्ति का कारण हो नहीं सकता। इन शास्त्रीय व्यवस्थाओं ने आचरण शुद्धि के प्रयासों को नजरअंदाज कर दिया। नतीजा हुआ कि निरन्तर चरित्र पतन होता चला गया। धर्माचार्यों को चाहिये कि समाज में फैली इस भ्रांति को दूर करें तथा आचरण शुद्धि पर जोर दें।

हमारे देश की गरीबी हमारे लिए सबसे बड़ा कलंक है। हमारे धर्माचार्य अगर ईश्वर प्राप्ति का रास्ता बताने के बजाय गरीबी दूर करने का उपाय बताएं तो देश को आर्थिक गुलामी से मुक्त होने में समय नहीं लगेगा। हमारी श्रम प्रधान व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो गई। समाज ने संन्यासी को पूजा लेकिन श्रमिक को महत्व नहीं दिया। नतीजा हुआ कि श्रम के महत्व का अवमूल्यन होता चला गया। जब तक हमारी सारी व्यवस्था श्रम एवं उद्यम पर आधारित नहीं होगी, हमारे परमात्मा प्राप्ति के सारे उपदेश निरर्थक होंगे। जीवन के यथार्थ को समझना एवं स्वीकार करना ही हमारी समझदारी होगी, वरना ये उपदेश भी हमारे पतन को रोक नहीं पायेंगे।

हमारे चरित्र का अवमूल्यन क्यों हो रहा है? इसके लिए दोषी कौन है? इसकी पहचान कौन करेगा? या तो राजनेता या धर्माचार्य। व्यक्ति को सुधारने से ही समाज एवं देश सुधरेगा। राजनीति पर धर्म का अंकुश होना चाहिये ताकि राजनीति का पतन न होने पाये। धर्म की व्यवस्था भी बताने की आवश्यकता है। धर्म धारण करना पड़ता है – धर्म व्याख्यान करने की चीज नहीं है। धर्म धारण क्या है? सत्याचरण ही धर्म धारण है। अहिंसा, प्रेम, निस्वार्थ सेवा आदि धर्म धारण है। अगर इस धर्म को हमारे धर्माचार्य प्रतिष्ठित करते हुए कर्तव्य कर्म करने की प्रेरणा दें और श्रम के महत्व को सर्वोपरि बतावें तो कोई कारण नहीं कि यह देश पुनः विश्व का धर्मगुरु न हो जाय, हमारे देश में दूध दही की नदियां पुनः प्रवाहित न होने लगे और यह देश एक बार फिर सोने की चिड़िया न हो जाय।

♦

बड़ों का बड़प्पन

धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज केदारघाट (वाराणसी) में अपने आश्रम में विराजमान थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ज्योतिष विभागाध्यक्ष भी आकर वहां बैठ गये। उसी समय अमेरिका का आदमी उपग्रह से चांद पर उतरा था। स्वामी जी महाराज ने ज्योतिषाचार्य से पूछा "क्यों पंडित् जी, अमेरिका का आदमी चाँद पर उतरा या नहीं?" तो पंडित जी चांद का प्रकार बताने लगे कि ब्रह्माण्ड में कितने प्रकार के चांद हैं तो पुनः स्वामी जी ने प्रश्न को संक्षेप करते हुये पूछा "जिस चांद को हम देखते हैं उस पर उतरा या नहीं?" तो पंडित जी ने कहा "नहीं उतरा" तो स्वामी जी ने पंडित जी को समझाया कि अमेरिका एवं रूस दो विरोधी राष्ट्र हैं, "अमेरिका का आदमी उतरा और विरोधी राष्ट्र रूस ने मान लिया कि चांद पर आदमी उतर गया तो मान लेना चाहिए कि आदमी चांद पर उतर गया।" पंडित जी ने बिना किसी विवाद के मान लिया कि आदमी चांद पर उतर गया।

राजा बलदेव दास बिड़ला काशी में रहते थे। नित्य पंडितों एवं विद्वानों की सभा करते थे। उनके प्रवचन सुनते और अपनी शंकाओं के लिये शास्त्रार्थ करते। पंडितों एवं विद्वानों को दान दक्षिणा भी काफी दिया करते थे। एक दिन एक पंडित जी ने राजा साहब से कहा कि "राजा साहब आप दान दक्षिणा बहुत देते हैं लेकिन आप न तो पात्र देखते हैं, न कुपात्र देखते हैं और न सुपात्र देखते हैं। चाहे जिसको चाहे जितना दान दे देते हैं। आपको पात्रता के अनुसार दान दक्षिणा देनी चाहिए।" उत्तर में राजा साहब ने कहा कि "पंडित जी, आप ठीक कहते हैं लेकिन दान देने का अभ्यास बना रहेगा तो कभी न कभी सुपात्र आ ही जायेगा।" राजा साहब का उत्तर सुनकर पंडित जी को और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

राजा बलदेव दास बिड़ला को किसी ज्योतिषी ने बता दिया कि आपकी आयु ४५ वर्ष है। राजा साहब की इच्छा काशी में मरने की थी। अतः ४४वें वर्ष में सब कारोबार एवं परिवार छोड़ कर वे काशीप्रवास हेतु काशी आ गये। ४५वां वर्ष राजा साहब का बीत गया तो पुनः उसी ज्योतिषी को बुलाये और पूछा कि

पंडित जी अब हमारी कुंडली क्या बोलती है तो पंडित जी ने कहा कि अब आपकी आयु हमारे समझ के परे है तो राजा साहब ने पंडित जी को समझाया कि 'पंडित जी आप केवल जन्म कुंडली देखना जानते हैं, कर्म कुंडली भी देखना सीखें कि कर्मों से कैसे भाग्य की रेखायें बदलती हैं। पंडित जी निरुत्तर हो गये और उनको लगा कि एक नया ज्ञान मिला। राजा साहब ९६ वर्ष तक जीये।

श्री मोरारी बापू की अयोध्या जी में कथा हो रही थी। कभी कभी बापू प्रश्नकर्ताओं के प्रश्नों का उत्तर कथा कहने के पहले दे दिया करते हैं। कथा के समय भारत में संसद के चुनाव का प्रचार कार्य हो रहा था। किसी प्रश्नकर्ता ने प्रश्न किया, 'बापू हाथ (कांग्रेस) को वोट देंगे या कमल (भारतीय जनता पार्टी) को? तो बापू ने कहा कि हाथ में कमल आ जाय तो देश का भाग्य बदल जाय। चुनाव में खर्च बहुत होता है और यह पैसा बर्बाद होता है। अगर पार्टियां मिलजुल कर सरकार बनाएं और इस चुनावी खर्च को देशहित में लगायें तो देश का कल्याण होना निश्चित है।'

एक सज्जन के पुत्र का विवाह था। बारात लेकर वे कन्या पक्ष के शहर में गये थे। कन्या पक्ष ने बारात को धर्मशाला में टिका दिया। कोई बाराती आकर दूल्हा के पिता से कहा कि 'राधे बाबू, कन्या पक्ष को कह दीजिये कि धर्मशाला के पाखानों को ठीक से साफ करा दें। राधे बाबू ने कन्या पक्ष के किसी सज्जन को बुलाकर कहा कि बाराती लोग धर्मशाला के पाखानों के गंदा होने की शिकायत कर रहे हैं। कन्या पक्ष वाले यह कह कर चले गये कि अभी साफ कराते हैं। आधे घंटे बाद कन्या पक्ष वाले राधे बाबू के पास आये और बोले 'आपने जो काम बताया था वह हो गया।' तो राधे बाबू बोले, ठीक है। कन्या पक्ष के जाने के बाद राधे बाबू अपने बगल में खड़े दूसरे बाराती से बोले आपने देखा कन्या पक्ष को, यह हमसे शाबासी लेने आया कि हमने जो शिकायत की उसको उसने दूर कर दिया जब कि उसको माफी मांगनी चाहिये थी कि हमारी व्यवस्था में त्रुटि रह गई थी।

एक बार एक सज्जन को किसी व्यक्ति ने कहा कि फलाने बाबू साहब आपकी शिकायत कर रहे थे तो उन सज्जन ने कहा कि फलाने बाबू साहब अगर हमारी शिकायत कर रहे थे तो जरूर हमारे में कमी होगी। यह जवाब जब शिकायतकर्ता के पास पहुंचा तो वे उसी सज्जन के प्रशंसक हो गये। हमारी कोई शिकायत करता है तो प्रायः प्रतिक्रिया में हम भी उसकी शिकायत करते हैं, अपनी गलती स्वीकार नहीं करते।

काशी में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन था। इलाहाबाद से श्री सुमित्रानन्दन पन्त एवं सुश्री महादेवी वर्मा भी उस कवि सम्मेलन में भाग लेने

काशी आईं। काशी के मेयर ने कवि सम्मेलन के आयोजकों से कहा कि इन महान कवियों का चाय जलपान कल प्रातः हमारे निवास पर होगा। आयोजकों ने मेयर साहब का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। काशी में टेबुल पंखा बनता है जिसकी ख्याति देश एवं विदेशों में भी है। उसी पंखा के निर्माता ने कहा कि हम भी इन दोनों महान कवियों को एक एक टेबुल पंखा भेंट करना चाहते हैं तो उनके इस निवेदन को भी आयोजकों ने स्वीकार कर लिया। मेयर साहब के निवास स्थान पर जलपान के उपरान्त दोनों कवि अगल बगल में सोफा पर बैठ गये तो पंखे के निर्माता ने एक एक टेबुल पंखा दोनों को भेंट किया। भेंट स्वीकार करने के उपरान्त श्री सुमित्रा नन्दन पन्त जी ने महादेवी वर्मा जी से कहा 'देखा देवी जी, अब बनारस की हवा इलाहाबाद में खाने को मिलेगी।'

गांधी जी से पत्रकारों ने पूछा कि आप तो मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग जायेंगे। तो गांधीजी ने कहा कि 'मुझे नहीं मालूम कि मैं कहां जाऊंगा लेकिन इतना जरूर मालूम है जहां भी जाऊंगा वहां पत्रकार जरूर मिलेंगे।'

भगवान राम का राज्याभिषेक हो रहा था। मां सीता वामांग में विराजमान थीं। लक्ष्मण जी दाहिनी तरफ थे। सामने बगल में हनुमान जी महाराज वीरासन में बैठे थे। सिंहासन के पीछे छत्र लेकर भरत जी खड़े थे। उनके बगल में शत्रुघ्न जी भी खड़े थे। भगवान राम ने भरत से कहा 'भरत, अब तेरा स्थान पीछे नहीं है, आगे है सो आगे आ जाओ।' तो भरत ने कहा, 'भैया, मैं ठीक स्थान पर हूं।' जब भगवान राम ने देखा कि भरत पीछे से आगे नहीं आयेंगे तो भगवान राम ने कहा कि 'अब राम राज्य करेगा भरत की छत्रछाया में।'

दूसरों को सम्मान देकर सम्मान प्राप्त करना ही बड़प्पन है। उनके उठने, बैठने, बोलने चालने एवं व्यवहार आदि में बड़प्पन झलकता है। वे न तो किसी को अपमानित करने का प्रयास करते हैं और न अपना बड़प्पन दिखाने का। उनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि उनकी प्रत्येक क्रिया में बड़प्पन दिखाई देता है। बड़ों के बड़प्पन के कुछ उदाहरण नीचे दे रहा हूं।

श्री जयदयाल जी गोयन्दाका (गीता प्रेस) एवं श्री घनश्याम दास जी बिरला की एक बार भेंट हुई। दोनों ही लगभग सम उम्र के थे। लेकिन श्री घनश्याम दास जी बिरला ने श्री जयदयाल जी गोयन्दका का झुक कर चरण स्पर्श करना चाहा तो श्री जयदयाल जी पीछे हट गये और उन्होंने बिरला जी से कहा कि 'ये आप क्या कर रहे हैं'? तो बिरला जी ने कहा कि 'जो आपके पास है वह मेरे पास नहीं है।' श्री गोयन्दका जी आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध थे।

महात्मा गांधी की सभा में श्री बाल गंगाधर तिलक पांच मिनट लेट पहुंचे। गांधी जी समय के बहुत पाबंद थे। तिलक साहब ने देश की स्वतंत्रता के लिए

नारा दिया था "स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।" गांधी जी की उस सभा में देश की स्वतंत्रता के लिये विचार विमर्श होना था। तिलक साहब गांधी जी से उम्र में बड़े थे। अतः तिलक साहब के सभा में पांच मिनट लेट पहुंचने पर गांधी जी ने कहा "अब देश को आजादी पांच मिनट बाद मिलेगी।" कितनी खूबसूरती से गांधी जी ने तिलक साहब को मीटिंग में लेट आने का एहसास करा दिया।

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के पास दो कम्युनिस्ट आये। प्रसंगवश उन्होंने स्वामी जी से कहा कि "स्वामी जी, श्रीमद्भगवद्गीता तो पूंजीपतियों की दलाल है" तो स्वामी ने कहा कि "मैंने आपका आशय समझा नहीं" तो दोनों कम्युनिस्टों में से एक ने कहा कि गीता कहती है "कर्म करो बिना फल की आशा के" तो महाराज हर पूंजीपति चाहता है कि "कर्मचारी काम करे बिना पैसे की आशा के।" स्वामी जी समझ गये कम्युनिस्ट के इस कुतर्क को। उन्होंने कम्युनिस्ट से पूछा कि "तुम लोग कम्युनिस्ट हो तो बताओ कि कम्युनिज्म का प्रवर्तक कौन है' तो कम्युनिस्ट ने बताया 'मार्क्स एवं लेनिन।' तो स्वामी जी महाराज ने कहा 'नहीं, तुम्हारे कम्युनिज्म के प्रवर्तक हमारे बजरंग बली हनुमान जी महाराज हैं। कारण तुम्हारा तो झंडा ही लाल है। हमारे हनुमान जी महाराज तो पूरे के पूरे लाल हैं।' स्वामी जी ने कुतर्क का उत्तर उसी कुतर्क के सिक्के में भुगतान कर दिया।

बड़ों के बड़प्पन पर तो किताब लिखी जा सकती है। ऊपर कुछ दृष्टान्त केवल यह बताने के लिये है कि बिना किसी की भावना को चोट पहुंचाये भी आदमी अपनी बात कह सकता है। बस यही है बड़ों का बड़प्पन।

◆

तीन का महत्व

हमारी सृष्टि के आदि ब्रह्म भगवान शंकर हैं। ये अजन्मा हैं अतः इनकी मृत्यु भी नहीं होती। हम भगवान शंकर का जन्मदिन या मृत्यु दिवस नहीं मनाते। महाशिवरात्रि उनके विवाह का दिन है अतः उसे हम व्रत तथा भगवान शंकर का दर्शन पूजन करके मनाते हैं। भगवान शंकर को त्रिपुंड प्रिय है। उनका शस्त्र भी त्रिशूल है। वे त्रिनेत्रधारी हैं। उनको सबसे प्रिय बेलपत्र है जिसमें भी तीन ही पत्ते होते हैं। चूंकि भगवान शंकर के साथ यह तीन की संख्या जुड़ गयी है अतः तीन का विशेष महत्व हो गया। आगे हम चर्चा करेंगे कि तीन का महत्व सर्वाधिक कहां-कहां है।

आयुर्वेद में बीमारियों के तीन ही मूल कारण बताए गये हैं। वे हैं वात, पित्त और कफ। इन त्रिदोषों को शांत करने के लिए जो औषधि बताई गई है वह भी त्रिफला है जिसमें भी तीन ही फल हैं वे हैं आंवला, हरड़ एवं बहड़। कहते हैं ये तीन बीमारियां जब सम अवस्था में रहती हैं तो आदमी स्वस्थ एवं दोषमुक्त रहता है। इन तीनों में से जो भी बीमारी विषम होगी आदमी उसी बीमारी से ग्रस्त हो जाएगा। रोगी को निरोग बनाने के लिए विषम से सम अवस्था में लाया जाता है। सारा आयुर्वेद शास्त्र इन त्रिदोषों के कारण होने वाली बीमारियों एवं उनको दूर करने के उपायों पर आधारित है।

हमारा तीर्थराज प्रयाग है। वहां भी तीन नदियों का संगम है और वे हैं गंगा, यमुना एवं सरस्वती। प्रयाग में सरस्वती लुप्त हैं एवं यमुना का मिलन गंगा में हो गया और आगे केवल गंगा ही चली। विद्वान कहते हैं सरस्वती ज्ञान की प्रतीक हैं। यमुना चूंकि भक्ति के स्थान मथुरा वृंदावन से आई हैं अतः वह भक्ति की प्रतीक हैं और गंगा निरंतर कल-कल करती हिमालय से सागर तक की यात्रा करती हैं अतः वह कर्म की प्रतीक हैं। इस प्रकार उस संगम में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का संगम है जिस व्यक्ति के जीवन में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का संगम हो जाएगा वह स्वयं तीर्थराज की तरह पावन एवं पवित्र हो जायगा। जीवन की सर्वोच्च्व अवस्था तब तक नहीं मानी गयी जब तक ये तीनों गुण उस व्यक्ति में एकाकार नहीं हो गये।

हमारे जीवन की भी तीन ही अवस्थाएं होती हैं। वे हैं बचपन, जवानी एवं बुढ़ापा। व्यक्ति एक लेकिन अवस्थाएं तीन। ये तीनों अवस्थाएं तीन काल का स्मरण कराती हैं। बचपन हमारा वर्तमान में जीता है। उसे न भूतकाल की चिंता है और न भविष्य की। जवान हमेशा भविष्य काल की बात करता है। उसकी जवानी जब उछाल मारती है तो वह कहता है कि हम ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे। यानी हमेशा भविष्य की बात करता है। इसी प्रकार बुढ़ापा हमेशा भूतकाल की बात करता है। बूढ़ा व्यक्ति हमेशा कहेगा कि हमने ऐसा किया, वैसा किया। उसे न वर्तमान से मतलब है और न भविष्य काल से। उसे हमेशा अपने किए हुए काल का स्मरण आता है और वह भूतकाल में जीता है।

हमारे शास्त्रों में महात्मा उसे कहा गया जो मनसा, वाचा और कर्मणा एक हो। यह स्थिति अत्यंत कठिन है। इस स्थिति में जो मन में आता है वही वचन में आता है और जो वचन में आता है वही क्रिया रूप में परिणत होता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए साधक को अत्यन्त कठिन साधना करनी पड़ती है। इसी गुण के कारण हमारे देश ने महात्मा गांधी को महात्मा की उपाधि से विभूषित किया।

हमारी सृष्टि की भी तीन ही अवस्थाएं हैं– उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय। इस सृष्टि की जब भी उत्पत्ति हुई उसके बाद से यह सृष्टि अपनी अवस्था में स्थित है। जब इस सृष्टि का अंत आएगा तो कहते हैं वह प्रलय की अवस्था ही होगी। इसी प्रकार हमारे जीवन की भी तीन अवस्थाएं हैं– जन्म, जीवन एवं मृत्यु। जो जन्मा है उसे जीने के लिए जीवन मिला एवं अंत में उसकी मृत्यु निश्चित है। हमारी सृष्टि के भी देवता तीन ही हैं– ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश। सृष्टि की उत्पत्ति के देवता ब्रह्मा हैं। सृष्टि के पालनकर्ता विष्णु हैं एवं सृष्टि संहार के देवता महेश हैं।

होमियोपैथी में भी आयुर्वेद की तरह तीन ही दोष हैं– सोरा, सोराइसिस एवं सिफलिस। होमियोपैथी का सारा चिकित्सा शास्त्र इन्हीं त्रिदोषों की बीमारी एवं उनसे मुक्त होने का शास्त्र है।

हमारे यहां मूल रूप से तीन ही नरक के द्वार माने गये हैं। वे हैं काम, क्रोध एवं लोभ। मनुष्य काम से पीड़ित है। काम में बाधा उत्पन्न होने पर क्रोध आता है। दूसरे की वस्तु को बिना प्रयास के प्राप्त करने का नाम लोभ है। इन तीनों से जिनका पिंड छूटा उनका नरक से पिंड छूटना निश्चित है।

प्रत्येक मनुष्य भी तीन प्रकार का होता है– सात्विक, राजसी एवं तामसी। कोई मनुष्य केवल सात्विक, केवल राजसी या केवल तामसी नहीं मिलेगा। प्रत्येक व्यक्ति में तीनों का समावेश होता है। जिस गुण की प्रधानता होती है वह व्यक्ति उसी प्रकार से सात्विक, राजसी एवं तामसिक हो जाता है।

हमारे शरीर की भी तीन स्थितियां हैं- स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण। स्थूल जो हमें दिखाई देता है जैसे हमारी पंच कर्मेन्द्रियां। सूक्ष्म जो हमें नहीं दिखाई देता जैसे हमारी पंच ज्ञानेन्द्रियां एवं मन तथा कारण शरीर यानी जिसके कारण यह शरीर हमारा संचालित होता है वह है हमारा प्राण तत्व।

ताप भी तीन ही प्रकार के होते हैं। जैसे आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक। आधिभौतिक ताप है चार प्रकार के प्राणियों से प्राप्त दुख जैसे जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज। वे हैं मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि। आधि-दैविक ताप हैं देवों से उत्पन्न कष्ट जैसे शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, वज्र, उल्कापात आदि। इसी प्रकार आध्यात्मिक ताप हैं वात, पित्त, कफ के विपर्यय से उत्पन्न ज्वर, अतिसार इत्यादि रोग तथा प्रिय का वियोग एवं अप्रिय का संयोग।

भगवान वामनदेव ने राजा बलि से तीन डेग भूमि ही मांगी थी। राजा बलि ने सोचा कि भगवान वामन देव तो देखने में बहुत छोटे अवतार हैं अतः तीन डेग में थोड़ी बहुत भूमि ही नपेगी। लेकिन भगवान वामनदेव ने तीन डेग में ही आकाश, पाताल एवं पृथ्वी को नाप दिया तो फिर राजा बलि के पास देने को बचा ही क्या?

हमारा समय भी तीन कालों में बंटा है। जो बीत गया वह भूत काल है, वर्तमान में हम जो जी रहे हैं वह हमारा वर्तमान काल है एवं आने वाला समय हमारा भविष्यकाल है।

बल भी तीन प्रकार के होते हैं- शारीरिक बल, धनबल एवं बुद्धिबल। अलग अलग व्यक्तियों में इन तीनों का समावेश अलग अलग मात्रा में होता है। जिस व्यक्ति में जिस बल की प्रधानता होती है वह उसी बल का प्रतीक माना जाता है।

हमारे विद्वान कहते हैं कि कंचन, कामिनी एवं कीर्ति का मोह सभी को परेशान करता है। कंचन का मोह छूटना कठिन है, कामिनी का मोह छूटना कठिनतर है एवं कीर्ति का मोह छूटना कठिनतम है। यानी कीर्ति का मोह छूटना अत्यंत कठिन है। बिना साधन एवं साधना के साध्य भी प्राप्त नहीं होगा। जैसे शरीर साधन है, हमारी तपस्या साधन है एवं जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधना की जाती है वह लक्ष्य ही हमारा साध्य है। किसी वस्तु को सुव्यवस्थित रूप से खड़ा करने के लिए भी कम से कम तीन टांगों की आवश्यकता पड़ती है। तीन से कम टांगों में गिरने की संभावना अधिक रहती है। हमारे कई सिद्ध महात्मा त्रिकालदर्शी हुआ करते हैं। अपनी चेतना को परम चेतना के साथ एकाकार कर लेने के उपरान्त उन्हें तीनों कालों का यानी भूतकाल, वर्तमान काल एवं भविष्यकाल का बोध हो जाता है।

सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय भी तीन अवस्थाओं से गुजरता है। वे हैं सुबह, दोपहर एवं शाम। यह भी जीवन की तीन अवस्थाओं के अनुरूप हैं जैसे सुबह हमारा बचपन है, दोपहर हमारी जवानी है एवं शाम हमारा बुढ़ापा है।

हमारे जीवन में तीन की संख्या का विशेष महत्व है। उपरोक्त लेख में इसी महत्व को दर्शाया गया है। यों भी तीन पर अन्य उदाहरण देकर और भी बातों का उल्लेख किया जा सकता है लेकिन हमने चेष्टा की है केवल प्रचलित तथ्यों को संज्ञान में लाने की।

◆

सात का महत्व

यों तो हर संख्या का अपना महत्व है लेकिन सात की संख्या का विशेष महत्व है। हमारे यहां ही नहीं, विश्व के सभी देशों एवं धर्मों ने सप्ताह केवल सात दिन का ही माना है। हम उसे सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार, शनिवार एवं रविवार कहते हैं। महर्षि वेदव्यासजी ने महाभारत, पुराण आदि लिखे। वेदव्यास जी विश्व के सबसे बड़े लेखक माने जाते हैं। हमारे यहां कहावत है कि 'यन्न भारते तन्न भारते' याने जो विषय महाभारत ग्रंथ में नहीं वह अन्यत्र नहीं मिलेगा। यह एक लाख श्लोकों का ग्रंथ है। इसी ग्रंथ का एक छोटा सा भाग श्रीमद्भगवद्गीता है। लेकिन वेदव्यास जी महाराज को इतने ग्रंथों के प्रणयन के उपरान्त भी शान्ति नहीं मिली। शान्ति मिली तो केवल भागवत ग्रंथ की रचना करके। यह ऐसा अद्भुत ग्रंथ है जो महाराज परिक्षित को महामुनि शुकदेव जी महाराज ने केवल सात दिन में सुनाया। महाराज परिक्षित की मृत्यु सर्पदंश के कारण एक सप्ताह बाद होने वाली थी। वे मृत्यु से भयभीत थे। एक सप्ताह बाद सर्पदंश से उनकी मृत्यु हुई लेकिन श्रीमद्भागवत सुनने के पश्चात् उनका मृत्यु का भय समाप्त हो गया।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने भगवान राम के चरित्रों का वर्णन श्रीरामचरित मानस में किया है जिसमें केवल सात कांड हैं। इन सातों कांडों के नाम हैं बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड। श्रीरामचरित मानस हमारे सभी धर्मग्रंथों का निचोड़ है। श्रीमद्भगवतगीता जहां योग शास्त्र है वहीं श्रीरामचरित मानस पूरा का पूरा प्रयोग शास्त्र है।

हमारे यहां विवाह में सात फेरे होते हैं। उसके साथ ही सात पदों में सात वाक्य कन्या कहती है।

१-घर में जो धन-धान्य, मिष्ठान्न, कंचनादि हैं वे सब मेरे अधीन करने होंगे।
२-मधुर वचन बोलने वाली मैं कुटुम्ब का पालन करूंगी साथ ही आपके दुख में दुखी और सुख में प्रसन्न रहूंगी।

३-आपके साथ मैं पतिव्रता की भाँति सर्वदा क्रीडा करूंगी किसी अन्य पुरुष को मन में स्थान नहीं दूंगी।

४-आपकी प्रसन्नता हेतु केश पालन, गन्ध माला और अनुलेपन से तथा स्वर्णादि आभूषणों से भूषित रहूंगी।

५-आपके सुख दुख में सहभागिनी रहूंगी, आपके कष्ट में दुखी रहूंगी और आपकी आज्ञा का पालन करूंगी।

६-यज्ञ, दान, धर्म, कर्म, होम और धनादि के कार्यों में आपके साथ रहूंगी।

७-हमारे इन वचनों में मनोभाव जानने वाले देवगण साक्षी रहेंगे। पतिव्रता और धर्मपरायणा होकर इन सारे वचनों का निर्वाह करती रहूंगी। (ये वचन वेद और धर्मशास्त्रों के हैं)

इसके बाद वामांगी (पत्नी) बनने के पूर्व कन्या वर से सात वचन लेती है। ये पुराणों के वचन हैं-

१-हे पति देव मैंने श्रद्धापूर्वक अनेक पुण्य कार्य किये, देवी का पूजन भी किया। इसी से आप पति रूप में मुझे प्राप्त हुए। आप सर्वदा मेरे पूज्य हैं।

२-गृहस्थाश्रम में सदा सुख दुख आते जाते हैं उसमें आप सदा शांत चित्त रहें यह आपसे मेरी पहली मांग है।

३-अब से आप बावली, कुआं, तालाब का निर्माण, यज्ञ, यात्रा, उत्सवादि समस्त कार्य मेरी अनुमति के बिना न करें।

४-व्रत, उद्यापन, दान आदि करना स्त्रियों का धर्म है। इस मेरे कर्म में आप कभी बाधा न डालें।

५-आप अपने पुरुषार्थ से जो भी धन कमा कर लावें तथा बैल, गाय आदि पशु या अन्न, द्रव्य सभी मुझे समर्पित करें।

६-आज से आप हाथी, घोड़े, आदि पशुओं का खरीदना या बेचना बिना हमारे पूछे न करें।

७-समय समय पर जो आप हमको रत्न और सोने चांदी से बने अनेक प्रकार के आभूषणों एवं चित्र विचित्र वस्त्रों को दें उनको पुनः वापस लेने का लोभ न करें।

पतिं से सात वचन लेने के उपरान्त ही पत्नी वामांग में आती है और तब धर्मपत्नी हो जाती है।

कर्म ज्ञान के जगत के शिक्षक सात महान ऋषिगण नभमण्डल में विराजमान हैं- उनके नाम हैं मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ। इन्हें हम लोग सप्तर्षि कहते हैं।

हमारी सात पुरियां मोक्षदायिका हैं। वे हैं अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार),

काशी, कांची (कांचीपुरम, मद्रास), अवन्तिका (उज्जैन), द्वारावती (द्वारिका)। इन सात पुरियों में मरने वाले की मुक्ति हो जाती है।

हमारी मान्यता है कि हमारे सात महापुरुष चिरंजीव हैं यानी वे आज भी जीवित हैं उनके नाम हैं–अश्वत्थामा, बलि, वेदव्यास जी, हनुमान जी, विभीषण, कृपाचार्य एवं परशुराम।

हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि सात लोक होते हैं उनके नाम हैं– भूलोक, भुवः, स्वर्ग, महः जनः, तपः एवं सत्यः।

हमारे सात पाताल होते हैं उनके नाम हैं–तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल एवं पाताल।

हमारी सात प्रमुख नदियां मानी गई हैं वे हैं– गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी (कर्नाटक से मद्रास), नर्वदा (मध्य प्रदेश से गुजरात), सिन्धु एवं कावेरी (तमिलनाडु)। इस देश की सारी सभ्यता एवं संस्कृति का विकास इन महान नदियों के किनारे ही हुआ। ये नदियां ही हमारे खाद्यान्न उत्पादन एवं वाणिज्य की प्रमुख स्रोत हैं।

विश्व में सात महाद्वीप माने गये हैं। वे हैं एशिया, यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, लेटिन अमेरिका एवं अंटार्कटिका।

संगीत में भी सात ही स्वर मने गये हैं– सा, रे, ग, म, प, ध, नि। इन्हीं सात स्वरों से संगीत की सभी प्रस्तुतियां हैं।

हमारे मुख्य सात ग्रह हैं– सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर। राहु एवं केतु भी ग्रह हैं लेकिन ये केवल छाया ग्रह माने गये हैं।

हमारी दुर्गा सप्तशती को भी केवल सात श्लोकों में ही समेट दिया गया है जिसे सप्तश्लोकी दुर्गा कहा जाता है–

(१) वे भगवती महादेवी ज्ञानियों के भी चित्त को बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती है।

(२) मां दुर्गे! आप स्मरण करने पर सब प्राणियों का भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषों द्वारा चिन्तन करने पर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरने वाली देवि! आपके सिवा दूसरा कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करने के लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो।

(३) नारायणि! तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली मंगलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रों वाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है।

(४) शरण में आये हुए दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली तथा सबकी पीड़ा दूर करने वाली नारायणि देवि! तुम्हें नमस्कार है।

(५) सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयों से हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है।

(६) देवि! तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को नष्ट कर देती हो और कुपित होने पर मनोवांछित सभी कामनाओं का नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरण में जा चुके हैं, उन पर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरण में गये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देने वाले हो जाते हैं।

(७) सर्वेश्वरी! तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो।

कौरव पाण्डव युद्ध में यो तो उठारह अक्षौहिणी सेना थी जिसका संख्या बल ४० लाख होता है। इस महाभारत युद्ध में पांडव पक्ष के केवल सात ही जीवित बचे उनमें पांचों पाण्डव- युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव। इनके अलावा दो और बचे वे हैं कृष्ण एवं सात्यकि। इस प्रकार पाण्डव पक्ष में केवल सात बचे थे।

◆

प्रत्येक तिथि का महत्व

भारतीय पंचांग में बारह महीने होते हैं जो चैत्र मास से प्रारम्भ होकर फाल्गुन मास में समाप्त होते हैं। प्रत्येक तीन वर्ष पर एक अधिक मास होता है जो काल गणना के हिसाब से एक वर्ष में १० दिन की कमी को ३ वर्ष में एक माह बढ़ाकर पूरा कर देता है। एक मास को भी दो पक्षों में बांटा गया है। पहले १५ दिन का कृष्ण पक्ष एवं बाद में १५ दिन का शुक्ल पक्ष कहा गया है। मास का प्रारम्भ एक्कम से होकर अमावस्या या पूर्णिमा तक जाता है। हमारे ऋषियों एवं आचार्यों ने मास के प्रत्येक दिन को महत्व प्रदान किया है।

एक्कम से वर्षारम्भ होता है। अन्नकूट का कार्यक्रम भी होता है। गोवर्धन पूजा भी इसी दिन की जाती है।

दूज – दीपावली के दूसरे दिन भैयादूज होती है यानी भाई अपनी बहन के घर जाकर भोजन करता है ताकि वर्ष पर्यन्त भाई रोग शोक से मुक्त रहे। यम द्वितीया भी इसी दूज को कहते हैं कारण यमराज अपनी बहन जमुना के घर जाता है और कहते हैं उतनी देर के लिये मौत भी रुक जाती है।

तीज – हरितालिका तीज का व्रत औरतें रखती हैं। इससे पति को दीर्घायुष्य प्राप्त होता है और महिला का अखण्ड सौभाग्य बना रहता है। अक्षय तृतीया (वैशाख युक्त तीज) त्रेता युग के आरम्भ का दिन है, परशुराम जयन्ती मनाई जाती है। सब प्रकार के काम प्रारम्भ करना शुभ माना जाता है।

चौथ – करवा चौथ का व्रत महिलायें करती हैं, और अपने पति के मंगल की कामना करती हैं। गणेश चतुर्थी भादों सुदी चौथ को गणेश का जन्म दिन समारोह पूर्वक मनाया जाता है। गणेश महाराज हमारे प्रथम पूज्य देवता हैं। वे विघ्न हर्ता हैं। ऋद्धि सिद्धि के दाता एवं बुद्धि विवेक के प्रदाता भी हैं।

पंचमी – ऋषि पंचमी में सप्त ऋषियों के पूजन से महिलायें अपने लिये स्वर्ग की कामना करती हैं। नाग पंचमी श्रावण युक्त पंचमी को नागदेव के पूजन का विधान है। वसन्त पंचमी माघ युक्त पंचमी सरस्वती पूजन और वसन्तोत्सव का प्रारम्भ होता है।

छठ – डाला छठ – लोलार्क छठ – हल षष्ठी। डाला छठ कार्तिक युक्त छट में भगवान सूर्य की उपासना एवं पूजा की जाती है।

सप्तमी – सप्त मातृकाओं की पूजा सप्त ऋषि एवं मुक्ता भरण सप्तमी, सूर्य पूजन होता है।

अष्टमी – भगवान कृष्ण का जन्म एवं मां अन्नपूर्णा का जन्म दिन है। राधाष्टमी राधा जी के जन्म दिन के रूप में मनाई जाती है।

नवमी – रामनवमी में भगवान राम का जन्म, मातृ नवमी एवं आंवला (अक्षय) नवमी में आंवला के पेड़ के नीचे भोजन करने का विधान है। नवरात्र के नौमी को शक्ति (दुर्गादि) की विशेष अर्चना की जाती है।

दशमी – विजया दशमी के दिन ही भगवान राम ने रावण पर विजय पाई थी। इसी दिन दशावतार की झांकी होती है। यह वैदिक पर्व है। इसी दिन राजा लोग वर्षा का दिन समाप्त होने पर विजय यात्रा के लिये निकलते थे और शस्त्र पूजा करते थे।

एकादशी – एकादशी के व्रत का अति माहात्म्य है। देवोत्थान एकादशी के बाद ही विवाह के मांगलिक कार्य प्रारम्भ होते हैं। निर्जला एकादशी में बिना जल के व्रत का विशेष महत्व है। इसे विष्णु पर्व करके मानते हैं। एकादशी के दिन गीता की जयन्ती भी मनाई जाती है।

द्वादशी – बावन भगवान के प्राकट्य का दिन है।

त्रयोदशी – धन तेरस दीपावली के दो दिन पूर्व – धन्वन्तरि–जयन्ती में भगवान धन्वन्तरि का समुद्र मंथन से प्राकट्य हुआ।

चतुर्दशी – पवनपुत्र हनुमान जी महाराज का जन्म, अनन्त चतुर्दशी – यम पूजा आदि का विधान है।

पूर्णिमा – भगवान बुद्ध, गुरु नानक देव, सन्त कबीर का जन्म। भगवान बुद्ध को ज्ञान एवं निर्वाण भी पूर्णिमा को। रक्षा बन्धन, होलिका दहन आदि अनेक पर्व और जयन्तियों के लिये यह प्रशस्त तिथि है।

अमावस्या – दीपावली पर्वोत्सव तथा जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर, आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द एवं वेदान्त के साकार रूप स्वामी रामतीर्थ की पुण्य तिथि भी मनाते हैं।

◆

आप क्यों हँसे

मैंने इस लेख का शीर्षक 'आप क्यों हँसे' बड़ा सोच समझ कर दिया है।

फूल बनकर मुस्कराना जिन्दगी है,
मुस्कराकर गम भुलाना जिन्दगी है
जीतकर हम खुश हुए तो क्या हुये,
हारकर खुशियां मनाना जिन्दगी है।

पद्मभूषण डॉ० विद्यानिवास मिश्र जी ने बताया कि भाषा और हँसी प्राणियों में केवल मनुष्य समदाय तक सीमित है। मनुष्य ने ही भाषा ईजाद की, मनुष्य ने ही हंसी भी। पर विचित्र बात यह है कि भाषा किसी न किसी रूप में सबको आती है, सब बोल लेते हैं, सब इससे अपना संकेत संप्रेषित कर लेते हैं। पर हंसी एक ऐसी चीज है जो सबको वरदान में नहीं मिली। हंसी केवल मनुष्य मात्र को आती है। मनुष्य होकर भी जो हंसता नहीं, उसके मनुष्य होने में संदेह है।

यों तो जीवन दुःख का आगार है लेकिन कहीं से कोई हंसी पैदा हो जाय तो उदासी का सारा भार एक क्षण में उतर जाता है और आदमी को लगता है कि अभी-अभी हमने नदी में नहाकर थकान मिटाई है।

कहते हैं औषधि तो एक रोग का हरण करती है लेकिन महौषधि सर्वरोग हरण करती है। हास्य भी महौषधि है कारण जहां हंसी आई कि मानसिक तनाव से छुटकारा मिला। अंग्रेजी की यह कहावत सटीक है- 'लाफ्टर इज दी बेस्ट मेडिसिन' अर्थात् हंसी सर्वश्रेष्ठ दवा है।

हंसी मानवीय सम्बन्धों को सरस एवं सुख बनाती है।

अब तक हुये अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि हंसी स्वास्थ्य के लिये उतनी ही आवश्यक है जितना उचित खान-पान।

क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष जैसे नकारात्मक भाव जहां शरीर पर घातक प्रभाव डालते हैं वहीं हंसी से मानव देह में ऐसे जैव रसायनों का निर्माण होता है जो स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं।

ठहाका लगाकर हंसने के साथ शरीर में एंडोर्फिन नामक हार्मोन का उत्सर्जन होता है जो शरीर में सक्रियता, स्फूर्ति एवं प्रसन्नता को जगाता है। इसके अतिरिक्त एपीनेफ्रीन, टोपामाइन जैसे हार्मोन भी सक्रिय होते हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक गुणकारी रसायन हैं।

प्रख्यात वैज्ञानिक नारमन कजन्स का कहना है कि ठहाके लगाकर हंसना शरीर का भीतरी जागिंग है। भीतरी अंगों की मालिस होती है। शरीर में रक्त संचार तीव्र गति से होने लगता है। पसीना अधिक आता है जिससे शरीर के विजातीय द्रव्य शरीर के बाहर निकल जाते हैं।

प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० नारमन के अनुसार हंसने से व्यक्ति अपने तनावों एवं कुण्ठाओं से छुटकारा पाता है।

प्राकृतिक चिकित्सकों का कहना है कि प्रतिदिन पाँच किलोमीटर दौड़ने से जितना व्यायाम होता है उतना कुछ देर ठहाके लगाने से हो जाते हैं।

हंसी के चिकित्सकीय प्रमाणों पर गंभीर अध्ययन चल रहा है। इसके निष्कर्ष अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक पाये गये हैं। न्यूयार्क में ह्यूमर प्रोजेक्ट की स्थापना करने वाले डॉ० गुडमैन के अनुसार यदि कोई पन्द्रह बार हंसे तो उसके डॉक्टर का बिल लगभग न के बराबर होगा।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जोनेमन स्विफ्ट ने विश्व के तीन चिकित्सकों की प्रशंसा की है। ये चिकित्सक हैं डाक्टर डाइट (संतुलित आहार), डाक्टर पीस (शान्ति) और डाक्टर स्माइल (मुस्कान या हंसी)। जिसने संतुलित आहार को शान्ति एवं मुस्कराकर ग्रहण करना सीख लिया वह हमेशा स्वस्थ और प्रसन्न रहेगा।

युगोस्लाविया के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वटोको वोकुल ने अपनी पुस्तक 'ट्रीटमेंट बाई ह्यूमर' में लिखा है कि हंसी दुर्बलता, सिरदर्द तथा उच्च रक्तचाप की अचूक दवा है। कैंसर जैसे घातक रोग में भी हंसी के अद्‌भुत प्रभावों को देखा गया है।

डॉ० फ्रास अपने ग्रंथ 'ह्यूमर एण्ड ऐजिंग' में लिखते हैं कि लम्बी उम्र का राज प्रसन्न एवं हंसमुख रहना है।

'जस्ट फार दि हेल्थ' एवं हेल्थ एजूकेशन के लेखक डॉ० गुडमैन हंसी के लाभों को तीन तरह से स्पष्ट करते हैं। प्रथमतः यह शरीर के विकारों का प्राकृतिक ढंग से उपचार करता है, दूसरा यह शरीर को तनावरहित करता है और तीसरा हमारे सामाजिक रिश्तों को मजबूत बनाता है।

विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड हंसी को बहुत महत्व देते हैं। उनका मानना है कि हास्य तनाव से मुक्त करता है। पति-पत्नी के जीवन में यदि हास्य है तो उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय एवं सरस होगा।

विश्व के महानतम व्यक्ति महात्मा गांधी भी मजाक करने से नहीं चूकते थे। उनका कहना था कि- 'अगर मैं हंसना नहीं जानता तो कब का पागल हो जाता।'

भारत में तेजी से लाफ्टर क्लबों की स्थापना हो रही है। जहां ऐसे क्लब नहीं हैं वहाँ भी समूह में प्रातः भ्रमण करने वाले पार्क में इकट्ठा होकर जोर-जोर से हंसते हैं। हंसने वाले भले ही नकली हंसी हंसते हों लेकिन उनको हंसते देखने वालों को असली हंसी का आनन्द आ जाता है। नकली हंसी का अभ्यास भी उन्हें कई तरह के छोटे-मोटे रोगों से मुक्त कर देता है। आज भारत में २००० से अधिक ऐसे क्लब हैं। इन क्लबों के प्रणेता डॉ० मदन कटारिया हंसी के स्वास्थ्य-वर्धक तकनीकों का विकास एवं विस्तार कर रहे हैं। वर्तमान के तनाव, अवसाद एवं भागदौड़ में जी रहे हैरान, परेशान इंसान को स्वस्थ रहने के लिये यह अति आवश्यक है।

अनुभवी विशेषज्ञों के अनुसार हंसी बुढ़ापे को नजदीक नहीं आने देती। हंसी शरीर के लिए संजीवनी सिद्ध होती है। हंसी रोते हुये को हंसा देती है और बुरे समय में दवा का काम करती है। हंसी के अवसरों को मत चूको, हंसी आये तो खूब हंसो, जमकर हंसो।

हंसी को उत्पन्न करने वाली घटनाओं को याद करके हम कभी भी हंसी को अपने अन्दर पैदा कर सकते हैं। आप समय दें हंसने में, यह प्राण का संगीत है।

जोरदार ठहाके लगायें फिर देखें आपके कोलेस्ट्राल में कितनी कमी आती है और रोग प्रतिरोधक शक्ति कितनी बढ़ती है।

विश्व के प्रथम व्यक्ति काका हाथरसी हैं जिन्होंने अपनी वसीयत में लिखा है कि मेरे मरने के बाद कोई रोयेगा नहीं। लोग मेरी शवयात्रा में ठहाका लगाते जायेंगे। दाह संस्कार में हास्य के श्लोक पढ़े जायें। श्मशान घाट पर हास्य कवि सम्मलेन होगा। जब काका से पूछा गया कि आपने ऐसी वसीयत क्यों लिखी? तो उन्होंने बताया कि जिस व्यक्ति ने जिन्दगी भर सबको हंसाया, वह क्या मरते वक्त रुला के जाएगा?

अकबर ने भी बीरबल को अपना प्रमुख दरबारी बनाया था, कारण उसकी हाजिर जवाबी हास्य पैदा करती थी। सही जवाब में हास्य का दर्शन करना हो तो अकबर-बीरबल के किस्से पढ़ना न भूलें।

बिरला परिवार में पहले परिवार के सभी लोगों के साथ बैठकर दोपहर का भोजन करने की व्यवस्था थी। परिवार के अलावा एक ऐसा व्यक्ति भी साथ बैठता था जो बीरबल की तरह ही हाजिर जवाब था। उसकी हाजिर जवाबी भी हास्य उत्पन्न करती थी। वह भोजन करने वालों की थकान मिटा देता था।

आजकल सभी कथावाचक चाहे पूज्य मोरारी बापू हों या पूज्य रमेशभाई ओझा जी, अपने कथा प्रसंगों में हास्य का पुट अवश्य देते हैं। हास्य थके हुए के लिये विश्राम है। हतोत्साहित के लिये उत्साहवर्धक है, उदास के लिये उमंग है तथा रोगी के लिये सर्वोत्तम औषधि है। सोते हुये श्रोता को इसमें उठाने की भी ताकत है। इस पर खर्च कुछ नहीं आता लेकिन यह देता बहुत कुछ है। इसे पाने वाला मालामाल हो जाता है लेकिन देने वाला दरिद्र नहीं होता। हास्य रूपी महौषधि का नित्य सेवन करें। यह अपने को भी स्वस्थ एवं प्रसन्न रखते हुए दूसरों को भी प्रसन्नता प्रदान करता है।

स्वामी रामदेव ने योगाभ्यास में हास्य को भी योगाभ्यास का महत्वपूर्ण अंग माना है। हास्य भी योग है और इसको अपनाने में संकोच न करें।

हंसी प्राकृतिक दर्द निरोधक है। हंसने से लोगों को जोड़ों की सूजन, रीढ़ की जोड़ सम्बन्धी तकलीफ में कमी पायी गई है।

आपका हास्ययुक्त प्रसन्न चेहरा आपका सामाजिक दायरा बढ़ाता है। मायूस चेहरा किस काम का है? जो हमेशा उदास, निराश, हताश रहता है, जिसके चेहरे पर कभी प्रसन्नता नहीं रहती ऐसे व्यक्ति की सोच भी हमेशा नकारात्मक होती है। जैसे मुरझाये फूल फेंक दिये जाते हैं, वैसे ही ऐसे व्यक्ति की कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं होती। व्यक्तिगत जीवन बोझ लगता है। इसके विपरीत जिसके चेहरे पर हंसी, खुशी, प्रसन्नता है वह केवल स्वयं प्रसन्न नहीं रहता, औरों को भी प्रसन्नता प्रदान करता है। ऐसे व्यक्ति की मान्यता रहती है कि मेरी प्रसन्नता मेरा संक्रामक रोग हो जाय याने मेरी प्रसन्नता का संक्रमण हो जाय और मिलने वाले भी प्रसन्न हो जाएं।

एक जेल में जब कैदियों के लिये हास्य योग का आयोजन किया गया तो उन पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा और उनकी हिंसा वृत्ति में कमी महसूस करते देखा गया।

स्टेन फोर्ड विश्वविद्यालय के मेडिकल कालेज के मनोविज्ञान विभाग के डॉ० विलियम का कहना है कि– 'हंसी के बिना जीवन का कोई महत्व नहीं है। यदि रोगी व्यक्ति हंसता नहीं है तो अधिक समय तक रोगग्रस्त बना रहता है।'

लॉस एंजिलिस के एक अस्पताल में जब रोगी को छुट्टी दी जाती है तो उसे निर्देश दिया जाता है कि वह दिन में कम से कम १५ मिनट जरूर हंसे। हास्य एवं उल्लास प्राकृतिक औषधियों का अथाह समुद्र है। खिलखिला कर हंसना सेहत की सबसे कारगर दवा है। ऐसी व्यक्ति की आयु भी बढ़ती है।

अधिक वजन वाले लोगों के लिये भी हंसना बेहद अच्छा व्यायाम है। भले ही आप वजन घटाने के लिये डायटिंग करते हों, व्यायाम करते हों, प्रातः भ्रमण

करते हो, चर्बीयुक्त भोजन कम करते हों। उन सबके साथ खुलकर हंसने का अभ्यास भी आपकी चर्बी कम करने में सहायक होगा।

आपका हंसना एवं जीभर हंसना आपको हमेशा जिंदादिल बनाकर रखेगा। हंसने से खून का संचार भी तेज हो जाता है जिसका प्रभाव हमारी त्वचा एवं चेहरे पर साफ दिखाई देता है।

हास्य एवं विनोद का आश्रय लेने से हमारी कार्यशक्ति बढ़ती है। यह निराशा का दुश्मन है एवं दुःखों का रामबाण।

हास्य का अभ्यास करने लिये हास्य बोध का होना आवश्यक है। हास्य बोध होने से आप जहां जिस समय जिस परिस्थिति में भी रहें, हास्य पैदा कर सकते हैं।

कुछ लोग इसलिये भी गंभीर रहते हैं ताकि उनको ज्ञानी, विचारक, दार्शनिक समझा जाय। भले ही वास्तव में वे न ज्ञानी हों, न दार्शनिक और न विचारक। सच मानें, ज्ञानियों दार्शनिकों एवं विचारकों में हास्य की बड़ी गहरी समझ होती है। यह सभी वर्गों में समान रूप से पाया जाता है चाहे ब्राह्मण हों, क्षत्रिय, वैश्य हों या शूद्र, पुरुष हों या स्त्री।

स्त्रियों को हंसने में परिस्थिति देखनी पड़ती है कारण स्त्रियों के लिए कहावत है कि हंसी कि फंसी।

मुस्कराहट से निश्चय ही चेहरे की सौन्दर्यवृद्धि होती है। यह थकान मिटाने की अचूक दवा है। एक पाश्चात्य विद्वान का कहना है कि अगर हम जीवन पथ पर पुष्प नहीं बिखेर सकते तो मुस्कराहट बिखेरने में क्या जाता है?

आप जितना हंसेंगे उतने ही स्वस्थ रहेंगे और जितना स्वस्थ रहेंगे, उतना ही सुन्दर दिखेंगे।

हास्य बोध या अंग्रेजी में सेंस आफ ह्यूमर बढ़ाने के लिए ह्यूमर कन्सल्टेन्ट भी हो गये हैं जो खुशी से काम करने और स्वस्थ व ताजगी महसूस करने के गुर सिखाते हैं।

इस लेख को पढ़कर आपको यह समझ हो गई होगी कि हम क्यों हंसें। हंसना हमें प्रसन्नता प्रदान करता है, थकान मिटाता है, सामाजिक दायरा बढ़ाता है, बहुत सी बीमारियां दूर करता है, लम्बी उम्र पाने का राज भी इसमें छिपा है। यह बिना पैसे की दवा है। आप अपनी हंसी, खुशी, प्रसन्नता देने से गरीब नहीं होते लेकिन सामने वाला मालामाल हो जाता है। अतः हंसने का अवसर कभी न चूकें।

♦

पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग के अन्य प्रकाशनों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी के लिये हमारी
website : www.pilgrimsbooks.com
पर देखें
या
डाक द्वारा सूची-पत्र मंगाने के लिये निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें-

पिल्ग्रिम्स बुक हाउस
बी० 27/98-ए-8, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-221010
टेलीफोन : (91-542) 2314060
फैक्स : (91-542) 2312456
E-mail : pilgrimsbooks@sify.com
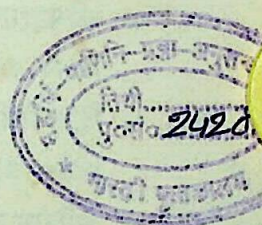
पिल्ग्रिम्स बुक हाउस
2391, तिलक स्ट्रीट, चूना मण्डी,
पहाड़गंज, नई दिल्ली-110055
टेलीफोन : 91-11-23584015
फैक्स : 91-11-23584019
E-mail : pilgrimsinde@gmail.com

पिल्ग्रिम्स बुक हाउस
पो० बा० नं०-3872, थमेल, काठमाण्डू, नेपाल
टेलीफोन : (977-1) 4700942, 4700919
फैक्स : (977-1) 4700943
E-mail : pilgrims@wlink.com.np

पिलग्रिम्स पब्लिशिंग द्वारा प्रकाशित हिन्दी की प्रमुख पुस्तकें

- **सुम्निमा** — विशेश्वर प्रसाद कोइराला
  ISBN—81-7303-048-0 — मूल्य—रु० १०९/-
- **खाली हाथ शाम** — राधे मोहन राय
  ISBN—81-7769-636-X — मूल्य—रु० ७५/-
- **दहेज** — देवनारायण द्विवेदी
  ISBN—81-7769-460-X — मूल्य—रु० ९०/-
- **भवितव्यता** — ब्रजभूषण मिश्र 'सदाबहार'
  ISBN—81-7769-553-3 — मूल्य—रु० ४०/-
- **कथा प्रथा कहानियां** — डॉ० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
  ISBN—81-7303-203-3 — मूल्य—रु० ७५/-
- **श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र** — बाल गंगाधर तिलक
  ISBN—81-7769-517-7 — मूल्य— रु० १०००/-
- **हिन्दू विधिविवेक** — डॉ० रामनिवास तिवारी
  ISBN—81-7769-511-8 — मूल्य—रु० ६५०/-

- **अलिफ़ लैला** — हिन्दी रूपान्तर—गोपाल ठाकुर
  ISBN—81-7769-390-5 — मूल्य—१२५ रु०
- **काशी की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास** — डॉ० वसिष्ठ नारायण सिंह
  ISBN—81-7769-556-8 Hardbound — मूल्य—रु० ५००/-
  ISBN—81-7769-396-4 Paperback — मूल्य—रु० २५०/-
- **समाचार सम्पादन** — प्रेमनाथ चौबे
  ISBN—978-81-7769-678-3 — मूल्य—रु० १२५/-
- **हिन्दी पत्रकारिता का व्योम** — श्रीनिवास सिंह
  ISBN—81-7769-675-2 — मूल्य—रु० ७०/-
- **सचित्र मीडिया शब्दावली** — प्रभु झिंगरन
  ISBN—81-7769-402-2 — मूल्य—रु० ३९५/-
- **तीन कदम में दुनियाँ जीतो** — राजीव कपूर
  ISBN—81-7769-554-1 — मूल्य—रु० १२५/-

जन्म : 22 जनवरी, सन् 1934 ई. भागलपुर (बिहार)
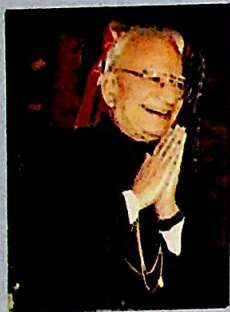
शिक्षा : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से सन् 1954 ई. में औद्योगिक रसायन शास्त्र के साथ विज्ञान स्नातक।

उद्योग : झुनझुनवाला वनस्पति लि., झुनझुनवाला ऑयल मिल्स लि., झूला रिफाइनरीज, झुनझुनवाला गैसेज प्रा. उल., झूला हर्बाकेयर्स।

समाज सेवा : हिन्दू सेवा सदन अस्पताल, काशी गोशाला, रामानुज संस्कृत महाविद्यालय, श्रीराम लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी हिन्दू अस्पताल, काशी व्यायामशाला, योग मित्र मण्डल, रोटरी इण्टरनेशनल, जूनियर चैम्बर्स, गीता स्वा[illegible]य केन्द्र, वाराणसी विकास समिति आदि के विभिन्न पदों पर सक्रिय योगदान।

उपलब्धियां : सोसायटी ऑफ केमिकल इंजीनियरिंग, काशी हिन्द विश्वविद्या[illegible], कॉउन्सिल ऑफ मैनेजमेन्ट एग्जिक्यूटिव, मुम्बई रोटरी क्लब, जूनियर चेम्बर तथा [illegible]य संस्थाओं द्वारा विशिष्ट सम्मान से अलंकृत।

कृतियां : अमृत कलश, हास्य कलश, प्रेरक चरित्र, आपका स्वास्थ्य आपके हाथ, [illegible] प्रसंग, सफल उद्यमी कैसे बनें, वृद्धावस्था की समस्या एवं समाधान, प्रेरणा स्त्रोत, जीव[illegible] के सूत्र, वचनामृत, जीवन यात्रा, हास्य का हिमालय, रोटरी : एक परिचय, नये युग का सूत्रपात एवं बचपन।

अभिरुचि : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक विषयों पर चार दशकों से अनवरत लेखन।

वार्ता : आकाशवाणी, दूरदर्शन, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, सामाजिक संस्थाओं में सामाजिक विषयों पर विचार प्रस्तुति।

सम्पर्क : झुनझुनवाला भवन, नाटी इमली, वाराणसी।
फोन-2211312, 2211313, मोबाइल-9415302942
फैक्स : 2210480, ई-मेल : jhoola @satyam.net.in

PILGRIMS PUBLISHING
◆ Varanasi ◆
www.pilgrimsbooks.com

Motivation
Rs. 325/-

ISBN 978-81-7769-812-1
9788177698121